ब्रह्म-वैवर्त : एक अध्ययन

सत्यनारायण त्रिपाठी

आचार्य, साहित्यरत्न, एम० ए०, एल० टी०, पी-एच० डी०

स्मृति प्रकाशन

१२४, शहराराबाग, इलाहाबाद-२११००३

प्रकाशक
गायत्री प्रकाशन,
राजा बाजार, बस्ती

"शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय भारत सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित"

संस्करण : प्रथम १६८१

मूल्य : रु० ६५.०० मात्र

मुद्रक
एकेडमी प्रेस
दारागंज, प्रयाग

० शोध-पुष्प ०

स्नेह-सुधाम्भोनिधि-
परम पूजनीया पुत्रवत्सला माता
श्रीमती रमराजी देवी
के
चरण कमलों में सादर समर्पित

प्राक्कथन

ब्रह्मवैवर्त राधा-कृष्ण कथा की निधि है। उक्त पुराण पर शोध के रूप में जो अध्ययन प्रस्तुत है वह आदरणीय डा० अतुल चन्द्र बनर्जी की प्रेरणा का प्रतिफलन है। पुराणों पर शोध अभी तो अन्धकार से कुछ अन्वेषण कर पाने की भाँति है। किन्तु गुरु-प्रदत्त प्रज्ञा-दृष्टि से प्राप्तव्य तक पहुँच पाने में शिष्य का प्रयास भी गुरु कृपा के सामर्थ्य से संवलित होकर प्रशंसा-भाजन बन सके तो मेरी दृष्टि में सफलता का सम्पूर्ण श्रेय गुरु को ही है, शिष्य तो एक निमित्त-मात्र है। इस निबन्ध के प्रति मेरी ममता अथवा अहं उस अन्धकार की देन है जो प्रकाश की समष्टि में विलीन होकर भी अपने पीछे एक इतिहास, एक स्मृति छोड़ गया। समय-समय पर गुरु जी ने मुझे अपने कार्यों को अवरुद्ध करके भी स्नेहपूर्ण दृष्टि से बोधव्य का निर्देश किया है।

पुराणों में विविध विषयों का सागर-सा लहराता है। कथा प्रसंग में दसियों अध्याय ऐसे आ पड़ते हैं जिनका ज्ञान की दृष्टि से जो भी महत्व हो, किन्तु कथाप्रसंग में तो हठात् ठूसे हुए जान पड़ते हैं। किन्तु इन स्थितियों में भी पुराणों का कलेवर कभी न तो परिष्कृत अथवा संशोधित हुआ और न तो अल्पतर ही हुआ। प्रत्युत इनके अन्तर की निरन्तर संख्या बढ़ती ही गयी। वृहत्तरता की यह अजस्र धारा भी कभी टूटी नहीं। पुराणों की इस विशालता में आमुष्मिक-महत्व विशेष रूप से समादृत था और यही भारतीय जीवन का श्रद्धेय लक्ष्य बन गया।

पुराणों ने एक क्रान्तिकारी परिवर्तन भी धार्मिक जीवन में ला दिया। ब्राह्मण काल के याज्ञिक अनुष्ठानों से जहाँ ब्राह्मणों का महत्व उच्चता की चरम कोटि पर था वहीं निम्न-श्रेणी की जातियों की श्रद्धा-भक्ति का महत्त्व न्यूनतर हो चला था। यही एक विचारणीय तथ्य है कि जो लोग न तो शैशव तथा नव यौवन में औपचारिक विधि से विद्या ग्रहण कर सके और न उच्च कुल में जन्म ही ग्रहण कर सके किन्तु सत्संगति तथा निजी अध्यवसाय से कुछ ज्ञानार्जन किये; यद्यपि वे पूर्ण शास्त्रज्ञ न होते हुए भी देश-काल-पात्र के ज्ञान में दक्ष थे, श्रद्धालु एवं सत्यनिष्ठ थे, वे भक्ति-भाव प्रवण एवं परम भागवत थे, उन पर विचक्षण विद्वान की दृष्टि क्यों न उठती।

किन्तु याज्ञिक क्रियाओं में तो ब्राह्मण-कुलोत्पन्न आश्रम-सिद्ध कर्मोपासना-ज्ञान-निष्णात पण्डितवर को ही स्थान मिल सकता था। ये द्रव्य-यज्ञ भी श्रेष्ठी, धनी एवं नरेन्द्र ही कर सकते थे क्योंकि यज्ञ में तो विपुल धन की आवश्यकता थी। यद्यपि इन यज्ञों में आवश्यकता सबकी पड़ती थी। कुम्भकार, वर्धकि, लौहकार, कांस्यकार, हेमकार, नापित, रजक, हलवाह आदि की तो प्रत्यक्ष सेवा के बिना यज्ञ-क्रिया और यज्ञ भूमि

आदि का सुसंस्कृत रूप ही नहीं निष्पन्न हो सकता था। इसके अतिरिक्त, साधनों का एकत्रीकरण, धन और प्रभुत्व के बल पर जो भी कुछ हो पाता था वह तो मानव एवं पशु ही नहीं प्रत्युत तरु-लताओं की भी ऋजुता तथा सद्भाव का प्रतिफल था।

इस क्षेत्र में मानापमान उच्च-नीच के भाव भी पनपे। जहाँ धन और प्रभुत्व की छाया पड़ेगी भला वहाँ मानवता क्यों न पीड़ित होगी। क्यों न धनी अपने भ्रू भंग को दीन पर वक्र करेगा। राजा अपने भृत्य को क्यों न डाँटेगा। नीच कुलों, निर्धन-स्थितियों में रहने वाले कहाँ नहीं अपमानित होंगे! दूर हटो, दूर हटो के मर्मभेदी वाक्यों द्वारा दुत्कार से एक प्रतिक्रिया ने जन्म लिया, वह थी भक्ति।

वास्तव में भक्ति-भाव से मानव के अन्तराल में परम उदारता पालित होती है, क्योंकि भक्ति की मूल-वृत्ति सेवा है। यद्यपि वेदों में ज्ञान, कर्म और उपासना ये तीनों तत्व प्रधान थे किन्तु कर्म के आडम्बर और ज्ञान के रहस्य ने उपासना को संकुचित कर दिया था। उपासना के संकुचित होने का कारण एक अन्य भी था। वह कारण था उपासना की पराश्रयता। यज्ञ की उपासना में ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य की उपस्थिति अनिवार्य है। उपासना की विधि को यज्ञ ने चाहे जितना सुसंस्कृत परिष्कृत किया तथापि उपासना का घनिष्ठ क्षेत्र जो था वह तो देही का सांगोपांग मन था। "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:"। उसकी उपेक्षा कर ऋत्विक् आदि के दल से मन का सुसंस्कृत रूप होना असम्भव था।

अत: भावप्रवण भक्त यजमान के मानस की उपासना ने अन्तर्विद्रोह कर दिया। भक्ति की शुद्धता और सरलता के सम्मुख आडम्बर टिक न सका।

इस विचार-विमर्श के प्रसंग में हमें विदेशी प्रभावों, विजातीय अथवा अभारतीय दबावों को भी नहीं भूलना चाहिए। शिर कटाकर भी हम अपनी पूर्व परम्परा को घात-प्रतिघातों से अक्षत न रख सके। आवश्यकता थी कि हम एकान्त में भी अपने आराध्य को भज सकें। यज्ञ के विशाल आयोजनों के अभाव में, क्योंकि आतंकवश धन के होते हुए भी यज्ञ आदि विशाल आयोजन होना ही असम्भव था, हमारे मनको शान्ति कहाँ मिलती। भक्ति की उत्ताल तरंगे दब नहीं सकतीं। हमारा मन ज्ञान की शुष्कता से कुण्ठित भी हो चला था।

नैष्कर्म्यमप्यच्युत-भाव-वर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरंजनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥[1]

पुराणों की यही सबसे बड़ी देन है भक्ति।[2] वह भक्ति, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि रूपों में पनपी। साथ ही साथ पौराणिक भक्ति ने वामाचार से अपना पार्थक्य

१. श्रीमद्भा० १।५।१२ २. ब्रह्मवै० ४, २।८४ अध्याय

बनाये रखा। पौराणिक भक्ति के आचार में सदैव शुद्धता पर ध्यान रखते हुए स्वयं कष्ट-स्थिति में डाल कर भी परोपकार भाव की मुख्यता है।[1] भक्ति में भक्त का सम्पूर्ण प्राप्तव्य सन्निहित रहता है।

महेश्वर श्री कृष्ण से कहते हैं—

आकल्प-कोटि-कोटिं च त्वद्रूप ध्यान तत्परम्।
भोगेच्छा विषये नैव योगे तपसि मन्मनः॥
त्वत्सेवने पूजने च वन्दने नाम कीर्तने।
सदोल्लसितमेषां च विरतौ विरतिं लभेत्॥
स्मरणं कीर्तनं नाम गुणयोः श्रवणं जपः।
त्वच्चारु-रूप-ध्यानं त्वत्पाद- सेवाभिवन्दनम्॥
समर्पणं चात्मनश्च नित्य-नैवेद्य-भोजनम्।
वरं वरेश देहीदं नवधा-भक्ति-लक्षणम्॥
सार्ष्टि-सालोक्य-सारूप्य-सामीप्यं साम्यलीनताम्।
वदन्ति षड्विधां मुक्तिं मुक्ता मुक्ति-विदो विभो॥
अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
ईशित्वं वशित्वं च सर्वकामावसायिता॥
सर्वज्ञं दूर-श्रवणं परकाय-प्रवेशनम्।
वाक्सिद्धिः कल्पवृक्षत्वं स्रष्टुं संहर्तुमीशता॥
अमरत्वं च सर्वण्यं सिद्धयोऽष्टादश स्मृताः।
योगास्तपांसि सर्वाणि दानानि च व्रतानि च॥
यशः कीर्ति वंचः सत्यं धर्माण्यनशनानि च।
भ्रमणं सर्वतीर्थेषु स्नानमन्य-सुरार्चनम्॥
सुरार्चा दर्शनं सप्त-द्वीप-सप्त-प्रदक्षिणम्।
स्नानं सर्व-समुद्रेषु सर्व-स्वर्ग-प्रदर्शनम्॥
ब्रह्मत्वं चैव रुद्रत्वं विष्णुत्वं च परं पदम्।
अतो निर्वचनीयानि वांछनीयानि सन्ति वा॥
सर्वाण्येतानि सर्वेश! कथितानि च यानि च।
तव भक्ति-कलांशस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥[2]

भक्त की दृष्टि में भक्ति द्वारा इष्टदेव की प्राप्ति ही सर्वश्रेष्ठ प्राप्तव्य है।

---

१. ब्रह्म वै० १।२७।१-४७
२. वही १/६/१३-२४

उपर्युक्त उद्धरण इस तथ्य का भी प्रमाण है कि पुराणों में संक्षिप्त शैली का मार्ग नहीं अपनाया गया है। वास्तव में व्यास का कार्य श्रोता को दिशा देना है। यदि वक्ता समास अथवा संक्षिप्त पद्धति का अनुगमन करेंगे तो अवश्य ही व्याख्या का अवसर नहीं मिल पायेगा।

ब्रह्मवैवर्त में गार्हस्थ्य-जीवन की समस्याओं का निदान और उपचार भी वर्णित है। ब्रह्मवैवर्त गृह-परिवार की विमुखता का उपदेशक नहीं है। नारद को भी यहाँ विवाहित जीवन जीने की धारणा प्रसृत की गयी है। घृणा में ही आकण्ठ-निमग्न हड्डि आदि निम्न-जातियों को उच्च-जातियों की संकरता से उत्पन्न बताने के कारण अवश्य ही उनके प्रति घृणा का भाव न्यून होता है तथा साथ ही साथ एक प्राचीन इतिहास भी प्रत्यक्ष हो जाता है। उन जातियों की निर्दोष-स्थिति भी ज्ञात हो जाती है।

लोहार, सोनार, नाई आदि जातियों को विश्वकर्मा एवं घृताची के नवपुत्र के रूप में उत्पन्न होना बताया है। उक्त दम्पति प्रयाग के ब्राह्मण तथा गोपिका के रूप में मिले थे।[1]

ब्रह्मवैवर्त ने स्त्री जाति के प्रति विशेष उदारता वर्णित किया है। यहाँ ऐसी कथाएँ; जिनमें स्त्री एक के अतिरिक्त पुरुषों का सम्पर्क करती हैं, जो कि नारी जीवन का कलंक बनता है, संकलित की गयी हैं। उनका समाधान प्रस्तुत है तथा उन स्त्रियों को धर्मानुकूल अनुमोदन देकर प्रशस्त किया गया है। इसके लिए ब्रह्मवैवर्त ने प्राचीनता के गर्भ से ही आधुनिकता का आविष्कार किया है। तुलसी, द्रौपदी, अहल्या, तारा जैसी स्त्रियों का आदर्श देकर यह सिद्ध कर दिया कि—

'न स्त्री जारेण दुष्यति।'

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त ने सामाजिक मनोबल ऊँचा करते हुए एक नवीन प्रेरणा दी। वास्तव में काम-वृत्ति एक नैसर्गिक-वृत्ति है, सबके लिए इस वृत्ति पर विजय पाना असम्भव है। समाज में कुछ लघु से महान् तक ऐसे व्यक्ति होते रहते हैं; जो इस काम-पाश में बद्ध हो विपरीत आचरण भी कर बैठते हैं। इस स्थिति में उनसे प्रायश्चित्त ही विधेय है न कि उनका जीवन ही नष्ट कर दिया जाय। ब्रह्मवैवर्त का यह सौहार्दपूर्ण निर्णय आधुनिक-जीवन के अति-अनुकूल है। पूर्व इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो अवश्य ही यह युग की माँग थी, जिसे हमारे दूर-द्रष्टा व्यास ने देखा।

ब्रह्मवैवर्त में प्रायः जहाँ से कि कथा का मूल विस्तार प्रारम्भ होता है, शाप ही कारण बताया गया है।

ब्रह्मवैवर्त में काम-क्रीडाओं तथा शृंगार वर्णनों की भरमार है किन्तु सबका समापन कृष्ण-भक्ति में ही है। कदाचित् स्पष्टरूप से उक्त पुराण में कहीं कथित तो

१. ब्रह्मवै० १/१०/७१

नहीं है किन्तु इन्हें प्रतीकात्मक रूप मानकर विचार किया जाय तो निस्सन्देह सिद्ध है कि काम जीवन का एक नैसर्गिक-भाव है, इसे नष्ट नहीं किया जा सकता। अतः गार्हस्थ्य-जीवन के दम्पति-भाव में कामाहुति का भक्ति के प्रज्ज्वलित-पावक में समर्पण ही काम-विजय का सुसाध्य रूप है।

ब्रह्मवैवर्त में भक्ष्याभक्ष्य-विवेक, शकुन, मंगल, अमंगल, सुस्वप्न, दुःस्वप्न, कृष्ण-जन्माष्टमी-व्रत तथा एकादशी आदि धर्मशास्त्रीय व्रतों का विवेचन एवं निर्णयात्मक कथन भी किया गया है।

ब्रह्मवैवर्त में ऋषि-मुनियों के नामों की सूची, ऋषि मुनि दम्पतियों की सूची, वृक्षों की नामावलि आदि वर्णन की दृष्टि से विचार किया जाय तो अनावश्यक सी लगती है किन्तु भारत के अतीत को एक ही पुराण में सुनने का अवसर ही कैसे मिलता।

उक्त पुराण में प्रकृति के रूपों; दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, राधा, गंगा, मनसा, षष्ठी, सुरभी, तुलसी, तारा, अहल्या, द्रौपदी के चरित्रों का विस्तार-पूर्वक विश्लेषण किया गया है।

गणेश को कृष्णांश बताते हुए गणेश, स्कन्ध और परशुराम की कथा का सविस्तार वर्णन किया गया है।

सृष्टि का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया है। अध्यात्म-योग[1], ज्ञान-सार[2] आयुर्वेद तथा काल[3] के सूक्ष्मतम अंशों का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

कृष्ण के महत्व प्रतिपादन में विभिन्न दर्पभंग की कथाएँ भी रोचक ढंग से प्रस्तुत की गयी हैं।

वृन्दावन, द्वारका और मथुरा पुरी का विशेष-वर्णन[4] तत्कालीन-सामाजिक-स्थिति की उच्चता का विशेष प्रस्तावक हैं।

तन्त्र-मन्त्र का भी प्रयोग यत्र-तत्र दिया गया है। किन्तु य प्रयोग अपनी पौराणिक विशेषताओं से सम्बद्ध हैं। इनमें कहीं बलिदान अथवा कठिन सिद्धियों की चर्चा नहीं है। इन मन्त्रों, कवचों तथा स्तोत्रों में भक्ति भाव की अपेक्षा है, व्यर्थ आडम्बर नहीं।

ब्रह्मवैवर्त में प्रासंगिक रूप में शब्दों का निर्वचन अति सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है। निर्वचन के क्षेत्र में उक्त पुराण ने सर्वाधिक कार्य किया है। उक्त पुराण में भक्ष्या-

---

१. ब्रह्मवै० ४, २/११०/६-१५
२. वही २/३६/६५-१६४
३. वही ४, २/८६/४६-१०६
४. वही ४, २/६२/४८-५६

क्ष्य विवेक[1], वर्णाश्रम-धर्म[2] तथा विधवा एवं पतिव्रता[3] धर्म पर भी विशेष विचार कया गया है।

मैंने प्रस्तुत अध्ययन को बारह भागों में विभक्त किया है। उपर्युक्त सभी ाषयों पर विवेचन भी यथासाध्य भाव से किया है। यद्यपि इन विषयों पर अभी बहुत छ कार्य करना शेष है।

मेरे इस कार्य में विभिन्न विद्वानों के ग्रन्थों ने भी यदि आश्रय न दिया होता ो सम्भवत: इस कार्य की पूर्ति में नितरां बाधा ही उपस्थित होती। अत: गुरु ारणों का नमन करते हुए उन विद्वज्जनों के प्रति विशेष आभार व्यक्त रता हूँ।

महर्घता-मर्दित संक्षुब्ध-सामाजिक वातावरण में मेरे इस प्रकाशन को केन्द्रीय शक्षा एवं समाज-कल्याण संस्कृत-विभाग, भारत सरकार ने जो आर्थिक सहायता प्रदान किया है, भले ही वह अल्पतम है, तदर्थं मैं उनका विशेष आभारी हूँ।

मैं एकेडमी प्रेस परिवार को भी अपना आभार प्रदर्शन करना परम कर्त्तव्य मानता हूँ जिसकी तत्परता के बिना इस ग्रन्थ का दर्शन ही दुर्लभ होता।

अन्त में महाकवि व्यास को प्रणाम कर श्री कृष्ण के आकर्षण की कामना करते हुए आशा करता हूँ कि सुधी जन इस कृति को स्वीकार करेंगे।

सत्य नारायण त्रिपाठी

---

१. ब्रह्म वै० ४, २/८५ अ०
२. वही ४, २/८३ अ०, ८४ अ०
३. वही

अनुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ
गणेश के रूप		८०
गणेश-वाहन		८२
गणेश-तिलक		८२
गणेश-प्रतिमा		८२
गणेश-सम्प्रदाय		८३
गणेश-प्रसार		८६
समीक्षा		८७
गणेशार्चा		६२
११. श्रीकृष्ण : गोलोक से गोकुल	...	१०४-११३
१२. श्रीकृष्ण-कथा-तत्त्व (पूर्वार्ध)	...	११४-१५५
,, ,, (उत्तरार्ध)	....	१५६-१८०
१३. राधा-तत्त्व	...	१८१-२०४
१४. ब्रह्मवैवर्त में कृष्ण	...	२०५-२२०
१६. रास	...	२२१-२५२
१६. ब्रह्मवैवर्त में विष्णु	...	२५३-२६२
१७. ब्रह्मवैवर्तीय निर्वचन	...	२६३-३२१
१८. ब्रह्मवैवर्त में शालिग्राम	...	३२२-३२८
१६. ब्रह्मवैवर्त में नदियाँ	...	३२६-३४६
२०. ब्रह्मवैवर्तीय छन्द	...	३४७-३५२
२१. ब्रह्मवैवर्तीय नारी-पात्र	...	३५३-३५८
२२. उपसंहार	...	३५६-३६३
परिशिष्ट		
१. ब्रह्मवैवर्त में मन्त्र-तन्त्र	...	३६४-३६६
२. ब्रह्मवैवर्त में संख्यात्मक-तालिका	...	३६७-३६६
३. ब्रह्मवैवर्तीय-पात्र	...	३६६-३७१
४. मंगल-सूची	...	३७१
५. अमंगल-सूची	...	३७२
६. शुभ-सूची	...	३७३
७. अशुभ-सूची	...	३७४
८. वृन्दावन के ३३ वन	...	३७५
६. सोलह सतियाँ	...	३७५
१०. यदुवंश-वृक्ष	...	३७६-३८३
११. संदर्भ-ग्रन्थ-सूची	...	३८४-३८७

अध्याय १

ब्रह्मवैवर्त-काल

पौराणिक-परम्परा पर दृष्टिपात करते हुए किसी पुराण के रचना की एक निश्चित तिथि बता पाना अतीव विवादग्रस्त है।[1] तथापि इस सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने अनुमान के द्वारा एक सामान्य आकलन का प्रयास किया है। वास्तव में ये पुराण भारतीय जनता के श्रद्धा-भाजन हैं। इन्हें पढ़ना सुनना और इनका दान आज भी पुण्य-प्रद माना जाता है। पुराणों ने साम्प्रदायिकता का आग्रह नृशंस अथवा क्रूर भाव से नहीं किया है। इनका दृष्टिकोण समन्वयवादी है। "जिस प्रकार फ्रांस के मनीषियों ने अठारहवीं शताब्दी में अपनी नवीन बौद्धिक-उपलब्धियों को एक प्रचलित विश्वकोष के द्वारा जनग्राह्य बनाया था, उसी प्रकार अष्टादश पुराण भी अपने वर्तमान रूप में मुख्यतः गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि प्रतिपादन करते हैं। इनमें सांख्य, योग और वेदान्त की दार्शनिक मान्यताएँ भागवत, शैव, शाक्त आदि सम्प्रदायों के सिद्धान्त, वैदिक और तान्त्रिक प्रक्रियाएँ तथा धर्मशास्त्र आदि का सार संगृहीत है। अत्यन्त प्राचीन कल्पनाएं परिष्कृत दार्शनिक तत्वों के साथ एक व्यवस्थित विधि-विधान के साथ-साथ अनुस्यूत पाई जा सकती हैं। अपने इस विकास की सुदीर्घ परम्परा तथा विषय की सर्वग्राहिता के कारण इन पुराणों की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक व्याख्या वस्तुतः टेढ़ी खीर है।"[2] तथापि इतिहासकारों ने पुराणों के महत्व को स्वीकार करते हुए उन्हें ऐतिहासिक आधार होने का श्रेय प्रदान किया है।[3]

ब्रह्मवैवर्त वैष्णव-परम्परा का एक ऐसा पुराण है जिसमें कृष्ण ही विष्णु के भी निर्माता हैं। यद्यपि श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराणों ने श्री कृष्ण को विष्णु से श्रेष्ठ स्वीकार किया है तथापि किसी काष्र्ण्य धर्म की नाम-चर्चा नहीं की गयी, सब वैष्णवों के अन्तर्गत ही समाहित हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर ऐसा आभास होता है कि उक्त दोनों ही पुराण अन्य पुराणों की अपेक्षा परवर्ती होंगे।

ब्रह्मवैवर्त राधा-सम्बद्ध-कथाओं का एक विशिष्ट आधार है। किन्तु महाभारत जैसे विशाल एवं विशिष्ट युग-काव्य में कृष्ण के साथ राधा का न आना, पुराणों में कृष्ण-कथा का मंजुल-कोष श्रीमद्भागवत के द्वारा राधा का नाम न लेना अवश्य ही

---

१. ऐन्शिएण्ट इण्डिया—आर० सी० मजूमदार, पृ० ४३८।

२. पौराणिक धर्म एवं समाज—सिद्धेश्वरी नारायण, प्रस्तावना—गो० च० पाण्डे।

३. ऐ० इ०, आर० सी० मजूमदार, पृ० ७।

एक विचारणीय विषय है। यही सिद्ध भी करता है कि सम्भवतः ब्रह्मवैवर्त पुराणों में सर्व पश्चाद्वर्ती हो।

किन्तु तत्काल ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या पुराणों की अष्टादश-संख्या आधुनिक-कल्पना है? महाभारत में भी अष्टादश पुराणों की चर्चा है—

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः।
पश्चाद् भारतमाख्यानं चक्रे तदुपबृंहितम्॥

यद्यपि अति प्राचीन ग्रन्थों में पुराण शब्द का प्रयोग एकवचन में भी होता आया है—जैसे कि—

१. अथर्व संहिता—ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं च यजुषा सह।[1]

२. अथर्व वेद—इतिहासस्य च वै स पुराणस्य गाथानां नाराशंसो नां स प्रियं धाम भवति य एवं वेद।[2]

३. शतपथ-ब्राह्मण—अध्वयु ताक्ष्यं वै पश्यतो राजयेत्याह···पुराणं वेदः। सोऽयमिति किंचित् पुराण माचक्षोत्।[3]

४. शतपथ/बृहदारण्यक—सः यथा आर्द्रेन्धनाग्ने रभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्ति एवं वा अहेरस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनु व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।[4]

उपर्युक्त प्रसंगों में पुराण शब्द का प्रयोग एकवचन में ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि पुराणों का विकास क्रमिक हुआ है। शिव पुराण तथा पद्म पुराण स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि पुराकाल में पुराण एक ही था। किन्तु व्यास ने द्वापर में पुराण को अष्टादश भेदों में पुनः विरचित किया।

पुराणमेक मेवासीदस्मिन् कल्पान्तरे नृप।
त्रिवर्ग-साधनं पुण्यं शतकोटि-प्रविस्तरम्॥
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुरास्य ततो नृपः।
व्यासरूपो विभुर्भूत्वा संहरेत् स युगे-युगे॥
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा।
तष्टादशधा कृत्वा भू लोकेऽस्मिन् प्रभाषते॥

---

१. अ० सं० ७१।७२४। २. अथर्ववेद १५६।१२।

३. श० प० ब्रा० १३।४।३।१३। ४. श० प० १४।६।१०।६ बृहदा० २।४।१०।

अद्यापि देव लोके तच्छतकोटि-प्रविस्तरम् ।
तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितः ।।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते ।[1]

इसी अभिप्राय को पद्म पुराण ने भी स्वीकार किया है :—

व्यासरूपो तदाब्रह्मा संग्रहार्थं युगे-युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे पुनः ।।
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाशते ।[2]

इस विकास क्रम को ब्रह्मवैवर्त भी स्वीकार करता है :—

इदं पुराणसूत्रं च पुरा दत्तं च ब्रह्मणे ।
निरामये च गोलोके कृष्णेन परमात्मना ।।

× × ×

व्यासः पुराण सूत्रं तत्संव्यस्य विपुलं महत् ।
मह्यं ददौ सिद्धि-क्षेत्रे पुण्यदेशे मनोहरम् ।।[3]

महामुनि वाल्मीकि ने भी पुराण शब्द का प्रयोग बहुवचन में किया है :—

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजान मिदय ब्रवीत् ।
श्रूयतां वत पुरावृत्तं पुराणेषु मयाश्रुतम् ।।[4]

कुछ पुस्तकों में 'पुराणेषु' के स्थान पर 'पुराणे च' यह पाठ है।

अतः यह असन्दिग्धरूपेण स्वीकार्य है कि पुराणों के क्रमिक विकास में निरन्तर वृद्धि होती रही तथा विशिष्ट सामग्रियों एवं जनप्रिय कल्पनाओं और कक्षाओं से इनका कलेवर बढ़ता गया, व्यासों ने विविध-भाव-भण्डारों को इनमें ला-लाकर पाटना चालू रक्खा। यही कारण है कि पुरातन अतीत से लेकर अधुनातन समाज का चित्र यहाँ दृश्यमान है। इनका काल-निर्णय अति दुःसाध्य एवं दुष्कर है।

इस दुःसाध्यता के होते हुए भी विचक्षणों ने प्रयास किया है। विलसन महोदय का विचार है कि ब्रह्मवैवर्त की रचना भारत पर इस्लाम के आक्रमण-काल में हुई।[5]

आदरणीय आर० सी० हाजरा का कथन है कि उक्त पुराण की रचना वर्तमान रूप में सम्भवतः आठवीं शती से दसवीं शती के अन्तर्गत हुई। यह रचना बंगाल के लेखकों द्वारा सोलहवीं शती तक परिष्कृत होती रही।[6]

---

१. शिव पुराण   २. पद्म पुराण   ३. ब्रह्मवैवर्त १।१।६२।६५
४. वाल्मीकि रामायण : बाल काण्ड स० ८/१
५. विलसन एसेज : पृ० १२० पुरानिक रिकार्ड्स से उद्धृत
६. स्टडीज इन दि पुरानिक रिकार्ड्स आन हिन्दू राइट्स ऐण्ड कस्टम्स —आर० सी० हाजरा द्वारा, पृ० १६७।

किन्तु पुराणों की अष्टादशी पर ध्यान आते ही डा० हाजरा स्वीकार कर लेते हैं कि ब्रह्मवैवर्त की रचना आठवीं शती के बहुत पहले हो चुकी थी।

From the consideration of the oldness of the dictum that there were eighteen Mahapuranas, it seems highly probable that before 700 A.D. there existed a Brahmavaivarta which is now lost.[१]

डा० हाजरा महोदय ने योगेश चन्द्र राय को भारत वर्ष नामक पत्रिका में प्रकाशित विचारधारा के आधार पर एक ब्रह्मवैवर्त पुराण की भी चर्चा की है किन्तु इस सम्बन्ध में डा० साहब का कथन है कि यह पुराण ब्रह्मवैवर्त से पृथक् दक्षिण-भारत में प्रचलित रचना है।[२]

माधवाचार्य कृत काल-निर्णय शूलपाणि कृत व्रतकाल-विवेक, रघुनन्दन कृत स्मृति-तत्व, गोपाल भट्ट कृत हरिभक्ति-विलास तथा गदाधर कृत काल-सार में जन्माष्टमी व्रत निर्णय के प्रसंग में उक्त निबन्धकारों ने ब्रह्मवैवर्त का उद्धरण प्रस्तुत किया है। डा० हाजरा महोदय का यह भी विचार है कि ब्रह्मवैवर्त पूर्वकाल में विशेष प्रसिद्ध अथवा प्रचलित नहीं था क्योंकि देवभट्ट के अतिरिक्त किसी प्राचीन निबन्धकार ने ब्रह्मवैवर्त का उद्धरण नहीं दिया है जबकि तत्सम्बद्ध सामग्रियों की उक्त पुराण में भरमार है।[३]

ब्रह्मवैवर्त का एक काल ऐसा भी आया कि केवल एकादशी माहात्म्य के लघुकाय नौ ग्रन्थ (पूर्ण एवं अपूर्ण) बने। ये निम्ननिर्दिष्टानुसार हैं :—

१. श्रावण कृष्णैकादशी कामिका माहात्म्यम्। १४४६४, १५३५१
२. कार्तिक कृष्णैकादशी रमा माहात्म्यम्। १४४६२, १४४६३
३. निर्जलैकादशी माहात्म्यम्। १४५०।
४. पापाङ्कुशैकादशी माहात्म्यम्। १४६६५
५. ज्येष्ठशुक्लैकादशी माहात्म्यम्। १४७२१
६. इन्दिरैकादशी माहात्म्यम्। १४४५०, १६१७५।
७. रमैकादशी माहात्म्यम्। १५८८३।
८. एकादशी माहात्म्यम्। १५६६८।
९. आषाढ़ कृष्णैकादशी माहात्म्यम्। १६२४६।

पार्श्व में सरस्वती भवन, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची की संख्या है।

---

१. स्टडीज इन दि पुरानिक रिकार्डस् आन हिन्दू राइट्स एण्ड कस्टम्स-आर० सी० हाजरा। २. भारतवर्ष—बी०, एस०, आषाढ़, पृ० ९४–१०४, सन् १९३७।
३. डा० हाजरा कृत—पु० रिकार्ड्स, पृ० १६७।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त ही जिनका जनक है ऐसे कुछ अन्य भी ग्रन्थ हैं—

१. पंचक्रोशी-यात्रा- माहात्म्यम् १४४८६

२. काशी-प्रादुर्भाव १४६०६

३. जाति-सम्बन्ध-निर्णय (बंगलिपि) १४८१७

४. पंचक्रोशी-माहात्म्यम् १४६७६, १५०३२, १५३३५

५. काशी-माहात्म्यम् १५००५/अपूर्ण, १५०६० पूर्ण, १५१८६

इस प्रकार हस्तलिखित अनेकों प्रकार के संस्करण उपलब्ध हैं, जो उक्त पुराण की समाज में प्रसिद्धि एवं प्रियता के प्रमाण हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले ब्रह्मवैवर्त अन्य पुराणों की भाँति एक साथ सम्पूर्ण रूप में प्रकाशित होने वाला ग्रन्थ नहीं है। प्रत्युत इसके चारों खण्ड प्रारम्भ से पृथक्-पृथक् भी महत्वपूर्ण हुए। सरस्वती भवन की सूची में ही हस्तलिखित पृथक्-पृथक् खण्डों के रूप में उक्त पुराण का दर्शन करने का अवसर मिला।

१. कृष्ण-जन्म-खण्ड १६४५० पूर्ण, १६४४८ अपूर्ण

२. गणेश-खण्ड १४४१८ पूर्ण

कृष्ण-जन्म-खण्ड की पूर्ण प्रति बंगीय लिपि में शक संवत् १६३७ की है।

ब्रह्मवैवर्त-पुराण की पूर्ण प्रतियाँ हस्तलिखित रूप में वर्तमान हैं। १४२८७।

ब्रह्मवैवर्त का खिल पाठ भी प्रचलित हुआ—काशी-केदार माहात्म्यम्—१५६०० के रूप में यह उक्त भवन का ग्रन्थ है।

आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय[1] ने अपने पुराण-विमर्श में कलकत्ता एशियाटिक सोसाइटी के हस्तलेख सं० ३८२०, ३८२१ ब्रह्मवैवर्त पर विचार करते हुए जिस आदि ब्रह्मवैवर्त पुराण की चर्चा की है, उसके अतिरिक्त एक 'आदि पुराण' सरस्वती भवन में द्रष्टव्य है। हस्तलेख—१४३३० सं०।

उक्त आदि-पुराण में कुल ५२ अध्याय हैं इसमें कीर पृष्टा और भृङ्गाधिप वक्ता हैं। इसमें कहीं भी इसे ब्रह्मवैवर्त नहीं कहा गया है। आदि पुराण में भी श्री कृष्ण की क्रीड़ाओं का वर्णन किया गया है किन्तु कथा-वर्णन में कहीं भी इसके ब्रह्मवैवर्त होने की चर्चा भी नहीं है। इसके पूर्व हम खिल-पाठ को भी देख चुके हैं। आदि-पुराण कह कर सम्भवत: ग्रन्थकार इसे सर्व प्रतिष्ठित रूप देना चाहता रहा हो।

उक्त तथ्यों पर ध्यान देने से ऐसा भी प्रतीत होता है कि ब्रह्मवैवर्त का विपुल अंश अधिक जनप्रिय रहा। इसमें तो सन्देह नहीं कि राधा और कृष्ण कथा का इतना बड़ा आधार किसी अन्य पुराण के द्वारा नहीं प्रस्तुत किया जा सका।

---

१. पुराण-विमर्श, पृ० ५५४।

पुराणों की अष्टादशी में ब्रह्मवैवर्त का सर्वत्र प्रायः दशम स्थान है। अन्य पुराणों में भी राधा का नाम आया है किन्तु ब्रह्मवैवर्त के अतिरिक्त किसी अन्य पुराण का राधा-वर्णन इतना विशिष्ट लक्ष्य नहीं रहा। अतः पूर्व रूप जो भी हो किन्तु ब्रह्म-वैवर्त की स्थिति महाकवि भास के पूर्व तक पहुँचती है। क्योंकि भास ने राधा के रूप प्रतिष्ठित होने पर ही अपनी काव्य-रचना प्रस्तुत की होगी। इस प्रकार भास के दो सौ वर्ष पूर्व भी यदि पुराण की स्थिति मानी जाय तो ब्रह्मवैवर्त की स्थिति प्रथम शताब्दी हो सकती है।

यद्यपि पौराणिक-संस्करणों के परिष्करण की अजस्र धारा प्रवहमान रही, इसमें कोई सन्देह नहीं कि जयदेव की गीत-गोविन्द को ब्रह्मवैवर्त ने प्रशस्य आधार प्रस्तुत किया होगा किन्तु गीत गोविन्द तथा जयदेव की झलक उक्त पुराण की नामावलि में दृश्यमान नहीं है। अतः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ब्रह्मवैवर्त का कोई परिष्करण जयदेव के पश्चात् नहीं हुआ।

राधा-वल्लभ सम्प्रदाय भी ब्रह्मवैवर्त का ऋणी है। किन्तु उक्त सम्प्रदाय के आचार एवं कृत्य-विधि का कोई स्पष्ट संकेत ब्रह्मवैवर्त नहीं देता। राधा-वल्लभ सम्प्रदाय के सखीभाव का विकास काल सोलहवीं सदी का अन्त माना गया है।[१] इसने अपनी साधना-विधि में ब्रह्मवैवर्त से बहुत कुछ अंश अवश्य लिया होगा।

वास्तव में सन्त-महात्माओं तथा साधारण जन की अनुभूतियों में विशेष अन्तर होता है। किन्तु अपनी सुखात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त करने में गम्भीर काठिन्य उपस्थित हो जाता है। अतः उस विशेष अवस्था को यथासाध्य अनुभूतिगम्य बनाने के लिये मानव-सुलभ सम्भोग-जनित सुख से उसकी उपमा दी जाती है। जेम्स प्रैट ने भाषा की असमर्थता को ही धर्म में शृङ्गार के समावेश का कारण माना है।[२] उन्होंने अपनी इस उक्ति में सन्त प्लाटिनस को प्रमाण माना है।

उक्त परिस्थितियों में ही ब्रह्मवैवर्तीय प्रसंग में रासलीला की विशिष्टोद्भावना की गयी।

ऐतिहासिक-परिस्थितियों ने भी इसे विकसित एवं परिवर्धित करने में प्रेरणा प्रदान की होगी। क्योंकि इस्लाम काल में बहुपत्नीत्व को हेय-दृष्टि से नहीं देखा जाता रहा। राम जैसे एक पत्नीव्रती का युग बीत चला था। अब तो आया था वह समय जब कि पद-पद पर सुन्दरियाँ विशेषतः नवयुवती कुमारिकाएं मुसलमान धनेश्वरों की शुभेच्छु बन कर सुरा-चषक से दिशाएं सुरभित किया करती थीं। इसका प्रभाव धार्मिक हिन्दू-जीवन पर भी अवश्य पड़ा होगा। कृष्ण सर्वेश्वर थे, उन्हें साम्राज्य की प्राप्ति

१. रास और रासान्वयी काव्य — डा० दशरथ द्वय ओझा एवं शर्मा, पृष्ठ २३७।
२. मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डा० र० श० केलकर, पृ० १०६।

द्वारा सम्भावित सर्वविध सुख-सौविध्य-प्राप्त दिखाया गया। इतना ही नहीं, गोपियों की कोटि-कोटि संख्या बता करके विश्व के किसी भी धनाढ्य जीवन की भौतिक-सुविधा को मात कर दिया गया। श्री कृष्ण मानव की कोटि से बहुत ऊपर थे। वे एकाकी ही एक साथ अपने अगणित समान रूपों में सभी गोपियों के साथ रमण कर सकते थे। वे वर्णनातीत विलक्षण कृत्यों के सम्पादन में पूर्णदक्ष थे। उनकी ईश्वरता में कोई बाधा नहीं होने पाती।

वास्तु-कला पर ध्यान देकर विचार किया जाय तो ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखण्ड में कोणार्क के सूर्य-मन्दिर पर भी ध्यान अवश्य चला जाता है। गुरु के शाप से याज्ञवल्क्य हतविद्य हो गये। अतः उस दुःख निवारण के लिये तथा शाप से मुक्ति पाने के लिये उन्होंने कोणार्क में सूर्य को सन्तुष्ट किया और उनका प्रत्यक्ष दर्शन किया।[1]

गुरु शापाच्च स मुनिर्हत-विद्यो बभूव ह।
तदा जगाम दुःखार्तो रवि-स्थानं च पुण्यदम्॥
संप्राप्य तपसा सूर्यं कोणार्के दृष्टि-गोचरे।
तुष्टाव सूर्यं शोकेन ररोद च पुनः पुनः॥

इस प्रकार कोणार्क मन्दिर के निर्माण के पश्चात् भी ब्रह्मवैवर्त के संस्करण का परिष्करण होता रहा। यद्यपि यहाँ ऐसी भी सम्भावना की जा सकती है कि उक्त श्लोक में स्थान का महत्व है कोणार्क के आधुनिक मन्दिर की प्रतिपत्ति कहाँ से होती है? मेरे विचार से इसका समाधान द्वितीय श्लोक में है—कोणार्के दृष्टिगोचरे।

यहाँ अधिक सम्भावना है कि मन्दिर की विशालता से प्रभावित होकर लेखक ने सूर्य की अद्भुत-मूर्ति का दर्शन कर दृष्टि-गोचर होने की उद्भावना की हो।

१. ब्रह्मवैवर्त २।५।२, ३।

अध्याय २

ब्रह्मवैवर्त–पाठसमीक्षा

ब्रह्मवैवर्त पुराण का प्रकृति खण्ड तो पाठ-विचार की दृष्टि से अत्यन्त सन्दिग्ध-स्थल है। विस्तार को दृष्टि से तो यह सड़सठ अध्यायों में है। इस खण्ड की कुल श्लोक संख्या पांच सहस्र एक सौ अट्ठारह है। यह खण्ड ब्रह्मवैवर्त का द्वितीय- खण्ड है; जो कि विस्तार में भी द्वितीय स्थान पर है।

ब्रह्मवैवर्त प्रकृति-खण्ड में प्रथम-अध्याय से सैंतालिस अध्याय तक हैं, देवी-भागवत नवम-स्कन्ध में प्रथम अध्याय से उन्चास अध्याय तक हैं। देवी-भागवत के इन उन्चास अध्यायों में कुल श्लोक संख्या तीन हजार पाँच सौ पचीस बतायी गयी है, किन्तु गणना करने पर तीन हजार पाँच सौ अट्ठारह श्लोक ही मिले। इन्हीं कथाओं एवं अध्यायों में यत्र-तत्र नाम मात्र परिवर्तन करके ब्रह्मवैवर्त के सैंतालिस अध्यायों में तीन हजार सात सौ अड़सठ श्लोक हैं।

वास्तव में वह एक कठिन प्रश्न है कि दोनों पुराणों में से कौन अध्याहारक है। किन्तु ब्रह्म-वैवर्तीय-प्रकृति-खण्ड पर दृष्टिपात करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्म-वैवर्त ने ही अध्याहृत कर इसका विस्तार किया होगा। कारण निम्नलिखित हैं—

१. ब्रह्म-वैवर्त की श्लोक संख्या मत्स्य और नारद-पुराण में अट्ठारह हजार बतायी गयी है, जबकि अधुनातन ब्रह्मवैवर्त की सम्पूर्ण श्लोक संख्या साढ़े बीस हजार से भी अधिक है।

२. शिव पुराण के भी कुछ श्लोक देवी भागवत और ब्रह्म वैवर्त में विद्यमान हैं जिसे शिव पुराण से इन दोनों ने अध्याहृत किया होगा। शिव पुराण के ये श्लोक गणेश, कार्तिकेय और शंख-चूड के प्रसंग से लिए गये हैं।

३. शंख चूड की कथा में तुलसी-पातिव्रत्य-भग की कथा अवश्यमेव शिव-पुराण अथवा शैव परम्परा ने अनुस्यूत की होगी। क्योंकि शिव-पुराण में विष्णु ने तुलसी-पातिव्रत्य भंग करके शक्ति शिव को दिया। शिव की शालीनता सुरक्षित रही। विष्णु की शालीनता अवश्य कुण्ठित होती है, भले ही सुरक्षा का कार्य सिद्ध हो जाता है। अतः यह कथा शिव-पुराण से ही अध्याहृत की गयी होगी। शालिग्राम-शिला पर विचार-विमर्श अवश्य वैष्णव देन है; जो शिव-पुराण में नहीं है।

४. प्रकृति खण्ड देवी भागवत से अध्याहृत प्रतीत होता है क्योंकि देवी-भागवत विशेषतः देवी कथाओं के संग्रह की दृष्टि से किया गया है, जबकि ब्रह्म वैवर्त का

उद्देश्य और देवियों के मध्य राधा को सर्वश्रेष्ठ महत्व देना है। यह भी देवी भागवत के नवम-स्कन्ध पचासवें अध्याय तथा ब्रह्म वैवर्त प्रकृति खण्ड के अड़तालिसवें और उससे आगे इस खण्ड की सामग्री के देखने से स्पष्ट हो जाता है। देवी-भागवत ने राधा एवं दुर्गा पर पचासवें अध्याय में समान रूप से अधिक विस्तार न दे कर विचार किया है। ब्रह्म-वैवर्त में यहीं से दुर्गा और राधा के चरित्र-पूजन आदि का विशेष-विस्तार से वर्णन किया गया है, जो कि ब्रह्म-वैवर्त की निजी देन है।

४. ब्रह्मववैवर्त का प्रकृति खण्ड अड़तालिसवें अध्याय से सड़सठवें अध्याय तक, जो कि, इस खण्ड का अन्तिम अध्याय है, नारायणी कथा सुनाने के लिए कही गयी है।

नारद नारायण से कहते हैं :—

नारायण ! महाभाग ! नारायण-परायण !
नारायणांश भगवन् ! ब्रूहि नारायणीं कथाम् ॥[1]

इन बीस अध्यायों की सामग्री भी तेरह सौ उन्तालिस श्लोकों की है। सम्भवतः ब्रह्मवैवर्त का मूल-प्रकृति-खण्ड यही रहा है।

५. आदरणीय श्री आर० सी० हाजरा के 'Studies in the Puranic records on Hindu rites and customs' से पूर्णतः स्पष्ट है कि स्मृति चन्द्रिका और चतुर्वर्ग चिन्तामणि में ब्रह्मवैवर्त पुराण से डेढ़ हजार पंक्तियाँ उद्धृत की गयी हैं जो कि वर्तमान पुराण में उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि इस प्रसंग में ब्रह्म कैवर्त की भी संज्ञा का प्रश्न उठाया गया है किन्तु वस्तुतः ब्रह्म-कैवर्त और ब्रह्म-वैवर्त की भिन्नता एक भ्रम ही है। क्योंकि ब्रह्म-कैवर्त की कोई कहीं चर्चा नहीं है।

यदि देवी-भागवत और ब्रह्म-वैवर्त के प्रकृति-खण्डात्मक समान अंश अर्थात् प्रकृति-खण्ड के प्रथम सैंतालिस अध्यायों को निकाल दिया जाय तो साढ़े सोलह हजार श्लोक वर्तमान पुराण में उपलब्ध हैं। उक्त संख्या में यदि ये वियुक्त पंक्तियाँ (डेढ़ हजार) जोड़ दी जाँय तो अट्ठारह हजार संख्या पूरी हो जाती है अन्यथा श्लोक संख्या बाइस हजार हो जाती है जो किसी पुराण में प्रमाणित नहीं है।

अतः उपर्युक्त कारणों के आधार पर ऐसा प्रतीतहोता है कि ब्रह्म-वैवर्त ही अध्याहारक है। यहाँ यह सन्देह भी हो जाता है कि क्या ये डेढ़ हजार पंक्तियाँ साढ़े सात सौ श्लोक ही बना सकती हैं। इस भ्रम के निवारण के लिए ब्रह्म-वैवर्त के श्लोकों की संख्या निकट से देखनी पड़ेगी कि ज्ञानसार आदि ब्रह्म-वैवर्तीय स्थल देवी-भागवत की अपेक्षा प्रकृति खण्ड में अधिक हैं। इस प्रकार के श्लोकों की संख्या चार सौ के

---

१. ब्रह्म वैवर्त, प्र० स०, अ० ४८।१
२. University of Dacca, c. 1940 Publication, p. 167.

लगभग है। सावर्णि और वराह सम्बन्धी श्लोक भी साढ़े तीन सौ के लगभग जोड़ दिये जांय तो उपर्युक्त अन्य संख्याओं को जोड़ने से अट्ठारह हजार संख्या पूरी होती है।

अब तक हमने ब्रह्म-वैवर्त की मूल-संख्या पर विचार किया है, अब हम इस पर विचार-विमर्श करेंगे कि ब्रह्म-वैवर्त ने प्रसंगतः जाकर इन स्थलों को कैसे परिवर्तित एवं सुसज्जित किया है।

ब्रह्म-वैवर्त प्रकृति-खण्ड और देवी-भागवत नवम-स्कन्ध के प्रथम से पंचम अध्याय तक के श्लोकों में कहीं-कहीं 'च', 'तु', 'वै' या कुछ मात्रा और अक्षर का हेर-फेर है, जो सम्भवतः पाण्डुलिपियों के हस्तलेखों में प्रायः हुआ करता है।

छठें अध्याय में अड़सठवें श्लोक से देवी भागवत का अध्याय परिवर्तित है। सप्तम अध्याय प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु ब्रह्म-वैवर्त में देवी-भागवत के ६, ७वें अध्यायों को एक ही अध्याय, केवल छठें में ही रखा गया है। श्लोकों का क्रम वही हैं। अध्यायानुसार उनकी संख्या परिवर्तित होती जाती है।

ब्रह्म-वैवर्त दशम अध्याय में देवी-भागवत के एकादश तथा द्वादश अध्याय हैं। ब्रह्म-वैवर्त के इस अध्याय में इकतालिसवें श्लोक के पूर्वार्ध तक देवी-भागवत का एकादश अध्याय समाप्त हो जाता है तथा उन्सठवें श्लोक को देवी-भागवत बारहवें अध्याय का प्रथम श्लोक कर देता है। इस प्रकार ब्रह्म-वैवर्त के दशम अध्याय समाप्त होते-होते देवी-भागवत के द्वादश अध्याय समाप्त हो जाते हैं। यहाँ के इकतालिसवें के उत्तरार्ध से अट्ठावनवें श्लोक तक का अंश ब्रह्म-वैवर्त ही है।

ब्रह्म-वैवर्त ग्यारहवें अध्याय से पन्द्रहवें अध्याय तक पूर्व अन्तर के साथ अध्यायों का क्रम समान रूप से चलता रहा। पुनः सोलहवें अध्याय में ११४वें श्लोक तक देवी-भागवत का अट्ठारहवां अध्याय समाप्त हो जाता है। जबकि ब्रह्म-वैवर्त का सोलहवां अध्याय दो सौ आठ श्लोकों का है। इन्हीं श्लोकों के एक सौ बयालिसवें श्लोकों से दो सौ आठवें श्लोक तक देवी-भागवत का उन्नीसवां अध्याय समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार श्लोक दोनों पुराणों के वही हैं, किन्तु जहाँ से ब्रह्म-वैवर्त का सत्तरहवां अध्याय प्रारम्भ होता है वहीं से देवी भागवत का बीसवां अध्याय प्रारम्भ होता है।

उपर्युक्त ब्रह्म-वैवर्त के पन्द्रहवें अध्याय से तुलसी की कथा प्रारम्भ होती है। यह कथा ब्रह्म-वैवर्त के इक्कीसवें अध्याय तक चलती है। यही कथा देवी-भागवत के सत्तरहवें अध्याय से पचीसवें अध्याय तक चलती है।

शिव-पुराण में शंखचूड एवं तुलसी की कथा रुद्र-संहिता, युद्ध-खण्ड के

अट्ठाइसवें अध्याय से एकतालिसवें अध्याय तक चलती है। वस्तुतः इस कथा का स्रोत तो इस खण्ड के तेरहवें अध्याय से ही प्रारम्भ हो जाता है किन्तु हमें इस पर कुछ विचार नहीं करना है क्योंकि ब्रह्म-वैवर्त के कथा-प्रवाह से शिव-पुराण के २८वें अध्याय की कथा से ही तुलना है। अन्य प्रसंग से ब्रह्म-वैवर्त अथवा देवी-भागवत का कोई सम्बन्ध नहीं है।

वास्तव में ब्रह्म-वैवर्त का यह सप्ताध्यायी (१५-२१) कथा प्रसंग सबसे अधिक सन्देहास्पद है। इस प्रसंग में देवी-भागवत और ब्रह्म-वैवर्त की समानता तो यथापूर्व है ही। साथ ही शिव-पुराण रुद्र-संहिता युद्ध-खण्ड के अट्ठाइसवें से एकतालिसवें अध्याय तक के छः सौ चवालिस श्लोकों में से लगभग दो सौ श्लोक देवी भागवत एवं ब्रह्म वैवर्त में आये हैं। किन्तु ३१, ३३ और ३६वें अध्यायों में से एकतिसवें अध्याय का केवल एक श्लोक गृहीत है अन्य कोई भी श्लोक इन अध्यायों से लिया नहीं गया है।

शैवों, शाक्तों एवं वैष्णवों में सर्वत्र तुलसी-कथा समान समादर प्राप्त करने के कारण उपर्युक्त अंशों के आदान को रोका न जा सका। कथा-प्रशस्ति के आधार पर सम्भवतः तत्तत् पुराणों के व्यासों ने प्रसिद्ध अंशों में एक ही शब्दावली का प्रयोग किया।

यद्यपि अनुमान और तर्क के अतिरिक्त कोई मार्ग ऐसा नहीं है कि जिससे चलकर यह निश्चय किया जा सके कि कौन अंश कहाँ से आया है, तथापि जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है कि कुछ अध्याय ऐसे भी हैं जिनसे एक श्लोक लिया गया या एक भी श्लोक नहीं लिया गया है। अतः यदि शिव पुराण इनका अध्याहारक होता तो अवश्यमेव सर्वत्र इनका प्रभाव होता तथा प्रत्येक प्रसंग में यत्र-तत्र बिखरे श्लोक कहीं न कहीं अवश्य दिखाई पड़ जाते।

इस तुलसी कथा और गणेश कथा के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र शिव-पुराण की कोई सामग्री उद्धृत नहीं की गयी है।

ब्रह्म-वैवर्त के उन्नीसवें अध्याय में, जोकि देवी भागवत का बाइसवाँ और शिव-पुराण रुद्र-संहिता युद्ध-खण्ड का सैंतिसवाँ अध्याय है, श्लोकों के क्रम में व्यतिक्रम भी है। शिव-पुराण और देवी-भागवत का पूर्वोत्तर क्रम तो मिलता है किन्तु ब्रह्म-वैवर्त, प्र० ख० उन्नीसवें अध्याय का जो दूसरा श्लोक है वह देवी-भागवत के उक्त अध्याय का बाइसवाँ श्लोक है और इसी अध्याय का तेइसवाँ श्लोक ब्रह्म-वैवर्त के उक्त अध्याय का दूसरा श्लोक है। यहाँ इस व्यतिक्रम के साथ यह भी स्मरण रखना है कि ब्रह्म-वैवर्त उक्त अध्याय के दूसरे श्लोक से जो अंश है वह शिव-पुराण के उक्त खड के सैंतिसवें अध्याय में है और ब्रह्म-वैवर्त के उक्त अध्याय का जो अंश बाइसवें श्लोक से है वह शिव-पुराण के उक्त खण्ड के छत्तीसवें अध्याय की सामग्री है।

ब्रह्म-वैवर्त और देवी-भागवत का क्रम आगे प्रायः समानरूपेण चलता गया है। ब्रह्म-वैवर्त, तीसवें अध्याय में देवी-भागवत के दो अध्याय हो गये हैं। ब्रह्म-वैवर्त तीसवें अध्याय के पहले श्लोक से एक सौ सत्तरहवें श्लोक तक का अपना तैंतीसवां अध्याय बनाया है। इस प्रकार ब्रह्म-वैवर्त तीसवें अध्याय के एक सौ अट्ठारहवें श्लोक से देवी-भागवत नवम-स्कन्ध का चौतीसवां अध्याय प्रारम्भ हो जाता है। ब्रह्मवैवर्त के इस अध्याय में दो सौ अट्ठारह श्लोक हैं जबकि देवी-भागवत के दोनों अध्यायों के (१२६-९१) दो सौ सत्तरह श्लोक हैं।

इस प्रकार यहाँ तक आते-आते अध्यायों के क्रम में चार का अन्तर आ गया। ब्रह्म-वैवर्त का एकतीसवां अध्याय देवी-भागवत का पैंतीसवां अध्याय है। आगे का क्रम समान रूप से चलता गया। पुनः ब्रह्म वैवर्त छत्तीसवें अध्याय में, जो देवी-भागवत का चालीसवां अध्याय है, विशिष्ट अंश है। इस अंश को इसमें ज्ञानसार कहा गया है। यह सामग्री एक सौ बीस श्लोकों की है। इस अंश के पश्चात ब्रह्म-वैवर्त का छत्तीसवां अध्याय समाप्त हो जाता है। किन्तु देवी-भागवत का वही चालीसवां अध्याय चलता रहता है। जहाँ ब्रह्म-वैवर्त का सैंतिसवां अध्याय समाप्त होता है वहाँ देवी-भागवत का चालीसवां अध्याय समाप्त होता है। यहाँ ब्रह्म-वैवर्त में साढ़े तीन श्लोकों में वैष्णव स्थानों और विष्णु-मन्त्रों की विशेष प्रशंसा भी की गयी है।

ब्रह्म-वैवर्त एवं देवी-भागवत में पुनः उसी क्रम से समानता है। उन्तालिसवें अध्याय में सिद्धस्तोत्र समाप्त होने पर ब्रह्म-वैवर्त के सप्त श्लोकों में गणेश के शिर कटने के शाप का वर्णन किया गया और वह कारण बताया गया, जिससे कि गजेन्द्र का मस्तक गणेश-गात्र में जोड़ा गया। सिद्ध स्तोत्र के पश्चात् देवी-भागवत का बयालिसवां अध्याय समाप्त हो जाता है।

ब्रह्म-वैवर्त प्र० ख० का चालिसवां, देवी-भागवत नवम-स्कन्ध का तैंतालिसवां अध्याय बिल्कुल समान हैं, अन्त में देवी-भागवत में अर्द्ध श्लोक अधिक है।

ब्रह्म-वैवर्त के एकतालिसवें अध्याय में चौंतिस श्लोकों के पश्चात् साढ़े दस श्लोक जो स्वधा के पूर्व-जन्म की कथा एवं प्रशंसा में लिखित हैं, देवी भागवत की अपेक्षा अधिक हैं। शेष सब समान है।

ब्रह्म-वैवर्त का बयालिसवां और तैंतालिसवां अध्याय देवी भागवत के पैंतालिवें और छियालिसवें अध्याय के समान ही हैं। तदनन्तर ब्रह्म-वैवर्त का चवालिसवां और और पैंतालिसवां दोनों अध्याय देवी-भागवत के एक ही अध्याय सैंतालिसवें में रखे गये हैं। ब्रह्म-वैवर्त के छियालिसवें एवं सैंतालिसवें अध्याय देवी-भागवत के अड़तालिसवें और उनचासवें अध्याय हैं। इन छहों अध्यायों में पूर्वापर क्रम में श्लोकों में कहीं असमानता नहीं है।

इसके आगे देवी भागवत पचासवें अध्याय में, जिसमें एक सौ श्लोक राधा और दुर्गा की स्तुति और पूजा-विधि को प्रस्तुत करते हैं, नवम स्कन्ध समाप्त हो जाता है परन्तु ब्रह्म-वैवर्त राधा और दुर्गा के उपाख्यानों का विशेष विस्तार करते हुए आचार, धर्म और प्रायश्चित्त का भी उपदेश करता है। जैसा कि देवी-भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में देखा जा सकता है। (प्रथम अध्याय से तृतीय अध्याय तक)। यद्यपि विषय भले मिलता है किन्तु मूल में कोई समानता नहीं परिलक्षित होती।

ब्रह्म-वैवर्त एवं देवी भागवत ने जो परिवर्तन किये गये हैं वे प्रसंगानुकूल नाम मात्र का है। नीचे कुछ उदाहरण संकलित हैं :—

ब्रह्म वैवर्त	देवी भागवत
२।७।८७ सर्वज्ञानाधिदेवो	सर्वग्रामाधिदेवो ६।८।६१
२।७।११६ एवं कृष्णाय तपसा	एवं देव्याश्च तपसा ६।८।१०६
२।१०।८० ध्यानेनकोथुमोक्तेन	कण्वशाखोक्तध्यानेन ६।११।४६
२।१०।७४ मन्नाम-गुणकीर्तनम्	त्वद्गुण कीर्तनम् ६।११।५४
२।१०।७३ मन्मन्त्रोपासकस्नानात्	तन्मन्त्रोपासकस्नानात् ६।११।५२
२।१०।७२ मद्भक्तदर्शनेतावत्	प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शात् ६।११।५१
२।२७।२७१ कृष्ण पादाम्बुजार्चनम्	देवीपादाम्बुजार्चनम् ६।३०।१३६
२।२८।१ हरेरुत्कीर्तनम्	शक्ते रुत्कीर्तनम् ६।३१।१
२।३०।२१२ पुष्करेभास्कर क्षेत्रे प्रभासेरास-मण्डले हरिद्वारे च केदारे सोमे बदरिकाश्रमे ॥	पुष्करे हरिहर क्षेत्रे प्रभासे काम रूस्थले- हरिद्वारे च केदारे तथा मातृपुरेऽपिच ॥ ६।३४।८७
२।३२।१० मंगलं कृष्णसेवनम्	पंचदेवानुसेवनम् ६।३६।१०
२।३४।१ हरिभक्तिम्	देवीभक्तिम् ६।३८।१
२।३४।२ श्री कृष्ण-गुणकीर्तन	सर्वाशुभविनाशनम् ६।३८।२
२।३६।५७ कृष्णानुग्रहाच्च	चेशानुग्रहाच्च ६।४०।५५

ब्रह्म-वैवर्त का मूल रूप क्या था ? इस प्रश्न पर विचार करते समय ब्रह्म-वैवर्त के वर्तमान रूप पर ध्यान देते हुए मत्स्य पुराण और नारद-पुराण के उन कथनों को भी ध्यान में रखना होगा जिनमें कि ब्रह्म-वैवर्त की सूची अथवा श्लोक संख्या दी हुई है।

मत्स्य-पुराण के तिरपनवें अध्याय में बताया गया है कि :—

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् ॥

यत्र ब्रह्म-वराहस्य चरितंवर्ण्यते मुहुः ।
तदष्टादश-साहस्रं ब्रह्मवैवर्त मुच्यते ॥

मत्स्य-पुराण की उपर्युक्त पंक्तियों पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मत्स्य-कालीन ब्रह्म-वैवर्त और आधुनिक ब्रह्मवैवर्त में अन्तर आ गया है क्योंकि आधुनिक ब्रह्म-वैवर्त में न तो कहीं वराह-चरित दिखाई पड़ता है और न तो सावर्णि का नाम ही आता है ।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त सावर्णि और बराह चरित के बिना ब्रह्म-वैवर्त के अष्टादश सहस्र की पूर्ति हो जाना प्रक्षिप्तांश का द्योतक है ।

नारद-पुराण के १०१ वें अध्याय के निम्न श्लोकों में भी सावर्णि द्वारा देवर्षि नारद को उपदेश देने की बात कही गयी है :—

शृणुवत्स ! प्रवक्ष्यामि पुराणं दशमं तव ।
ब्रह्म-वैवर्तकं नाम वेद-मार्गानुदर्शकम् ॥
सावर्णियंत्र भगवान् साक्षाद्देवर्षयेऽतिथिः ।
नारदाय पुराणार्थं प्राह सर्वमलौकिकम् ॥
धर्मार्थकाम - मोक्षाणां सारः प्रीतिर्हरौहरे ।
तयोरभेद-सिद्ध्यर्थं ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥

यहाँ भी सावर्णि का रहना बताया गया है किन्तु सावर्णि का आधुनिक ब्रह्म-वैवर्त में चर्चा भी नहीं है ।

नारद पुराण के प्रसंग में एक तथ्य अवश्य ध्यान देने योग्य है कि मत्स्य पुराण की अपेक्षा नारद पुराण की सूची विस्तृत है । इसमें चारों खण्डों के विशेष कथा-प्रसंगों की सूची दी गयी है किन्तु इसमें वराह चरित का कोई वर्णन दृष्टिगत नहीं होता । इससे इतना तो अनुमान अवश्य हो जाता है कि नारद पुराण की सूची बनने तक ब्रह्म-वैवर्त से वराह चरित वियुक्त हो गया था । वराह चरित के अभाव में भी नारद पुराण ने ब्रह्म वैवर्त के अष्टादश सहस्र श्लोकात्मक होने का समर्थन किया है ।[1]

देवी भागवत ने भी ('तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्म वैवर्तमेव च' (१|३/६) ब्रह्म वैवर्त

---

१. रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम् ।
शतकोटि-पुराणं तत् संक्षिप्य प्राहवेदवित ॥
व्यासश्चतुर्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्त संज्ञितम् ।
अष्टादश-सहस्रन्तत् पुराणं परिकीर्तितम् ॥
ब्रह्म-प्रकृति-विघ्नेश-कृष्ण-खण्ड-समाचितम् ।
तत्र सूतर्षि सम्वादः पुराणोपक्रमः मतः ॥

—ना० पु० पू० भा० द्वि० पा०, अ० १०१

को अष्टादश सहस्र श्लोकात्मक बताया है। विष्णु पुराण ने भी उपर्युक्त संख्या का समर्थन किया है। श्रीमद्भागवत ने भी 'दशाष्टी ब्रह्म वैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु' १२/१३/६ कहा है।

नारद पुराण में ब्रह्म वैवर्त प्रकृति खण्ड की सूची में बताया गया है कि—

ततः सावर्णिसम्वादो नारदस्य समोरितः।
कृष्णमाहात्म्यसंयुक्तो नानाख्यान कथोत्तरः॥
प्रकृते रंशभूतानां कलानांचापि वर्णितम्॥
माहात्म्यं पूजनाद्यं च विस्तरेण यथास्थितम्।
सततं प्रकृति खण्डं हि श्रुतं भूतिविधायकम्॥[1]

यह नारद-पुराणीय कथन 'प्रकृते रंशभूतानां कलानाम्' से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति की अंशभूत अनेक कलाओं का वर्णन करने के उद्देश्य से प्रकृति-खण्ड का सृजन किया गया।

यदि ब्रह्म-वैवर्तीय प्रकृति-खण्ड के अड़तालिसवें अध्याय से ब्रह्म-वैवर्तीय प्रकृति-खण्ड स्वीकार किया जाय तो उक्त 'प्रकृते रंशभूतानां कलानां चापि वर्णितम्' नारदीय-उक्ति घटित नहीं होती। क्योंकि इन आगे के अध्यायों में केवल राधा और दुर्गा की ही विस्तृत चर्चा की गयी है। अतः सम्पूर्ण प्रकृति खण्ड ब्रह्म वैवर्तीय रचना होने का उक्त-पुराण संकेत देता है। साथ ही वराह कथा होने का भी प्रमाण नारद पुराण के आधार पर घटित नहीं होता।

इस प्रकार नारद-पुराण के आधार पर वर्तमान ब्रह्म-वैवर्त-पुराण सावर्णि के प्रसंग के अतिरिक्त और विषयों में अनुकूल है।

किन्तु यह शंका निर्मूल नहीं होती कि सावर्णि विषयक तत्व न होते हुए भी अट्ठारह सहस्र की संख्या कैसे पूरी हो सकती है।

यदि ऐसी सम्भावना स्वीकार कर ली जाय कि सावर्णि उक्ति के बिना भी नारद पुराण के इस कथन काल तक ब्रह्म वैवर्त का अष्टादश सहस्रात्मक कलेवर निर्मित हो चुका था तो मत्स्य पुराण की उक्ति का क्या होगा?

अतः तात्विक-दृष्टि से विचार करने पर संख्या की इयत्ता सम्भवतः पूर्व काल से ही विवादास्पद है। पुराणों में तत्तत् पुराणों की संख्याएँ जो बताई गयो हैं सम्भवतः उनकी सही जानकारी की ओर कोई प्रयास नहीं हुआ। पुराणों में जो संख्याएँ बतायी गयीं वे मान तो ली गयीं किन्तु वास्तविक संख्या उसके आगे-पीछे कुछ और ही रही।

इस तथ्य की पुष्टि इस नारदीय उक्ति से भी हो जाती है:—

१. ना० पु० अ० १०१

रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तं यन्मयोदितम् ।
शतकोटि प्रमाणं तत्संक्षिप्य प्राह वेदवित् ॥
व्यासश्चतुर्धा संव्यस्य ब्रह्मवैवर्त संज्ञितम् ।
अष्टादश सहस्रं तत्पुराणं परिकीर्तितम् ॥
ब्रह्म प्रकृति विघ्नेश कृष्णखण्ड समाचितम् ।
तत्र सूतर्षिसम्वादः पुराणोपक्रमः मतः ॥[१]

यहाँ इस कथन पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि शतकोटि प्रमाण से ये चारों खण्ड समाचित अथवा चयन किये गये हैं। कदाचित् इनका मौलिक अथवा स्वरचित होना अत्यावश्यक नहीं है।

उपर्युक्त कथनों पर विचार करने से यह अनुमान लगता है कि प्रक्षिप्तांशों पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं था। सम्भवतः रोचकता के लिए कुछ प्रासंगिक कथा अथवा कथांश की प्रविष्टि भी यथासमय होती गयी।

पुराणों की विशाल रचनाओं की संख्या में—अट्ठारह हजार, चौबीस हजार, चालिस हजार, अस्सी हजार आदि विशाल राशि में—हजारों श्लोक, या उनके भाव समाहृत कर लिए जाँय तो भी कितने हैं, जो इस सूक्ष्मता का डटकर पता लगायें। इसी का परिणाम यह हुआ कि ब्रह्म वैवर्त की संख्या को पुराण अट्ठारह हजार कहते रहे किन्तु संख्या में अन्धाधुन्ध बढ़ोत्तरी होती गयी। आनन्दाश्रम मुद्रणालय पूना से विनायक गणेश आपटे द्वारा प्रकाशित प्रति में बीस हजार आठ सौ पैंसठ श्लोक हैं। बंगवासी संस्करण में बाइस हजार श्लोक हो गये हैं और वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा मुद्रित संस्करण में पच्चीस हजार श्लोक हो गये।

वस्तुतः पुराणों के श्रवण यज्ञ में समस्त भक्ति गाथाएं श्रव्य हैं ही। पुराणों का वृहत् कलेवर उनके यशोवर्धन का भी साधन रहा होगा। इन पर अब कुछ समय तक निरन्तर विशेष श्रम की आवश्यकता है। इधर कई शताब्दियों से पुराणों के प्रति उपेक्षा-भाव बढ़ रहे हैं। इस उपेक्षा का एक चित्र अत्रि स्मृति में वर्णित ब्राह्मणों के बदलते रूपों में देखा जा सकता है :—

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं
शास्त्रेण हीनाश्चपुराण पाठाः ।
पुराण हीना कृषिणो भवन्ति
भ्रष्टा स्ततो भागवताः भवन्ति ॥[२]

अतः ब्रह्म-वैवर्त की ये संख्याएं इसे सर्वांगपूर्ण करने की दृष्टि से भरने के कारण हो गयी प्रतीत होती है। भले ही यह संख्या अष्टादश सहस्र से बहुत आगे पहुँच गयी।

---

१. ना० पु० पू० भा० द्वितीय पाद १०१ अ०   २. अत्रिस्मृति

आश्चर्य तो यह होता है कि किसी पुराण ने इस ब्रह्म-वैवर्त और देवी-भागवत के तथा शिव-पुराण, ब्रह्म वैवर्त और देवी भागवत के मेल-मिलाप की चर्चा नहीं की। केवल उद्देश्य वर्णन में अवश्य इतना बताया गया कि हरि-हर में प्रीति के लिए ब्रह्म-वैवर्त की रचना हुई।[1]

ब्रह्म-वैवर्तीय श्लोकों के सम्बन्ध में एक ऐसी भी सम्भावना है कि प्रकृति-खण्डात्मक अंश अधिक प्रसिद्ध हुआ अथवा देवी पूजा के लिए अधिक समाहृत हुआ क्योंकि इस खण्ड में प्रायः सभी देवियों की जन्म कथा, पूजा-विधि तथा मन्त्र आदि वर्णित किये गये हैं।

अतः यह सम्भव है कि देवी-कथा के लिए उत्तम सामग्री समझकर ब्रह्म-वैवर्त से देवी-भागवत के लिए समाहृत कर ली गयी हो। इधर ब्रह्म-वैवर्त का रंग और जमाने के लिए पुनः राधा और दुर्गा के चरित्र, कथा और समर्चा विधि के आधार पर इक्कीस अध्यायों का भी विस्तार किया गया हो।

इस प्रकार ब्रह्म-वैवर्त में देवी भागवत से भी अधिक देवी सम्बन्धी सामग्री कुछ अंशों में उपलब्ध हुई, जो शाक्त-भक्तगणों के लिए आकर्षण का भी कारण बन सकती है। अतः प्रक्षिप्तांश ब्रह्मवैवर्त के प्रकृति-खण्ड अड़तालिसवें अध्याय से प्रारम्भ होकर सड़सठवें अध्याय तक हुआ, जिसे प्रकृति-खण्ड में न गिना जाय तो ब्रह्म वैवर्तीय प्रकृति खण्ड की भी संख्या साढ़े तीन हजार होती है।

उपर्युक्त विचार के आधार पर यदि प्रकृति खण्ड देवी भागवतीय नवम-स्कन्ध का नामान्तर हो तो उसी की श्लोक संख्या साढे तीन हजार मात्र ब्रह्म वैवर्त में मिल जाने से गणना में ब्रह्म-खण्ड के अट्ठारह सौ बत्तीस, गणेश-खण्ड के इक्कीस सौ तिहत्तर और कृष्ण जन्म खण्ड के ग्यारह हजार एक सौ आठ को मिला कर (१८३२+३५०० +२१७३+१११०८) कुल अट्ठारह हजार छः सौ तिहत्तर श्लोक होते हैं जबकि इनमें तीन सौ दो श्लोक शिव पुराण से गणेश कथा, कार्तिकेय कथा और तुलसी कथा में समाहृत (१०+१८७+१२३) किये गये। ये तीन सौ दस श्लोक यदि निकाल दिये जाँय तो अट्ठारह हजार तीन सौ तिरसठ (१८६७३—३१०=१८,३६३) श्लोक होते हैं जिनमें यदा-कदा पौराणिक लेखकानुसार तीन सौ तिरसठ श्लोकों की प्रक्षिप्त सामग्री हो तो अट्ठारह हजार श्लोकों की संख्या सटीक बैठ जाती है।

---

१. नारद पुराण, पू० भा०, द्वि० पाद, अ० १०।

अध्याय ३

नारायण

(१) ब्रह्मवैवर्त में नारायण नाम दो व्यक्तित्वों के लिए प्रयुक्त हुआ है। पहला प्रयोग विष्णुके लिए किया गया है (ब्रह्म खण्ड के तृतीय अध्याय में) नारायण श्री कृष्ण के द्वारा प्रकट होकर उनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मवैवर्त में सर्वप्रथम श्री कृष्ण स्तोत्र के रचनाकार नारायण जी ही हैं।

(२) नारायण नाम का द्वितीय व्यक्तित्व ऋषि के रूप में प्रदर्शित है। ब्रह्म खण्ड के अन्तिम अध्याय में (ब्र० खं० ३०) श्री नारायण ऋषि बोलते हैं। नारद स्वयं उनके आश्रम बदरीवन में गये हैं। वहीं ऋषि नारायण (ब्र० खं० २६) का वे दर्शन करते हैं।

(३) नारायण का निर्वचन ब्रह्मवैवर्त ने किया है। किन्तु इन अर्थों में कोई अर्थ ऋषि का संकेत नहीं करता है। अन्य पुराणों एवं महाभारत में ऋषि नर तथा नारायण की चर्चा है। ब्रह्मवैवर्त में नर से नारद का सम्बन्ध जोड़ा हुआ है। नारद तथा नारायण के प्रश्नोत्तर का ब्रह्मवैवर्त में विशाल प्रसंग छाया हुआ है। नारद सर्वत्र प्रश्नकर्ता हैं और नारायण उत्तरकर्ता हैं। ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्म खंड में नारद के प्रश्नों का उत्तर ब्रह्मा भी देते हैं। नारद ब्रह्मा के साथ हठ भी ठान देते हैं। किन्तु ब्रह्मा की बातों का समर्थन नारायण द्वारा किये जाने पर नारद उसे स्वीकार कर लेते हैं। नारद एवं नारायण के प्रश्नोत्तर में विशेषत: ऐसा अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि ये नारायण ऋषि हैं अथवा भगवतस्वरूप। क्योंकि सर्वप्रथम तो नारायण विष्णुस्वरूप हैं और अन्तिम अध्याय में ऋषि रूप। अत: दो व्यक्तित्वों की सम्भावना मान्य होनी चाहिए। नारायण ने नारद के ११८ प्रश्नों का समाधान किया है।

नारद ने ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्म खण्ड में ६ प्रश्न, प्रकृति खण्ड में ५० प्रश्न, गणपति खण्ड में १६ प्रश्न, श्री कृष्णजन्म खण्ड पूर्वार्ध में ३५, उत्तरार्ध में ११ कुल ११८ प्रश्न पूछें हैं।

इस प्रसंग में यह भी जानना अप्रासंगिक न होगा कि ब्रह्मवैवर्त के शौनक और सौति अन्तिम वक्ता और श्रोता हैं, जिनसे हमें ब्रह्मवैवर्त श्रवण का शुभावसर प्राप्त होता है। शौनक ने कुल १८ प्रश्न सौति से किया है। यह अति मनोरंजक है कि १८ महापुराणों में ब्रह्मवैवर्त १८ सहस्र-श्लोकात्मक है। साथ ही उक्त पुराण में मूल प्रश्न भी १८ हैं। ये अट्ठारह प्रश्न ३६ श्लोकों द्वारा सम्पन्न हुए हैं।

———

अध्याय ४

नारद

नारद का अवतरण ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्म खण्ड में आठवें अध्याय के २९ वें श्लोक के पूर्व में होता है। इसके पूर्व केवल एक बार अवश्य नारद का नाम ब्रह्मा के पुत्रों की नामावलि में आता है। इसी अध्याय के २६ वें श्लोक में ब्रह्मा के कण्ठ देश से नारद की उत्पत्ति बतलाई गयी है। ब्रह्मा के पुत्रों के प्रसंग में यह नाम आना अनिवार्य भी था।

(२) महा-तपस्वी वृद्ध कमण्डलुधारी एवं सफेद बालों वाले (ब्र० सं० ५-१,२) ब्रह्मा के सम्मुख उनके पुत्र नारद में बोलते-बोलते लगता है कि ब्रह्मा के सभी गुण हैं। क्योंकि वे भी बुड्ढों जैसी ही बातें करते हैं। वे दार परिग्रह से बहुत भागते हैं। यहाँ उनकी बातें नारद-पंचरात्र का स्मरण दिलाती हैं। ब्रह्मा के सम्मुख नारद को द्वादश-श्लोकात्मक (२९-४०) उक्ति नारद के त्यागी-जीवन का एक रूप खड़ाकर देती है। नारद कृष्ण सेवा का अमृत निरन्तर पीना चाहते हैं।

विहाय कृष्ण सेवां च पीयूषादधिकांप्रियाम्।
को मूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम्॥

(३) किन्तु ब्रह्मा तो सृष्टि-विस्तार-हेतु पुत्र से दार परिग्रह की बात कर रहे हैं और नारद जी अपने पिता को उपदेश देना प्रारम्भ कर देते हैं। ब्रह्मा ही क्या किसी भी पिता को ऐसी स्थिति में क्रोध का आवेश होगा ही। ब्रह्मा ने भी वही किया। नारद को ब्रह्मा ने शाप दिया।

भविता ज्ञान लोपस्ते मच्छापेन च नारद।
क्रीडा मगश्च त्वं साध्यो योषिल्लुब्धश्च लम्पट॥

ब्रह्म वै० ब्र० सं० ८/४१

कहीं नारद जी एक विवाह करनें को तैयार नहीं इधर ब्रह्मा जी ने **पंचाशत्का-मिनीनां च भर्ता प्राण बल्लभः॥८।४२। ब्रह्म ख०, ब्रह्म वै०॥**

—नामतश्चोप वर्हणः ८।४३। ब्रह्म ख०, ब्रह्म वै०॥
पुनर्मदीय शापेन दासी पुत्रश्च तत्परः।८।४६। वही॥
अधुनाभव नष्टस्त्वं मत्सुतो निपत ध्रुवम्।८।४८। वही०॥

का शाप दे डाला।

नारद भी शान्त कैसे रहते ? जहाँ पुत्र पिता का उपदेशक होगा अवश्यमेव वहाँ की दुर्बल मन:स्थिति भयंकर परिणाम ला सकती है। नारद ब्रह्मा के क्रोध से भयभीत नहीं होते। प्रत्युत पिता ब्रह्मा को तीन कल्प तक अपूज्य होने का शाप देते हैं—

स किंगुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः ॥
यः श्री कृष्ण पदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः ॥६॥

शप्तो निरपराधेन त्वयाऽहं चतुरानन।
मया शप्तं त्वमुचितो घ्नवन्तं घ्नन्त्यपि पण्डिताः ॥६२॥
अपूज्यो भव विश्वेषु यावत्कल्पत्रयं पितः ॥८।६४। ब्रह्म ख०। ब्रह्म वै० ॥

(४) पुनः अन्य पुत्र का साहस कहाँ जो कुछ कह सकता। जिसे जो आदेश प्राप्त हुआ उसके अनुसार ब्रह्मा की इच्छा से सृष्टि-विस्तार होने लगा।

अहंकारी नारद पिता की अवज्ञा के कारण जन्म-मरण के चक्र में फँस गये।

(५) त्यागी-जीवन के प्रतीक ब्रह्मपुत्र नारद का विवाह के भँवर में फँसना, समाज में योग-समाधि की प्रशंसा से भावुकतावश ज्ञान कर्म और आवेश अधिक लेकर यौवन में ही त्याग-वृत्ति धारण कर जो लोग साधु-सन्यासी होकर गार्हस्थ्य-जीवन का परित्याग कर देते हैं, उनके लिए एक व्यंग्य है, जिसको शान्ति से विचार करना तथा हृदयंगम करना चाहिए।

परवर्ती पुराणों में इसी प्रकार कल्पभेद के बहाने समाज में उभरती समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। बौद्ध संयासियों-भिक्षु-भिक्षुणियों की प्रतिष्ठा उनकी कुचेष्टाओं के कारण समाप्त हो रही थी। उसका एक मात्र समाधान था कि—

अन्ते रण्डा विवाहश्चेदादावेव कुतो नहि ॥

यहाँ तक कि पारमहंस्य संहिता श्रीमद्भागवत के गायक महामुनि शुकदेव देवी भागवत में विवाह सम्पन्न हो गये।[1] गार्हस्थ्य-जीवन में रुचि जागृति करने का यह बड़ा प्रभावशाली उदाहरण है। प्रकृति-प्रदत्त-उद्दाम-यौवन का अपरिहार्य-प्रभाव शास्त्र की कण्ठस्थ की हुई पंक्तियों एवं उनके आधार पर धारा-प्रवाह वक्तृताओं से शान्त तथा समाप्त होना असम्भव है। इसके लिए शास्त्र और प्रकृति का समन्वय अपेक्षित है। वह क्रमशः और धीरे-धीरे ही सम्भव है। इसे ब्रह्मा जैसे अनुभवी व्यक्तित्व ही वस्तुतः समझते हैं। श्री राधा कृष्ण पदारविन्द में चित्त चंचरीक संसक्त कर गार्हस्थ्य जीवन चलाना भी एक महत्वपूर्ण स्थिति है।

---

१. देवी भाग० १।१६।४०॥

यह प्रसंग वास्तव में आज्ञा पालन की दृष्टि से सन्तानों को शिक्षा देने में अत्युपयोगी है। पिता की अवज्ञा कदापि उचित नहीं है। साथ ही साथ पिता को भी सोचना चाहिए कि अपने ज्ञानी एवं समझदार बेटे अथवा सन्तान को दबा कर ही काम नहीं निकालना चाहिए। सन्तान के सम्मुख वास्तविकता भी उचित ढंग से आनी चाहिए। अन्यथा सशक्त पिता भी ब्रह्मा की भाँति तीन कल्प तक अपमान का ही पात्र होगा।

शिक्षा की दृष्टि से इस प्रसंग को भी भुलाया नहीं जा सकता कि ब्रह्मा ने नारद को शाप दिया। शाप की कठिनाई का अनुमान करके नारदजी रो पड़े (४६ ब्र० ख०) किन्तु ब्रह्मा ने अनुशासन का ध्यान रखा। पुनः कोई ढील-ढाल नहीं की।

वास्तव में चाहे कोई वृहत्समाज हो अथवा लघु परिवार हो, अनुशासन के लिए कुछ कड़ाई का पालन करना ही पड़ता है। अनुशासन की दृष्टि से कठोरता का निर्वाह भी सरलता के साथ होना चाहिए। सरलता के साथ निर्वाह इसलिए कहा जा रहा है कि जिससे दोनों के सान्निध्य में विशेष बाधा खड़ी न हो जाय।

(६) उदाहरण स्वरूप नारद जी शाप के चक्र से छूटने के बाद यह अनुभव करते हैं कि पिता की आज्ञा का पालन न करके महान् अपराध किया गया है। अतः पिता जी से (ब्रह्मा) कहते हैं कि

'ध्रुवं' तथापि कर्तव्यं तवाज्ञा परिपालनम् ॥ (ब्र० ख० अ० २४)[२]
नारायण कथां श्रुत्वा करिष्ये दारसंग्रहम् ॥ (ब्र० ख० अ० २४)[३]

यहाँ ध्यान देना होगा कि सन्तान अपने पितरों की आज्ञा का पालन करे तथा नारायण में भक्ति रखे और तब दार संग्रह करे। इस प्रकार इन तीनों का समन्वित रूप ही गार्हस्थ्य-जीवन का इष्ट-रूप है। जिसका प्रतिफलन पारिवारिक प्रसन्नता में है क्योंकि प्रसन्नता के बिना सुख-समृद्धि का होना न होना कोई महत्व नहीं रखता।

(७) फिर तो पिता-पुत्र में—ब्रह्मा और नारद में—स्नेहालाप होता है। नारद जी पिता से कृष्ण-मन्त्र की याचना करते हैं। किन्तु इस प्रसंग में सूत ने एक बहुत पते की बात कही है जो सभी को स्मरण रखने योग्य है। यह नारदोक्ति ब्रह्मा के प्रति है।

मानसे परिपूर्णे च कार्यं कर्तुं पुमान् सुखी। ४१ (ब्र० ख० २४ अ०)

निस्सन्देह मानस के सन्तुष्ट न होने पर विविध व्यतिक्रम हमारी भाव-योजना को ही बाधित कर देते हैं, कार्य परिणति की तो बात ही दूर है। ज्ञानी और विद्वान्

---

१. ब्रह्मवै० १।८।४६ २. वही० १।२४।३६ ३. वही० १।२४।३७.

चाहे पिता हो या पुत्र दबाने योग्य नहीं होता है। अतः संयम और शालीनता की नितान्त आवश्यकता है।

(८) ब्रह्मा बड़े प्रेम के साथ नारद जी को समझाते हैं कि पति और पिता से मन्त्र नहीं लेना चाहिए। इसका कुछ कारण नहीं दिया गया किन्तु इतना तो प्रकट ही है कि गुरु की खोज एक योग्यतम अर्हणीयता की खोज है। इसकी पूर्ति यदि पिता पति से हो ही जायेगी तो योग्यतर और योग्यतम कौन खोजेगा। अतः यदि पति पिता के अतिरिक्त दूसरे लोग गुरु होंगे तो पिता अथवा पति के अतिरिक्त अवश्य एक और सुयोग्य का आश्रय पाने का प्रयास प्रतिफलित होगा।

(९) अन्त में नारद जी मेलजोल अथवा समन्वय का सिद्धान्त अपना लेते हैं। पिता ब्रह्मा जी से वार्तालाप के अवसर पर वे अपने हृदय को खोल कर रख देते हैं। अपनी अनुभूति को प्रकट करते हैं।

दोषाय कल्पते शश्वद्विरोधी न गुणाय च ॥१६॥ (ब्रह्मवै० ॥२६।१)

(१०) पुनश्च प्रसन्नता के साथ नारद जी शिव के पास जाते हैं (ब्र० ख०, अ० ३५) वहाँ उन्होंने उनसे बोधार्थं प्रार्थना की:—

हरिस्तोत्रं च कवचं मन्त्रं पूजाविधिं परम्।
हरं ययाचे देवर्षि र्ध्यानं च ज्ञानमेव च ॥ ब्रह्मवै० १।२६।१

शिव ने महर्षि नारद को ज्ञान-दान किया।

(११) इसके पश्चात् नारद ने शिव से आह्निक कृत्य[1] तथा भक्ष्याभक्ष्य, यती, वैष्णव, विधवा तथा ब्रह्मचारियों[2] के कर्तव्य को पूछा। ब्रह्म का स्वरूप और ब्रह्म-निरूपण भी पूछा। शिव ने प्रेम से सभी प्रश्नों का समाधान किया।

(१२) श्री नारद जी भगवान शिव से मनोवांछित उपदेश प्राप्त कर ली उन्हीं की आज्ञा से नारायणाश्रम चले जाते हैं। वहाँ नारायण से भी श्रीकृष्ण चिन्तन की प्रेरणा नारद जी प्राप्त करते हैं और अन्त में नारायण ऋषि नारदजी को आदेश देते हैं—

गत्वा विवाहं कुरु वत्स साम्प्रतम्।
कर्तुं प्रयुक्तश्च पितुर्निदेश ॥
गुरोर्निदेश-प्रतिपालको भवेः,
सर्वत्रपूज्यो विजयी च साम्प्रतम् ॥ (ब्रह्मवै० १।३०।१४)

इस प्रकार शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् दार-संग्रह की सुस्थिर परम्परा भी बनी रहती है।

---

१. ब्रह्मवै० १।२६ अ०
२. वही १।२७ अ०

अध्याय ५

ब्रह्मवैवर्तीय सृष्टि-तत्व

ज्योतिः समूहं प्रलये पुराऽऽसीत् केवलं द्विज।
सूर्य कोटि प्रभं नित्यमसंख्यं विश्व कारणम्॥
स्वेच्छामयस्य च विभोस्तज्ज्योतिरुज्ज्वलं महत्।
ज्योतिरभ्यन्तरे लोकत्रयमेव मनोहरम्॥३॥

विश्व शून्य था। गो-लोक भयंकर लग रहा था। कहीं कोई प्राणी नहीं, वायु भी नहीं, घोर-स्थिति थी। सर्वत्र अन्धकार प्रसार। न कहीं वृक्ष, न पर्वत, न समुद्र, न मिट्टी, न धातु, न फसलें। और की तो बात क्या, एक तिनका तक नहीं था। ऐसी स्थिति में बिना किसी की सहायता के अकेले ही, मन से सब कुछ विचार करके, स्वेच्छया उस स्वेच्छामय प्रभु (श्रीकृष्ण) ने सृष्टि करना आरम्भ किया।[2] श्रीकृष्ण के दक्षिण-पार्श्व से संसार के कारण-स्वरूप तीनों गुण (सत्, रजः, तमः) मूर्तिमान हुए। इसके पश्चात् अहंकार और रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द नामक पंचतन्मात्राएँ प्रकट हुई। तत्पश्चात् प्रभु नारायण स्वयं प्रकट हुए।[3]

सत्
रजस्
तमस्
पंचतन्मात्रा
नारायण

श्री कृष्ण के वाम-भाग से पंचवक्त्र—दिगम्बर शिव[4] तथा नाभिकमल से महातपस्वी वृद्ध, कमण्डलुधारी, शिल्पियों के गुरु, चारों वेदों के ज्ञाता, सरस्वती-पति ब्रह्मा[5] उत्पन्न हुए। परमात्मा श्री कृष्ण के वक्ष से शुक्ल वर्ण, जटाधर, हिंसा-क्रोधहीन, धर्म-ज्ञान-युत धर्म उत्पन्न हुए।[6] धर्म के वाम-भाग से मूर्तिमती मूर्ति प्रकट हुई।[7] यही धर्म की पत्नी हुई।[8]

शिव
ब्रह्मा
धर्म
मूर्ति

श्री कृष्ण के मुख से वीणा-पुस्तक-धारिणी, कवियों की इष्ट-देवता, सरस्वती[9] और मन से गौरवर्णा—पीत-

सरस्वती
लक्ष्मी

१. ब्रह्म वै० १।२।४-५ २. वही १।३।१-३ ३. वही १।३।४-६
४. वही १।३।१८ ५. वही वै० १।३।३१-३४ ६. वही १।३।४१-४३
७. वही १।३।५३ ८. वही १।६।२ ९. वही १।३।५३।५६

वस्त्रधारिणी लक्ष्मी[१] प्रकट हुईं, जो कि स्वर्ग में स्वर्ग-लक्ष्मी तथा राजाओं में राजलक्ष्मी कही जाती है।

तदनन्तर परमात्मा श्रीकृष्ण की वृद्धि से सर्वाधिष्ठातृ देवी निद्रा, तृष्णा, क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा, क्षमा आदि
दुर्गा
शक्तियों की ईश्वरी शतभुजा मूल-प्रकृति दुर्गा[२] प्रकट हुई।

श्री कृष्ण की रसना के अग्रभाग से शुद्ध-स्फटिकसदृश शुक्ल-वस्त्रधारणी सभी अलंकारों से अलंकृत जप-माला-धारिणी सावित्री[३] पैदा हुई। श्री कृष्ण के मन से कामदेव[४] और कामदेव के वाम-पार्श्व से रति[५] उत्पन्न हुई। काम ने मारण, स्तम्भन, जृम्भण, शोषण, उन्मादन नमक पाँच बाणों[६]
सावित्री
को धारण किया। काम ने अपने पाँचों वाणों की परीक्षा के
काम
लिए उन्हें फेंका। फेंकते ही ईश्वर की ऐसी इच्छा कि सभी
रति
कामासक्त हो गये। रति को देखकर ब्रह्मा को वीर्यपात हो
पंचबाण
गया। उस वीर्य से अग्नि प्रादुर्भूत हुआ।[७] अग्नि को
अग्नि
बढ़ता देखकर श्री कृष्ण ने अपनी लीला से निःश्वास वायु से
वरुण
जल का सृजन किया। इस प्रकार अग्नि और जल से एक-एक
स्वाहा
पुरुष प्रकट हुए। ये क्रमशः अग्नि और जल के अधिदेवता[८]
वरुणानी
अग्नि और वरुण हुए। श्रीकृष्ण-मुख-निःसृत वायु-जनित जल-विन्दु से वह्नि की शान्ति हुई। वह्नि के वाम-पार्श्व से स्वाहा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। वही वह्नि की पत्नी[९] हुई। वरुण के वाम-पार्श्व से वरुणानी[१०] नामक एक कन्या प्रकट हुई। यही वरुण की पत्नी हुई।

व्यापक श्री कृष्ण के निःश्वास वायु से पवन, जोकि
वायु
सभी का प्राण है, प्रकट हुआ। पवन के वाम-पार्श्व से वायवी
वायवी
की उत्पत्ति हुई।[११] काम वाण के प्रभाव से श्रीकृष्ण को वीर्यपात हो गया। देव-सभा में लज्जा के कारण श्रीकृष्ण ने वीर्य को जल में प्रवाहित कर दिया।

एक सहस्र वर्ष के पश्चात् वह वीर्य डिम्भ के रूप में

१. ब्रह्म वै० १।३।६५-६६ २. वही १।३।७०-७६ ३. वही १।४।१-२
४. वही १।४।६ ५. वही १।४।८। ६. वही वै० १।४।११।
७. वही १।४।१३-१४। ८. वही १।४।१७-१८। ९. वही १।४।१९।
१०. वही १।४।२० ११. वही १।४।२२।

विराट् (महाविष्णु) आ। उससे विराट् की उत्पत्ति हुई।[1] यही विश्व-समूह का आधार हुआ, जिसके एक-एक रोम छिद्र में एक-एक विश्व व्यवस्थित है। वह बड़े से बड़ा है। उससे बड़ा कुछ या कोई अन्य नहीं है। परमात्मा कृष्ण के षोडशांश होते हुए भी ये महाविष्णु सबके आधार और सनातन हैं।[2] जल में पद्म-पत्र की भांति महासागर में सोये हुए महाविष्णु के कानों की मैल से दो दैत्य प्रकट हुए। वे दोनों ब्रह्मा को मारने के लिए उद्यत हो गये। अतः नारायण ने उन्हें अपनी जाँघ पर मार दिया। मधु और कैटभ के मेद से व्याप्त यह धरा मेदिनी कहलायी। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण रमणीक रास-मण्डल में चले गये।[3]

मधु कैटभ

(२)

रास-मण्डल सभी शृंगार एवं भोगवस्तुओं से परिप्लुत था। पूर्व-कथित देवों के साथ जगत्पति वहाँ जा विराजे। वे सभी देव आश्चर्य में पड़ गये। श्रीकृष्ण के वामांग से एक षोडश वर्षीया कन्या प्रकट हुई, जो दौड़कर पुष्प लायी और प्रभु श्री कृष्ण को अर्घ्य समर्पित किया। यह देवी रास-मण्डल में प्रकट होकर दौड़ी अतः राधा कहलायी।[4] यह अपने भर्ता श्री कृष्ण के मुख-पंकज का दर्शन करती हुई और उनसे वार्तालाप करती हुई, सुन्दर आसन पर सस्मित विराजमान हुई। इसके रोम-कूप से सदा स्थिर यौवन तथा राधा-सदृश लाख-करोड़ गोपियाँ प्रकट हुईं।[5] तत्काल ही श्री कृष्ण के रोम-कूप से तीस-कोटि गोपालों का समूह प्रकट हुआ।[6] कृष्ण के ही रोम-कूपों से नाना-वर्णों का सदा-सुस्थिर-यौवन गो-गण उत्पन्न हुआ। वृषभ, सुरभियों और बड़ी ही सुन्दर-सुन्दर काली कामधेनुएं प्रकट हुईं।[7] इन्हीं में से एक वृषभ श्री कृष्ण ने शिव को प्रदान किया। श्रीकृष्ण के नख-छिद्र से मनोहर हंस-पंक्ति प्रकट हुई, जिसमें से वाहनार्थ एक हंस ब्रह्मा को दिया।[8] श्रीकृष्ण के वाम-कर्ण-विवर से श्वेत तुरङ्ग उत्पन्न हुए। इनमें से

रास मण्डल

राधा

पुष्प

गोपी

गोप

वृषभ

सुरभी

हंस

तुरङ्ग

१. ब्रह्म वै० १।४।२४। २. वही १।४।२३-२६। ३. वही १।४।२७।२८।
४. वही १।५।२५-२६। ५. वही १।५।३८-४३। ६. वही वै० १।५।४४।
७. वही १।५।४५। ८. वही १।५।४६-४७।

वाहनीयं एक तुरङ्ग धर्मदेव को दिया।[१] दाहिने कर्ण-विवर से सिंहपंक्ति प्रकट हुई। इनमें से वाहनार्थ अमूल्य रत्नमाला-धारी एक श्रेष्ठ सिंह दुर्गा देवी को प्रदान किया।[२] श्री कृष्ण ने योग-शक्ति से पांच मनोयायी रथ उत्पन्न किये, जिनमें एक नारायण को और एक राधिका को प्रदान किया, शेष तीन को अपने लिए रखा।[३]

सिंह
योगशक्ति
रथ

श्री कृष्ण के गुह्य-भाग से एक पिङ्गल-पुरुष अपने गणों के साथ प्रकट हुआ। यह पुरुष और ये गण गुह्य-भाग से उत्पन्न होने के कारण गुह्यक नाम से प्रसिद्ध हुए। इस पुरुष का ही नाम धनेश कुबेर है।[४] कुबेर के वाम-पार्श्व से कुबेर की पत्नी मनोरमा प्रकट हुई।[५] श्रीकृष्ण के गुह्य-भाग से भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्म-राक्षस और कुरूप बेताल प्रकट हुए।[६] श्री कृष्ण के मुख से शंख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला, किरीट, कुण्डल एवं रत्न-भूषणधारी पार्षद प्रकट हुए। ये सभी श्याम-वर्ण चतुर्भुज थे। पीत-वस्त्र धारण किये थे।[७] इनमें से श्रीकृष्ण ने चतुर्भुज पार्षदों को नारायण के लिए, गुह्यकों को कुबेर के लिए और भूतादि को शंकर की सेवा के लिए प्रदान किया। द्विभुज, जप-मालाधारी, श्याम-वर्ण दासों को श्री कृष्ण ने अपनी सेवा में लगा लिया। ये सभी सेवक वैष्णव एवं कृष्ण-परायण थे।[८]

कुबेर
गुह्यक
मनोरमा
भूत
प्रेत
पिशाच
कूष्माण्ड
ब्रह्म-राक्षस
पार्षद

श्री कृष्ण के दायें नेत्र से त्रिशूल-पट्टिशधारी, त्रिनेत्र, चन्द्रशेखर, दिगम्बर, महाकाव्य, जलती हुई अग्नि-शिखा की भांति, शिव जैसे तेजस्वी भैरव उत्पन्न हुए।[९] ये रुरु, संहार, काल, असित, क्रोध, भीषण, महाभैरव और खट्वांग नामक भैरव संख्या में आठ थे।[१०] श्रीकृष्ण के वाम-नेत्र से भयंकर त्रिशूल और पट्टिशधारी, व्याघ्र-चर्मधारी, गदाधर, दिगम्बर, त्रिनेत्र, चन्द्रशेखर दिक्पालों के स्वामी ईशान उत्पन्न हुए।[११]

(भैरव)
रुरु
काल
असित
क्रोध
भीषण
महाभैरव
खट्वाङ्ग
ईशान

दिक्पालों की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रसंग में तो नहीं बताया गया है किन्तु ब्रह्म-खण्ड के दशम अध्याय में यह बताया गया है कि।

दिक्पाल

बभूवुरेते दिक्पालाः पुरा च परमेश्वरात्।[१२]

१. ब्रह्म वै० १।५।४९। २. वही १।५।५२। ३. वही १।५।५९ ४. वही १।५।६१ ५. वही १।६।२ ६. वही १।५।६२-६३। ७. वही १।५।६५। ८. वही १।५।६७। ९. वही १।५।७१। १०. वही १।५।७२। ११. वही १।५।७३-७४। १२. वही १।१०।७।

इस प्रकार परमेश्वर श्रीकृष्ण से ही दिक्पालों की भी उत्पत्ति बतायी गयी है।

डाकिनी
योगिनी
क्षेत्र-पाल
असुर
सिद्धि
ज्ञान

श्री कृष्ण के नासिका-विवर से हजारों डाकिनियां, योगिनियाँ और क्षेत्रपाल प्रकट हुए।[1] श्री कृष्ण के पृष्ठभाग से अकस्मात् तीन कोटि असुर उत्पन्न हुए।[2] तदनन्तर श्री कृष्ण ने सृष्टि की उपयोगिनी-शक्ति, मनोरथ पूरक सकल-सिद्धियों तथा विशिष्ट एवं उत्कृष्ट-तत्व-स्वरूप ज्ञान प्रकृति-देवी को दिया। इसी प्रकार सभी सिद्धियाँ एवं ज्ञान श्रीकृष्ण ने शिव, धर्म, काम, अग्नि, कुबेर और वायु को प्रदान किया।[3] भगवान् श्री कृष्ण ने ब्रह्मा को बताया कि सहस्र दिव्य-वर्ष उनका तप करके नाना प्रकार की सृष्टि करें। इसके पश्चात् उन्हें मनोरमा माला को देकर गोपियों तथा गोपों के साथ श्री कृष्ण वृन्दावन चले गये।[4]

(३)

मेदिनी
(पर्वत)
सुमेर
कैलास
मलय
हिमालय
उदय अस्त
सुवेल गन्ध मादन
(सागर) लवण

श्री कृष्ण की आज्ञा से ब्रह्मा ने तप करके यथेष्ट सिद्धि प्राप्त किया। मधु और कैटभ के मेद से तपः फलस्वरूप मेदिनी=(पृथिवी) का निर्माण ब्रह्मा ने किया।[5] उन्होंने आठ प्रधान पर्वतों की सृष्टि की जिसका नाम क्रमशः सुमेरु, कैलाश, मलय, हिमालय, उदय, अस्त, सुवेल और गन्ध-मादन हुआ। अन्य छोटे असंख्य पर्वतों की सृष्टि हुई। लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और जल के सागरों की सृष्टि की गयी। आकार-प्रकार में इनका मान क्रमशः एक से दूसरे का दूना है। लवण-सागर का क्षेत्रफल एक लाख योजन है।[6] अनेकों नदियों, वृक्षों और ग्रामों की भी सृष्टि ब्रह्मा ने की।[7]

इक्षु सुरा
घृत दुग्ध
दधि जल
नदी वृक्ष
ग्राम नगर

कमलाकार इस भूमि-मण्डल पर सात द्वीप, सात उप-द्वीप तथा सात सीमा-पर्वतों की सृष्टि हुई। सात प्रधान द्वीपों का नाम क्रमशः जम्बू, शाक, कुश, प्लक्ष, क्रौंच, न्यग्रोध और पौष्कर है।[8]

१. ब्रह्म वै० १।५।७५ २. वही १।५।७६। ३. वही १।६।६७-७०
४. वही १।६।७२। ५. वही १।७।१। ६. वही वै० १।७।२।५
७. वही १।७।४। ८. वही १।७।६-७।

द्वीप
उपद्वीप
सीमापर्वत
आठापुरी
नागलोक
सातस्वर्ग
ध्रुवलोक
सातपाताल

मेरु-पर्वत के आठ शिखरों पर आठ पुरियों का निर्माण आठ लोक-पालों के विहार के लिए किया गया।[1] मेरु के मूल में नाग की नगरी का निर्माण किया गया। मेरु के ऊपर सात स्वर्गों की सृष्टि की गयी। ये क्रमशः भूः, भुवः, स्वः, जन, तमः, सत्य तथा शिखर की मूर्धा पर ब्रह्म लोक कहे जाते हैं। ब्रह्मलोक जरादि से हीन है। सबसे ऊपर ध्रुव-लोक की सृष्टि की गयी। यह सबसे मनोहर है।[2] मेरु पर्वत के नीचे स्वर्ग से भी अधिक भोग सामग्री से सम्पन्न एक के नीचे एक सात-पातालों की सृष्टि ब्रह्मा ने की। इनके नाम अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल और रसातल है। इन्हीं सात द्वीपों, सात स्वर्गों, सात पातालों और इनके लोकों को सम्मिलित रूप में ब्रह्माण्ड कहा जाता है, जोकि ब्रह्मा द्वारा अधिकृत है।[3]

(४)

चारों वेद
शास्त्रसमूह
तर्क
व्याकरण आदि
छत्तीस रागिनियाँ
नाना ताल
छः राग
सत्य — वार
त्रेता — सन्ध्या
द्वापर — उषस
कलि — सृष्टि
वर्ष — देवसेना
मास — मेधा
ऋतु — विजया
तिथि — जया

इस प्रकार विश्व का निर्माण करके सर्व-गुण-सम्पन्न सुन्दरी एवं कामुकी सावित्री में कामुक की भाँति ब्रह्मा ने वीर्याधान किया। सावित्री ने सुदुस्सह गर्भ को सौ दिव्य वर्षों तक धारण करके चारों वेदों को उत्पन्न किया[4]। अनेकों शास्त्र समूहों, तर्क, व्याकरण आदि, छत्तीस रागिनियों एवं नाना-ताल समन्वित छः रागों को उत्पन्न किया। सावित्री ने सत्य, त्रेता, द्वापर और कलह-प्रिय कलि, वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण आदि दिन, रात्रि, शनि आदि वार, सन्ध्या, उषस्, पुष्टि, देवसेना, मेधा, विजया, जया, छ कृत्तिकाओं, योगों और करणों को उत्पन्न किया।[5] ब्राह्म, बाराह और पाद्म नामक चारों प्रलय, काल, मृत्युकन्या और सभी प्रकार के व्याधि-समूहों को भी सावित्री ने उत्पन्न कर स्तन-पान कराया।[6]

---

१. ब्रह्म वै० १।७।८। २. वही १।७।९-११। ३. वही १।७।१२-१४।
४. वही वै० १।८।१-२ ५. वही १।८।३-६ ६. वही १।८।७-९

(५)

दण्ड — छ कृत्तिकाएँ
क्षण — योग
दिन — करण
रात्रि — कल्प
प्रलय — काल
मृत्युकन्याः-व्याधि

ब्रह्मा के पृष्ठ-भाग से अधर्म और अधर्म के वाम-भाग से उनकी कामिनी अलक्ष्मी उत्पन्न हुई। ब्रह्मा के नाभिदेश से शिल्पियों के गुरु विश्व-कर्मा और महापराक्रमी आठो वसु उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के मन से ब्रह्मा तेजस्वी पंचवर्षीय सनक, सनन्द, सनातन और सनत्कुमार नामक चारों कुमार उत्पन्न हुए।[1]

अधर्म
अहक्ष्मी
विश्वर्मा
आठो वसु
सनक
सनन्द
सनातन
सनत्कुमार
मनू, शतरूपा
एकादश रुद्र

ब्रह्मा के मुख से स्वर्णिम-प्रभायुत सपत्नीक—क्षत्रियों के बीज-रूप स्वायम्भुव (मनु) प्रकट हुए। उनकी सुन्दरी पत्नी का नाम शतरूपा था।[2] अपनी पत्नी सहित मनु विधाता की आज्ञा के पालक थे। उन महा भागवत पुत्रों को ब्रह्मा ने सृष्टि करने का आदेश दिया। किन्तु वे अस्वीकार करके कृष्ण-परायण हो तपस्या करने चल दिये। इस अवज्ञा से विधाता अप्रसन्न हो गये। उस क्रोधित स्थिति में क्रोध से जलते हुए ब्रह्मा के ललाट से ब्राह्म-तेज के द्वारा एकादश[3] रुद्र प्रकट हुए। उनमें एक 'कालाग्नि रुद्र' संहारक कहे गये हैं। सम्पूर्ण विश्व के वे तामस हैं, स्वयं ब्रह्मा राजस हैं और शिव तथा विष्णु सात्विक हैं। गो-लोक के स्वामी श्री कृष्ण निर्गुण तथा प्रकृति से परे हैं। किन्तु नितान्त-मूर्ख-जन शिव को भी तामस कहते हैं।[4] (यहाँ रुद्र एवं शिव में स्पष्ट भिन्नता है)।

पुलस्त्य
पुलह
अत्रि क्रतु — अरणि
अंगिरा — रुचि
दक्ष — भृगु
कर्दम — पंचशिख
बाढु — नारद
मरीचि — अपान्तरतमा
वशिष्ठ — प्रचेता
यति — हंस

ब्रह्मा के दाहिने कान से पुलस्त्य, बायें कान से पुलह, दायें नेत्र से अत्रि, बायें नेत्र से क्रतु, दायें नासिका-छिद्र से अरणि, बायें से अंगिरा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के मुख से रुचि, दक्षिण-पार्श्व से दक्ष, वाम-पार्श्व से भृगु, छाया से कर्दभ ऋषि, नाभि से पंच-शिख, वक्ष के बाढु, कण्ठ से नारद, स्कन्ध से मरीचि, गले से अपान्त-तमा, जिह्वा से वशिष्ठ, अधरोष्ठ से प्रचेता, दाईं कुक्षि से यति और वाम कुक्षि से हंस ऋषि की उत्पत्ति हुई।[5] कल्पान्तर में ब्रह्मा के कण्ठ से अकेले नारद की ही नहीं प्रत्युन बहुत से मनुष्यों की उत्पत्ति बतायी गयी है।[6] नारद एक ब्रह्मा भी थे। उन्हीं के पुत्र होने के कारण नारद कहलाये।[7]

---

१. ब्रह्म १।८।१०-१३ २. वही वै० १।८।१५ ३. वही १।८।२३ ४. वही १।८।१५-२०
५. वही १।८।२५-२८। ६. वही वै० १।२१।१३ ७. वही १.२२।२

(६)

प्रजापति	चन्द्रमा
गौतम	मैत्रावरुण
आकृति	देवहूति
प्रसूति	प्रियव्रत
उत्तानपाद	
ध्रुव	कपिल
दक्ष की ६० कन्याएँ	
सन्तोष	
महान्	
धैर्य	
हर्ष-दर्प	
सहिष्णु	
धार्मिक	
ज्ञान	
जाति-स्मर	
नर, नारायण	

इतनी सृष्टि होने पर ब्रह्मा ने अपने पुत्रों को सृष्टि करने का आदेश दिया। नारद के अतिरिक्त उनके सभी पुत्रों ने इस आदेश को स्वीकार किया।[१] उनके पुत्र सृष्टि करने में तत्पर हुए। मरीचि के मन से प्रजापति, अत्रि के नेत्र-मल से क्षीर-सागर में चन्द्रमा, गौतम पुलस्त्य के मन से मैत्रावरुण उत्पन्न हुए।[२] मनु और शतरूपा से आकृति, देवहूति और प्रसूति नामक तीन कन्याएँ तथा प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव परम-धार्मिक हुए।[३] रुचि की आकृति, दक्ष को प्रसूति और कर्दम को देवहूति प्रदान की गयी। कर्दम और देवहूति से कपिल उत्पन्न हुए।[४] दक्ष और प्रसूति से साठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनमें आठ धर्म को, ग्यारह रुद्र को एक (सती) शिव को, तेरह कश्यप को, सत्ताइस चन्द्र को दी गयीं। धर्म को आठ पत्नियों में शान्ति से सन्तोष, पुष्टि से महान्, धृति से धैर्य तुष्टि से हर्ष, क्षमा से सहिष्णु, श्रद्धा से धार्मिक, मति से ज्ञान और स्मृति से जाति-स्मर उत्पन्न हुए। धर्म की पहली पत्नी मूर्ति में नर और नारायण हुए।[५]

एकादश रुद्रों का नाम क्रमशः इस प्रकार है—महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयंकर ऋतुध्वज, ऊर्ध्व, केश, पिंगलाक्ष, रुचि और शुचि।[६] इनकी पत्नियों के नाम—कला, कलावती, काष्ठा, कालिका, कलहप्रिया, कन्दली, भीषणा, रास्ना, प्रमोचा भूषणा और शुकी। इनसे अनेकों पुत्र हुए वे शिव-पार्षद हुए।[७]

स्वामि निन्दा के कारण सती ने निज शरीर परित्याग कर दिया। पुनः शैल-पुत्री के रूप में इन्होंने शंकर को पति रूप में प्राप्त किया।[८]

कश्यप की प्रियाओं के नाम—(१) अदिति—देव माता, (२) दिति—दैत्यमाता, (३) कद्रू—सर्पमाता, (४)

---

१. ब्रह्म वै० १।९।१ २. वही १।९।२-५ ३. वही १।९।४-५
४. वही १।९।६ ५. वही १।९।९-१२ ६. वही १।८।२३
७. वही १।२।१३-१४ ८. वही १।९।१५.

विनता—पक्षिमाता, (५) सुरभि—महिष और गोमाता, (६) सरमा—सारमेय आदि चतुष्पद माता।

इन्द्र
द्वादश आदित्य
विष्णु जयन्त

(१) अदिति के पुत्र इन्द्र, द्वादश आदित्य और विष्णु आदि महाबली एवं पराक्रमी देव हैं। इन्द्र के पुत्र जयन्त शची से पैदा हुए।[1]

शनैश्चर यम
कालिन्दी मंगल
मेधा घंटेश्वर

विश्व-कर्मा की सवर्ण कन्या से सूर्य के दो पुत्र—शनैश्चर और यम हुए, कालिन्दी नामक एक कन्या भी उत्पन्न हुई।[2] उपेन्द्र के पुत्र मंगल की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई।[3] मंगल को प्रिया मेधा से घण्टेश्वर की उत्पत्ति हुई।[4]

हिरण्यकशिपु
हिरण्याक्ष
सिंहिका
प्रह्लाद
विरोचन
बलि
बलिपुत्र
(नाम नहीं)

(२) कश्यप की पत्नी दिति से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र तथा सिंहिका नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। सिंहिका का अपर नाम निऋति है। अतः सिंहिका-पुत्र राहु को नैऋत भी कहा जाता है निःसन्तान हिरण्याक्ष को भगवान् सूकर ने मार दिया। हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद वैष्णवों में अग्रणी हुए। प्रह्लाद के पुत्र विरोचन और विरोचन के पुत्र बलि हुए। बलि का पुत्र महायोगी ज्ञानी तथा शिव-भक्त हुआ। (इस प्रसंग में बलिपुत्र का नाम निर्देश नहीं है।)[5]

अनन्त वासुकि
कालीय धनंजय
कर्कोटक तक्षक
पद्म ऐरावत
महापद्म शंकु
शंख संवरण
धृतराष्ट्र दुर्धर्ष
दुर्जय दुर्मुख
बल गोक्ष
गोकामुख विरूप
मनसा जरत्कारु
आस्तोक वैनतेय

(३) कद्रू से अनन्त, वासुकि, कालीय, धनंजय, कर्कोटक, तक्षक, पद्म, ऐरावत, महापद्म, शंकु, शंख, संवरण, धृतराष्ट्र, दुर्धर्ष, दुर्जय, दुर्मुख, बल, गोक्ष, गोकामुख और विरूप आदि प्रवर सर्प जातियाँ उत्पन्न हुईं तथा लक्ष्मी की अंश-भूता मनसा नाम की एक कन्या भी उत्पन्न हुई।[6]

मनसा के पति जरत्कारु नारायण के अंश थे। इनसे विष्णु-तुल्य यशस्वी आस्तोक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन सबों (नाग-वंश) के नाम-मात्र स्मरण से सर्प-विष नष्ट हो जाता है।[7]

---

१. ब्रह्म वै० १।६।१६ २. वही १।६।२० ३. वही १।६।२१ ४. वही १।६।३४
५. वही १।८।३५-३८ ६. वही १।६।४२। ७. वही १।६।४३

अरुण

(४) विनता के वैनतेय और अरुण नामक दो पुत्र विष्णु तुल्य पराक्रमी हुए।[१]

चन्द्र की सत्ताईस पत्नियों के नाम निम्नलिखित हैं— अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्या, आश्लेषा, मघा, पूर्व फाल्गुनी, उत्तरा, हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधिका, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तरा, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषक् पूर्वाभाद्रा, उत्तराभाद्रा, रेवती।

च्यवन शुक्र
क्रिया बालखिल्य
वृहस्पति उतथ्य
शम्बर शक्ति
पराशर कृष्णद्वैपायन
शुक विश्वश्रवा

भृगु के पुत्र च्यवन और शुक्र थे। क्रतु की पत्नी का नाम क्रिया था, जिसने बालखिल्यों को पैदा किया था। अंगिरा के तीन पुत्र थे, जिनका नाम था वृहस्पति, उतथ्य और शम्बर। वशिष्ठ के पुत्र शक्ति और शक्ति-पुत्र पाराशर थे। पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन और इनके पुत्र शिवांश शुक थे। पुलस्त्य के पुत्र विश्वश्रवा और इनके पुत्र धनेश्वर थे।[२] विश्व-श्रवस् का विश्रवस् (विश्रवा भी) बताया गया है।[३]

धनेश आदि दिक्पाल परमेश्वर से उत्पन्न हुए। ब्रह्म-शाप से पुनः ये विश्रवस् के पुत्र हुए।[४]

कुबेर
रावण
कुम्भकर्ण
विभीषण

शाप का कारण भी बताया गया है कि अंगिरा पुत्र उतथ्य ने गुरु प्रचेतस् को दक्षिणा देने के लिए कोटि स्वर्ण-मुद्रा की याचना की किन्तु धनेश ने विरस होकर देना चाहा। अतः उतथ्य ने शाप दिया और फलस्वरूप चारों दिक्पाल विश्रवस के पुत्र कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण हुए।[५]

वात्स्य
शाण्डिल्य
सावर्णि
काश्यप
भरद्वाज

पुलह के पुत्र वात्स्य, रुचि के पुत्र, शाण्डिल्य, गौतम के पुत्र सावर्णि, कश्यप के काश्यप और वृहस्पति के भरद्वाज हुए। इन्हीं पुत्रों के नाम पर पंचगोत्रों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण जातियाँ देश-भेद के के नाम पर (गौड आदि) कही गयीं।[६]

---

१. ब्रह्मवै० १।६।४४
२. वही १।१०।१-४
३. वही १।१०।१०
४. वही १।१०।७
५. वही १।१०।६-१०
६. वही १।१०।११-१३

अध्याय ६

ब्रह्म-वैवर्तीय जाति-वर्णन

सृष्टि-विस्तार के क्रम में ब्रह्म-वैवर्त के प्रथम-खण्ड के दशम अध्याय में विभिन्न जातियों का वर्णन किया गया है। धर्म-शास्त्रीय निबन्धकारों ने ब्रह्म वैवर्त का प्रामाण्य स्वीकार किया है। जातियों का यह वर्णन अति-संक्षिप्त है।[1] वस्तुतः ब्रह्मवैवर्त की यह वर्णन-पद्धति महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में सूत ने ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों का वर्णन करते हुए शूद्रों की जातियों एवं उप-जातियों का वर्णन किया है। अन्त में ऐसी बहुत-सी जातियों का संकेत किया है जिनके नाम बताना और गणना करना असम्भव है।[2]

इस ब्रह्मवैवर्तीय वर्णन में यह विशेषता है कि शूद्रों अथवा वर्ण-संकरों को त्याज्य अथवा अस्पृश्य नहीं बताया गया है। उन्हें उनके कर्मों के कारण नीच भले ही समझा जाय किन्तु जन्म-ग्रहण करने में उनका दोष ही क्या है।

धर्मशास्त्रीय विचार की दृष्टि से इस दशम अध्याय का विशेष महत्व है। यही कारण है कि इसे पृथक् ग्रन्थ का रूप प्राप्त हुआ। यह अध्याय जाति-सम्बन्ध-निर्णय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके पृथक्-संस्करण का प्रमाण १४८१७ संख्या बंग भाषा में हस्तलिखित प्रति है, जो वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, सरस्वती-भवन में सुरक्षित है।

इसमें जाति-प्रसंग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा इनके संकर से उत्पन्न वर्ण-संकर जातियों का क्रमशः वर्णन किया गया है। ब्राह्मणों का सम्पूर्ण समूह वात्स्य, शाण्डिल्य, सावर्णि, काश्यप एवं भरद्वाज नामक पाँच पृथक् गोत्रों में विभक्त है।[3] अन्य ब्राह्मणों की भी चर्चा है किन्तु उनका नाम नहीं बताया गया है। तथापि उन्हें देश-भेद अथवा क्षेत्र-भेद के आधार पर अभिहित किया जाता है।[4] इस प्रकार का प्रयोग गणेश खण्ड के बत्तीसवें अध्याय में परशुराम-युद्ध-वर्णन के प्रसंग में किया गया है।[5] अधुनातन समाज में इस प्रकार से सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल, उत्कल आदि शाखाएँ प्रचलित हैं। यहाँ गोत्रहीन ब्राह्मण-जाति का भी वर्णन है। जो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए वे गोत्रशून्य हैं। यद्यपि आज-कल ब्राह्मणों की कोई शाखा गोत्रहीन

---

१. ब्रह्म वै० १।१०।१३७   २. वही १।१०।१२२   ३. वही १।१०।१०-११

४. वही १।१०।११-१४   ५. वही १।१०।१२-१३

नहीं है। गोत्रहीन होने की उक्ति परम प्राचीन ऋषियों के सम्बन्ध में ही चरितार्थ होती है। यह भी विचारणीय है कि ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मणों की कोई विशेष-सूची निश्चित नहीं है। ब्राह्मणों की दो ऐसी शाखाओं का भी वर्णन किया गया है जो अन्य ब्राह्मणों की अपेक्षा निम्नस्तर की हैं। इनमें पहले ही गणक का, जो कि वेतनभोगी तथा निरन्तर ज्योतिर्गणना में लगे हुए वेद-धर्म से हीन थे, नाम आया है।[१] गणक का वर्णन अपराधियों की कोटि में वाजसनेय संहिता[२] और तैत्तिरीय ब्राह्मण[३] में है। नीच ब्राह्मणों की दूसरी शाखा अग्रदानियों की है। ये लोभ के कारण शूद्रों का तथा मृतकों का दान पहले ग्रहण करते हैं।[४]

अपने प्रवचन में सौति ने परिशिष्ट की भाँति जोड़ते हुए अपने पूर्वजसूत को यज्ञ-कुण्ड से उत्पन्न कोई पुरुष बताया है—

कश्चित्पुमान् ब्रह्मयज्ञे यज्ञ कुण्डात्समुत्थितः।
स सूतो धर्मवक्ता च मत्पूर्वं पुरुषः स्मृतः॥[५]

यहाँ यह अनुमान लगाना कठिन है कि सौति अपने पूर्व-पुरुष को किस जाति मे रखना चाहते हैं तथापि धर्मवक्ता शब्द से सम्भवतः उनका अभीप्सित ब्राह्मण हो। यद्यपि वायु पुराण में 'नहि वेदेऽवधोकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते' और नारद पुराण में 'प्रतिलोमजोऽपि धन्योऽस्मि यन्मां पृच्छथ सत्तमाः 'कथित उक्तियों से यह भी प्रमाणित है कि सम्भवतः सूतों की कोई शाखा ऐसी भी थी जो संकर जाति की थी।

क्षत्रियों की चन्द्र, सूर्य और मनु नामक तीन शाखाओं का वर्णन है।[६] अन्य क्षत्रिय जातियाँ ब्रह्मा के बाहुदेश से उत्पन्न बतायी गयी हैं।[७] यहाँ क्षत्रिय-वंश में अग्निवंशी के रूप में हूण-नरेश कनिष्क जैसे व्यक्तियों के बाह्य-समावेश की कोई चर्चा नहीं है।

वैश्यों के सम्बध में केवल इतना बताया गया है कि ब्रह्मा के उरु देश से उत्पन्न सभी नर वैश्य हैं। इनके गोत्र अथवा जाति-विशेष का वर्णन नहीं है। किन्तु गोप, नापित, भिल्ल, मोदक, कूबर, ताम्बूलिन् और स्वर्णकार को, जिनको कि स्मृतिकारों ने शूद्र को कोटि में माना है, वैश्य की श्रेणी में ग्रहण कर लिया। सम्भवतः गोप आदि जातियों की प्रगति को देखते हुए पुराणकार ने यह नवीन प्रयोग स्वीकार किया है। यहाँ पुराणकार की शब्दावली में इस नवीनता की झलक है—

गोप-नापित-भिल्लाश्च तथा मोदक-कूबरौ।
ताम्बूलिस्वर्णकारौ च वणिग्जातय एव च॥[८]

यहाँ एव शब्द से ऐसा परिलक्षित होता है कि विवाद की सम्भावना होते हुए भी पूर्वोक्त जातियों को वैश्यों में निश्चित रूप से समन्वित किया जाय। पुनरपि इन्हीं को सत् शूद्र भी कहते हैं। सत् शूद्र के रूप में शूद्रों को ऊँचे उठाने की कल्पना ब्रह्मवैवर्तीय उदाराशयता एक विशेषता है।[९]

---

१. ब्रह्म वै० १।१०।१२२ — २. वही ३०,२० — ३. ३, ४, १५ १
४. वही १।१०।१२३ — ५. वही १।१०।१२४ — ६. वही १।१०।१४
७. वही १।१०।१५ — ८. वही १।१०।१७ — ९. वही १।१०।१८

ब्रह्मा के पाद-देश से शूद्र उत्पन्न हुए।[1] ब्रह्म वैवर्त में शूद्र जाति की विभिन्न कोटियों की चर्चा नहीं है।

संकर जाति की विभिन्न श्रेणियों का वर्णन करते हुए सर्व प्रथम नव-शिल्पियों का वर्णन किया गया है।[2] इनका वर्णन करते हुए सौति ने इन्हे 'वराः' श्रेष्ठ कहा है। किन्तु इनमें तीन सूत्रधार, चित्रकार और स्वर्णकार को पतित एवं अयाज्य कहा गया है। यह बताया गया है कि ब्राह्मण कारु ने राजाओं और गृहस्थों के अनेकों शिल्पों का आविष्कार किया। अन्त में सबों के लिए विचित्र, विविध, आश्चर्यपूर्ण एवं मनोहर शिल्प का आविष्कार किया।[3] इस प्रकार विविध-मनोहर शिल्पों के आविष्कृत हो जाने पर उसमें नव-प्रकार का विभाजन करके कारु (ब्राह्मण) ने अपने पुत्रों को पृथक-पृथक शिल्पों में निपुण कर दिया। वे सभी शिल्पी-पुत्र ज्ञानी, पूर्व-शिल्पियों की अपेक्षा योग्यतर, बली एवं विचक्षण थे।[4] इन्हें अपने माता-पिता का आशीर्वाद भी प्राप्त था।[5] यहाँ यह प्रकट होता है कि सर्व प्रथम शिल्प विभिन्न कोटियों में विभाजित नहीं था। इसका विकास क्रमशः हुआ। कारु एवं उनके पुत्रों ने शिल्पियों के ज्ञानी, सच्चरित्र बलवान्, योग्य और विचक्षण होने का आदर्श रखा। किन्तु उनके तीन पुत्रों ने दुश्चरित्रतापूर्ण व्यवहार किया। स्वर्णकारों ने सोना चुरा लिया। सूत्रकार ने समय पर शीघ्र ही ब्राह्मणों के लिए यज्ञ-काष्ठों को नहीं दिया। चित्रकार ने शीघ्रता में चित्रों का क्रम उचित ढंग से नहीं रखा। अतः इन तीनों को ब्रह्मा एवं ब्राह्मणों के शाप से पतित होना पड़ा।[6] ये उदाहरण इस विषय के प्रमाण भी हैं कि नीच-कार्य करने पर उन्हें जाति-च्युत भी किया जा सकता था। सच्चरित्रता के पुरस्कार-स्वरूप उच्च-जाति में लाने का उदाहरण भी शूद्र से सत् शूद्र और सत्-शूद्र से वैश्य के रूप में पहले गोप आदि के विषय में वर्णित है।[7] समाज और शास्त्र का सामंजस्य ब्रह्म-वैवर्त में स्पष्टतया देखा जा सकता है।

ब्रह्म वैवर्त मे वर्ण-संकर को भी यज्ञ करने का अधिकार दिखाई पड़ता है। कारू (विश्वकर्मा) के नव-पुत्रों में मालाकार, कर्मकार (लुहार) शंखकार, कुविन्दक, कुम्भकार और कांस्यकार (ठँठेर) को यज्ञ करने का अधिकार इस प्रसंग में जान पड़ता है। इस प्रकार का वर्णन कूर्मपुराण में भी है।[8] इन छः के अतिरिक्त स्वर्णकार, चित्रकार और सूत्रकार को शाप देकर अयाज्य कर दिया गया। अतः इन तीनों के अतिरिक्त छः को यज्ञ करने का अधिकार प्रकट होता है।

इन नव-शिल्पियों के जन्म की रोचक घटना का वर्णन ब्रह्म-वैवर्त में किया गया है। एक बार विश्वकर्मा घृताची नामक अप्सरा के सौन्दर्य पर, जबकि वह काम-

---

१. ब्रह्म वै० १।१०।१६ २. वही १।१०।२०-२१ ३. वही १।१०।६८-६६ ४. वही १।१०।८६ ५. वही १।१०।८१ ६. वही १।१०।८२-८५। ७. वही १।१०।१७
८. शूद्राज् इन एन्सियेंट इण्डिया—सरकार, पृ० १८७

देव से मिलने जा रही थी, मुग्ध हो गये। किन्तु घृताची ने स्वीकार न किया। अन्त में दोनों ने एक दूसरे को शाप दिया। फलस्वरूप विश्वकर्मा ब्राह्मण-कारू के रूप में और घृताची मदन-गोप की पुत्री विद्या के रूप में प्रयाग क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। इन्हीं दोनों की सन्तानें नव-शिल्पी हुए।[१]

वर्ण-सांकर्य से होने वाली कुछ जातियों का नाम निर्देश स्पष्टतः नहीं भी किया गया है। (१) हड्डि जाति की कन्या और चाण्डाल पुरुष से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। ये दुष्ट थे। ये वनचर हुए किन्तु पाँचों की पृथक् जातियों का नाम नहीं बताया गया है।[२] (२) क्षत्र-पुरुष और शूद्रा-स्त्री से म्लेच्छ-जातियाँ उत्पन्न हुईं। किन्तु यहाँ म्लेच्छ-जातियों के विभिन्न नामों का वर्णन नहीं किया गया है। इतना अवश्य बताया गया है कि वे कान नहीं छिदाते थे। (कर्ण-वेध अथवा कान छिदाना, जिसके पश्चात् यज्ञोपवीत होता है, हिन्दू-परिवार का मुख्य संस्कार है। जिन हिन्दू जातियों में यज्ञोपवीत नहीं भी होता है, उनमें भी कर्ण-वेध संस्कार उत्सवपूर्वक होता है।) वे क्रूर, निर्भय और युद्ध में दुर्जय होते हैं। वे शौचाचार हीन भयंकर और धर्महीन थे।[३] इनकी शाखा जोला को उत्तर प्रदेश में जुलाहा कहा जाता है। (३) शूद्रों में वैद्य जाति से उत्पन्न लोग भी संख्या में बहुत थे। वे सभी ग्रामीण-गुणज्ञ और मन्त्रों तथा औषधियों में प्रवीण थे। इनकी भी संख्या निश्चित नहीं है। ये असंख्य थे।[४] (४) वर्ण-सांकर्य से बहुत-सा अश्रुत-जातियाँ हुई।[५] यहाँ अश्रुत शब्द का प्रयोग श्लिष्ट प्रतीत होता है। अर्थात् इन जातियों की शास्त्र में कहीं चर्चा नहीं है। अथवा यह भी अभिप्राय हो सकता है कि ऐसी जातियाँ जिनके विषय में कभी सुना न गया हो।

इनके अतिरिक्त सौति ने शौनक से अट्ठावन संकर जातियों का वर्णन किया है। इनमें नव तो मालाकार आदि शिल्पी हैं। शेष उन्चास का वर्णन भी ब्रह्म खण्ड के दशम अध्याय में ९६ से १२४वें श्लोकों तक किया गया है।

ब्रह्म-वैवर्तीय शूद्र-संकर-जाति-सूची

१. अट्टालिकाकार	२. अम्बष्ठ	३. आगरी	४. करण
५. कर्तार	६. कर्मकार	७. कलन्दर	८. कुविन्दक
९. कुम्भकार	१०. कूदर	११. कैवर्त	१२. कोंच
१३. कोटक	१४. कोयाली	१५. कोल	१६. गंगा-पुत्र
१७. चर्म-कार	१८. चाण्डाल	१९. चित्र-कार	२०. जोला
२१. डम	२२. तीवर	२३. तैलकार	२४. पौण्ड्रक
२५. भट्ट	२६. मण्ड	२७. मल्ल	२८. मातर

१. ब्रह्म वै० १।१०।५८-५९ २. वही १।१०।१०५। ३. वही १।१०।११९-२०
४. वही १।१०।१२४ ५. वही १।१०।१२२-१३७

२९. मालाकार	३०. माल्ल	३१. मांसच्छेद	३२. युङ्गी
३३. रजक	३४. राज-पुत्र	३५. लेट	३६. वन-चर
३७. वागतीत	३८ बेषधारी	३९. वैद्य	४०. व्याध
४१. व्याल-ग्राही	४२. मन्त्रौषधिपरायण	४३. शराङ्क	४४. शङ्खकार
४५. शुण्डी	४६. सर्व-स्वी	४७. सूत्रकार	४८. स्वर्ण-कार
४९. हड्डि ।			

१. **अट्टालिका-कार**—१।१०।९६ कुलटा शूद्रा में चित्रकार से उत्पन्न अट्टालिका-कार जार दोष के कारण पतित हुआ। यह अपरनामा राजकुमार है। (जाति अन्वेषण प्र० भा० पृ० २२५) । यह अपने नाम के अनुकूल गृह-निर्माण का कार्य करने वाला है ।

२. **अम्बष्ठ**—१।१०।१८ वैश्या तथा ब्राह्मण के संयोग से अम्बष्ठ की उत्पत्ति हुई। आजकल इस जाति के कायस्थ उपलब्ध हैं।

३. **आगरी**—१।१०।११० राजपुत्री में करण से आगरी का जन्म हुआ। इनका परिचय सन्देहपूर्ण है। जाति-अन्वेषण प्रथम भाग में पं० छोटेलाल शर्मा ने (पृ० २५८) बताया है कि इनकी उत्पत्ति आगल ऋषि से हुई। अतः आगल ऋषि की सन्तान के साथ आगरी का परिचय शुद्ध एवं दोषहीन नहीं ज्ञात होता। वास्तव में आगरी का परिचय अगरिया से करना उचित है। जाति-अन्वेषण प्रथम भाग में अगरिया को चमार मुसहर आदि की कोटि में रखा गया है। (पृ० १२६—देश-दशा) ।

४. **करण** - १।१०।१८ शूद्रा और वैश्य के संयोग से उत्पन्न लोग करण कहलाये। यह कायस्थों की एक शाखा है। ये लोग उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा में पाये जाते हैं। विशेषतः इस वर्ग के लोग तिरहुत और बिहार के उत्तरी भाग में पाये जाते हैं। (जाति अन्वेषण प्र० भा०, पृ० ३३५)

५. **कर्तार**—१।१०।१०४ कोंच (स्त्री) और कैवर्त (पुरुष) से कर्तार का का उद्भव हुआ। इसका कहीं स्पष्ट निवास आदि नहीं जाना जा सका।

६. **कर्मकार**—१।१०।९० ये विश्व-कर्मा (ब्राह्मण) और घृताची (गोपी) के नव शिल्पी पुत्रों में से एक हैं। संख्या-क्रम में ये दूसरे हैं। ये योग्य, बलवान् और विचक्षण थे। आजकल ये लुहार कहलाते हैं। (जाति अन्वेषण प्र० ३२८) ।

७. **कलन्दर**—१।१०।१०१ लेट जाति के पुरुष और तोवर जाति की कन्या से उत्पन्न छठों सन्तान कलन्दर जाति के लोग हुए।

८. **कुविन्द**—अथवा कुविन्दकार, कुविन्दक भी—१-१०-९० ये नव-शिल्पियों में से चौथे हैं। कुछ लोग तन्तुवाय और कुविन्द को एक मानते हैं (जाति-अन्वेषण, प्र० भा०, तन्तुवाय) ।

९. **कुम्भकार**—१-१०-९० नव-शिल्पियों में से एक। क्रम में इनका स्थान पाँचवाँ है। ये सर्वत्र हैं। ये लोग अपने को प्रजापति भी कहते हैं।

१०. **कूदर**—१-१०-११५-१६ ऋतुकाल के प्रथम दिन ही ब्राह्मणी में ऋषि के संयोग से उत्पन्न पुत्र कूदर हुआ। कुत्सित उदर से (ऋतुकाल के कारण) जन्म लेने के आधार पर इसे कूदर बताया गया है। यह कोटक-संसर्ग से अधम हुआ।

११. **कैवर्त**—१-१०-१११ क्षत्रिय और वैश्या के संयोग से कैवर्त की उत्पत्ति हुई। इसका दूसरा नाम धीवर है। यह तीवर के संसर्ग से कलियुग में नीच हुआ।

श्री काणे महोदय (धर्मशा० इति०) के अनुसार आसाम की घाटी में कैवर्त नामक एक परिगणित-जाति निवास करती है। मेधातिथि ने (मनु० १०—४) इसे मिश्रित (संकर) जाति कहा। मनु ने (१०—३४) कैवर्त को निषाद एवं आयोगव की सन्तान माना है। जातकों में कैवर्त को केवत्त (केवट) कहा गया है। मध्य प्रदेश, भण्डारा जिले में इसे धीमर कहा जाता है। (धर्मशा० इति०)।

१२. **कोंच**—१-१०-१०४ मांसच्छेद की स्त्री और तीवर के संयोग से उत्पन्न कोंच जाति बनी। इनके आधुनिक निवास आदि का पता नहीं।

१३. **कोटक**—१-१०-९७ कुम्भकार की पत्नी में अट्टालिकाकार पुरुष से उत्पन्न सन्तान है। इनका भी कार्य घर बनाना था। ये अट्टालिकाओं का निर्माण न करके साधारण गृह के निर्माता हुए। सम्भवतः इसी कारण से अपने पिता की परम्परा में पतित हुए।

१४. **कोयाली**—१।१०।११२ रजक-स्त्री और तीवर के संयोग से कोयाली की उत्पत्ति हुई। इसका वास्तविक परिचय कठिन है। सम्भवतः अपनी उन्नति कर यह अब समुन्नत रूप धारण कर चुकी है।

१५. **कोल**—१।१०।१०१ लेट और तीवर कन्या के संयोग से उत्पन्न छः पुत्रों में इसका पाँचवाँ स्थान है। कोल, किरात आदि प्रसिद्ध अरण्य-जातियाँ हैं। ये जातियाँ अब अपना प्राचीन रूप छोड़ती जा रही हैं।

१६. **गंगापुत्र**—१।१०।१०७ तीवर-कन्या में लेट से उत्पन्न सन्तान गंगा-पुत्र है। गंगा के तट पर उत्पन्न होने के आधार पर यह गंगा-पुत्र कहा गया। यद्यपि नदियों के तट पर दान लेने वाले पण्डे भी गंगा-पुत्र कहे जाते हैं, किन्तु ये ब्राह्मणों की शाखा माने जाते हैं। उत्तर प्रदेश की गोड़िया जाति से इसका परिचय ठीक लगता है।

१७. **चर्मकार**—१।१०।१०३ चण्डालों में तीवर से चर्मकार का उद्भव हुआ। विष्णुधर्मसूत्र ५१/८, आपस्तम्ब धर्मसूत्र ९/३२, पराशर स्मृति ६/४४ में इसका उल्लेख है। उशना इसे शूद्र एवं क्षत्रिय कन्या की (४) तथा वैदेहक एवं ब्राह्मण कन्या

की सन्तान मानते हैं। बैखानस भी उशना की द्वितीय उक्ति का समर्थन करते हैं। मनु ४।२१८ इसे चर्मविकर्ती मानते हैं। धर्मशा० इति० में श्री काणे महोदय ने बताया है कि कतिपय स्मृत्यनुसार यह सात अन्त्यजों में एक है। इस जाति के लोगों से पूछ कर मैंने पता लगाया तो इनकी भी सात जातियाँ हैं ऐसा ज्ञात हुआ, किन्तु कोई पृथक्-पृथक् सातों को गिना न सका। सम्भवत: यही सातों अन्त्यज जातियों के आधार पर जन-श्रुति बनी। सूत-संहिता के अनुसार यह ब्राह्मण-स्त्री से आयोगव की सन्तान है। पश्चिमी प्रान्तों में इसे चाम्भार एवं अन्य प्रान्तों में इसे चमार कहा जाता है। यह जाति मोची भी कही जाती है। आजकल इनमें बहुत सी श्रेणियाँ हो गयी हैं। इस जाति पर 'दि चमार्स' नामक विशेष-कार्य जार्ज डब्ल्यू ब्रिग्स ने किया है (इम्फ्रे मिलफोर्ड, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, बाम्बे—१९२० ई० प्र० सं०)।

१८. **चाण्डाल**—१।१०।१०२ ब्राह्मणी में शूद्रवीर्य से उत्पन्न सन्तान चाण्डाल हुई। जार दोष से ये पतित हुए। ये सबसे अधम और अपवित्र हैं। वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख है। तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।४।१४ ।। ३।४।१७ ।। छान्दोग्य उपनिषद् ५।१०।७ ।। गौतम धर्मसूत्र ४।१५-१६ ।। वशिष्ठ धर्मसूत्र १८।१ ।। बौधायन-धर्मसूत्र ९।७ ।। मनु० १०।१२ ।। याज्ञवल्क्य १।९३ ।। महाभा० अनुशा० पर्व ४८।११ ।। याज्ञवल्क्य ने इसे सर्वधर्म-बहिष्कृत घोषित किया है। १।१०३ ।। इन्हें कुत्ते और कौओं की श्रेणी में रखा गया है। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र २।४।९।५ ।। गौतम सूत्र १२।२५ ।।

वेद-व्यास-स्मृति के (१।९-१०) अनुकूल चाण्डाल तीन प्रकार के बताये गये हैं। शूद्र एवं ब्राह्मणी से उत्पन्न सन्तान (२) विधवा सन्तान (३) सगोत्र-विवाह से उत्पन्न सन्तान। यात्री फाहियान ने भी चाण्डालों के विषय में लिखा है कि जब वे नगर या बाजार में घुसते थे तो लकड़ी के किसी टुकड़े (डंडे) से स्वर उत्पन्न करते थे, जिससे कि लोग उनके आगमन को समझें और उनके स्पर्श से बच सकें।

१९. **चित्रकार**—१।१०।९० इसे चित्रकर अथवा चित्तकार (१।१०।९६) भी कहा जाता है। यह नव-शिल्पियों में से अन्तिम शिल्पी सन्तान है। अंगों पर, गृह भित्तियों पर, शिना फलकों पर और परिधानों पर चित्र-निर्माण की दिशा में इनका विशेष सहयोग रहा होगा। सम्भवत: इसी परम्परा में मंगल-चित्र (उत्सवों में चौक पूरना) मेंहदी लगाना, अंगों पर गोदना आदि कार्य अब भी सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार के कार्य प्राय: नटों और नापितों द्वारा हो रहा है। इस प्रकार विशेष नाम की कोई जाति नहीं मिलती। अब इस पेशे में विशेष विकास हो गया है। आधुनिक विज्ञान ने इसे प्रतिष्ठित रूप दिया है।

२०. **जोला**—१।१०।१२१ कुविन्द-कन्या में म्लेच्छ से जोला-जाति ने

जन्म ग्रहण किया। इसे जुलाहा भी कहा जाता है। यह सर्वविदित जाति है किन्तु जुलाहों का हिन्दुओं से पृथक् इस्लाम धर्म है। सम्भवत: यही पहले हिन्दू शाखा में थे। कुछ समय पश्चात अपमान से ऊब कर इस्लाम धर्म ग्रहण किया। हिन्दू ग्रन्थों में कुविन्दों और तन्तुवायों का विशेष वर्णन मिलता है। किन्तु यह पृथक् वर्णन ही प्रकट करता है कि कुविन्द और जोला दो पृथक् जातियाँ हैं। महाभाष्य (पाणिनि २।४।१०) में तन्तुवाय को शूद्र बताया गया है।

२१. डम—१।१०।१०५ चाण्डाल कन्या में लेट के संयोग से दो पुत्र उत्पन्न हुए। द्वितीय-पुत्र डम हुआ। आजकल इसे डोम या डोम्ब कहते हैं। क्षीर-स्वामी एवं अमरसिंह के अनुसार यह श्वपच है। पराशर ने श्वपच, डोम्ब एवं चाण्डाल को एक ही श्रेणी में रखा है। बंगाल, बिहार एवं उत्तर-प्रदेश में यह डोम कहा जाता है। यह जाति भी इस्लाम-परायण होती जा रही है।

२२. तोवर—१।१०।६६ क्षत्रिय बीज से राजकुमार-स्त्री (करण कन्या में क्षत्रिय से उत्पन्न सन्तान) में उत्पन्न पुत्र तोवर हुआ। यह भी जार-दोष के कारण पतित हुआ। सम्भवत: किसी अन्य जाति के रूप में इसने अपनी पुरानी केंचुल उतार फेंकी हो। वर्णविन्यास-गत परिवर्तनों के आधार पर विचार करते हुए भी तोवर और धीवर को एक नहीं कहा जा सकता क्योंकि १।१०।१११ में तोवरों के ही संसर्ग से धीवर के पतित होने का वर्णन किया गया है। इससे इतना अवश्य अनुमित होता है कि तोवर और धीवर दोनों सम-कक्ष जातियाँ हैं। आज इनका परिचय करना कठिन है।

२३. तैलकार—१।१०।६८ कोटक की स्त्री में कुम्भकार के संयोग से उत्पन्न पुत्र तैलकार हुआ। यह कुटिल और पतित हुआ। यह तैलिक और तेली भी कहा जाता है। बिष्णु-धर्म-सूत्र (५१।१५) में इसका उल्लेख है। शंख तथा सुमन्त ने भी इसका उल्लेख किया है। जाति-भास्कर में ब्रह्मवैवर्त का यही श्लोक तैलकारों के विचार-विमर्श के लिए उद्धृत है। जाति-अन्वेषण, प्रथम भाग में तथ्य संगृहीत करके बताया गया है कि तेलियों के भेदोपभेदों में क्षत्रिय, राजपूत, बनिये, कुर्मी, कायस्थ, चमार यहाँ तक कि तेली भी हैं। उन्होंने मि० विलियम क्रुक की इन पंक्तियों को भी उद्धृत किया है—"Telis will eat goats flesh, mutton fowls and fish. Those that are of Sribastab subcaste are to eat pork. They will drink spirituous liquors. (P.475).

२४. पौन्ड्रक—१।१०।१०६ शुण्डिन् की स्त्री में वैश्य से उत्पन्न सन्तान पौण्ड्रक हुई। इस नाम की कोई जाति नहीं मिलती।

२५. भट्ट—१।१०।१३६ सूत के संयोग से वैश्या से उत्पन्न पुत्र भट्ट कह-

लाया । यह अधिक बोलने वाला या बकवादी और सबकी प्रशंसा का पाठ करने वाला हुआ । इस नाम की एक शाखा अपने को ब्राह्मण बताती है । किन्तु इसी नाम की एक अन्य शाखा भी है जो कुछ छंद सुनाते हुए भिक्षावृत्ति करती है । ये लोग हिन्दू-मुस्लिम किसी के यहाँ खाने में परहेज नहीं करते, जहाँ कि खाने-पीने की पुरानी-प्रथा अब भी गाँवों में पहले जैसी है ।

२६. **मण्ड**—१।१० १०१ लेट से तोवर कन्या में उत्पन्न सन्तानों (छः) में चौथी सन्तान मण्ड हुई ।

२७. **मन्त्र**—१।१०।१०१ लेट से तोवर कन्या में उत्पन्न छः सन्तानों में दूसरी और तीसरी सन्तानें क्रमशः मन्त्र और मातर कही जाती हैं । ये दोनों शाखाएं अब चमार आदि उप-जातियों में समाविष्ट हो चुकी हैं । चमर-मन्ता नाम की एक जाति, जो पहले भ्रमणशील थी किन्तु अब धीरे-धीरे एक स्थान वासी होती जा रही है, भिक्षा-वृत्ति करती है । सुना जाता है ये लोग मन्त्र भी देते हैं, झाड़-फूँक का कार्य भी करते हैं । मन्त्र से इनका परिचय उचित जान पड़ता है ।

२८. **मातर**—१।१०।१०१ मातर का परिचय नहीं मिलता है ।

२९. **मालाकार** —१।१०।९० ब्राह्मण कारु तथा मदन गोप की पुत्री-विद्या से उत्पन्न होने वाले नवों पुत्रों में सर्वप्रथम इसी की गणना है । यह मालाकार अथवा माली नाम से प्रसिद्ध सर्वविदित जाति है । पूजा संस्कार, उत्सव आदि में मालियों का सहयोग अपेक्षित है । आजकल इनकी स्थिति सम्मानपूर्ण है ।

३०. **माल्ल**—१।१०।१०१ तोवर-कन्या में लेट से उत्पन्न होने वाले छः पुत्रों में यह सर्वप्रथम है । माल्ल ही मल्ल भी है । मनु (१०।२२) इसे झल्ल का पर्यायवाची मानते हैं । यह नटों जैसी जाति है । मल्ल-विद्या में प्रवीणता इनके नाम का आधार दिखाई पड़ती है । झल्ल शब्द से यह प्रकट होता है कि ये भाला अथवा बल्लम चलाने में प्रवीण थे । मल्ल वैश्यों की भी एक शाखा है ।

३१. **मांसच्छेद**—१।१०।१०३ चर्मकारी में चण्डाल से मांसच्छेद उत्पन्न हुआ । यह अन्त्यजों में सम्भवतः विलीन हो चुका है ।

३२. **युंगो**—१।१०।१०८ गंगा-पुत्र की कन्या और वेषधारी का पुत्र युंगो हुआ । इसकी भी वृत्ति वेषधारी की ही भाँति रही । यह बहुरूपिया की कोई शाखा है । किन्तु इसका परिचय बहुरूपिया के अतिरिक्त किसी दूसरे से करना ठीक नहीं ।

३३. **रजक**—१।१०।११२ तोवरी में धीवर से रजक की उत्पत्ति हुई । इसे धोबी भी कहते हैं । यह एक सर्वविदित जाति है । यह कपड़ा धोने का कार्य करने वाली जाति है । इसके पेशे में भी विशेष प्रगति हो चुकी है । रज अथवा रेह (ऊसर में होने वाली खारी मिट्टी) से धुलाई करने के कारण ही यह रजक हुआ । आजकल

लाभ की दृष्टि से उच्च जाति के लोग भी रजकों का पेशा छीन रहे हैं। श्री काणे महोदय कुछ आचार्यों के मतानुसार इसे सात अन्त्यजों में से एक मानते हैं। वैखानस के अनुसार (१०।१५) यह पुल्कस (या वैदेहक) एवं ब्राह्मणी की सन्तान है। किन्तु उशना (१८) ने इसे पुल्कस और वैश्या की सन्तान माना है। पतंजलि ने (महाभाष्य २।४।१०) इसे शूद्र कहा है।

३४. **राजपुत्र**—१।१०।११० क्षत्रिय तथा करण कन्या से राजपुत्र की उत्पत्ति हुई। यह आजकल क्षत्रियों की किसी शाखा में कुछ हेर-फेर कर सम्मिलित हो गयी है। राजपुत्र और किसी दूसरे वर्ग में उपलब्ध नहीं हैं। राजपुत्र और राजकुमार ये दोनों ही शब्द विचारणीय हैं।

३५. **लेट**—१।१०।१०० तैलकार की पत्नी में तीवर से 'लेट' की उत्पत्ति हुई। यह पतित और दस्यु हुआ। इसका परिचय लोध-जाति से किया जाना उचित है। लोध एक परिगणित जाति है। किन्तु अब यह अस्पृश्य न रह कर स्पृश्य भी हो गयी है। निस्सन्देह इन परिवारों में अब भी चौर्य-वृत्ति छूट नहीं सकी है। किन्तु लुक-छिप कर हो सम्पन्न होने वाली यह वृत्ति धीरे-धीरे सम्भवतः सरकारी प्रयास से शीघ्र छूट जाय।

३६. **बनचर**—१।१०।१०६ हड्डि कन्या में चाण्डाल के वीर्य से पांच बनचर उत्पन्न हुए। ये दुष्ट थे। पत्तें, पत्तल आदि जंगली वस्तुओं को गाँवों अथवा शहरों में बेंच कर जीविका चलाने वाले वन-मानुष (पशु नहीं) अथवा मुसहर कहलाते हैं। इनका जीवन अब भी निकृष्ट कोटि का है।

३७. **बागतीत**—१।१०।११७-११८ ऋतु-काल के प्रथम दिन वैश्या में क्षत्रिय के द्वारा उत्पन्न पुत्र महादस्यु बलवान् तथा धनुर्धर हुआ। यह क्षत्रिय द्वारा निवारित किये जाने पर भी उनकी आज्ञाओं का उल्लंघन करता था। अतः बागतीन जाति का यह प्रसिद्ध हुआ। यह कोई वीर अरण्य-जाति है। किन्तु इसका परिचय कठिन हो गया है।

३८. **वेषधारी**—१।१०।१०८ इसकी उत्पत्ति का वर्णन नहीं है। यह जाति आज भी बहुरूपिया के नाम से है। विभिन्न वेषों को धारण कर लोगों का मनोरंजन करना ही इनकी जीविका है। यद्यपि ये स्पष्टतः शूद्र हैं किन्तु ये लोग अपने को ब्राह्मण भी बताते हैं।

३९. **वैद्य**—१।१०।१२३ अश्विनी कुमार से ब्राह्मणी में वैद्य की उत्पत्ति हुई। आज-कल एक वृत्ति है। इस कार्य को सभी जाति के लोग कर रहे हैं। वैद्य नाम से अपने को एक भ्रमणशील जाति भी बताती है। ये लोग रक्त-शोध के लिए तुम्बी लगाते हैं। कान की गन्दगी निकालते हैं। वैद-वैद चिल्लाते हुए चक्कर लगाते रहते हैं।

वैद्य की उत्पत्ति का प्रसंग अति रोचक है। एक दिन एक ब्राह्मणी तीर्थ-यात्रा करने जा रही थी कि सूर्य-पुत्र अश्विनी-सुत उस पर प्रसन्न हुए, मुग्ध हो गये। उस ब्राह्मणी ने यत्न से बलवान् देव को हटाना चाहा किन्तु ऐसा सम्भव न हुआ। बल्कि सौन्दर्य पर मुग्ध अश्विनी-सुत ने हठात् ब्राह्मणी में वीर्याधान कर दिया। उससे उत्पन्न पुत्र वैद्य हुआ। इधर ब्राह्मण को ज्ञात हो गया तो उसने अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया। बच्चे का लालन और पालन अश्विनी-सुत के संरक्षण में हुआ। उन्होंने इसे यत्नपूर्वक चिकित्सा-शास्त्र, अनेकों शिल्प और मन्त्र स्वयं बताया। योग के द्वारा उस ब्राह्मणी ने शरीर का त्याग कर दिया। वही गोदावरी नदी बन गयी। उशना ने (२६) भिषक् को ब्राह्मण एवं क्षत्रिय कन्या के गुप्त प्रेम का प्रतिफल बताया है।

४०. **व्याध**—१।१०।११३ सर्वस्वी की पत्नी में क्षत्रिय से उत्पन्न पुत्र व्याध हुआ। यह आजकल बहेलिया कहा जाता है। याज्ञवल्क्य (२/४८) सुमन्तु, हारीत और आपस्तम्ब आदि ने इसका उल्लेख किया है। (धर्म शा० इति०, काणे)

४१. **व्याल ग्राही**—१।१०।१२४ वैद्य और शूद्रा के द्वारा होने वाले पुत्रों तथा शूद्रा के संयोग से उत्पन्न सन्तानें व्याल-ग्राही हैं। ये आजकल संपेरा कहलाते हैं। बंगाल में इनकी संख्या अधिक है। उत्तर प्रदेश में बस्ती जिले की बांसी तहसील में भी ये अधिक हैं। जहां अधिक सांप मिलते हैं वहां ये भी रहते हैं। सर्पों से इनकी जीविका चलती है। ये टोकरी में विभिन्न प्रकार के सर्प लोगों को दिखाते हुए कुछ जड़ी-बूटी बेचते हुए अपनी रोजी चलाते हैं। ये तुम्बी बजाकर घरों में से सर्प पकड़ कर भी द्रव्यार्जन करते हैं।

४२.- - - १।१०।१२३ वैद्य एवं शूद्रा के संयोग से उत्पन्न सन्तानों का नाम-निर्देश नहीं किया गया है। केवल इतना बताया गया है कि ये ग्राम्य-गुणज्ञ और मन्त्रौषधिपरायण हैं। आयुर्वेद में मन्त्र का प्रयोग इनकी विशेषता है। वैद्य एवं सपेरों के बीच कोई जाति है। इसका स्पष्ट परिचय आज की किसी जाति से कठिन है। आजकल इस कार्य को सभी जाति के लोग करने लगे हैं। कृत्या एवं जादू-टोने में विशेषज्ञ तथा ग्रामीण जड़ी-बूटियों की जानकार यह जाति सम्भवत: उच्च जाति का रूप धारण कर गयी है। ब्राह्मणों की ओझा और झा शाखाओं का भी प्राचीन जनश्रुत रूप इनमें मिलता है।

४३. **शरांक**—१।१०।१२१ जुलाहा और कुविन्द कन्या से उत्पन्न पुत्र शरांक हुआ। संम्भवत: यह भी मुसलमानों में जुलाहों की भांति मिल गया।

४४. **शंखकार**—१।१०।६० कारू एवं विद्या के नव पुत्रों में तृतीय पुत्र शंख-कार हुआ। इस पेशे को करने वाले देश के पूर्वी भाग, गया आदि जिले में निवास करते हैं।

४५. **शुण्डी**—१।१०।१०६ तोवर कन्या में वैश्य द्वारा शुण्डी की उत्पत्ति हुई। सम्भवतः शुण्डिन् नाम इनके मुख एवं नासिका के आकार के आधार पर रखा गया। स्पष्टतः इसका परिचय नहीं मिलता है।

४६. **सर्वस्वी**—१।१०।११३ नापित से गोप-कन्या में सर्वस्वी की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त इसके विषय में कुछ पता नहीं चलता है।

४७. **सूत्रकार**—१।१०।८० सूत्रकार ही सूत्र-धार १।१०।२१ भी है। सूचिक, सौचिक और सूचि भी इसे कहा गया है। अमरकोशकार सौचिक और तुन्नवाय को एक मानते हैं। ब्रह्म-पुराण में भी 'सूचि' ही 'तुन्नवाय' है (धर्मशा० इति०, काणे)। आज-कल इन्हें दर्जी कहा जाता है। इसके पेशे को आज-कल सभी जाति के लोग कर रहे हैं।

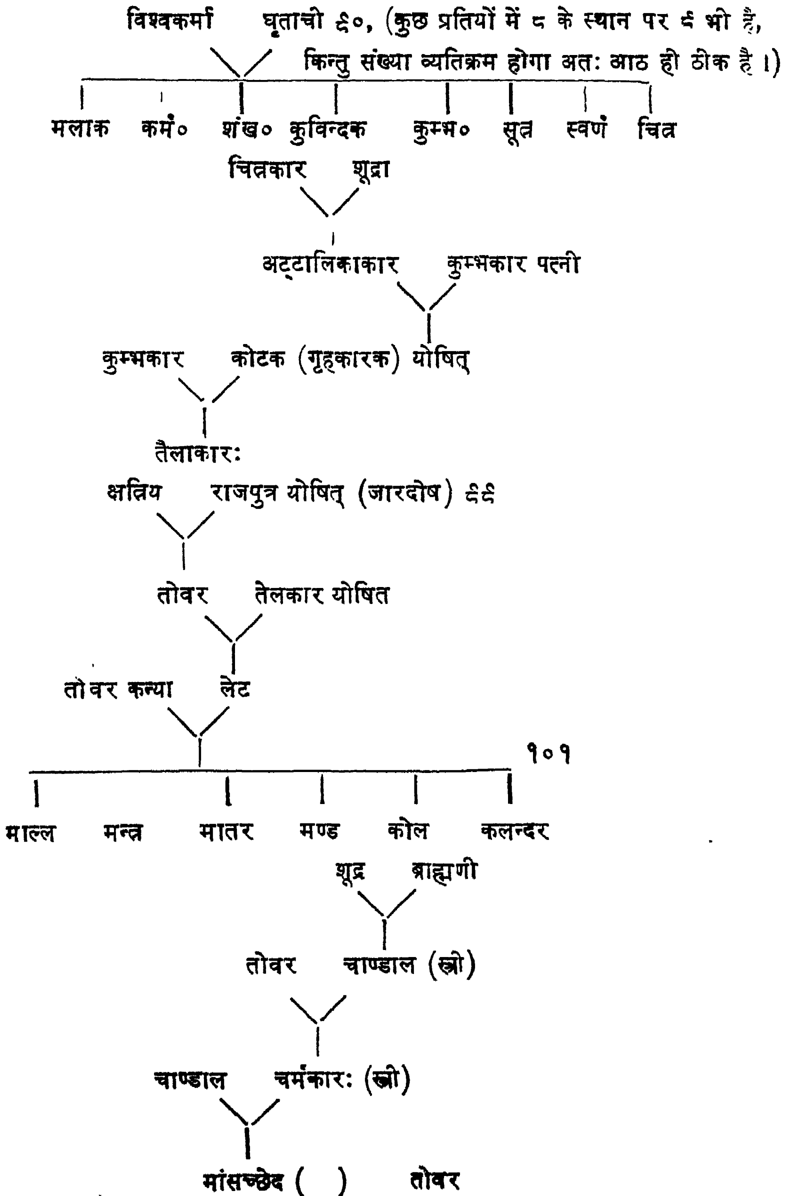
४८. **स्वर्णकार**—१।१०।६० यह कारू (विश्वकर्मा) और विद्या (घृताची) के नव शिल्पी पुत्रों में आठवाँ पुत्र है। सोना चुराने आदि के कारण इसे ब्रह्मा एवं ब्राह्मणों के कोप का भाजन होना पड़ा। इस पर अयाज्यता का शाप पड़ गया। यह यज्ञ के अधिकार से वंचित हो गया। १।१०।८५॥ सोनार अथवा सोनी नाम की यह सर्व-विदित जाति है। यह सोने-चांदी के अलंकार आदि बनाकर अपनी जीविका चलाने वाली समृद्ध जाति है।

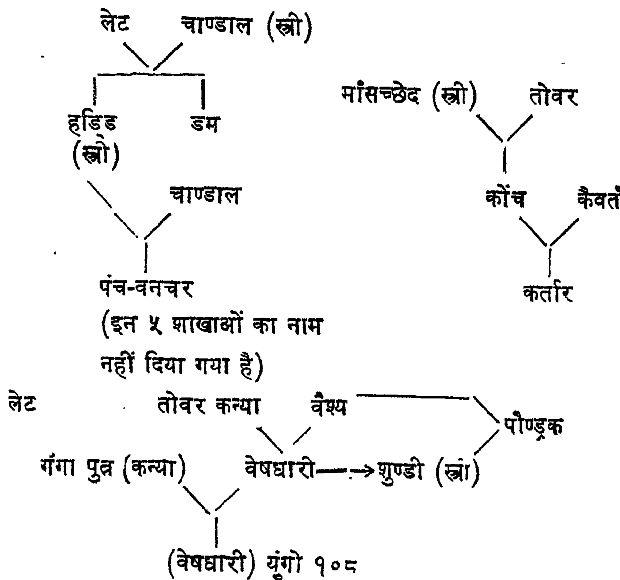
४९. **हड्डि**—१।१०।१०५ 'चाण्डाल' कन्या में 'लेट' के संयोग से उत्पन्न दो पुत्रों में प्रथम पुत्र 'हड्डि' हुआ। यह नाम इसे पश्चात्-कालीन प्रमाणित करता है। हड्डियों का प्रयोग इसकी विशेषता रही होगी। इसका स्पष्ट परिचय उपलब्ध नहीं है।

— — —

ब्रह्म-वैवर्त १–१० अ

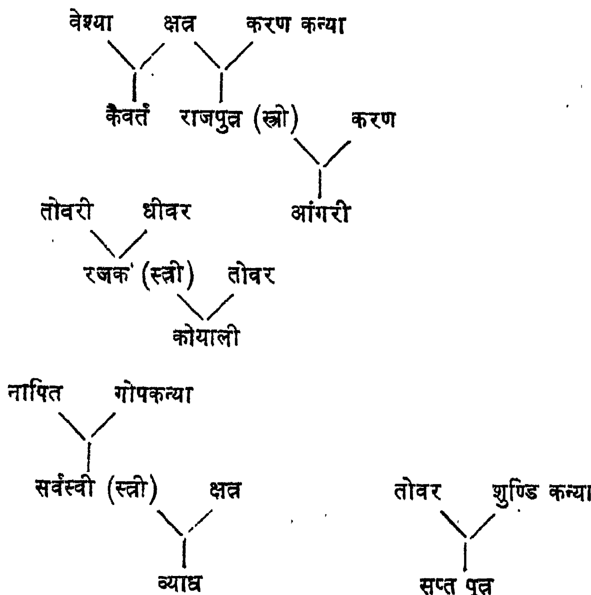
संकर शूद्रवंशावली :

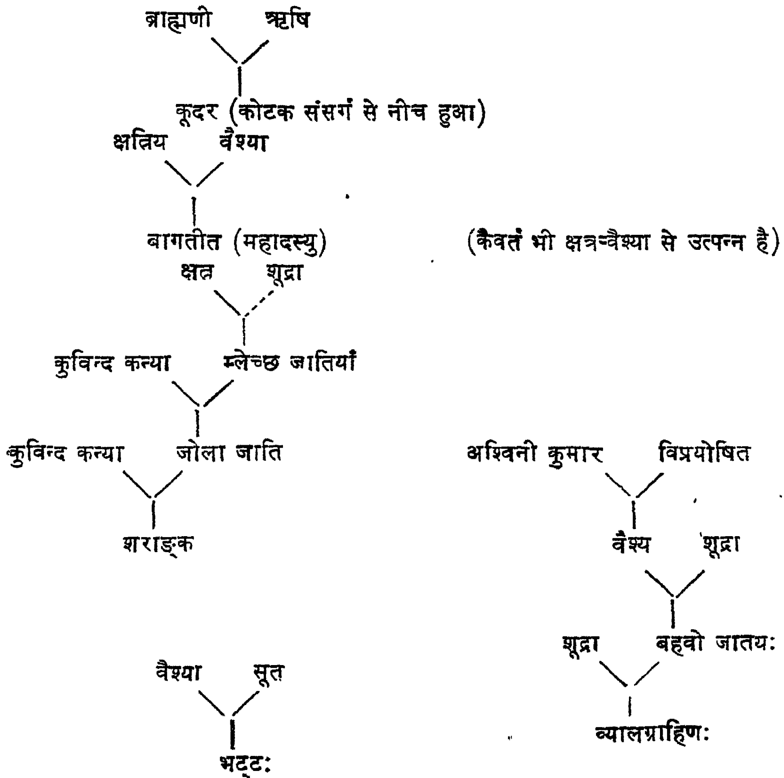




ब्रह्मवैवर्त संकर-शूद्र जाति

ब्रह्मवै० अध्याय १०





मृत-दान प्रतिग्रही आजकल महापात्र के रूप में ब्राह्मणों की ही एक शाखा है। श्लोक १३३ में उपर्युक्त को अग्रदानी कहा गया है। लोभी एवं वेतनग्राही गणक जनों की अब कोई शाखा नहीं है क्योंकि अब तो कुछ को छोड़ कर अधिकतर वेतन में रुचि लेने वाले ब्राह्मण हो गये। इतना अवश्य है कि अब गणक और अग्रदानी सम्मान के पात्र हैं। यह ब्राह्मणों की उदाराशयता का प्रतिफल है। शूद्र कहे जाने वाले लोगों के लिए यह अनुकरणीय है।

अध्याय ७

ब्रह्म-वैवर्तीय आयुर्वेद

ब्रह्म-वैवर्त-पुराण के ब्रह्म-खण्ड के सोलहवें अध्याय में आयुर्वेद-शास्त्र एवं तदन्तर्गत विशेषोपयोगी, जीवन-सुख-साधक आचरणों तथा भोज्याभोज्य पदार्थों का निर्देश किया गया है। यह अविस्मरणीय है कि अतीत भारतीय आयुर्वेदिक साधनाओं के फलस्वरूप ही योद्धाओं को असीम-शक्ति अक्षुण्ण रहती थी। घातप्रतिघातों से विदीर्ण-गात्र पर उनके चिह्न तक शेष नहीं रह पाते थे। आघातों के प्रभाव एवं चिह्न औषधियों के प्रभाव से मिट जाते थे।

आयुर्वेद के मूलाधार वेद हैं। उन्हीं को देखकर और चिन्तन करके प्रजापति ने आयुर्वेद की रचना की है।[1] इस पंचम वेद आयुर्वेद को प्रजापति ने सूर्य को दिया।[2] सूर्य के पश्चात् ही इसका विशेष-विस्तार हुआ। इन्होंने ही आयुर्वेद के आधार पर पृथक् रूप मे एक संहिता को रचना की और उसे अपने शिष्यों को पढ़ाया था।[3] उन्हीं के शिष्यानुशिष्यों द्वारा निर्मित चिकित्सा-तन्त्र व्याधियों के विनाश के आधार हुए। ब्रह्म-वैवर्त ने इन ग्रन्थ-प्रणेताओं की संख्या सोलह बतायी है।

आज-कल ये सभी ग्रन्थ अप्राप्य हैं, तथापि इन्हें असत्य मान लेना उपेक्षा एवं प्रमाद है। यदि प्रयास-क्रम चलता रहा तो अवश्य ही इनकी प्राप्ति होगी। इसमें सन्देह नहीं कि इस देश की भौतिक साधनाएँ—पुरातन-प्रगति—जिनकी अब चर्चा मात्र शेष है, आधुनिक वैज्ञानिक-प्रगति को भी कुछ देर चिन्तन में निमग्न कर देती हैं।

यहाँ उन षोडश आचार्यों के नाम एवं तत्तद् ग्रन्थ निम्नलिखित हैं :—

धन्वन्तरि	चिकित्सा-तत्व-विज्ञान
दिवोदास	दर्पण
काशिराज	चिकित्सा-कौमुदी
दोनों अश्विनी सुत	चिकित्सा-सार-तन्त्र
नकुल	वैद्य-सर्वस्व
सहदेव	व्याधि-सिन्धु-विमर्दन
आर्कि	ज्ञानार्णव
च्यवन	जीवदान

१. ब्रह्म वै० १।१६।६। २. वही १-१६-१०। ३. वही १-१६-१०।

जनक	वैद्य-सन्देह-भंजन
बुध	सर्व-सार
जाबाल	तन्त्र-सार
जाजलि	वेदाङ्ग-सार
पैल	निदान
करथ	सर्व-धर
अगस्त्य	द्वैध-निर्णय-तन्त्र

इन आचार्यों के नामों में कुछ विशेष प्रसिद्ध हैं।[1] महर्षि पैल का नाम वेदसंहिताकारों में (१२-६-५२) श्री मद्भागवत में आता है। महामति व्यास ने निगदागम नामक यजुर्वेद संहिता वैशम्पायन को दिया (१२-६-५२)। निगदागम शब्द से भी सूचित होता है कि यह अवश्यमेव आयुर्वेद-सम्बन्धित यजुर्वेद-मन्त्र संहिता थी।[2] च्यवन का च्यवनप्राश तो आज भी प्रसिद्ध है। दोनों अश्विनीकुमार भी चिकित्सा-जगत् के महाभिषक् हैं। धन्वन्तरि वैद्यों के प्रभु ही कहे जाते हैं।

ये ग्रन्थ व्याधियों के विनाश तथा प्राणियों के बल-वर्धन हेतु विनिर्मित किये गये। मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए इनकी रचना नहीं की गयी थी।

इसी क्रम में वैद्य का लक्षण भी बताया गया है कि व्याधि का सम्पूर्ण रूपेण ज्ञान तथा व्याधियों और उनके द्वारा होने वाले कष्ट का नियन्त्रण करना ही वैद्य का कर्त्तव्य है।

न वैद्यः प्रभुरायुषः।[3]

ज्वर-वर्णन के प्रसंग में रूपकात्मक पद्धति में कूटक का भी प्रयोग किया गया है। श्रीमद्भागवत में भी जगत् के वर्णन में (१०।२।२७) कूटक का प्रयोग किया गया है। ज्वर को शिव-भक्त, योगी, निष्ठुर, विकृताकार तथा भयंकर कहा गया है। उसके तीन पैर, तीन शिर, छः आँखें और नव मुख हैं। उसका अस्त्र भस्म है। वह काल, अन्तक और यम के सदृश भयंकर है।[4]

ज्वरोत्पत्ति के सम्बन्ध में आलंकारिक वर्णन के साथ-साथ विवेचन भी किया गया है। ज्वर का जनक मन्दाग्नि और मन्दाग्नि के जनक पित्त, कफ और वायु हैं। ये ही तीन प्राणियों को दुःख देने वाले हैं।[5] इन्हीं के विकार अथवा भेद-प्रभेदों से

---

१. ब्रह्म वै० १-१४-१६।

२. क्या इससे यह भाव नहीं ध्वनित होता कि यजुर्वेद की मन्त्र संहिता अनेक प्रकार की रही हो यथा निगदागम यजुर्वेद मन्त्रसंहिता आदि?

३. वैद्य आयु को घटा-बढ़ा नहीं सकता। ब्रह्म वै० १।१६।२६

४. ब्रह्म वै० १।१६।२७-२८ ५. वही १।१६।२६

चौंसठ प्रकार के ज्वर उत्पन्न हुए।[1] ये सभी मृत्यु-कन्या के पुत्र हैं। इनकी एकमात्र स्वसा जरा अथवा वृद्धावस्था है। यह जरा सदा इस भूतल पर परिभ्रमण किया करती है।[2] किन्तु आयुर्वेदिक उपायों के ज्ञाता एवं संयमी को देखकर ये सभी वैसे भागते हैं जैसे कि गरुड को देख कर सर्प। इसके अनन्तर जरा एवं व्याधि के विनाशक उपायों को बताया गया है।

यहाँ बात, पित्त एवं कफ की उत्पत्ति योग-विषयक चक्रों के क्रम में बताई गयी है। पित्त की उत्पत्ति मणिपूरक-चक्र में, कफ की उत्पत्ति ब्रह्म रन्ध्र में तथा वायु की उत्पत्ति आज्ञा नामक चक्र में होती है।

ब्रह्म वैवर्त के मालावती प्रसंग में आयुर्वेदिक विषय को लाने का विशेष अभिप्राय परिलक्षित होता है। पचास से चौवन तक के श्लोकों पर विचार करने से यह पूर्ण स्पष्ट हो जाता है। प्रायः लोग रुग्ण होने पर स्वास्थ्य की कामना से औषधि सेवन करते हैं और ऐसा समझते हैं कि रोग का मूलतः निवारण औषधि से सम्भव है। किन्तु ब्रह्म-वैवर्त यही चेतावनी देता है कि रोगों तथा पापों को ध्रुव मित्रता है। पाप, रोग, जरा और विघ्न के मूल हैं। पाप से ही व्याधि, जरा, दीनता, दुःख, शोक एवं भय उत्पन्न होते हैं और सकल अमंगलों के मूल पाप हैं, जिनसे भयभीत होकर सज्जन इन्हें नहीं करते। जो लोग स्वधर्माचरण निरत, दीक्षित, हरिसेवक, गुरुदेवातिथि-पूजक भक्त, तपः परायण, व्रतोपवास-युक्त और तीर्थ-सेवक हैं, उन पर रोग एवं जरा का आक्रमण नहीं होता।

इस प्रकार मनुष्य जहाँ रोग-निवृत्ति के उपाय स्वरूप औषधि का प्रयोग करता है, वहाँ उसके लिए यह भी आवश्यक है कि अपने आचरण को शुद्ध रख कर दोषों से बचते हुए धर्माचरण एवं हरि-सेवा करे।

ब्रह्म वैवर्त एवं अन्य पुराण

आयुर्वेद के सोलह आचार्यों में से धन्वन्तरि, दिवोदास, नकुल और सहदेव के नाम राजवंशावलियों में भी आते हैं। दिवोदास का नाम गरुड पुराण, पूर्वखण्ड १३८।६-१०।१४०।२२ में दो बार आया है। किन्तु सहदेव का नाम बहुत बार आया है। १४०।२३, २६

इस नामावली में चरक और सुश्रुत का नाम नहीं है। सम्पूर्ण पुराण में भी इनका नाम कहीं नहीं आया है। ऐसी सम्भावना है कि ये षोडश आचार्य तथा इनके ग्रन्थ सुश्रुत के भी पूर्ववर्ती हों।

गरुड-पुराण में ब्रह्मा तथा अग्नि की परम्परा में धन्वन्तरि भी आते हैं। गरुड-

---

१. ब्रह्म वै० १।१६।३०-३३ २. वही १।१६।३४

पुराण के पूर्व खण्ड, १४६ अध्याय में प्रथमश्लोक में ही सुश्रुत तथा आत्रेयादि का संकेत किया गया है। गरुड ने अग्निवेश तथा हारीत की भी चर्चा की है। अतः ऐसा निश्चित किया जा सकता है कि यह ब्रह्म-वैवर्तीय आयुर्वेद गरुड-पुराण से भी पूर्ववर्ती हो।

अग्नि पुराण ने २७९ वें अध्याय के प्रथम श्लोक में धन्वन्तरि द्वारा सुश्रुत को समुपदिष्ट आयुर्वेद का वर्णन किया है। अग्नि पुराण ने (२९२/४४) हयायुर्वेद के विद्वान् शालिहोत्र तथा गजायुर्वेद के विद्वान पालकाप्य की भी चर्चा की है। इसी प्रसंग में यह भी बताया गया है कि शालिहोत्र से सुश्रुत ने हयायुर्वेद तथा पालकाप्य से अंगराज ने गजायुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया।

अध्याय ८

प्रकृति के रूप

प्रकृति का विवेचन करते हुए ब्रह्मवैवर्त में बताया गया है कि प्रकृति शब्द की निष्पत्ति दो खण्डों से हुई है। वे हैं 'प्र' और 'कृति'। इनमें प्र का अर्थ प्रकृष्ट और कृति का अर्थ सृष्टि है। इस प्रकार सृष्टि करने में प्रकृष्ट देवी को प्रकृति कहते हैं।[1] यह सृष्टि त्रिगुणात्मक है। प्र + कृ + ति ये तीनों अक्षर क्रम से सत्व, रजस् और तमो गुण के द्योतक हैं।[2]

प्र शब्द प्रथम अर्थ में भी बताया गया है। अतः प्रथम कृति अथवा सृष्टि की आदि कारण रूपा देवी प्रकृति कहलायी।[3] यह भी बताया गया है कि योग के द्वारा वह आत्मा (परमात्मा) दो रूपों में हो गया। दक्षिण अर्धाङ्ग पुरुष और वाम अर्धांग प्रकृति हुई, वह प्रकृति ब्रह्मस्वरूप माया है। वह नित्या और सनातनी है। गीता की 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यानादी उभावपि' उक्ति से यह सिद्धान्त मेल खाता है। इस प्रकार जैसे आत्मा (ब्रह्म) वैसी ही शक्ति है। उदाहरण स्वरूप बताया गया कि जैसे अग्नि में दाहिका शक्ति है वैसे ही ब्रह्म में प्रकृति है।[4]

यही कारण है कि योगीन्द्र जन स्त्री और पुरुष में भेद नहीं मानते प्रत्युत सब कुछ ब्रह्ममय ही देखते हैं।[5]

इस प्रकृति के आविर्भाव का कारण श्री कृष्ण की सिसृक्षा है। उन्हीं की आज्ञा तथा भक्तों के अनुरोध से सृष्टि-क्रर्म में वह प्रकृति पाँच प्रकार की है।[6] उसके विग्रह या रूप भक्तों पर अनुग्रह स्वरूप हैं।

प्रकृति के जिन पाँच रूपों की विशेष व्याख्या की गयी है उनके नाम ब्रह्म वैवर्त द्वितीय खण्ड के प्रथम श्लोक में बताये गये हैं—

गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री वैसृष्टि विधौ प्रकृतिः पंचधा स्मृता ॥

---

१. प्रकृष्ट वाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ ब्रह्म वै० २।१।५

२. गुणे प्रकृष्ट सत्वे च प्रशब्दोवर्तते श्रुतौ।
मध्यमे कृश्च रजसि ति शब्दस्तमसि स्मृतः ॥ वही २।१।६

३. प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिः स्यात्सृष्टि वाचकः।
सृष्टेराद्या या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥ वही २।१।७

४. ब्रह्म वै० २।१।१०   ५. वही २।१।११   ६. वही २।१।१२-१३

इस क्रम में प्रथमा दुर्गा, द्वितीया राधा, तृतीया लक्ष्मी, चतुर्थी सरस्वती और पंचमी सावित्री हैं।

इनके विशेष वर्णन करते समय आगे क्रम परिवर्तित कर दिया गया। यहाँ सर्व प्रथमा गणेश माता दुर्गा,[१] द्वितीया लक्ष्मी,[२] तृतीया सरस्वती,[३] चतुर्थी सावित्री[४] और पंचमी राधा[५] हो गयीं।

यहाँ इनके नाम, गुणों आदि का वर्णन क्रमशः किया गया है--

१. दुर्गा

दुर्गा देवी को गणेश माता के रूप में स्मरण किया गया है। दुर्गा का भी जो एक रूप मार्कण्डेय पुराण ने वर्णित किया है उसमें दुर्गा जगन्माता भले ही हों किन्तु वे किसी व्यक्तिगत मातृत्व को ग्रहण न कर सकीं। वहीं दुर्गा देवी की यह प्रतिज्ञा—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ॥[६]

अन्त तक निभती है। वे किसी को पति रूप में ग्रहण नहीं करतीं। प्रत्युत देवकार्य—असुर-विनाश करके देवताओं के देखते-देखते अन्तर्ध्यान हो जाती हैं।[७] वह दुर्गा आवश्यकता होने पर आया करती हैं, जगत् का पालन करती रहती हैं।[८] देवों की कार्यसिद्धि के लिए आविर्भूत होती रहती हैं अतः उन्हें नित्या भी कहा जाता है।[९]

किन्तु इस रूप का उद्‌गम जिससे प्रकट हुआ है उसके अध्ययन से यह अन्तर मिट जाता है और दोनों का मेल भी बैठ जाता है।

मार्कण्डेय पुराण में देवी माहात्म्य प्रसंग में यह बताया गया है कि पुराकाल में शुम्भ और निशुम्भ के द्वारा जब सम्पूर्ण यज्ञीय देव-भाग अपहृत कर लिया गया, सम्पूर्ण देवगण असमर्थ हो बैठा, तभी उन्हीं देवों ने अपराजिता देवी को स्मरण किया। वे हिमालय पर्वत पर गये। वहां विष्णु माया का स्तवन प्रारम्भ किया।[१०] वे देवगण

---

१. ब्रह्म वै० २।१।१४-२१   २. वही २।१।२२-३०   ३. वही २।१।३१-३८
४. वही २।१।३८-४५   ५. वही २।१।४६-५९।   ६. मार्कण्डेय पुराण ८५।६६

७. इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा।
पश्यतामेव देवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥—मार्क० पु०, ९२।२९

८. एवं भगवती देवी सा नित्याऽपि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥—वही ९२।$\frac{३२}{२}$—$\frac{३३}{१}$

९. देवानां कार्यसिद्ध्यर्थ माविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सानित्याप्यभिधीयते ॥—वही ८१।४८

१०. मार्कण्डेय पुराण ८५।१-६

स्तुति कर रहे थे कि वहीं पार्वती गंगा में स्नान करने आयीं। पार्वती ने पूछा आप सब यहाँ किसका स्तवन कर रहे हैं। तब तक इनके (पार्वती) ही शरीर कोष से शिवा प्रकट हुई और बोली—'ये देव शुम्भ और निशुम्भ से निराहृत होकर उन दोनों के निराकरण के लिए मेरी प्रार्थना कर रहे हैं। यह शरीर-कोष से प्रकट देवी कौषिकी कहलायी। उस कौषिकी के निकल जाने से वह पार्वती कृष्णा हो गयीं जो हिमांचलाश्रयी कालिका के नाम से प्रसिद्ध हुईं।[1] उपर्युक्त अपराजिता ही ब्रह्मचारिणी रही हैं। नवदुर्गा के नाम में 'प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्म चारिणी' बताया गया है।

ब्रह्म वैवर्त में दुर्गा को गणेश माता, शिव रूपा और शिव-प्रिया कहा गया है। दुर्गा नारायणी, विष्णुमाया और पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी हैं। वे ब्रह्मा आदि देवों, मुनियों और मनुजों से पूज्य हैं। वे सर्वाधिष्ठातृ देवी ब्रह्मरूपा एवं सनातनी हैं। ये देवी यश, मंगल, धर्म, श्री, सत्य, पुण्य, मोक्ष और हर्ष प्रदान करने वाली हैं। ये शोक, दुःख आर्ति की नाशिनी हैं। शरणागत दीन-दुखी की रक्षा में तत्पर, परम तेजःस्वरूप और तेज की अधिष्ठातृ देवता दुर्गा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। ये ईश की सदा शक्ति हैं। इन्हें सिद्धेश्वरी, सिद्धरूपा, सिद्धिदा, सिद्धिदेश्वरी, कान्ति, भ्रान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, वृत्ति और माता कहा जाता है। ये परमात्मा श्री कृष्ण की सर्वशक्ति स्वरूपा हैं। दुर्गा के गुणों का अन्त नहीं है। अतः ये अनन्ता भी हैं।[2] इनके सोलह नामों का निर्वचन प्रकृति खण्ड के सत्तावनवें अध्याय के सोलहवें श्लोक से सत्ताइसवें श्लोक तक किया गया है।

दुर्गा का सर्वप्रथम अवतरण कृष्ण देह से हुआ।[3] यह दुर्गा विष्णुमाया, सनातनी, देवी, नारायणी, ईशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी कही गयीं। ये परमात्मा श्री कृष्ण की बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। ये देवियों की बीजरूपा अथवा मूल हैं। यह ईश्वरी मूल प्रकृति हैं। ये परिपूर्णतम तेजःस्वरूप और त्रिगुणात्मिका हैं। ये तप्तकांचन वर्ण की हैं। ये कोटि सूर्य सदृश प्रभावती एवं स्मितप्रसन्नमुखी हैं। दुर्गा सहस्रभुज संयुता हैं। ये हाथों में शस्त्रनिकर धारण किये हुए हैं। ये त्रिलोचना हैं। दुर्गा के ही अंशांकला से सभी स्त्रियाँ उत्पन्न हैं। यह दुर्गा विविध रूपों में है।

क्षुत्पिपासादया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा क्षमा धृतिः।
शान्ति लज्जा तुष्टि पुष्टि भ्रान्ति कान्त्यादिरूपिणी ॥[4]

दैत्य-दानवों को मारने के लिए इनका प्रादुर्भाव आदि में दक्ष की पत्नी में हुआ। तत्पश्चात् पति (शिव) की निन्दा से रुष्ट होकर यज्ञ में देह का परित्याग कर दिया। पुनः हिमवान की पत्नी से उत्पन्न होकर पशुपति (शिव) को पति प्राप्त किया। इनके पुत्र गणेश और स्कन्द हुए।[5]

---

१. मार्कण्डेय पुराण ८५।३७-४१ २. ब्रह्म वै० २।१।१४-२१ ३. वही २।२।६६-७८
४. वही २।२।६६-७८ ५. वही २।१।१५२-१५४

दुर्गा के प्रथम आराधक (पार्थिव) सुरथ थे।[1] दूसरे आराधक रावण-वध के इच्छुक राम हुए।[2] सुरथ का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में भी आया है।[3] वहाँ देवी महा-माया के उद्भव का कारण विष्णु-कर्ण-मलोद्भूत मधुकैटभ नामक दोनों असुरों का विध्वंस बताया गया है। इस कथा का संकेत ब्रह्म वैवर्त भी देता है। इसे ब्राह्मकल्प की कथा बतायी गयी है।[4] मार्कण्डेय पुराण में ब्रह्म वैवर्त की अनंशा को भी दुर्गा के रूप में सम्मिलित किया गया है।[5] दुर्गा-पूजन की विधि ब्रह्मवैवर्त, द्वितीय खण्ड, चौंसठवें अध्याय में वर्णित है। दुर्गा के भक्तों की नामावलि प्रकृति-खण्ड के सत्तावनवें अध्याय में भी बतायी गयी है।[6]

२. लक्ष्मी

ब्रह्म वैवर्त पुराण में लक्ष्मी को शुद्धसत्त्व स्वरूपा और पद्मा कहा गया है। ये सर्वसम्पत्ति स्वरूपा और सम्पत्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं। ये कान्ता दान्ता अतिशान्ता सुशीला और सर्वमंगला हैं। ये लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और अहंकार से त्यक्ता अथवा रहित हैं। ये पति में अनुरक्ता, सर्वाद्या और पतिव्रता हैं। ये भगवान की प्राणतुल्या, प्रेम-पात्री और प्रियंवदा हैं। सभी सस्यों अथवा धान्यों के रूप में वे सबके जीवन के उपाय स्वरूप हैं। स्थान-भेद से चार प्रकार की लक्ष्मी बतायी गयी हैं— (१) बैकुण्ठ में—महालक्ष्मी। (२) स्वर्ग में—स्वर्ग लक्ष्मी। (३) राजाओं में—राजलक्ष्मी। (४) गृहों में—गृह लक्ष्मी। सभी प्राणियों एवं द्रव्यों में शोभा उन्हीं का रूप है। वे मनोहर हैं। पुण्यवानों में प्रीति रूप में और राजाओं में प्रभा रूप में वही विराजमान हैं। व्यापारियों के यहाँ वाणिज्य रूप में और पापियों के यहाँ कलह के रूप में वही हैं। वे दयामयी, भक्तों की माता और भक्तों पर अनुग्रह करने वाली हैं। वे चंचल में चपला और भक्तों की सम्पत्ति की रक्षक हैं। उनके बिना यह सारा जगत मृतक है।[7]

लक्ष्मी को सरस्वती ने नदी और वृक्ष होने का शाप दिया था।[8] श्री हरि ने अपनी प्रिया लक्ष्मी के सन्तोषार्थ भविष्य का निर्देश करते हुए बताया कि तुम अपनी कला से धर्मध्वज के घर जाकर उसकी पुत्री होगी। वहीं दैव-दोष से वृक्षत्व प्राप्त करोगी। मेरे अंग-असुर शंखचूड की पत्नी होकर पश्चात् मेरी पत्नी बनोगी। उस समय तुम्हारा तुलसी नाम त्रैलोक्य पावन होगा। शीघ्र ही सर्वप्रथम भारतवर्ष में भारती के शाप से पद्मावती (नदी) बनो।[9]

---

१. ब्रह्म वै० २।६२–९३ २. वही २।१।१५१ ३. मार्कण्डेय पुराण, अ० ८१
४. वही १।५।१३ ५. नन्द गोप गृहे जाता यशोदा गर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचल निवासिनी। मार्क० ९१।३७
६. ब्रह्म वै० २।५७।२९–४४ ७. वही २।१।२२-३०
८. शशाप वाणीं तां पद्मा महाकोपवती सती। वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः—ब्रह्म वै० १।५।३२
९. ब्रह्म वै० २।६।४५-४८

धर्मध्वज-सुता के रूप में उत्पन्न होकर शंखचूड की पत्नी तुलसी के रूप में लक्ष्मी के अवतरण की कथा विस्तारपूर्वक प्रकृति-खण्ड के तेरहवें अध्याय से तेइसवें अध्याय तक वर्णित है। इसी अंश के विशेष भाग शिव-पुराण से भी ज्यों के त्यों मिलते हैं।

विष्णु लक्ष्मी के पति हैं। विष्णु का एक रूप महाविष्णु भी है। वास्तव में यही महाविष्णु सर्वाधार हैं। इस महाविष्णु के एक-एक रोम छिद्र में ब्रह्मा, विष्णु और शिव विराजमान हैं।[१] अपनी कला (प्रकृति) के साथ क्रीडापरायण श्री कृष्ण थकान का अनुभव करते हैं तो उनके मुखविन्दु (स्वेद) से गोलोक जल से भर जाता है। इस महाविष्णु या महाविराट का आधार गोलोक धाम है। वे श्री कृष्ण के सोलहवें अंश कहे गये हैं। वे चतुर्भुज हैं।[२] इस प्रकार श्रीकृष्ण द्विभुज और चतुर्भुज हैं।[३]

उपर्युक्त कथन विष्णु और कृष्ण को एक ही प्रमाणित करता है। किन्तु यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि—'लक्ष्मी सरस्वती गंगा तुलसी पतिरीश्वरः।' यह ईश्वर द्विभुज हैं अथवा चतुर्भुज? इसका भी उत्तर इसके पूर्व हा दिया जा चुका है—

तत्र नारायणः श्रीमान् चतुर्भुजः।[४]

अतः चतुर्भुज विष्णु लक्ष्मी के पति हैं।[५]

लक्ष्मी के भक्त मंगल भूप हो चुके हैं।[६] इनका विशेष वर्णन, पूजन, ध्यान, कवच मंत्र एवं तत्सम्बन्धित उपाख्यान प्रकृति खण्ड के पैंतीसवें अध्याय से उन्तालिसवें अध्याय तक वर्णित हैं। यहाँ लक्ष्मी के भक्त इन्द्र,[७] कुबेर, दक्षसावर्णि, मंगल, प्रियव्रत उत्तानपाद और राजा केदार बताये गये हैं।[८]

लक्ष्मी के वर्णन में यह भी बताया गया है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा कृष्ण के वामांश से रास मण्डल में जो देवी (राधा) प्रकट हुईं, वे ईश्वर की इच्छा से द्विधा रूप में हुईं। उनका वामांश महालक्ष्मी और दक्षिणांश राधा के रूप में हुआ। उस देवी के गौरव से सम्मान के कारण कृष्ण ने भी अपने दो रूप किये। द्विभुज रूपी श्रीकृष्ण के साथ गोलोक में राधा और चतुर्भुज रूपी विष्णु नारायण के साथ पद्मा अथवा महालक्ष्मी गयीं। इन्होंने (लक्ष्मी) योग के द्वारा नाना रूपों को धारण किया,[९] जैसे कि सभी रमणियों में, स्वर्गलक्ष्मी, राजलक्ष्मी, और गृहलक्ष्मी के रूपों में। ये समुद्र मन्थन के समय सिन्धु कन्या के रूप में प्रकट हुईं।[१०] कमला के अंग से करोड़ों दासियाँ

१. ब्रह्मवैवर्त, १।५३।४०-४४ २. वही २।५४।६-९ ३. वही २।५४।१४
४. वही २।५४।१/२ ५. वही २।३५।१२, १४-१६ ६. वही २।१।१५५
७. वही प्रकृति खण्ड ३९।४२ ८. वही प्र० ख० ३९।४४-४६
९. वही प्र० ख० ३५।४-१६ १०. वही प्र० ख० ३६।८

उनके ही समान गुणधर्म वाली प्रकट हुईं। इस प्रकार लक्ष्मी अपनी असंख्य पारिचारिकाओं से घिरी रहकर सुख-संवास करती हैं।[1]

यह देवी विश्व को निरन्तर स्निग्धदृष्टि से देखती रहती हैं तथा देवियों में महान हैं। अतः महालक्ष्मी कही जाती हैं—

लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्ध दृष्ट्या यया निशम्।
देवीषु या च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता।[2]

लक्ष्मी के प्रसंग में प्रकृति खण्ड के छत्तीसवें अध्याय में ज्ञानसागर अथवा ज्ञान सार नामक अंश विशेष रचना है। यह अंश देवी भागवत में उपलब्ध नहीं है।[3] वास्तव में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश है।

लक्ष्मी पूजन के मन्त्र प्रकृति खण्ड के ३९ वें अध्याय के १५ वें से ४० वें श्लोक तक तथा लक्ष्मी स्तोत्र राज इसी अध्याय के ५१वें श्लोक से ७१वें श्लोक तक वर्णित है।

३. सरस्वती

परमात्मा से सम्बन्धित वचन, बुद्धि, विद्या और ज्ञान की अधिदेवता सरस्वती हैं। सरस्वती सर्व-विद्या की रूप हैं। मनुष्यों को सुबुद्धि, कविता, मेधा, प्रतिभा और स्मृति देने वाली सरस्वती हैं। नाना प्रकार के सिद्धान्तों, उनके भेदों एवं वास्तविक अभिप्रायों का अवगमन करने की कल्पना देने वाली सरस्वती हैं।[4]

सरस्वती (वेदशास्त्र आदि की) व्याख्या एवं बोध-स्वरूपा हैं। सर्व-सन्देह-भंजन करने वाली वही हैं। विचार (निर्णीत) प्रादुर्भूत करने वाली तथा ग्रन्थकर्तृत्व-शक्ति-स्वरूपिणी अथवा ग्रन्थ कर्तृत्व शक्ति प्रदान करने वाली सरस्वती हैं। सभी संगीतों का सन्धान–अभ्यास, स्मरण आदि–एवं तालों का कारण अथवा मूल रूप सरस्वती हैं। प्रत्येक विश्व में प्राणियों के लिए जो विषय, ज्ञान तथा वाणी का रूप है, वह सरस्वती है। उस (वाणी) के बिना सम्पूर्ण विश्व मृतक की भाँति मूक हो जाता है।[5]

उसका हाथ व्याख्या-मुद्रा (जिसमें दर्शक को देवता की दाएं हाथ की हथेली दक्ष-पार्श्व में वक्ष के आगे खुली दिखाई पड़ती है) में होता है। यह प्रतीकात्मक प्रयोग भी है। वस्तुतः वाणी दो प्रकार की होती है (१) व्याख्यात्मक,[6] जिसमें किसी अभिव्यञ्जना को विशेष-विवेचन अथवा तर्क-वितर्क के साथ प्रस्तुत किया जाता है। गीत, काव्य, विवरण एवं चित्रण इसी कोटि में आते हैं। (२) सूत्रात्मक या संकेतात्मक, जिसमें

---

१. ब्रह्म वै० २।२।६१ बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः ॥
२. वही, प्र० ख० ३५।१३ ३ वही, प्र० ख० ३६।६१-१८० ।
४. वही २।१।३१-३२ ५. वहीं २।१।३३-३५/१ ६. वही २।५।१६

अल्पतम शब्दों या संकेतों में अभिप्राय प्रकट किया जाता है। सूत्र, कूटक प्रहेलिका अथवा संकेत इस कोटि में आते हैं। वस्तुतः इनके भाव मुद्रित या मुँदे होते हैं, जिन्हें ऊहा द्वारा अवगत करना होता है। अतः सरस्वती या वाणी के व्याख्या और मुद्रा के दो कर हैं। सरस्वती शान्त एवं वीणा और पुस्तक धारण करने वाली हैं। इस प्रकार वाणी के नाद (अव्यक्त) और वेद दो रूप हैं।[1]सरस्वती शुद्ध सत्वस्वरूप, सुशील और हरि (श्री कृष्ण) की प्रिया हैं। सरस्वती की कान्ति हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्र, कुमुद और कमल के सदृश है। वह सरस्वती रत्न माला से परमात्मा श्री कृष्ण का जप किया करती है। वह स्वयं तपः स्वरूप तपस्विनी एवं तप का फल प्रदान करने वाली हैं। सभी विद्याओं के रूप में वही हैं। वह सदा सकल सिद्धियों को प्रदान करने वाली हैं। वह श्रीयुक्त जगत् की अम्बिका है।[1]

ब्रह्म-वैवर्त में सरस्वती देवी का प्रादुर्भाव श्री राधा के जिह्वाग्र से सहसा हुआ। यह प्रकटन उस समय हुआ जबकि ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु तक गोलोक में रास-नृत्य चलने के पश्चात् राधा गर्भवती हो चुकी थीं। किन्तु उन्होंने गर्भ का, जो कि सुवर्ण के समान प्रकाशमान बालक था, सौ मन्वन्तर तक धारण करने के पश्चात्, विमोचन जल में कर दिया। अतः कुपित कृष्ण ने राधा और उनसे उत्पन्न दिव्य स्त्रियों को सन्तान-हीन होने का शाप दिया। इसी के अनन्तर राधा के मुख से कन्या के रूप में प्रकट सरस्वती सम्पूर्ण शास्त्रों की अधिष्ठात्री देवी हुईं। उनके वर्ण और वस्त्र शुक्ल थे।[2] उनके दोनों हाथों में वीणा और पुस्तक थी। वे रत्नमय आभूषणों से आभूषित थीं।[3]

ब्रह्म खण्ड में सरस्वती की उत्पत्ति परमात्मा (श्री कृष्ण) के मुख से बतायी गयी है। यह देवी शुक्ल वर्ण की प्रकट हुई। इनके हाथों में वीणा और पुस्तक थी—

आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः।
एका देवी शुक्लवर्णा वीणा पुस्तकधारिणी ॥
कोटि पूर्णेन्दु शोभाढ्या शरत्पङ्कज लोचना।
वह्नि शुद्धांशुकाधाना रत्नभूषण भूषिता ॥
सस्मिता सुदती श्यामा सुन्दरीणां च सुन्दरी।
श्रेष्ठ श्रुतीनां शास्त्राणां विदुषां जननी परा ॥
वागधिष्ठातृ देवी सा कवीनामिष्टदेवता।
शुद्धसत्वस्वरूपा च शान्तरूपा सरस्वती ॥[4]

ब्रह्म वैवर्त में वर्णित सरस्वती का गार्हस्थ्य जीवन विलक्षण है। जैसा कि

---

१. ब्रह्म वैवर्त २।१।३६-३८। २. विनायक आप्टे द्वारा आनन्दाश्रम की प्रति में पीत वस्त्र बताया गया है। ३. वही २।२।५४-५५। ४. वही १।३।५४-५७।

प्राय: प्रसिद्ध है कि सरस्वती के पति ब्रह्मा हैं। इसके नितान्त प्रतिकूल यहाँ सरस्वती के पति विष्णु बताये गये हैं।[१]

सरस्वती ने कामावेश में श्री कृष्ण को पाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु राधा को श्री कृष्ण की पत्नी सरस्वती का होना सह्य नहीं होगा ऐसा कहकर श्री कृष्ण ने सरस्वती को चतुर्भुज नारायण के पास भेज दिया। उन्होंने (श्री कृष्ण) बताया कि श्री विष्णु को पत्नी लक्ष्मी में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और हिंसा नाम मात्र भी नहीं है। उनके साथ सरस्वती का पारस्परिक सम्बन्ध मधुरतापूर्वक निभ जायेगा। पति श्री विष्णु दोनों का सम्मान समान रूप से करेंगे।[२]

इसी प्रसंग में उन्होंने यह भी बताया है कि माघ शुक्ल पंचमी को सरस्वती की पूजा प्रत्येक ब्रह्माण्ड में होगी। माघ शुक्ल पंचमी को विद्यारम्भ का शुभ अवसर माना गया है। षोडशोपचार पूर्वक सरस्वती-पूजा का विधान बताया गया है।[३]

माघ शुक्ल पंचमी के अवसर पर सरस्वती का स्वरूप कलश अथवा पुस्तक में पूजित करने के लिए बताया गया है। गन्ध-चन्दन-चर्चित सुवर्णगुटिका के रूप में कवच कण्ठ वा दक्षिण भुजा में धारण करने का विधान किया गया है।[४]

उक्त तिथि में नित्य-कृत्य करके घट की स्थापना की जाय। पश्चात् गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और शिवा इनकी पूजा सर्वप्रथम करके तदनन्तर सरस्वती षोडशोपचार की पूजा की जाय।[५]

सरस्वती का मन्त्र—ॐ **श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**।[६]

सरस्वती मन्त्र की प्राप्ति की परम्परा इस प्रकार से बतायी गयी है। नारायण ने वाल्मीकि को जाह्नवी तट पर सरस्वती मन्त्र प्रदान किया। सूर्य पर्व पर पुष्कर में भृगु ने शुक्र को, चन्द्र पर्व पर मारीच ने वृहस्पति को, बदरिकाश्रम में ब्रह्मा ने भृगु को, क्षीरोद के निकट जरत्कारु ने आस्तीक को, मेरु पर विभाण्डक ने ऋष्यशृङ्ग को, शिव ने कणाद और गौतम को, सूर्य ने याज्ञवल्क्य और कात्यायन को, शेष ने पाणिनि और भारद्वाज को तथा सुतल ने बलि संसद में शाकटायन को दिया। इस परम्परा का अन्यत्र कोई वर्णन नहीं है।[७]

सरस्वती मन्त्र की सिद्धि चार लाख मन्त्र जपने के पश्चात् बतायी गयी है। किन्तु उक्त संख्या जप के पश्चात् मन्त्र का सिद्ध होना आवश्यक नहीं है। "यदि" सिद्ध हो जाय तो व्यक्ति वृहस्पति के समान होता है।[८]

विश्व-जय नामक सरस्वती कवच तेरह श्लोकों में वर्णित है।[९] इसकी सिद्धि

---

१. ब्रह्म वै० २।४।२२ २. वही २।४।१४-२२ ३. वही २।४।२३
४. वही २।४।२६ ५. वही २।४।३३-३७ ६. वही २।४।५२
७. वही २।४।५३-५७ ८. वही २।४।५८ ९. वही २।४।७३-८५

पांच लाख जप करने के पश्चात् होती है। यह कवच, ध्यान विधान और मन्त्र काण्व शास्त्रोक्त है।[१]

ऋषि याज्ञवल्क्य गुरु के शाप से हतविद्य हो चुके थे। अतः उन्होंने कोणार्क में तपस्या द्वारा सूर्य को प्रसन्न किया। सूर्य ने याज्ञवल्क्य को वेद और वेदांग का अध्यापन किया तथा स्मृति पाने के लिए वाग्देवी की भक्ति पूर्वक स्तुति करने का निर्देश दिया।[२] यह याज्ञवल्क्य वाणी स्तवन ब्रह्म वैवर्त प्रकृति खण्ड पंचम अध्याय में वर्णित है।[३]

नदी के रूप में अवस्थित सरस्वती के सेवन से भी इष्टसिद्धि बतायी गयी है। सरस्वती के जल में स्थित वैकुण्ठ में हरि संसद में स्थित होता है। पापी, क्रीडा में भी सरस्वती नदी में स्नान करके सर्वपाप से मुक्त होता है तथा चिर काल तक विष्णु लोकवासी होता है। आधुनिक रूप से क्रीडा में अथवा श्रद्धा से सरस्वती में स्नान करने वाला वैकुण्ठ में हरि का सारूप्य लाभ करता है। सरस्वती तट पर एक मास सरस्वती मन्त्र जप करने वाला महामूर्ख भी कवीन्द्र होता है, इसमें सन्देह नहीं है। सरस्वती जल में नित्य स्नान करके मुण्डित होने वाला व्यक्ति गर्भवास से मुक्त हो जाता है।[४]

वायु पुराण में देवी के वर्णन में बताया गया है कि महामाया अथवा महादेवी के कुल में प्रज्ञा और श्री ये दो देवियां (मुख्य) हैं। इन्हीं दोनों से सहस्रों देवियाँ जिनसे कि सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है, हुई हैं।

(महामाया) महादेवी कुले द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्यते।
आभ्यां देवी सहस्राणि यै र्व्याप्तमखिलं जगत्॥[५]

इसके पूर्व इसी अध्याय में देवियों के नामों की एक सूची भी दी गयी है। इसमें सरस्वती का भी नाम वर्णित है :—

आत्मानं विभजस्वेति स्वोक्ता देवी स्वयम्भुवा।
सातु प्रोक्ता द्विधा भूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः॥८४॥

तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं सुसमाहिताः।
स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती॥८५॥
अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव पाटला।
उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः॥८६॥

ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता।
विश्वरूपमथार्यायाः पृथग्देह विभावनात्॥८७॥

---

१. ब्रह्म वै० २।४।६१ २. वही २।५।१-५ ३. वही २।५।६-३५
४. वही २।६।१-१० ५. वायु पुराण, नवमाध्याय. ९८

शृणु संक्षेपतस्तस्य यथावदनुपूर्वशः ।
प्रकृति र्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥८८॥

कालरात्रिर्महामाया रेवती भूतनायिका ।
द्वापरान्त विकारेषु देव्या नामानि मे शृणु ॥८९॥

गौतमी कौशिकी आर्या चण्डी कात्यायनी सती ।
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला ॥९०॥

बर्हिध्वजा शूलधारा परमा ब्रह्मचारिणी ।
माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी ॥९१॥

अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी ।
एकानंसा (शा). दैत्यघ्नी माया महिषमर्दिनी ॥९२॥

अमोघा विन्ध्य-निलया विक्रान्ता गणनायिका ।
देवी नाम विकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ॥९३॥

भद्रकाल्यास्तथोक्तानि देव्या नामानि तत्त्वतः ।
ये पठन्ति नरा स्तेषां विद्यते न पराभवः ॥९४॥[1]

वायु पुराण में सरस्वती पुत्रों का भी वर्णन किया गया है ।

हिमवत् पृष्ठमाश्रित्य सरस्वत्या नगोत्तमे ॥६८॥
तदापिममते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥६९॥[2]

यहाँ व्यासों (२८) के वर्णन में नवम परिवर्त में सारस्वत व्यास का वर्णन है :—

परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ।
तदाचाहं भविष्यामि ऋषभो नाम नामतः ॥[3]

सप्तम परिवर्त में भी ब्रह्मा के सारस्वत, सुमेध वसुवाह और सुवाहन का नाम निर्देश किया गया है ।[4]

महाकवि वाणभट्ट ने प्रकृति खण्ड एवं वायु पुराण का एक समन्वयात्मक साहित्यिक रूप हर्षचरित के प्रथमोच्छ्वास में अपने वंश के मूलोद्भव के वर्णन में दिया है । मानवी के रूप में सरस्वती से पुत्रोत्पादन में पार्वती के शाप का भी निर्वाह हो जाता है ।[5] (अद्यप्रभृति ते देवाः व्यर्थं वीर्या भवन्त्विति ।)

---

१. वायु पुराण, नवमाध्याय ८४-९४ । २. वायु पुराण, २३।६८-६९
३. वही २३।१४३ ४. वही २३।१३९ ५. ब्रह्म वै० ग० ख० ३।४

श्री कृष्ण ने सौ मन्वन्तर बीतने के पश्चात् उत्पन्न सुवर्ण सदृश बालक को राधा द्वारा फेंके जाने पर राधा को शाप दिया कि राधा एवं राधा से उत्पन्न अंश भी निःसन्तान रहें—

यतोऽपत्यं त्वयात्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे।
भवत्वमनपत्यापि चाद्य प्रभृति निष्ठुरम्॥
यायास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः।
अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समाः स्थिर यौवनाः॥[1]

राधा के अंश से उत्पन्न सरस्वती से भी अतः कोई सन्तान नहीं है।

साथ ही साथ दधीचि और सरस्वती से संजात कुल की, जिसमें महाकवि बाण जैसे अप्रतिम कल्पनाशील एवं प्रतिभावान् मेधावी सन्तति को उत्पन्न करने के कारण वर्तमान थे, पवित्रता भी सिद्ध हो जाती है।

महा सरस्वती उपनिषद् में सरस्वती को सर्वश्रेष्ठ माता, देवी और नदी स्वीकार किया गया है।

अम्बितमे! नदीतमे! देवितमे! सरस्वति!

सरस्वती ने नदी का रूप कैसे धारण किया इस सम्बन्ध में बताया गया है कि जो सरस्वती बैकुण्ठ में नारायण के पास निवास करती थीं उनके साथ लक्ष्मी और गंगा भी थीं। इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं कि सरस्वती लक्ष्मी और गंगा ये तीनों वैकुण्ठ-निवासी विष्णु की भार्या हैं।[2]

एक बार श्री हरि पर सरस्वती को यह सन्देह हो गया कि वे सरस्वती की अपेक्षा गंगा से अधिक प्रेम करते हैं। अतः श्री हरि को सरस्वती ने कुछ कठोर शब्द कहा। वहाँ उपस्थित लक्ष्मी ने उस उक्ति को अनुचित मान कर सरस्वती को रोका। सरस्वती ने आवेश में लक्ष्मी पर गंगा का पक्ष लेने का दोषारोपण करते हुए वृक्ष एवं नदी होने का शाप दिया।[3]

गंगा को निर्दोष लक्ष्मी पर सरस्वती का शाप सह्य न हुआ, यद्यपि लक्ष्मी ने शाप पाकर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं की। यह लक्ष्मी के चरित्र की चरम कोटि की उत्तमता है किन्तु क्रोधाविष्ट गंगा ने सरस्वती को नदी रूप होने का शाप दिया और इस मर्त्य लोक में आने को कहा, जहाँ कि पापी जन निवास करते हैं।[4]

गंगा के शाप को सुनकर सरस्वती ने पुनः गंगा को भी शाप दिया कि वह भी नदी रूप में मृत्यु लोक में जाँय और पापियों को ग्रहण करें।[5]

---

१. ब्रह्म वै० २।२।५२-५३ २. वही २।६।१७ ३. वही २।६।३२
४. वही २।६।३६-४० ५. वही २।६।४१

अन्त में श्री हरि आ पहुँचे। उन्होंने सबको शान्त किया और सबके शापों का समाधान एवं भविष्य बताया, जिससे देवियों को सन्तोष हुआ।

सरस्वती के नाम-निर्वचन में बताया गया है कि सरस्वती भारत में आने के कारण भारती, ब्रह्मा की प्रिया होने के कारण ब्राह्मी और सरस् अर्थात् जल में निवास करने वाले हरि (सरस्वान्) की प्रिया होने के कारण सरस्वती कही जाती है।[1]

यहाँ सरस्वती के नाम निर्वचन में उन्हें ब्रह्मा की भी प्रिया बताया गया है।[2] ब्रह्म खण्ड में बताया गया है कि कृष्ण ने महालक्ष्मी और सरस्वती को नारायण को प्रदान किया और सावित्री देवी को ब्रह्मा के लिए अर्पित किया।

अथ कृष्णो महालक्ष्मीं सादरं च सरस्वतीम्।
नारायणाय प्रददौ रत्नेन्द्रं मालया सह॥
सावित्रीं ब्रह्मणेप्रादात्.............॥[3]

ब्रह्मा के आविर्भाव का वर्णन करते हुए उनके नाम वर्णन में उन्हें "सरस्वती कान्तः" भी कहा गया है :—

धाता चतुर्णां वेदानां ज्ञातावेदप्रसूपतिः।
शान्तः सरस्वती कान्तः सुशीलश्चकृपानिधिः॥[4]

४. सावित्री

सावित्री चारो वेदों (ऋग्यजुः सामाथर्व), वेदांगों (शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरणं निरुक्तं छन्द ज्योतिषम्) और छन्दों की माता हैं क्योंकि इनकी उत्पत्ति उन्हीं से होती है। ये देवी सन्ध्या-वन्दन के मन्त्रों और तन्त्रों की भी जननी हैं। ये विचक्षण हैं। ये द्विजातियों के लिए ही उत्पन्न हुई हैं। ये जपरूपा तपस्विनी और ब्रह्म तेज से युक्त हैं तथा सबका संस्कार अथवा शुद्ध करने वाली हैं। वे पवित्ररूपा हैं। सावित्री का अपर नाम गायत्री है। ये ब्रह्मा की प्रिया हैं। तीर्थ, शुद्ध होने के लिए उसका स्पर्श और दर्शन चाहते हैं, ये शुद्ध स्फटिक के समान और शुद्ध सत्वस्वरूपिणी हैं। ये परम आनन्द स्वरूप, परम उत्कृष्ट तथा सनातनी हैं। ये परब्रह्मस्वरूप निर्वाण देने वाली, ब्रह्म तेज से युक्त, शक्ति स्वरूप एवं शक्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं। सावित्री के चरण रज से सारा जगत् पवित्र हो गया।[5]

सृष्टि-रचना के प्रक्रम में बताया गया है कि कृष्ण को रसना के अग्र भाग से शुद्ध स्फटिक के सदृश एक मनोहर देवी उत्पन्न हुई जो कि शुक्ल वस्त्र धारण किये हुए सर्वाभरण भूषित थी। यह जप माला धारण किये थी। यह सावित्री कही गयी। सावित्री ने सनातन

---

१. ब्रह्म वै० २।७।२-३ २. वही २।७।२ ३. वही १।६।१–२
४. वही १।३।३३ ५. वही २।१।३९-४४

परंब्रह्म के सम्मुख स्थित होकर भक्ति से अपना कन्धा झुकाये हुए, अंजलि बाँधे हुए उन्हें प्रसन्न कर लिया ।[१]

परमात्मा श्री कृष्ण की बुद्धि से मूल प्रकृति के[२] उत्पन्न होने के पश्चात् उपर्युक्त सावित्री की उत्पत्ति हुई । सावित्री को श्रुति-प्रसू[३] भी कहा गया है ।

श्री कृष्ण ने सावित्री को ब्रह्मा को प्रदान किया ।[४]

सावित्री की सर्वप्रथम पूजा ब्रह्मा ने की । तदनन्तर देवगणों ने और तत्पश्चात् विद्वानों ने की । भारतवर्ष में सर्वप्रथम सावित्री की पूजा अश्वपति ने की । इसके पश्चात् तो चारों वर्णों ने सावित्री-पूजा की ।[५]

सावित्री के सम्बन्ध में विस्तृत आख्यान प्रकृति खण्ड के बारह अध्यायों में वर्णित है ।[६] इस अंश में सावित्री के अर्चा-विधान के अतिरिक्त अश्वपति की कथा, विशेषतः सावित्री एवं धर्मराज के प्रश्नोत्तर महत्वपूर्ण हैं, जिसमें आचार-शुद्धि के लिए विविध अपराधों का वर्णन करते हुए उन्हें न करने का निषेध किया गया है ।

सावित्री धर्म-राज के प्रश्नोत्तर का ही विशिष्ट अंश नरक के छियासी कुण्ड का वर्णन है । इनमें अपराधों की सूक्ष्म स्थितियों तथा उन्हें स्वयं रोकने का उत्तम प्रयोग है । इन विशिष्ट अंशों के अध्येता के मन में अवश्य ही आचार तथा शुभ कर्म की ओर दृष्टि जाती है ।

प्रकृति खण्ड के २६ वें एवं २७ वें अध्याय, जो कि कर्म विपाक के नाम से प्रसिद्ध हैं, उनमें व्रत-पर्व, पुण्य-दान आदि का विशेष वर्णन किया गया है । धार्मिक-जनों के लिए यह अंश विशेष संग्रहणीय है ।

सावित्री अथवा गायत्री की विशेष पूजा के लिए बताया गया है कि ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशी तिथि को विशेष संयमपूर्वक रह कर व्रती चतुर्दशी को व्रत करे । यह चौदह वर्ष का व्रत बताया जाता है । इसमें चौदह फल एवं चौदह नैवेद्य अर्पित किये जाते हैं ।[७] मंगल घट की स्थापना करके, गणेश, दिनेश, वह्नि, विष्णु, शिव और शिवा की अर्चा करके स्तोत्र पूजा विधान पूर्वक गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिए ।

यहाँ सावित्री अथवा गायत्री के वर्णन में चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री 'तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्' मन्त्र की कोई चर्चा नहीं है ।

गायत्री मन्त्र का महत्व बतलाते हुए—पराशर ने बताया है कि गायत्री मन्त्र का एक बार जप दिन भर के पाप नष्ट करता है । दश बार का जप दिनों रात का अघ नष्ट करता है । एक हजार जप वर्ष भर का पाप नष्ट करता है । एक

---

१. ब्रह्म वै० २।४।१-३ २. वही २।३।७० ३. वही २।४।५ ४. वही २।६।२
५. वही २।२३।३-४ ६. वही २।२३-३४ अध्याय तक ७. वही २।२३।४२-४६

लाख जप जन्म भर का पाप और दस लाख तीन जन्म के पाप नष्ट करता है। सौ लाख का जप सारे जन्मों का अघ नाशक होता है और एक करोड़ गायत्री मन्त्र के जप से मुक्ति का लाभ होता है।[१]

माध्यन्दिनोक्त सावित्री मन्त्र 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्ये स्वाहा' बताया गया है।[२] गायत्री का षोडशोपचार एवं पूजा विधान भी इसी प्रसंग में पूर्व कथित मन्त्र के प्रथम ही बता दिया गया है[३]। किन्तु यह मन्त्र वेद में नहीं है।

इसी प्रसंग में यह भी कहा गया है कि पुराकाल में कृष्ण ने सावित्री को गोलोक में ब्रह्मा के लिए अर्पित किया किन्तु वह स्वेच्छया जाने को उद्यत न हुई। अतः कृष्ण की आज्ञा से ब्रह्मा ने वेदमाता सावित्री की स्तुति की। तत्पश्चात् प्रसन्न होकर सती सावित्री ने ब्रह्मा को अपनाया।

इस समय ब्रह्मा ने सावित्री की जो स्तुति की थी वह सावित्री 'स्वराज' है।[४] यह कुल पाँच अनुष्टुप में है।[५]

ब्रह्म वैवर्त के ब्रह्म खण्ड में बताया गया है कि ब्रह्मा ने विश्व का निर्माण करके सुन्दर स्त्री सावित्री में वीर्याधान किया। वह सौ वर्ष तक सुदुस्सह गर्भ धारण किये रही और अन्त में चारों वेदों को जन्म दिया। तदनन्तर शास्त्र संघ तर्क, व्याकरण आदि उत्पन्न हुए।[६] यह एक आलंकारिक प्रयोग है। बड़े गम्भीर मनन-चिन्तन के पश्चात् ही वेदों शास्त्रों का प्रणयन हो सका। सावित्री में वीर्याधान, सम्भवतः बुद्धि में शक्ति सन्निहित करना है।

५. राधा

राधा ब्रह्म वैवर्त की सर्वस्वा है। राधा के महत्व से सम्पूर्ण ब्रह्म-वैवर्त ओत-प्रोत है। महत्व और नाम की दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो जैसे शिव कथाओं के कारण शिव पुराण और देवी की कथाओं के कारण देवी भागवत आदि हैं उसी तरह ब्रह्म वैवर्त राधा-पुराण है। कृष्ण भक्ति का जो रूप, नाम गुण आदि विशेष प्रसिद्ध है, वह सब ब्रह्म-वैवर्त में है। विशेष रूप से कृष्ण भक्तों में युगल नाम राधेश्याम एवं उनकी कथा का सम्पूर्ण भण्डार ब्रह्म-वैवर्त का ऋणी है। राधा-भक्ति का एकमात्र आधार ब्रह्म-वैवर्त ही है।

प्रकृति खण्ड[७] में राधा को प्रेम और प्राण की अधिदेवी बताया गया है। ये पंच-प्राण स्वरूपिणी हैं। ये प्राणों से भी अधिक प्रियतमा हैं। ये सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाली तथा सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हैं। ये सर्वसौभाग्य से युक्त, मानिनी और गौरवशालिनी हैं। ये (कृष्ण की) वाम अर्धांगस्वरूपा तथा गुणों और तेज से श्री कृष्ण के समान हैं।

१. ब्रह्म वै० २।२३।१४-१७ २. वही २।२३।७६ ३. वही २।२३।५२-७६ ४. वही २।२३-८६ ५. वही २।२३।७८-८३ ६. वही १।८।१-४ ७. वही २।१।४५-५६

ये परावरा अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, सर्वमाता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा धन्य, मान्य और पूजित हैं। ये रास-क्रीडा की अधिदेवी हैं। परमात्मा श्री कृष्ण के रास-मण्डल से इनका आविर्भाव हुआ। रास मण्डल की ये शोभा हैं। ये रासेश्वरी, सुरसिका और जहाँ रास का आवास है वहीं इनका निवास है। गोलोक में निवास करने वाली ये देवी गोपी वेष धारण करने वाली हैं। ये परम आह्लादरूपा सन्तोष एवं अमर्षरूपा हैं। ये निर्गुण, निराकार, निर्लिप्त, आत्मस्वरूप, निरीह, निरहंकार तथा भक्तों पर अनुग्रह के लिए शरीर धारण करने वाली हैं। विचक्षण अथवा विवेकी जन वेद के अनुसार उसका ध्यान करके उसे समझते हैं। (वेद के अनुसार ध्यान कहा तो अवश्य गया है किन्तु यह ध्यान अभी उपलब्ध नहीं है।)

राधा दृष्टि स्वरूप हैं। सुरेन्द्रों तथा मुनिश्रेष्ठों के द्वारा अकेली नहीं प्रत्युत हजारों के मध्य देखी गयी हैं। राधा वह्नि शुद्ध वस्त्र धारण करती हैं। वे रत्न अलंकारों से अलंकृत, कोटिचन्द्र की प्रभा से युक्त और भक्तस्वरूप हैं।

श्री कृष्ण के भक्तों को दास्य-भाव की प्रदायिका एकमात्र राधा ही हैं। सर्व-सम्पत्तियों की प्रदात्री ये ही हैं। वाराह अवतार में यही वृषभानुसुता हैं।[1] यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि विष्णु ही वाराह रूप में बनाये गये हैं।[2] विष्णु और कृष्ण अभिन्न हैं। अत: वाराह अवतार यशोदानन्दन श्री कृष्ण का पर्यायवाची भी है। इस प्रकार 'चरितं ब्रह्मवराहस्य' की मत्स्योक्ति भी असन्दिग्ध हो जाती है।

श्री राधा के चरण-स्पर्श से धरती पवित्र हो गयी। इनका दर्शन ब्रह्मा आदि भी नहीं कर पाते किन्तु वही राधा भारत में सर्वदृष्ट हैं। ये राधा स्त्रीरत्नों में सारभूत हैं। ये श्री कृष्ण के वक्षस्थल पर स्थित अपने उज्ज्वल वा गौर वर्ण से घने नये बादलों के मध्य सौदामिनी की भाँति सुशोभित होती हैं। आत्मशुद्धि के लिए जिसके चरण-कमल के नख दर्शनार्थ ब्रह्मा साठ हजार वर्ष तप करते रहे किन्तु स्वप्न में भी उनका दर्शन न कर सके। अन्तत: उसी तप के प्रभाव से वृन्दावन में श्री राधा का दर्शन ब्रह्मा ने किया।[3]

राधा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताया गया है कि सृष्टि के आदि में श्री कृष्ण एकाकी थे। सृष्टि करने की इच्छा हुई तो अपने अंश 'काल' से प्रेरित होकर दो रूपों में हो गये।[4] शरीर का वाम भाग स्त्री रूप में और दक्षिण भाग पुरुष रूप में हुआ। यही स्त्री राधा हुई।

चारु चम्पक सदृश अतीव सुन्दरी राधा के युगल नितम्ब पूर्ण चन्द्रबिम्ब-सदृश

---

१. अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या। —ब्रह्म वै० २।१।५४

२. वाराहे तां समुद्धृत्य लुप्तां मग्नां रसातलात्।
विष्णोर्वराहरूपस्य द्वारा चाति प्रयत्नत:॥ वही १।५।५।१४

३. वही २।१।५५-५८ ४. वही २।२

थे। उनकी जंघा सुन्दर कदली-स्तम्भ जैसी, स्तन युग्म बिल्व फल जैसे थे। वे पुष्ट, सुललित, क्षीणकटि एव मनोहर थीं। ये सुन्दरी शान्त और इनके मुख नयन पर मुस्कुराहट थी। ये वह्निशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए रत्नाभूषणों से भूषित थीं। कस्तूरी बिन्दुओं के साथ चन्दनविन्दुओं से सुशोभित भाल के मध्य (मांग) में सिन्दूर बिन्दु धारण किये हुए थीं। मालती माल्य विभूषित घुँघराले वालों से एवं हीरे के हार से सुशोभित राधा अपने कान्त श्री कृष्ण की कामना करती थीं। रासेश भगवान् श्री कृष्ण रास मण्डल में रासोल्लास से युक्त होकर राधा के साथ एकान्त में रास क्रीड़ा करने लगे। ब्रह्मा की आयु तक वे सुख सम्भोग करते रहे। अन्त में श्री कृष्ण ने राधा में वीर्याधान किया। इस काल में श्री कृष्ण को श्रम के कारण स्वेद हो आया। श्री कृष्ण के असह्य तेज से श्रान्त हो जाने के कारण देवी के शरीर से स्वेद बह चला और श्वास जोर से चलने लगी, इसी श्वास से निःश्वास की उत्पत्ति हुई। यही निःश्वास वायु सभी प्राणियों में सबका आधार बनी। राधा का श्रमबिन्दु विश्वगोलक बन गया। अब वह कृष्णशक्ति राधा गर्भिणी हो गयीं। सौ मन्वन्तर तक वे ब्रह्म (कृष्ण) तेज से जाज्वल्यमान रहीं। सौ मन्वन्तरों के बीत जाने पर उस परम सुन्दरी ने विश्व के परम आधार, सुवर्ण की आभा वाले एक अण्डे का प्रसव किया।

उस अण्डे को देख कर अति दुखी होकर क्रोध से उसे जल के गोलक में फेंक दिया। देवेश कृष्ण ने ऐसा देखकर हाहाकार किया तथा उचित समझ कर देवी को शाप दिया कि कोपशीले ! राधे ! तुमने पुत्र का परित्याग किया है अतः आज से तुम निश्चित रूप से अपत्य-हीन रहो। तुम्हारे अंशरूप में जो देवांगनाएँ होंगी वे भी नित्य-यौवन होते हुए भी सन्तानहीन होंगी।[1]

राधा के जिह्वाग्र से सरस्वती[2] और वामार्धाङ्ग से लक्ष्मी[3] पैदा हुई। राधांग रोमकूपों से गोपकन्याएँ प्रकट हुईं। ये राधा जैसी ही थीं और सभी मधुर-भाषिणी थीं।[4] गोपकन्याएँ रत्न-भूषण-भूषित, सुस्थिर यौवन किन्तु श्री कृष्ण के शाप के कारण अपत्यहीन ही रहीं।[5]

इस सम्बन्ध में एक आख्यान ब्रह्म वैवर्तीय प्रकृति खण्ड के ४८वें अध्याय से छप्पनवें अध्याय तक वर्णित है। इस बीच में ५१-५२वें अध्याय में कर्म-विवेचन किया गया है जो वस्तुतः कथा की दृष्टि से उतना उपयोगी नहीं जितना कि श्रोता को कर्म विचार अथवा शुभ कर्म के लिए प्रेरित करने के लिए है।

इस आख्यान में वक्ता शिव और प्रष्टा पार्वती हैं। पार्वती बड़े श्रद्धापूर्ण शब्दों में राधा के बिषय में जानने को उत्सुक हैं। श्री शिव पार्वती को अपने से बलवती

१. ब्रह्म वै० २।२।४७-५३ २. वही २।२।५४ ३. वही २।२।५६
४. वही २।२।६४। ५. वही २।२।६५

बताते हुए कहते हैं कि प्राचीन काल में रमणीक वृन्दावन गोलोक रास-मण्डल में स्वेच्छामय श्री कृष्ण रमण करने की इच्छा से द्विधा रूप में हो गये। दक्षिणांग श्री कृष्ण और वामांग राधिका के रूप हुए। रमणोत्सुक जगत्पति ने कामातुरा राधा को देखा।[१] उसी समय रसिकेश्वर की रमणेच्छा जानकर प्रिय की ओर वे देवी दौड़ीं अतः उन्हें राधा कहा गया।[२]

इसके सदृश ही ब्रह्म वैवर्त के ब्रह्म खण्ड के पंचम अध्याय में भी राधा के नाम की व्याख्या दी हुई है :—

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वाम पार्श्वतः।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे॥
रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥[३]

राधा और कृष्ण के प्रेम के सम्बन्ध में इससे अधिक क्या कहा जा सकता है कि राधा परमात्मा श्री कृष्ण की प्राणाधिष्ठातृ देवी हैं। उनका आविर्भाव श्री कृष्ण के प्राणों से हुआ है। राधा उनके प्राणों से भी गरीयसी हैं।

प्राणाधिष्ठातृ देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्यो पि गरीयसी॥[४]

यहाँ पन्द्रह अनुष्टुपों में राधा के सौन्दर्य-वैभव का वर्णन किया गया है।[५] राधा को षोडशवर्षीया एवं नव-यौवन संयुता बताया गया है। राधा के रोमकूप से राधा के रूप और वेष वाली लक्षकोटि गोपिकाओं का भी आविर्भाव हुआ।[६]

इस प्रसंग में भी प्रकृति खण्ड, द्वितीय अध्याय की भाँति राधा के रोमकूपों से गोपियों और श्री कृष्ण के रोमकूपों से गोपों का प्राकट्य बताया गया है। श्री शिव ने पार्वती को यह भी बताया है कि—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति।
भज सत्यं परंब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्॥[७]

यहीं बताया गया है कि सुदामा के शाप से राधा को गोलोक से भूतल पर आना पड़ा। भूतल में वृषभानु गोप तथा कलावती की पुत्री हुई।

सुदामशापात्सा देवी गोलोकादागता महीम्।
वृषभानु गृहे जाता तन्माता च कलावती॥[८]

---

१. ब्रह्म वै० २।४८।२६-३६ २. वही २।४८।३७ ३. वही १।५।२५,२६
४. वही १।५।२७ ५. वही १।५।२८-४१ ६. वही १।५।४१-४२
७. वही २।४८।४८। ८. वही २।४८।५५

महादेव ने पार्वती से शाप का कारण बताया कि एक बार श्री कृष्ण गोलोक ास मण्डल में वृन्दावन के शतश्रृंग गिरि के एक भाग में राधिका जैसी विरजा के ाथ सुख सम्भोग में तन्द्रित होकर एक लाख मन्वन्तर बिता दिये। जन्मादिरहित ोलोक में यह समय थोड़ा है। इधर राधा को चार दूतियों से यह विरजा-कृष्ण मण समाचार ज्ञात हो गया। राधा जी क्षुब्ध हो गयीं। वे गोपियों के साथ त्रिलक्ष ोटि रथ से श्री कृष्ण से मिलने चलीं। सुदामा ने श्री कृष्ण को सूचित कर दिया। िरजा नदी के रूप में प्रवाहित हो गयी और उनकी सखियों ने भी छोटी-छोटी नदियों ा रूप धारण कर लिया। यह भी बताया गया है कि विरजा से अनेकों नदियाँ और ातों समुद्र भी उत्पन्न हुए।[1] इधर राधा श्री कृष्ण के पास पहुँच कर उन्हें कुछ ठोर शब्द कहने लगीं। सुदामा को यह कठोरता सह्य नहीं हुई, उसने विरोध किया। स पर सुदामा को राधा ने असुर होने का शाप दिया। सुदामा ने भी राधा को ानवी गोपकन्या रूप में प्रकट होने का शाप दे दिया। किन्तु सुदामा वहाँ से चलने गा तो राधा पुत्र सुदामा के वियोग से दुःखी होकर रोने लगीं। श्री कृष्ण ने प्रबोधित िया। महादेव ने कहा कि यही सुदामा तुलसीपति शंखचूड हुआ, जो मेरे शूल से र कर पुनः गोलोक पहुँचा।[2] राधा भी भारत में गोकुल में पहुँची। ये वृषभानु श्य की कन्या हुईं। यह वाराह (कल्प) की कथा है।

राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारते सति।
वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह॥[3]

ये राधा अयोनि संभवा हैं। कलावती का गर्भ वायुपूर्ण था। बारह वर्ष में ाधा नवयुवती हो गयीं। अतः राधा का विवाह उनके घर वालों ने कर दिया। ह विवाह यशोदा के सहोदर भाई रायण के[4] साथ हुआ। किन्तु रायण का विवाह ाधा की छाया के साथ हुआ—

छायां संस्थाप्य तद्गेहे सान्तर्धानमवाप ह।
बभूव तस्य वैश्यस्य विवाह श्छायया सह॥[5]

(राधा के) चौदह वर्ष बीत जाने पर कंस के भय से छलपूर्वक श्री कृष्ण शोदा के पास शिशु रूप में पहुँचे। कृष्ण मातुल रायण गोलोक में कृष्णांश स्वरूप ोप के रूप में था, वही कृष्ण का मामा भी हुआ। राधा और कृष्ण का विवाह वृन्दावन में ब्रह्मा ने करा दिया।[6]

इस प्रकार राधा छाया के साथ रायण और वास्तविक राधा के साथ श्री

---

१. ब्रह्म वै० २।४६।२-१८ २. वही २।४८।२४-३३ ३. वही, प्रकृति खण्ड ४६।३५
४. वही २।४६।४० ५. वही २।४६।३८। ६. वही २।४६।३६-४१

कृष्ण का सम्बन्ध बना रहा। वृन्दावन में राधा के साथ श्री कृष्ण का विवाह विधि द्वारा सम्पन्न हुआ। यहाँ आलंकारिक-भाव भी प्रद्योतित होता है। सम्भवतः गोपों के समक्ष रायण-राधा का ही विवाह हुआ। विधि (ब्रह्मा) द्वारा सम्पादित विवाह गोपों के समक्ष नहीं हुआ। इसके आगे इस आलंकारिक उक्ति से ही मिलती दूसरी भी उक्ति है—

स्वयं राधा हरेः क्रोडे छाया रायण मन्दिरे।[1]

इस प्रकार यहाँ यह स्पष्ट है कि राधा का वास्तविक स्नेह श्री कृष्ण से था।

इस प्रसंग में ब्रह्मा के साठ हजार वर्षों तक पुष्कर में तप करके राधा दर्शन प्राप्ति की कथा दुहरायी गयी है।[2] राधा और कृष्ण कुछ समय भारत वर्ष के वृन्दावन में निवास करते रहे। पुनः सुदामा शाप के प्रभाव से वियोग (मथुरा चले जाने के कारण) हो गया। इसी बीच में श्री कृष्ण ने भूमि-भार अन्यायियों का विनाश किया।[3] पुनः सौ वर्ष बीत जाने पर तीर्थयात्रा के प्रसंग में राधा और श्री कृष्ण का मिलन हुआ।[4] तदनन्तर राधा-कृष्ण के साथ कलावती, यशोदा, वृषभानु, नन्द और सभी गोप गोपियाँ उत्तम गोलोक में गये। साथ ही गोप और गोपियों की छत्तीस लाख कोटियाँ मुक्त हुईं।

गोलोक रास मण्डल में श्री कृष्ण ने राधा की पूजा की। श्री कृष्ण के पश्चात् यथावसर, धर्म, ब्रह्मा, महादेव, अनन्त, वासुकि, रवि, शशि, महेन्द्र, रुद्रगण, मनु, मानव, सुरेन्द्रों, मुनीन्द्रों, सभी विश्वों ने राधा की पूजा की। तीसरे सुयज्ञ महाराज ने इनकी पूजा की। राधा की पूजा आराधना से सुयज्ञ का गया हुआ राज्य पुनः मिल गया।[5] ब्राह्मण के शाप से इनका हाथ रोगग्रस्त हो गया था वह भी ठीक हुआ।[6]

रासेश्वर सहित रासेश्वरी राधा के ध्यान का विधान किया गया है।[7] राधा की निम्नलिखित षोडशोपचार पूजा विहित है—

आसनं वसनं पाद्यमर्घ्यं गन्धानुलेपनम्।
धूपं दीपं सुपुष्पं च स्नानीयं रत्नभूषणम्॥
नाना प्रकार नैवेद्यं ताम्बूलं वासितं जलम्।
मधुपर्कं रत्नतल्पमुपचाराणि षोडश॥

राधा के षोडशोपचार के मन्त्र प्रकृति खण्ड के पचपनवें अध्याय के चौबीसवें से अड़तीसवें श्लोक तक संगृहीत हैं। राधा के 'परिहार' का भी विधान इसी अध्याय के चौवालिसवें से सत्तावनवें श्लोक तक किया गया है।

राधा के 'जगन्मंगल-कवच' का वर्णन इसी अध्याय के बत्तीसवें से उन्चासवें श्लोक तक किया गया है।

———

१. ब्रह्म वै० २।४८।४२ २. वही २।४८।४३ ३. वही २।४८।४५-४६ ४. वही २।४८।१७। ५. वही २।४८।६०-७० ६. वही २।४८।६७ ७. वही १।५५।१७।

अध्याय ६

गणेश-खण्ड

गणेश-खण्ड ब्रह्म-वैवर्त पुराण का तृतीय खण्ड है। यह छियालिस अध्यायों में विस्तृत है। इसमें दो हजार पाँच सौ तिहत्तर पूर्ण श्लोक हैं। दो सौ अट्ठावन उवाच और बयालिस अर्ध-श्लोक अथवा दण्डक हैं। दण्डक मानने पर उक्त संख्या में बयालिस की कमी होगी।

इसमें महर्षि नारद मूल प्रश्न नारायण से करते हैं। विभिन्न कथाएँ भी प्रासंगिक रूप में जुड़ती जाती हैं। यद्यपि इस खण्ड का नाम गणेश खण्ड है, किन्तु शिव के दोनों पुत्रों (गणेश, कार्तिकेय अथवा स्कन्द और परशुराम) की कथाएँ विस्तृत रूप में दी गयी हैं। शिव पुराण की कथाओं से यहाँ गणेश और स्कन्द की कथाएँ छोटी हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि इस खण्ड के प्रथम अध्याय के कुछ श्लोक (लगभग १०) तथा स्कन्द कथा के चारों अध्यायों में विशेष अंश शिवपुराण में ज्यों के त्यों समान हैं। नारद ने प्रथम-प्रश्न गणेश के विषय में ही किया है। इसका समाधान नारद जी विस्तृत रूप में जानना चाहते हैं—

कथ जज्ञे सुर-श्रेष्ठ: पार्वत्या उदरे शुभे।
देवी केन प्रकारेण चालभत्तादृशं सुतम् ।।३।१।३ ब्र० वै०

स चांश: कस्य देवस्य कथं जन्म ललाम स:।
अयोनिसंभव: किं वा किंवाऽसौ योनि सम्भव: ।।३।१।४ ब्र० वै०

किंवा तद् ब्रह्म तेजो वा किं यानं च पराक्रम:।
का तपस्या च किं ज्ञानं किं वा तन्निर्मलं यश: ।।३।१।५ ब्र० वै०

कथं तस्य पुर: पूजा विश्वेषु निखिलेषु च।
स्थिते नारायणे शंभौ जगदीशे च धातरि ।।३।१।६ ब्र० वै०

पुराणेषु निगूढं च तज्जन्म परिकीर्तितम्।
कथं वा गजवक्त्रोऽयमेकदन्तो महोदर: ।। ३।१।७ ब्र० वै०

एतत्सर्वं समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम।
सुविस्तीर्णं महाभाग तदतीव मनोहरम् ।।३।१।८ ब्र० वै०

कल्प-भेद से गणेश की उत्पत्ति विभिन्न प्रकार की बतायी गयी है। शिव-पुराण ने श्वेत कल्प की कथा का विस्तार किया है। वहीं पर यह भी बताया है कि शनि के

देखने पर गणेश का शिर कटा था। यह अन्य कल्प की कथा है।[१] ब्रह्म-वैवर्त में गणेश के शिरोभंग की घटना शनि के देखने पर होती है।[२]

ब्रह्म वैवर्त की कथा का नवीन रूपान्तर शिव-पुराण ने किया। शिवपुराण की उपर्युक्ति से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्रह्म-वैवर्त की कथा पूर्वोक्त पुराण से अधिक प्राचीन है तथा विशेष विख्यात हो चुकी थी।

ब्रह्म-वैवर्त के कथा-प्रसंगों में आने वाले श्लोक शिव पुराण और देवी-भागवत में राशि-राशि ज्यों के त्यों मिलते हैं। यह निश्चय होना कठिन है कि पूर्वावतार इन छन्दों का कहाँ हुआ। तथापि ब्रह्म-वैवर्त के कथा प्रसंग शिवपुराण में ज्यों के त्यों वर्णित हैं।

गणपति-खण्ड का विशेष माहात्म्य बताया गया है। समाहित चित्त से गणपति खण्ड के श्रवण का फल राजसूय-यज्ञ का फल बताया गया है।[३] विशेषतः सदाचारी विद्वान तथा गुणी पुत्र की प्राप्ति[४] होती है। केवल गणपति-खण्ड-श्रवण का फल सम्पूर्ण ब्रह्म-वैवर्त-श्रवण-फल की प्राप्ति होना बताया गया है।[५]

विघ्न-नाश के लिए बताया गया है कि स्वर्ण यज्ञोपवीत, श्वेत छत्र (सम्भवतः यह चाँदी का हो), माल्यक (माला), स्वस्तिक (एक भोज्य निर्मित पदार्थ), तिल का लड्डू, देश और समयानुकूल पके फल, इन सबका गणेश-हेतुक दान कथा-वाचक को देना चाहिए।[६]

गणपति-खण्ड-कथा-संकेत

गणपति खण्ड की सम्पूर्ण कथा छियालिस अध्यायों में विभाजित है।

१. प्रथम अध्याय में	शिव-पार्वती रति वर्णन तथा स्कन्द-जन्म-मात्र।
२. द्वितीय ”	पार्वती शोक तथा तन्निवारणार्थ शिव द्वारा उन्हें सान्त्वना। अभीष्ट पूरक।
३. तृतीय अध्याय	पुण्यक माहात्म्य-कथन
४. चतुर्थ अध्याय से सप्तम अध्याय पर्यन्त	ग्रहण-समाज्ञा।
५. अष्ठम अध्याय से दशम अध्याय पर्यन्त	गणेशोद्भव-मंगल
६. एकादश एवं द्वादशाध्याय	शनि दृष्टि, शिरश्छेदन

---

१. शिव पुराण रुद्र संहिता कुमार खण्ड १३ अध्याय ५-७

२. ब्रह्म-वैवर्त ३।१२।७ ३. वही ३।४६।४१ ४. वही ३।४६।४२

५. वही ३।४६।४७ ६. वही ३।४६।४८-५०

७. चतुर्दश से सप्तदशाध्याय	कार्तिकेय-जन्म विवाहाभिषेक कथा
८. अष्टादशाध्याय	गणेश शिरोभंग कारण रूप सूर्य पिता कश्यप का शाप
९. एकोनविंशत्यध्याय	सूर्य-पूजा विधान तथा सूर्यकवच
१०. विंश से त्रिविंशाध्याय यावत्	गणेश के गजमस्तक होने का कारण ।
११. चतुर्विशाध्याय से पंचचत्वा-रिंशदध्याय पर्यन्त	गणेश के एकदन्त हेतुक भृगु परशुराम जमदग्नि, कार्तवीर्य, मत्स्यराज, सुचन्द्र, सहस्राक्ष, पुष्कराक्ष आदि का वर्णन ।
१२. षट्चत्वारिंशद् अध्याय	गणेश-पूजा में तुलसी मंजरी की अग्रहणीयता में कारण ।

संक्षिप्त कथा

नैमिषारण्य-क्षेत्र में ऋषिगण के मध्य महर्षि शौनक अवस्थित थे। इसी बीच वहाँ इधर-उधर घूमते हुए पूजनीय सौति पहुँच गये। स्वेच्छया पधारे महर्षि सौति के दर्शन से सभी ऋषि प्रफुल्लित हो उठे। ऋषि के शुभागमन से लाभ उठाने के लिए अत्युत्कण्ठित भाव से शौनक ने सौति से प्रश्न किया। इन्हीं प्रश्नों की माला के समाधान स्वरूप गणपति-खण्ड का प्राकट्य हुआ है।

गणपति-खण्ड आदि से अन्त तक इस प्रकार नारद तथा नारायण के संवाद से सम्बद्ध है कि कहीं सौति एवं शौनक का नाम भी नहीं आया है।

यह सम्पूर्ण खण्ड नारद की उस प्रश्नमाला का पूर्ण उत्तर है जो कि इसी खण्ड के प्रारम्भ में सर्वप्रथम एक ही बार कर दी गयी है। कथाएँ रोचक शैली में विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। बीच-बीच में अनेकों स्तोत्रों, कवचों तथा मन्त्रों का प्रतिफलन इसकी विशेषता है।

दैत्य-विनाशक देव-तेजो-राशि से प्रकट देवी दैत्य दल को विदीर्ण कर दक्ष-कन्या हुई। उसी दक्ष-कन्या सती ने निज-स्वामी शिव की निन्दा से दुःखी होकर आत्म-दाह कर लिया। तत्पश्चात् वही हिमालय-प्रिया के गर्भ से पार्वती के रूप में प्रकट हुई, जिसे हिमालय ने प्रसन्नतापूर्वक शंकर के साथ परिणीत किया।

पार्वती को पत्नी के रूप में पाकर शंकर निर्जन-वन में चले गये। नर्मदा-नदी के तट पर पुष्पोद्यान में एक हजार दैव-वर्ष तक शिव पार्वती के साथ रमण करते रहे। अन्य देवों की तो बात क्या, ब्रह्मा भी विस्मय में पड़ गये। सभी देव शंकर के भय से उन्हें जगाने तक का साहस न कर सके। केवल वक्रशिरा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र और वायु ने ही शिव के निकट जाकर उन्हें विरत करने के लिए प्रार्थना की। सुरों की अभिलाषा जानकर शिव जी कण्ठ-लग्ना पार्वती से पृथक् हुए तो भूमि पर वीर्य-बिन्दु

का पात हो गया। उसी से स्कन्द की उत्पत्ति हुई। यही स्कन्द छः कृत्तिकाओं द्वारा पालित होकर कार्तिकेय के अभिधान से विख्यात हुए। इन्हें कुमार भी कहा जाता है। कालिदास का कुमार सम्भव इन्हीं की गाथा गाता है।

पार्वती रतिभंग होने के कारण अति रुष्ट हो गयीं। फलतः शिव भयभीत हो गये। अतः पार्वती को प्रसन्न करने के लिए उनका हाथ पकड़ कर शिव ने उन्हें हृदय से पुनः लगा लिया। अन्त में पार्वती ने बताया, एक तो कान्त-विच्छेद के कारण रति-भंग, दूसरे भूमि पर वीर्य-पात, तीसरे अनपत्यता. ये तीनों ही साध्वी स्त्री के लिए घोर कष्ट है। पार्वती ने शिव से कहा,—आप, मुझे बतायें कि मैं क्या करूँ ? इस प्रश्न के उत्तर में कामना-पूरक पुण्यक-व्रत का निर्देश शिव ने किया। पुण्यक व्रत सैद्धान्तिक दृष्टि से वैष्णव-व्रत है। पुत्र-प्राप्ति के लिए हरि की प्रसन्नता आवश्यक है। एतदर्थ पुण्यक-व्रत का विधि-विधान भी शिव ने बताया।

पार्वती ने पुत्र-प्राप्ति हेतु अपने इष्ट श्री कृष्ण की आराधनापूर्वक व्रत को प्रारम्भ किया। इस व्रत में हिमालय भी आये। उन्होंने व्रत में दान देने के लिए पार्वती को एक लाख गज, तीन लाख अश्व, दस लाख गायें, एक करोड़ स्वर्ण मुद्रा, चार लाख मुक्ता, एक सहस्र कौस्तुभ मणि और स्वादिष्ट मीठे फलों का एक लाख भार दिया था। व्रत एक वर्ष चला। अन्त में पुण्यक-व्रत के प्रसंग में एक कौतूहल पूर्ण विषय भी आया। व्रत के अन्त में पार्वती से ब्राह्मण उनके पति शिव को दान रूप में पाना चाहता है, जो कि लोकाचार के अनुकूल उचित भी कहा गया है।

पार्वती विह्वल होकर मूच्छित हो जाती हैं। चेतनावस्था में वे बोलीं—उस कर्म या दक्षिणा से मुझे क्या करना है। उस पुत्र या धर्म से क्या प्रयोजन जब पति ही दक्षिणा में चला जाय। वृक्ष की पूजा व्यर्थ है यदि वह भूमि न पूजी जाय जिस पर वृक्ष है। स्वामी सौ पुत्र के समान है। यदि स्वामी ही न मिले तो व्रत और सुत व्यर्थ हैं। पुत्र पति का अंश है। पुत्र का मूल पति है। जिसमें मूल ही नष्ट हो जाय वह व्यापार व्यर्थ है।

किन्तु ब्रह्मा भी भर्तृदान का समर्थन करते हैं। तथापि देवों ने इसे अधर्म बताया है। परंच थोड़ी देर में पार्वती ने स्वयं बताया कि—

केवलं वेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम्।
बलवाँल्लौकिको वेदाल्लोकाचारं च कस्त्यजेत्॥[1]

इस वेद विरुद्ध निर्णय का रूप शंकाग्रस्त हो गया।

यह एक असन्दिग्ध तथ्य है कि सृष्टि में दोनों—प्रकृति और पुरुष का समान

---

१. ब्रह्म वै० ३।७।४६

महत्व है। तथापि नारायण ने एक समाधान, जो कि वेद-विहित भी है, निकाला। उन्होंने कहा कि पति का दान कर समुचित मूल्य पर उसे ले लिया जाय। पत्नी को पति का दान करने का अधिकार है या नहीं ? इस सम्बन्ध में भी नारायण ने स्वयं आकर पार्वती से कहा कि—

यज्ञ पत्नीं यथा दातुं क्षमः स्वामी सदैव तु।
तथा सा स्वामिनं दातुमीश्वरी सा श्रुतेर्मम ॥[1]

इस प्रकार सम्पूर्ण समाधान करके तथा कृष्ण एवं विष्णु प्रसाद से शिव को पुत्र-प्राप्ति हुई, ऐसा प्रमाणित कर हरि-महिमा का ख्यापन किया।

यह तथ्य आगे और भी स्पष्ट हो जाता है। बताया गया है—

स्वयं गोलोकनाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः।
पार्वतीगर्भजातश्च तव पुत्रो भविष्यति ॥[2]

व्रत के अन्त में जब पार्वती जी पति दान के भय से व्याकुल-स्थिति में विकल्प का ज्ञान हो जाने पर सनत्कुमार को, जो कि व्रत में पार्वती के पण्डित थे, एक लाख गायें देने लगीं तो सनत्कुमार ने शिव के बदले गायें लेना अस्वीकार कर दिया। अन्त में श्रीकृष्ण का तेज प्रकट हुआ, पार्वती ने दर्शन किया। देवों ने सनत्कुमार को समझा-बुझा दिया। व्रतान्त में विधि के अनुकुल ब्राह्मण-भोजन आदि कर्म हुआ। तदनन्तर ही एक दीन ब्राह्मण भी आया। उसने भोजन किया तथा प्रसन्नमना आशीर्वाद दिया। वह अकस्मात् अन्तर्धान हो गया। उसके अन्तर्धान होते ही शयन-कक्ष में शय्या पर गणेश खेलने लगे। इस प्रकार द्विजच्छद्मा श्रीकृष्ण ही गणेश के रूप में आविर्भूत हुए। गणेशोद्भव का यह प्रकार राम कृष्ण आदि अवतारों के समान ही है। कार्तिकेय (स्कन्द) भी गर्भजात नहीं हैं।

गणेश एकदन्त क्यों ?

कार्तवीर्य एक बार अपनी विशाल वाहिनी के साथ मृगया के अन्वेषण में जमदग्नि के आश्रम में पहुँचा। जमदग्नि ने अतिथि सेवार्थ भूपति को निमन्त्रण दिया। किन्तु वाहिनी की इतनी विशाल संख्या थी कि वे स्वयं विवश थे। अन्त में उन्होंने कपिला से प्रार्थना की। कपिला ने ऋषि जमदग्नि को आश्वासन दिया। कपिला गौ की कृपा से कार्तवीर्य की सेवा के लिए समस्त उपयोगी वस्तुएँ सुलभ हो गयीं। मुनि द्वारा प्रदत्त समस्त भोज्य पदार्थ पाकर राजा विस्मित हो गया। अतः मन्त्री द्वारा पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि ये सारे पदार्थ कपिला की कृपा से प्राप्त हुए।

कार्तवीर्य ने जमदग्नि से कपिला की भिक्षा माँगी किन्तु मुनि ने कपिला का

१. ब्रह्म वै० ३।७।८१ २. वही ३।६।६१

दान स्वीकार नहीं किया। अतः नृपति ने बलात् पाना चाहा। कार्तवीर्य ने युद्ध द्वारा अपहरण करने का प्रयास किया, किन्तु कपिला ने जमदग्नि के लिए असंख्य सेना प्रकट कर दिया, और जमदग्नि को रण-विधि की भी शिक्षा दी। राजा ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया, अपने सिद्ध अस्त्रों का भी प्रयोग किया किन्तु जमदग्नि ने सबको काट दिया। अन्त में ब्रह्मा ने सन्धि करा दिया। किन्तु कपिला का लोभ राजा के मन में बना रह गया। अन्त में दत्तात्रेय से विष्णु की दी हुई अमोघ-शक्ति राजा ने प्राप्त की और पुनः युद्ध छेड़ दिया। फलतः उस अमोघ-शक्ति से राजा ने मुनि का हृदय बाँध दिया। मुनि के मरते ही कपिला गोलोक को प्रस्थान कर गयी। कार्तवीर्य ब्रह्म-हत्याजनित पाप का प्रायश्चित्त करके अपनी राजधानी को चला गया। महर्षि की पत्नी बेचारी रेणुका रोती रही। पुत्र—योगी परशुराम पुष्कर में तप कर रहे थे। परशुराम शीघ्र जा पहुँचे। उन्होंने उग्र क्रोध किया। क्रोधाविष्ट परशुराम ने कार्तवीर्य को मारने और क्षत्रियों का इक्कीस बार विनाश करने का प्रण कर लिया।

माता ने परशुराम को युद्ध से विरत करना चाहा किन्तु परशुराम माने नहीं। अन्त में अन्त्येष्टि सम्पन्न होने लगी तो रेणुका सती होने को उद्यत हुई। भृगु ने रोकना चाहा, किन्तु रेणुका दृढ़ रही। परशुराम के देखते-देखते रेणुका चिता पर जल कर राख हो गयी। ब्राह्मणों तथा भृगु जी के सहयोग से परशुराम ने माता-पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की।

ब्रह्मा ने परशुराम को शिव-लोक जाकर शिव से कृष्ण-मन्त्र ग्रहण करने का आदेश दिया, जिससे कि शैव-शाक्त दोनों तेजों पर वे विजय पा सकें। त्रैलोक्य-विजय-कवच तथा दिव्य-पाशुपतास्त्र ग्रहण करके ही प्रतिज्ञा पूरी हो सकती है, यह ब्रह्मा ने बताया। अतः परशुराम शिव-लोक गये। परशुराम ने शिव का दर्शन किया। शिव ने परशुराम को श्रीकृष्ण प्रसन्नता हेतुक कृष्ण-कवच एवं कृष्ण-मन्त्र का उपदेश किया। परशुराम ने पुनः शिव, दुर्गा तथा भद्रकाली को प्रणाम कर शिवलोक से प्रस्थान किया।

परशुराम शिवलोक से तीर्थ में आये। वहाँ एक मास अन्न-जल का परित्याग कर श्री कृष्ण के ध्यान में मग्न हो आराधना करते रहे। श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए, आशीर्वाद दिये।

श्रीकृष्ण की कृपा से परशुराम पहले की अपेक्षा बहुत अधिक सशक्त हो चुके थे। उन्होंने नर्मदा-तट के निकट अक्षयवट के नीचे भाइयों सहित जाकर कार्तवीर्य के पास पुनः युद्ध के लिए दूत भेजा। कार्तवीर्य को अपशकुन एवं दुःस्वप्न हुआ। अतः राज्ञी मनोरमा ने नृपति को युद्ध से पराङ्मुख करना चाहा किन्तु वह रुका नहीं। दुःखी होकर मनोरमा ने आत्मदाह कर लिया। यह भी घोर अमंगल हो गया। तथापि

अन्त्येष्टि कर कार्तवीर्य युद्ध के लिए चल पड़ा। युद्ध मच गया। सारी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। कार्तवीर्य की एक न चली। अन्त में कार्तवीर्य शान्त एवं युद्ध-विरत हो गया। अब मत्स्यराज परशुराम से युद्ध करने लगे। मत्स्यराज मारे गये। तदनन्तर सुचन्द्र और सुचन्द्र-पुत्र पुष्कराक्ष भी मारा गया। अन्त में सहस्राक्ष और उसके पुत्र की बारी आयी। परशुराम से इन दोनों का युद्ध एक सप्ताह तक चला। किन्तु अन्त में ये दोनों भी मारे गये।

कार्तवीर्य पुनः अपनी दो लाख अक्षौहिणी सेना ले युद्ध करने आया। भीषण युद्ध के पश्चात् भी कार्तवीर्य डिगा नहीं क्योंकि श्रीकृष्ण स्वयं उसके रक्षक थे। दत्तात्रेय का दिया हुआ श्रीकृष्ण-कवच उत्तम-रत्न को गुटिका के साथ उसकी दाहिनी भुजा पर बँधा हुआ था। उसे शंकर ने ब्राह्मण का रूप धारण कर अपने प्रिय-भक्त परशुराम को कार्तवीर्य से दान लेकर दे दिया। फलतः कार्तवीर्य परशुराम के हाथों मारा गया। वहाँ देवों सहित ब्रह्मा भी पधारे। उन्होंने गुरु की शरण में जाने का उपदेश दिया। परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश कर अपना प्रण पूरा किया। तदनन्तर गुरूपदेश के अनुसार वे कैलाश पर गये।

परशुराम श्री कृष्ण-कवच धारण कर मन-ही-मन शिव को प्रणाम कर पार्वती कार्तिकेय और गणेश सहित शिव के दर्शन के लिए कैलाश पर पहुँच गये। नन्दिकेश्वर से आज्ञा ले वे नगर के अन्दर प्रविष्ट हुए। शिव का दर्शन करने के लिए परशुराम शिव-सदन में प्रविष्ट होना चाहते थे कि गणेश ने रोक कर बताया कि अभी शिव शयन कर रहे हैं। अतः वहाँ जाने का निषेध है। किन्तु परशुराम रुकना नहीं चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि विवाद होने लगा। बीच-बचाव करने कार्तिकेय आये। वे शान्त करने का प्रयास किये किन्तु परशुराम ने गणेश को एक धक्का मार दिया। गणेश धक्के से गिर पड़े। उन्होंने परशुराम को डाँटा। किन्तु परशुराम ने परशु उद्यत कर लिया। तब तक गणेश ने उन्हें सूँड़ में लपेट कर स्तम्भित कर दिया और समस्त लोकों में घुमाते हुए गम्भीर समुद्र में फेंक दिया। जब वे तैरने लगे तो बैकुण्ठ दिखलाते हुए गोलोक का दर्शन कराया। तत्पश्चात् गणेश ने उन्हें वेगपूर्वक भूतल पर पटक दिया।

परशुराम ने अपने गुरु शिव का स्मरण किया और उनके द्वारा दिये हुए दुर्लभ स्तोत्र तथा कवच का स्मरण किया। अपना अमोघ परशु गणेश के दाँत पर परशुराम ने फेंक कर प्रहार किया। गणेश ने परशु के वेग को अपने वाम-दन्त पर रोक लिया। परिणामतः वामदन्त गणेश का भंग हो गया। गणेश मूर्च्छित हो गये। शिव की निद्रा भंग हुई। पुत्र के पास माता-पिता पहुँचे। कार्तिकेय ने सारा वृत्त कह सुनाया। गणेश की मूर्च्छा से सभी चिन्तित हो गए। पार्वती ने कहा कि रेणुक के दौहित्र तथा विष्णु-यशा के भांजे को ऐसा नहीं करना चाहिए। अन्त में पार्वती अप्रसन्न होकर परशुराम को मारने के लिए उद्यत हो गयीं। त्यों ही एक वामन ब्राह्मण प्रकट हो गया। उसने

बताया कि परशुराम ने गुरुपुत्र तथा गुरुपत्नी की अवहेलना की है। मैं उसी के सम्मार्जन के लिए आया हूँ। उन्होंने पार्वती को अवबोधित भी किया कि वे गणेश, कार्तिकेय तथा परशुराम को एक समान समझें। वामन-विष्णु ने परशुराम को भी समझाया कि उन्होंने गणेश का दाँत तोड़कर घोर अपराध किया है। अत: वे गणेश और गौरी का स्तवन करें। परशुराम ने वामन की बात मान कर पूर्ण श्रद्धा-भक्ति से दोनों की स्तुति की। गौरी और गणेश दोनों परशुराम से प्रसन्न हुए। तदनन्तर परशुराम ने यथेष्ट स्थान को प्रस्थान किया।

गणेश-पूजा में तुलसी दल की वर्जना ?

परशुराम ने गणेश-पूजा करते समय तुलसी-दल नहीं अर्पित किया क्योंकि गणेश को तुलसी की मंजरी अथवा पत्र नहीं अर्पित किया जाता। नारद के कारण पूछने पर नारायण ने उत्तर दिया—

एक बार युवती तुलसी ने तीर्थों का भ्रमण करते-करते गंगा तट पर गणेश को देखा। तुलसी गणेश पर आकृष्ट हो गयी। उन्होंने गणेश को अपना स्वामी बनाना चाहा। अगाध बुद्धि-सम्पन्न गणेश ने हरि का स्मरण करते हुए विवाह को दु:ख का कारण बताया और तुलसी के परिणय को अस्वीकार कर दिया, अत: दु:खी तुलसी ने गणेश को शाप दिया कि गणेश का विवाह होगा ही नहीं। गणेश ने भी तुलसी को शाप दिया कि 'तुम असुर ग्रस्त होगी।' अन्त में तुलसी ने गणेश की स्तुति की। अत: प्रसन्न गणेश ने वर दिया कि तुम पुष्पों की सारभूत बनोगी और स्वयं नारायण की प्रिया बनोगी। तुम्हारी पूजा मनुष्यों के लिए मुक्तिदायिनी होगी। किन्तु अपने लिए तुलसी को उन्होंने त्याज्य ही बताया। तदनन्तर गणेश बदरीनाथ तप हेतु चले गये। तुलसी 'पुष्कर में निराहार रहकर दीर्घकालिक तप में संलग्न हो गई। वहीं असुर शंखचूड की पत्नी बनी। शिव ने त्रिशूल से उसका विनाश किया और नारायण-प्रिया तुलसी वृक्ष-भाव को प्राप्त हुई।

कार्तिकेय अथवा स्कन्द की कथा

पार्वती को एक दिन अपने पूर्व-रति-भंग का स्मरण हो गया। उन्होंने शिव के पतित-वीर्य-बिन्दु के विषय में जानना चाहा। धर्म ने कहा कि वह बिन्दु भूमि पर गिरा था किन्तु भूमि उसे धारण न कर सकी। भूमि ने उसे अग्नि में डाल दिया। अग्नि ने भी अक्षम होकर नर्मदा के तट पर उसे सरकण्डे के वन में डाल दिया। वह बिन्दु शिशु के रूप में, जो स्कन्द हुआ, छहो कृत्तिकाओं की दृष्टि में पड़ा। कृत्तिकाओं ने उसे बड़े प्रेम से ले जाकर पाला-पोसा। अब वह शिशु बड़ा हो गया था। देवताओं द्वारा यह वृत्तान्त जानकर पार्वती ने शिव को प्रेरित किया। शिव ने क्षेत्रपाल, भूत, बेताल,

ब्रह्म राक्षस, कूष्माण्ड आदि गणों को प्रेरित कर उनसे कार्तिकेय को लाने के लिए कहा।

कार्तिकेय को ज्ञात नहीं था कि उनकी माँ पार्वती हैं। रुद्र-गणों ने कृत्तिकाओं के भवन घेर लिये। कृत्तिकाएँ अपने पाल्य को अपने पास ही रखना चाहती थीं किन्तु नन्दिकेश्वर ने कृत्तिकाओं तथा कार्तिकेय को समझाया। अत: कार्तिकेय ने कृत्तिकाओं को अपनी मां मानते हुए पार्वती को भी माता स्वीकार किया। देवों के विशेष आग्रह पर और कृत्तिकाओं की स्वीकृति से कार्तिकेय शिवा के घर आये। कार्तिकेय के साथ कृत्तिकाएँ भी रथ पर आयीं। वे मूर्च्छित भी हो गयी थीं। बेचारी वियोग-व्यथा से अति व्यथित थीं। कार्तिकेय के शुभागमन से शिव-गण ही नहीं समस्त देवगण प्रसन्न हुए। शिव-पार्वती तथा विष्णु आदि देवों ने आशीर्वाद दिया। सभी देवों ने उत्तम उपहार दिया। कार्तिकेय का विवाह देवसेना, जो कि शिशुओं की रक्षा करने वाली है, के साथ हुआ। देवसेना का अन्य नाम महाषष्ठी है। शिव आदि समस्त देवों ने कार्तिकेय का अभिषेक भी सम्पन्न किया।

कुछ समय पश्चात् शिव ने पुन: देवों को बुला कर विधिपूर्वक गणेश-विवाह पुष्टि के साथ भी करा दिया।

पूर्वाध्ययन

गणेश के सम्बन्ध में ब्रह्म-वैवर्त ने जितना विस्तृत वर्णन किया है उतना अन्यत्र पुराणों में नहीं है। संक्षिप्त रूपेण अग्निपुराण और गरुड़ पुराण ने भी वर्णन किया है। गरुड़ ने गणेश के द्वादश नामों को बताया है। ये नाम हैं—गणपूज्य, एकदन्त, वक्रतुण्ड, त्र्यम्बक, नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराजक, धूम्रवर्ण, बालचन्द्र, विनायक, गणपति, हस्तिमुख। यद्यपि ये त्रयोदश नाम हैं। इन नामों में बालचन्द्र सम्भवत: भालचन्द्र है क्योंकि गणेश की कुछ मूर्तियाँ भालचन्द्र भी मिलती हैं।

गरुड़ पुराण में इसके पूर्व इसी अध्याय में गणेश के अन्य नाम भी हैं। ये नाम हैं—दीपोल्क, सिद्धोल्क, महाकर्ण, वक्रतुण्ड, गणपति, कूष्माण्डक, अमोघोल्क, श्यामदन्त, विकरालास्य, आहवेश, पद्मदंष्ट्रा, हस्तताल।

गणेश की पूजा से

(प्राप्नोति विद्यां श्रीं कीर्त्यायु: पुत्र सन्ततिम्।)[1]

विद्या, श्री, कीर्ति, आयु और सन्तान की प्राप्ति होती है।

गरुड़ पुराण के सौवें अध्याय में बताया गया है कि विनायक का कष्ट जिस पर होता है वह स्वप्न में गहरे जल में डूबता अथवा स्नान करता है, मुण्डों को देखता है। इसी अध्याय में विनायक-शान्ति का भी विधान किया गया है।

१. गरुड़ पुराण १२९।१६

अग्नि पुराण में भी गणेश की महिमा का गान किया गया है। अग्नि पुराण का दो सौ छाछठवाँ अध्याय तथा गरुड़ पुराण का सौवाँ अध्याय प्राय: समान ही हैं। कुल चार श्लोकों मात्र का अन्तर है, वह भी अन्तर ऐसा कि गरुड़ पुराण के सौवें अध्याय में १६ श्लोक हैं जबकि अग्नि पुराण के अध्याय में २० श्लोक हैं। अग्नि का विनायक-स्नान परिष्कृत अत: परवर्ती लगता है। मत्स्य एवं पलल (मांस) का प्रयोग अग्नि पुराण-पूजाविधि को वाम मार्ग प्रभावित भी प्रमाणित करता है।

गणेश के सम्बन्ध में वेदों में भी वर्णन मिलता है यद्यपि गणेश-सम्बद्ध कथाओं का कोई रूप नहीं प्रकट होता है। नाम अवश्य गणपति आता है (गणानांत्वा०)। अन्य नामों का सम्बन्ध विशेषणात्मक रूप से बाद में जुड़ा लगता है। महर्षि दयानन्द तथा उनके अनुकर्ताओं ने इन नामों का कुछ और ही अर्थ और व्याख्या की है।

यहाँ यह अवश्य विचारणीय है कि यदि यहाँ से गणपति शब्द ग्रहण किया गया है तो ब्रह्मणस्पति कैसे छूट गया। यह ऋग्वेद द्वितीय मण्डल का गणेश स्तुत्यात्मक मन्त्र है—

गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठ राजं ब्रह्माणं ब्रह्मणस्पत आन: शृण्वन्नूतिभि: सीदसादनम्॥

ब्रह्मन् शब्द का अर्थ वाणी है और ब्रह्मणस्पति का अर्थ वाणी का स्वामी है। वृहदारण्य-कोपनिषद में ब्रह्मणस्पति का यही अर्थ प्रदर्शित किया गया है।

'एष उ एव ब्रह्मणस्पतिर्वाग्वै ब्रह्म, तस्या एष पतिस्तस्माद् ब्रह्मणस्पति: वाग्वै वृहती तस्या एषपतिस्तस्माद् वृहस्पति:।'

गणेश को बाद में ज्येष्ठराज की संज्ञा यहीं से मिली है।

गणेश के रूप

गणेश के रूप के विषय में ब्रह्म-वैवर्त ने कोई विशेष विस्तार नहीं किया। ब्रह्म-वैवर्त ने विशेषत: उनके महत्व का ही वर्णन किया है।

भुजा

आचार्य बलदेव उपाध्याय मानते हैं कि प्रारम्भ में गणेश की द्विभुज मूर्तियों का ही प्रचलन था। ब्रह्मवैवर्त ने भी उनके चतुर्भुज रूप की कोई चर्चा नहीं की है।

पाश्चात्य महिला श्रीमती ए० गेट्टी ने गणेश पर एक बड़ी सुन्दर तथा रोचक पुस्तक लिखी है, जो सन् १९३६ में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुई है। इसमें उन्होंने गणेश की भुजाओं के विषय में बताया है कि गणेश की भुजाओं तथा उनमें धारण की हुई वस्तुओं के सम्बन्ध में तान्त्रिकों में मतभेद है। वृहत्संहिता में भी—

प्रमथाधिपो गजमुख: कुठार धारोस्यात् एकविषणोविभ्रन्मूलक

वर्णित है। यहाँ भी उन्हें चतुर्भुज नहीं दिखाया गया किन्तु इसे क्षेपक मानते हैं।[1] मत्स्यपुराण में गणेश की चतुर्भुज प्रतिमा का वर्णन है।[2] उड़ीसा में कुछ अष्टभुज प्रतिमाएँ भी मिली हैं।[3]

नेत्र

गणेश के नेत्रों के सम्बन्ध में ब्रह्म वैवर्त में कोई विशेष वर्णन नहीं है। तांत्रिक पूजा में इनके तीन नेत्र बताये गये हैं। गरुड़ पुराण ने भी इसका समर्थन किया है।

अग्नि पुराण तथा गरुड़ पुराण ने तन्त्र-पद्धति का प्रारम्भ किया है। गरुड़ पुराण का भालचन्द्र अथवा बालचन्द्र का प्रयोग तृतीय-नेत्र का स्पष्ट प्रमाण है।

दन्त

गणेश के दांत के सम्बन्ध में ब्रह्म वैवर्त की परशुराम कथा से पूर्णतः स्पष्ट है कि जो गज-मुण्ड गणेश पर संयोजित किया गया, उसमें पहले तो दोनों दांत थे, किन्तु परशुराम के द्वारा परशु प्रहार से वामदन्त भंग हो गया।

शिवपुराण में गणेश के दन्त-भंग की कहीं कोई चर्चा पृथक् नहीं है।

गरुड़ पुराण में यद्यपि एकदन्त नाम आया है, किन्तु उससे स्पष्ट नहीं है कि कौन दाँत नहीं है। गरुड़ की नामावलि की विशेषता यह भी है कि इसमें गणेश का श्यामदन्त और पद्मदंष्ट्र भी अभिधान है।

श्रीमती गेट्टी के अनुसार बायीं ओर दाँत वाली मूर्तियों की बहुलता है। किन्तु आजकल पूजा में प्रचलित विधि में गणेश का बाँया ही दाँत नहीं दिखाया जाता। गणेश के दोनों दाँत शिव पुराण के आधार पर ठीक हैं।

बायें दायें की अशुद्धि शिल्पियों की पौराणिक अनभिज्ञता में भी घटित हो सकती है। अशुद्ध हो क्यों नहीं, जब कोई क्रम चल पड़ता है तो कुछ न कुछ चला ही करता है।

नारद पुराण[4] ने गणेश चतुर्थी में विभिन्न मासों में श्री कृष्ण एवं उनके परिवार के रूप में गणेश पूजा का विधान किया है। किन्तु दाँत आदि की आंगिक चर्चा कुछ भी नहीं हैं।

---

१. आचार्य बलदेवोपाध्याय कृत पुराणविमर्श, पृ० ४६५

२. स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलं च तथापरे।
लड्डुकं परशुंचैव वामतः परिकल्पयेत्॥ —मत्स्य पु० २५६।५३

३. आचार्य बलदेवोपाध्याय कृत पुराणविमर्श, पृ० ४६५

४. नारद पुराण, पूर्व भाग च० पाद अ० ११३

गणेश-वाहन

ब्रह्म वैवर्त ने गणेश-वाहन मूषक बताया है। इस मूषक को वसुन्धरा ने गणेश को उपहार स्वरूप प्रदान किया।[1] यद्यपि आचार्य बलदेव उपाध्याय ने बताया है कि गणेश-वाहन मूषक की चर्चा किसी पौराणिक मूर्ति विधान में नहीं है।[2] किन्तु ब्रह्म वैवर्त मूषक-वाहन का पूर्णतः प्रमाण प्रस्तुत करता है। मुद्गल पुराण में भी मूषक की प्रतीकात्मक व्याख्या की गयी है—

ईश्वरः सर्वभूतानां चौरवत्तन संस्थितः।
तदेवं मूषकः प्रोक्तो मनुजानां प्रचालकः॥
मायया गूढ़रूपः सः भोगान् भुंक्ते हि चौर वत्।

गणेश-तिलक

एक आचार्य ने गणेश मूर्तियों में साधारणतया तिलक का विधान नहीं बताया है किन्तु ब्रह्म वैवर्त में विधान है कि विष्णु ने गणेश पूजा में गणेश को चन्दन अर्पित किया था।[3] चन्दन भी उत्तम प्रकार का—अगरु, कस्तूरी और कुंकुम का बताया गया है।

गणेश-प्रतिमा

श्रीमती ए० गेट्टी ने भारत की मूर्तियों में गणेश का एक सिर और नेपाल में इनकी मूर्तियों में पाँच सिर पाये जाते हैं, यह बताया है।

अमरावती से प्राप्त गणेश की प्रतिमा सबसे प्राचीन है। इसका समय दूसरी शती ईस्वी है।[4] इसी से कुछ समय बाद की मथुरा में एक गणेश मूर्ति मिली है।

गणेश की गुप्त कालीन चतुर्भुज प्रतिमा भूमरा से मिली है।[5] गुप्त काल तक किसी भी उपलब्ध प्रतिमा में गणेश का वाहन मूषक नहीं दिखाया गया है। पूर्व मध्य-कालीन, मध्यकालीन प्रतिमाओं में मूषक भी प्रदर्शित है। मूषकयुक्त प्रथम प्राप्त प्रतिमा उड़ीसा में मिली हैं।[6] उड़ीसा से गणेश की कुछ अष्टभुज प्रतिमाएँ भी मिली हैं।[7]

मध्य अमेरिका में मेक्सिको की खुदाई से निकली ३००० से भी अधिक हिन्दू-देवी-देवों की मूर्तियों में गणेश की भी मूर्ति है। यह खुदाई कोपन नामक स्थान पर हेविट साहब ने करायी। श्री मेकेंजी ने भी मेक्सिको में गणेश पूजन का उल्लेख किया है। वहाँ गणेश का नाम विराकांचा बताया गया है।

अमेरिका में मिली गणेश मूर्ति के विषय में 'हिन्दू अमेरिका' नामक अपनी पुस्तक में 'दीवान चम्मन लाल' ने उल्लेख किया है कि गणेश की आकृति लम्बा तुन्दिल गात्र, ऊपर हाथी का दोलायमान शुण्ड-दण्ड युक्त है।

---

१. ब्रह्म वै० ३।१३।१२ २. पुराण विमर्श, पृ० ४६५ ३. ब्रह्म वै० ३।१३।२२
४. पुराण विमर्श, पृ० ४६५ ५. वही, पृ० ४६५ ६. वही पृ० ४६५
७. वही, पृ० ४६५

एलोरा गुफा मन्दिर में गणेश हस्तिमस्तक है। पंचम शताब्दी में चीनी यात्री फाहियान को जावा में ब्राह्मण तथा बौद्ध श्रमण मिले थे। जावा में गणपति के स्वतन्त्र मन्दिर नहीं मिलते प्रत्युत शिव मन्दिर में ही इनकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं। किन्तु शिव की भाँति ये भी मुण्डमाल धारण करती हैं।

वर्मा तथा स्याम में काँसे की गणेश-प्रतिमाएँ अधिक लोकप्रिय हैं। कम्बोडिया (कम्बोज-हिन्द चीन) में गणपति मूर्तियों में स्थानीय कला के विशेष प्रभाव-स्वरूप अधिक परिवर्तन दिखाई पड़ता है। यहाँ अधिकतर चतुर्मुख मूर्तियाँ मिलती हैं और ये विशेषत: खड़े होने की मुद्रा में दिखायी जाती हैं।

स्कन्द पुराण के अनुसार—आचार्य उपाध्याय ने[1] बताया है कि 'काशी के सात आवरण हैं। प्रत्येक आवरण में आठ-आठ विनायक रक्षक हैं। इस प्रकार विनायकों की संख्या छप्पन बतायी गयी है। इनमे साक्षी विनायक भी हैं।' श्री कृष्ण का भी एक रूप साक्षी गोपाल का है।[2]

उपर्युक्त छप्पन गणेशों का वर्णन स्कन्द पुराण ने काशी खण्ड में किया है।

भुवनेश्वर मे लिंगराज-मन्दिर के पार्श्व में एक अति उत्कृष्ट गणेश की मूर्ति है।

षट्पंचाशद् गजमुखानेतान् य: संस्मरिष्यति।
दूरदेशान्तरस्थोपि संस्मृतो ज्ञानमाप्नुयात्॥
इमे गणेश्वरा: सर्वे स्मर्तव्या यत्र कुत्रचित्।
महाविपत्समुद्रान्त: पतन्तं पाति मानवम्॥[3]

उज्जैन, पिप्पलोदा और इन्दौर में भी विशाल मृण्मयी गणेश मूर्तियाँ हैं।

गणेश-सम्प्रदाय

महाभारत[4] में गणेश्वर और विनायक नाम आया है। इनकी गणना देवों में की गयी है। इन्हें मनुष्य के कार्यों का दर्शक बताया गया है। इन्हें सर्वव्यापी देव कहा गया है। इनकी प्रार्थना से मनुष्य के सारे दोष नष्ट हो जाते हैं।[5]

मानव-गृह्य सूत्र में गणेश के चार रूप[6] हैं— १. शालकटंकट, २. कूष्माण्ड राजपुत्र, ३. उष्मित, ४. देवयज्ञ।

याज्ञवल्क्य स्मृति में गणेश-पूजा-पद्धति और महत्व विकसित है।[7] उक्त स्मृति

---

१. वही, पृ० ४८८ २. यह मन्दिर वृन्दावन में है।
३. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड ५७।११५-१६ ४. अनुशासन पर्व १५१।२६
५. वही १५१।५७ ६. मानव-गृह्य सूत्र २।१४ ७. याज्ञवल्क्य स्मृति १।२७१

में एक ही गणेश के छः नाम अभिहित हैं। ये हैं—मित, सम्मित, शाल, कटंकट, कूष्माण्ड, राजपुत्र।

डा० भाण्डारकर का विचार है कि अम्बिका-पुत्र गणपति विनायक की चर्चा ईसवी पाँचवीं शताब्दी के अन्त से आठवीं शताब्दी के अन्त तक फैली होगी। याज्ञवल्क्य स्मृति भी ईसवी छठीं शताब्दी के पूर्व की रचना नहीं है।[1] जोधपुर से बाइस मील दूर उत्तर पश्चिम में घटियाल नामक स्थान पर एक स्तम्भ के शिर पर चारों भागों के सम्मुख गणेश की चार मूर्तियाँ हैं। नीचे शिला-लेख में गणेश की वन्दना प्रथम पङ्क्ति में अभिकीर्ण है। इस अभिलेख का समय विक्रम संवत् ९१८=ए० डी० ८६२ है।[2]

डा० भाण्डारकर का यह मत अब बहुत पीछे छूट गया। उड़ीसा में मिली मूर्ति से कम से कम यह समय दूसरी शती हो गया। जब मन्दिरों में मूर्तियाँ स्थापित की जांय इससे बहुत पहले गणेश की पूजा प्रचलित हुई रही होगी।

गणपति-सम्प्रदाय

आनन्द गिरि कृत शंकर दिग्विजय एवं धनपति कृत इसकी टीका में छः प्रकार के गाणपत्य सम्प्रदाय बताये गये हैं।[3] ब्रह्मदेव एवं अन्य देवों के विनष्ट होने पर महा-गणपति ही शेष रहते हैं। ये ब्रह्मदेव के भी निर्माता हैं।

यहाँ बताया गया है कि हेरम्बसुत उच्छिष्ट गणपति के उपासक थे। उच्छिष्ट-गणपति एक बाममार्गी सम्प्रदाय था, जो सम्भवतः शाक्त कौल-मार्ग से प्रभावित था। गणपति के जिस स्वरूप का ध्यान किया जाता था वह भी अभद्र था। इस सम्प्रदाय में जातिगत भेद-भाव नहीं था। मैथुन सम्पर्क अबाधित था। उन्हें शराब की भी छूट थी। उसके आराधक लाल चन्दन लगाते थे। सन्ध्या वन्दन भी कर्त्ता की इच्छा पर ही निर्भर किया गया। इस प्रकार गिरिजासुत, हेरम्बसुत और उच्छिष्ट गणपति इन तीनों के पश्चात् नवनीत, स्वर्ण और सन्तान ये भी तीन सम्प्रदाय गणेश के आराधक बने। अन्तर केवल इतना है कि ये नवनीत आदि गणेश मात्र की पूजा करते हैं, जबकि पहले के तीनों गणेश के साथ अन्य देवों को भी रखते हैं। उच्छिष्ट गणपति के अतिरिक्त किसी अन्य के बाममार्गी होने का भी सन्देह नहीं किया जाता। किन्तु छहों सम्प्रदाय तान्त्रिक[4] थे, जिसमें भिन्न-भिन्न गणपति की उपासना फल की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न रूपों में की जाती थी। इनकी उपासना, पद्धति भी पृथक्-पृथक् थी। इनका पूजा प्रकार रहस्यमय था जो कि तन्त्र-पद्धति की विशेषता ही है।

---

१. वैष्णविज्म शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलीजन, पृ० १४८ २. वही पृ० १४८

३. वैष्णविज्म शैविज्म ऐण्ड माइनर रिलीजन्स आफ इण्डिया, पृ० १४३

४. पुराण विमर्श, पृ० ४८८

आचार्य उपाध्याय ने जिन छः सम्प्रदायों का नाम बताया है वे नाम कुछ भिन्न हैं और इनकी आकृति रंग के आधार पर निश्चित है। ये निम्नलिखित हैं :—

नाम	रंग		आकार	
१. महागणपति	सम्पूर्ण अंग लाल		भुजाएँ दस	
२. ऊर्ध्व गणपति	,,	पीला	,,	छः
३. पिंगल गणपति	,,	,,	,,	,,
४. लक्ष्मी गणपति	,,	श्वेत	,,	चार या आठ
५. हरिद्रा गणपति	,,	हल्दी जैसा पीला	भुजा ४ नेत्र ३	
६. उच्छिष्ट गणपति	,,	लाल	भुजाएँ ४	

इनमें महागणपति, हरिद्रा गणपति तथा उच्छिष्ट गणपति की पूजा-विधि विशेष व्यापक थी। आजकल उपर्युक्त छहों सम्प्रदायों का अभाव-सा है।

जेम्स हेस्टिंग्ज कृत इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन ऐण्ड एथिक्स में बताया गया है कि ट्रावनकोर में होमपुर नामक स्थान में कुछ मन्दिर हैं, जहाँ देश की समृद्धि के लिए नित्य गणेश को आहुति एवं श्रद्धापूर्ण समर्पण किये जाते हैं।

कभी-कभी महागणपति हवन, जो कि बहुत व्यय-साध्य एवं कष्ट-साध्य भी होता है, मन्दिर में आयोजित किया जाता है।

उत्तर भारत में गणेश की पूजा संरक्षक देव के रूप में की जाती है, किन्तु दक्षिण भारत में विशेषतः ट्रावनकोर में गणेश जन-साधारण में उतने पूज्य नहीं हैं।

श्री जेम्स हेस्टिंग्ज ने एक घटना का भी उल्लेख किया है। ३०० वर्ष पूर्व बाम्बे प्रेसीडेन्सी में पूना के निकट चिचवाड़ा में मोरीवा नामक युवक की तपस्या से प्रसन्न होकर गणेश उसके घर आये और वरदानस्वरूप उसे आशीर्वाद दिया कि वे उस व्यक्ति में और उसके भावी सात पुश्त में निवास करेंगे। यहाँ मनुष्य के लिए मन्दिर बनाया गया। औरङ्गजेब ने तो इस मन्दिर के लिए कुछ ग्राम भी दान में दिये। इसी प्रकार आजकल काठमाण्डू (नेपाल) में कुमारी देवी का मन्दिर है। इसमें कन्या पूजित होती है। बारहवें वर्ष वह पुनः साधारण हो जाती है।

पेशवा लोग गणपति के उपासक थे। महाराष्ट्र में गणपति की उपासना आज भी प्रचुर मात्रा में होती है और गणेश-चतुर्थी (भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी) आज भी विशाल रूप में मनायी जाती है। मिट्टी की बनी हुई गणेश प्रतिमा भव्यतापूर्ण ढंग से विशाल आयोजनों के साथ सजाई जाती है। इस आयोजन का अन्य क्षेत्रों में भी विस्तार धीरे-धीरे हो रहा है।[1]

---

१. डा० भाण्डारकर, वै० शै० एण्ड मा० रि० आफ ऐ० इण्डिया, पृ० १४६

गणेश प्रसार

वैदिक धर्म की भाँति बौद्ध धर्म में भी गणेश का महत्व स्वीकार किया गया। अतः बुद्ध का एक नाम विनायक भी है। वज्र-धातु और गर्भ-धातु के रूप में भी विनायक की पूजा का विपुल-प्रचार दृष्टिगत होता है।

नेपाल में बौद्ध-धर्म में गणेश पूजा प्रचलित है। वहाँ से खोतान, चीनी, तुर्किस्तान तथा तिब्बत में भी गणेश की उपासना का प्रचार हुआ। खोतान आदि देशों में गणेश की नृत्यशालिनी मूर्ति नृत्य-गणपति का प्रचुर प्रचार है। नेपाल में गणेश हेरम्ब विनायक के भी नाम से जाने जाते हैं। विशेषता यह है कि इनके पाँच मुख हैं और वाहन मूषक के स्थान पर सिंह है। ये पाँच शिर एक साथ अथवा तीन पर दो अथवा चारों दिशाओं की ओर चार मुख और एक मुख ऊपर की ओर बना होता है।

तिब्बत में प्रत्येक मठ के अधिरक्षक देवता के रूप में गणपति की पूजा आज भी प्रचलित है।

बर्मा, स्याम और कम्बोडिया में भी गणेश पूजा प्रचलित है। बोर्नियो तथा बालि द्वीप में गणपति पूजा का विशेष प्रचार है।

चीन में भी गणेश पूजा का प्रवेश है। चीन के तान्त्रिक बौद्ध धर्म ने विनायक को ग्रहण कर लिया। इन्हें बौद्ध देवों में सम्मानपूर्ण स्थान मिला। विनायक बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के प्रतीक माने जाते हैं। वज्र-धातु की कल्पना में विनायक का विशेष प्रभाव है। चीन में गणेश की मूर्ति निम्नलिखित दो रूपों में विख्यात है—

१. विनायक —बौद्ध-सम्मत मूर्ति
२. कांगो तेन —गणेश की युगल मूर्ति

कांगो तेन मूर्ति इन पूर्वी प्रदेशों की विशेष कल्पना का परिणाम है। चीन में गणेश का प्रवेश चीनी तुर्किस्तान या नेपाल तिब्बत के रास्ते से हुआ होगा।

कोबो दाइशी (७७४-८३५ ई०) नामक विद्वान् ने सन् ८०४ में ज्ञान की खोज में चीन की यात्रा की और चीन देशीय बौद्धाचार्यों से दीक्षा लेकर विनायक का जापान में प्रवेश कराया।

अमोघ बज्र या अमोघ ज्ञान (सन् ७०५-७७४ ई०) एक भारतीय ब्राह्मण था जो सन् ७२० ई० में चीन की राजधानी लोयाङ् पहुँचा और वहाँ कुआङ्फू मन्दिर में उसे दीक्षित किया गया। चीनी सम्राट् ने उस पर विशेष कृपा दृष्टि की। अमोघ वज्र के प्रतिभावान् चीनी शिष्य 'हुई कुओ' (सन् ७४६-८०५ ई०) से कोबोदाइशी ने मन्त्रयान की दीक्षा ली। इसका रोपण तो चीन में हुआ किन्तु यह पुष्पित जापान में हुआ। कोबो सन् ८०६ ई० में जापान लौटा।[1] स्थानीय प्रसिद्ध शिंगोन सम्प्रदाय ने

---

१. 'कल्याण' वर्ष ४८, अंक १, पृ० ४५४, लेखक डा० लोकेश चन्द्र, डी० लिट्० रूपान्तरकर्ता—बाबूराम वर्मा।

इन्हें अपना लिया। शिंगोन मत ने तान्त्रिक मत होने के कारण रहस्यमयी कांगो तेन मूर्तियों का विशेष प्रचार किया। कांगो तेन मूर्तियाँ गजानन हैं। गजानन का प्रचार नवम शताब्दी में सम्भावित है। ये कांगोतेन गजानन मूर्तियाँ युगल मूर्ति होती हैं। दोनों मूर्तियों की पीठ एक साथ लगी होती है और मुख दो प्रतिकूल दिशाओं की ओर होता है। जापानी बौद्ध इन मूर्तियों को रहस्यमय तथा शक्ति और शक्तिमान का प्रतिपादक बताते हैं।[१]

सुदूर अमेरिका मेक्सिको में भी लम्बोदर गणेश की मूर्ति मिली है, जिसका वर्णन दीवान चम्मन लाल ने 'हिन्दू अमेरिका' में किया है।

इस प्रकार गणेश की पूजा उत्तरी मंगोलिया से लेकर दक्षिणी बालि तक तथा भारत से लेकर अमेरिका तक कम या अधिक अंश में भिन्न-भिन्न शताब्दियों में प्रचलित थी।

श्रीमती एलिस गेट्टी ने स्वीकार किया है कि विदेशों में गणेश-पूजा भारतीयों के साथ पहुँची।[२]

श्रीमती गेट्टी ने यह भी स्वीकार किया है कि गणेश के प्रति जो पूज्य-भाव पूर्वीयों का है वह उपेक्षणीय नहीं है :—

That we are incapable of judging the conception of eastern mind, seems proved when a writer looks upon the representation of the elephaat faced god with amusement rather than with comprehension.[३]

समीक्षा

ब्रह्म-वैवर्त में गणेश के इन विविध सम्प्रदायों का कोई परिचय नहीं मिलता है। गणेश को कृष्णांश के रूप में स्वीकार कर ब्रह्म-वैवर्त ने नवीन स्थापना की है। ब्रह्म-वैवर्त कृष्ण एवं गणेश की एकता का स्थापन करता है। गणेश कृष्ण के ही अवतार हैं। पार्वती की इच्छा-पूर्ति हेतु कृष्ण ने गणेश के रूप में अपना अद्भुत एवं अद्वितीय प्राकट्य करके गणेश की महिमा का ख्यापन किया है।

मोनियर विलियम्स ने बताया है कि श्री कृष्ण की समकक्षता में गणेश को लाने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता की भाँति गणेश-गीता भी एक प्रयास है।[४] गणेश-पुराण

---

१. पुराण विमर्श, पृ० ४६०

२. गणेश (A Monograph on the Elephant faced God) प्रकाशक—मुंशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली

३. 'Permentier' quoted by Alice Gatty in 'Ganesa', P. 87.

४. इण्डियन विज़्डम, लण्डन, १८७५, पृ० १३६

और तदन्तर्गत गणेश-गीता ने गणेश जी को ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी आगे बढ़ाया है।

गणेश पुराण के अनुसार चारों युगों के लिए पृथक्-पृथक् पूज्य गणेश की चार आकृतियां हैं—

१. महोत्कट विनायक—इन्हें वीर विनायक भी कहते हैं। ये सिंहारूढ़ दश-भुजाधारी और गजानन हैं।

२. श्री मयूरेश्वर—त्रेतायुग, कान्तिशुभ्र, भुजाएँ छः और वाहन मयूर बताया गया है।

३. श्री गजानन—द्वापर, इन्हें गौरी पुत्र भी पुकारा जाता है, अरुण वर्ण, चार भुजाएँ, मूषक वाहन।

४. धूम्रकेतु—अश्वारोही, दो भुजाएँ धूम्र वर्ण। (कल्कि अवतार भी कलियुग में अश्वारोही ही बताया गया है।)

मुद्गल पुराण में गणेश के आठ रूप चित्रित किए गये हैं। इन आठ नामों के साथ ही उन विभिन्न रूपों में किए गये गणेश के क्रिया-कलापों का भी वर्णन है। गणेश पुराण की भांति युगानुकूल कोई व्यवस्था मुद्गल पुराण में नहीं दी है—

१. वक्र तुण्डावतारश्च देहानां ब्रह्मधारकः।
मत्सरासुर हन्ता च सिंह वाहनगः स्मृतः॥
२. एक-दन्तावतारो वै देहिनां ब्रह्मधारकः।
मदासुरस्य हन्ता स आखुवाहनगः स्मृतः॥
३. महोदर इति ख्यातो ज्ञान ब्रह्म प्रकाशकः।
मोहासुरस्य शत्रु वैं आखु वाहनगः स्मृतः॥
४. गजाननः स विज्ञेयः सांख्येभ्यः सिद्धिदायक :।
लोभासुरप्रहर्त्ता वै आखुगश्च प्रकीर्तितः॥
५. लम्बोदरावतारो वै क्रोधासुर निवर्हणः।
शक्ति ब्रह्माखुगः सद्यत् तस्य धारक उच्यते॥
६. विकटो नाम विख्यातः कामासुर विदाहकः।
मयूरवाहनश्चायं सौर ब्रह्मधरः स्मृतः॥
७. विघ्नराजावतारश्च शेषवाहन उच्यते।
ममतासुर हन्ता स विष्णु ब्रह्मति वाचकः॥
८. धूम्रवर्णावतारश्चाभिमानासुर नाशकः।
आखुवाहन एवासौ शिवात्मा तु स उच्यते॥[१]

१. मुद्गल पुराण २०।५-१२

श्रीमद्भागवत में गणेश सम्बन्धित कोई विवेचन अथवा वर्णन नहीं किया गया है। सृष्टि विस्तार के प्रसंग में उत्पत्ति का कथन करते हुए बताया गया है कि रुद्र के पार्षद घोर भूत और विनायक हैं।[1] यहां यह भी स्मरणीय है कि विनायक शब्द का प्रयोग बहुवचन में किया गया है अतः विनायकों के गण का संकेत स्पष्ट है। "रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूत विनायकाः।"[2]

नारायण धर्म में अरिष्ट शमन की अभिलाषा से कूष्माण्डवैनायक की शान्ति के लिए प्रार्थना की गयी है।[3]

समुद्र मन्थन के अवसर पर भी गणेश का स्मरण 'समस्त विघ्नेश-विधि' शब्द में इस समस्त विघ्नेश का स्मरण हो जाता है किन्तु वस्तुतः इसका प्रयोग गणेश देव के लिए नहीं है।[4]

अतः शिवसूनु गौरीतनय संरक्षक गणेश की कोई अभिव्यंजना श्रीमद्भागवत में अप्राप्य है।

गणपत्यथर्वशीर्ष ने भी गणपति को ही कर्ता-हर्ता सब कुछ स्वीकार किया है।

ॐ नमस्ते गणपतये, त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि, त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्।[5]

गणेश पुराण तथा स्कन्द पुराण ने भी गणेश को सर्वेश्वर के रूप में देखा है :—

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं, निरानन्दमद्वैतमानन्दपूर्णम्।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं, परब्रह्म-रूपं गणेशं भजेम॥[6]

---

१. सरूपासूतभूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः।
रैवतो जो भवोभीमो वाम उग्रो वृषाकपिः।
अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपोमहानिति। रुद्रस्य पा०॥
—श्रीमद्भा० ६।६।१७-१८

२. "रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूत विनायकाः"—वही ६।६।१८

३. गदेऽशनिस्पर्शन विस्फुलिङ्गे निष्पिण्डि निष्पिण्ड्यजितप्रियासि।
कूष्माण्ड! वैनायक! यक्षरक्षोभूत-ग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन्॥
—श्रीमद्भा० ६।८।२४

४. विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो, दुरन्तवीर्यो वितथाभिसन्धिः।
कृत्वावपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार॥
—वही ८।७।८

५. गणपत्यथर्वशीर्ष उप०।

६. गणेश पुराण, उपासना खण्ड १३।३

गणेश के सम्बन्ध में की गयी गणेश पुराण की परिकल्पना से स्कन्द पुराण की दृष्टि भी नितान्त साम्य रखती है :—

त्वं कारणं परम कारण कारणानां, वेद्योऽसि वेद विदुषां सततं त्वमेकः ।
त्वं मार्गणीयमसि किंचन मूलवाचां, वाचामगोचर चराचर दिव्यमूर्त्ती ।।[1]

नारद पुराण ने गणेश को वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारों रूपों में देखने और ध्यान करने का विधान किया है । इस प्रकार नारद पुराण ने ब्रह्म वैवर्त की ही प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है ।[2]

विश्वकोष में बताया गया है कि पश्चिम में रोमनों के देवता जेनस का नाम गणेश के समकक्ष है । जब कभी अटालवी या रोमन लोग पूजा करते थे तो इसी जेनस देवता का नाम सर्वप्रथम लिया करते थे ।

हमारी कथा यूरोप पहुँची और वहाँ भी गणेश प्रथम रहे । आजकल वर्ष के प्रथम मास को अंग्रेजी में जनवरी जेनस की ही स्मृति में कहा जाता है । अठारहवीं शती के संस्कृतज्ञ विलियम जोन्स ने लिखा है कि जितनी विशेषताएँ श्री गणेश में पाई जाती हैं वे सब जेनस में भी दिखायी देती हैं ।

यौगिक-दृष्टि से भी गणेश का विशेष महत्व है । मूलाधार चक्र के प्रतीक गणेश हैं । योग-साधना में मूलाधार चक्र की सिद्धि का प्रथम स्थान है ।

किंच मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मणिपूरकानाहत विशुद्ध्याज्ञा सहस्रारेषु चतुर्दल-षड्दल-दशदल-द्वादशदल-षोडशदल-सहस्रदलेषु स्थिताः गणपति-ब्रह्म-विष्णु-शिव जीवात्म-गुरु-परमात्मनः सन्ति देह धारिणः । अतो गणपतेर्मूलाधारगतस्य सर्वाधारत्वं वर्तते ।[3]

गणेश का अभिप्राय इन्द्रिय गणों के स्वामी से भी है । इन इन्द्रियों में पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और चार अन्तःकरण हैं ।

गण का अभिप्राय वर्णमाला अथवा अक्षरगण से भी है । श्रीमती गेट्टी ने इसे भी स्वीकार किया है—

Prabodh Chandra Bagchi suggests that Ganesh was associated with writing because of a confusion in regard to the word Siddhi from very ancient times. The Hindu alphabet was called Siddham and the enumeration of the alphabet began with the word Siddhi.

---

१. स्कन्द-पुराण, काशी खण्ड ५७।३० २. नारद-पुराण, पूर्व भाग, चतुर्थ पाद ११३ अ०
३. आनन्द गिरि, शंकराचार्य, मद्रास विश्वविद्यालय, फिलासफी सिरीज, पृ० ८४ ।

As one of the epithets of the Ganesh is 'Siddhidāta' giver of suceess, he believes it to prove that his association with the word gave rise to the legends depicting him as ascribe.[1]

निःसन्देह विद्यारम्भ में आज भी पट्टी पर 'ॐ नमः सिद्धम्' लिखा कर अक्षरारम्भ होता है। इस प्रकार गणेश का सम्बन्ध विद्या से भी जुड़ा हुआ है और ब्रह्मणस्पति शब्द गणेश के प्रति पूर्ण सार्थक घटित होता है।

गणेश और ब्रह्मणस्पति को एक मानकर ही शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार श्री हरि स्वामी के गुरु स्कन्द स्वामी ने, जो संवत् ६८७ में विद्यमान थे, अपने ऋग्वेद के भाष्य में मंगलाचरण किया है :—

विघ्नेश-विधि-मार्तण्ड-चन्द्रेन्द्रोपेन्द्रवन्दित ।
नमो गणपते तुभ्यं ब्राह्मणां ब्रह्मणस्पते ।।[2]

शंकराचार्य (६८८-७२० ई०) और गौडपादाचार्य गणेश को मानते थे। शंकराचार्य ने तो गणेश स्तोत्र की ही रचना की है। उनके गुरु माण्डूक्य-कारिका के प्रणेता गौडपादाचार्य ने सप्तशती के भाष्य चिदानन्द-केलि-विलास के मंगलाचरण में पहले ही श्री गणेशायनमः के द्वारा प्रारम्भ किया है। उससे आगे यह श्लोक है—

गुरुं गणपतिं दुर्गां वाणीं महिषमर्दिनीम् ।
ध्यात्वा सप्तशतीं देव्याः व्याकुर्वे विदुषां मदे ।।

यहां गणपति के पूर्व गुरु की प्रार्थना द्रष्टव्य है।

यद्यपि डा० भाण्डारकर ने गणेशार्चा को बहुत परवर्ती स्वीकार किया है किन्तु यह नितान्त भ्रम है। इस सम्बन्ध में अब बहुत प्राचीन गणेश की मूर्तियाँ मिल रही हैं। सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ रायबहादुर दयाराम साहनी ने जयपुर राज्य में साँभर झील के तटवर्ती एक टीले के निम्न स्तर में खुदाई के फलस्वरूप द्विभुज गणेश, अग्नि और शिव की पकी मिट्टी की मूर्ति खोज निकाली है। साथ ही ग्रीक राजा ऐण्टीमेकोस निकोफर (१३० ई० पू०) की मुद्रा भी उपलब्ध हुई है। अतएव यह मूर्ति अति प्राचीन है तथा ई० पू० द्वितीय शताब्दी से परे की नहीं है।[3]

पाणिनीय अष्टाध्यायी के 'इवेप्रतिकृतौ' (५।३।९६) तथा 'जीविकार्थे चापण्ये (५।३।९९) सूत्रों के भाष्य में पतंजलि ने तथा कैयट ने (द्वितीय तृतीय शताब्दी ई० पू०) शिव, स्कन्द, विशाख और गणपति की मूर्तियों का उल्लेख किया है। वास्तव में कैयट ने जो लिखा है उसके भी पूर्व यह मूर्ति-क्रय-विक्रय गुरु-शिष्य परम्परा

१. ए० गैट्टी—गणेश, प्रथम अध्याय २. स्कन्द स्वामी—ऋग्वेद भाष्य।
३. कल्याण, १९७४ गणेशांक, 'वैदिक देवता ज्येष्ठराज गणेश', पृ० ९९

द्वारा कहा गया होगा । अत: ई० पू० द्वितीय शतक से पूर्व गणेशार्चा में कोई सन्देह नहीं उपस्थित होता है ।

बंगदेश में चौबीस परगना जिले में चन्द्रकेतु गढ़ में गणेश और शक्ति की पकी मिट्टी की मूर्ति (इंच आकार की) पायी गयी है । विशेषज्ञों के मत से यह ई० पू० द्वितीय शताब्दी की है ।

उपर्युक्त तथ्यों का विचार करते हुए ऐसा अवगत होता है कि ब्रह्मवैवर्तीय गणेश खण्ड प्राचीनतम है । वह इन परवर्ती भेद-प्रभेदों, मतमतान्तरों से अप्रभावित है । इतना अवश्य है कि गणेश को जो महत्व प्राप्त हो गया था और अग्रपूजा की पद्धति पर जो सर्वश्रेष्ठत्व मिला था उसे श्री कृष्ण में समाहित करने का सफल प्रयास किया गया । वास्तव में ब्रह्मवैवर्त का लक्ष्य भी है—

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः ।
आविर्बभूवु: प्रकृति ब्रह्म विष्णु शिवादय: ।।

श्री कृष्ण से ही सम्पूर्ण प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि तो पैदा हुए हैं ।

महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज ने भी स्वीकार किया है कि गणेश सम्बन्धित सम्पूर्ण कथाओं की आलोचना करने से ज्ञात होता है कि वैचित्र्य के साथ-साथ सबमें एक प्रकार का साम्य है । श्री कविराज जी ने गणेश के हस्तिशुण्ड को प्राचीन युग के चिन्तन का निदर्शन स्वीकार किया है ।[1]

गणेश एवं उनकी अर्चा

ब्रह्म-वैवर्त पुराण में भी गणेश पूजा-पद्धति वर्णित की गयी है । गणपति खण्ड के तेरहवें अध्याय में यह विधान वर्णित है । प्रथम गणेश-पूजा स्वयं विष्णु ने की है । नारायण ने नारद से कहा है कि अनुत्तम उपहारों से देव-मुनियों के साथ शुभ काल में विष्णु ने उस हस्तिमुख बाल-गणेश की प्रथम पूजा की ।[2] विष्णु ने गणेश को अग्रपूजा का वरदान दिया—

सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम ।
सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम् ।।
वनमालां ददौ तस्मै ब्रह्मज्ञानं च मुक्तिदम् ।
सर्वसिद्धिं प्रदायैव चकारात्मसमं हरि: ।।[3]

विष्णु ने निम्नलिखित आठ नामों से गणेश की अभ्यर्थना की थी—

विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः ।
लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः ।।[4]

---

१. कल्याण, १९७४ गणेशांक, 'सिद्धिदाता गणेश'

२. ब्रह्म वै० २।१३।१ ३. वही २।१३।२-३ ४. वही २।१३।५

(१. विघ्नेश, २. गणेश, ३. हेरम्ब, ४. गजानन, ५. लम्बोदर, ६. एकदन्त, ७. शूर्पकर्ण एवं ८. विनायक)

विष्णु ने गणेश को मुनियों से आशीर्वाद दिलाया। गणेश-पुनरुज्जीवन की प्रसन्नता में आशीर्वादप्रदायी देव-मुनियों ने बाल गणेश को उत्तम उपहार भी प्रदान किया।

नीचे विभिन्न देव मुनियों के द्वारा प्रदत्त उपहार उनके नाम के सम्मुख अंकित हैं—

देव-नाम	वस्तु	देव-नाम	वस्तु
धर्म	सिंहासन	वायु	रत्नाङ्गुलीयक
ब्रह्मा	कमण्डलु	लक्ष्मी	१. वलय, २. मंजीर,
शंकर	१. योगपट्टी, २. तत्वज्ञान		३. केयूरक
शक्र	रत्न-सिंहासन	सावित्री	कण्ठभूषा (कण्ठा
सूर्य	मणिकुण्डल		अथवा कठुला)
चन्द्र	माणिक्य-माला	भारती	हार
कुबेर	किरीट	सभी देव और देवियां	यौतुक
हुताशन	वह्नि शुद्ध वसन	मुनि और पर्वत	अनेकों रत्न
वरुण	रत्न-छत्र	वसुन्धरा	वाहनार्थ मूषक

उपर्युक्त उपहारों के अतिरिक्त भी सभी देवों ने स्वादिष्ट एवं मधुर पदार्थों से भक्ति-भाव-पूर्वक पूजा की।

मुस्कराती हुई जगत की माता पार्वती ने रत्न के सिंहासन पर पुत्र को वासित किया। रत्नकलश में सभी तीर्थों का जल रखकर उससे स्नान कराया। स्नान के समय मुनिगण वेद-मन्त्रों का पाठ कर रहे थे। स्नान के पश्चात् वह्निप्रदत्त अग्नि-शुद्ध-वसन सती ने गणेश को पहनाया। गोदावरी के जल का पाद्य, गंगा के जल का अर्घ्य और दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दन से युक्त पुष्कर (तीर्थ) के जल से आचमन कराया। पार्वती ने बहुमूल्य रत्नरचित अलंकारों, पूजायोग्य चन्दनागुरु कस्तूरी कुंकुमादि और रत्नप्रदीप भी प्रदान किया। तिल, यव, गेहूँ, पक्वान्न तथा स्वस्तिकों से निर्मित शर्करा मिश्रित लड्डुओं का पर्वत प्रदान किया। गुड़ से लिपटे लाजो (लावा भूना अनाज—बिना उबाले और बिना छिलका निकाले), पृथुक (चिउड़ा) और शालि के पिष्टकों (पेठों) के भी पर्वतों का दान व्यंजनों के सहित किया। गणेश-माता ने दुग्ध, दधि, मधु और घृत से भरे लाखों कलश प्रदान किये। मधु के तीन लाख और घृत के पाँच लाख स्वर्ण कुम्भ प्रदान किये गये।

माता ने दाडिम, श्रीफल (बिल्व), खजूर, कपित्थ, अनेकों प्रकार के जम्बू, आम, पनस (कटहल), कदली और नारियल के असंख्य फलों का दान किया। इसके अतिरिक्त कालदेशोद्भव स्वादिष्ट मधुर फलों को भी प्रदान किया। तदनन्तर कर्पूरादि सुवासित स्वच्छ निर्मल गंगा जल का आचमन कराया। कर्पूरादि समन्वित उत्तम ताम्बूल अनुपानार्थ सौ स्वर्ण-पात्र में चूर्ण प्रदान किया।

उपर्युक्त विधि से पार्वती, हिमालय, अन्य पर्वत पुत्र, हिमालय के पुत्र, हिमालय की पत्नी और उनके अमात्यों ने पार्वती-पुत्र की पूजा की।

शैलेश्वरो शैलराजः शैलजः शैल राजजः।
शैलराजप्रियामात्याः पूपुजुः शैलजात्मजम् ॥[1]

गणेश-पूजा हेतु जिस मन्त्र का प्रयोग किया गया वह बत्तीस अक्षरों वाला है (अनुष्टुप-छन्द)—

ऊ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेशाय, ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्व सिद्धि प्रदेशाय, विघ्नेशाय नमो नमः ॥

इस मन्त्र की सिद्धि के लिए पाँच लाख जप करना बताया गया है। सर्व-सिद्धियों की प्राप्ति इसका फल है।

गणेश-पूजन-उत्सव में अनेकों प्रकार के वाद्य बज रहे थे। ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। ब्राह्मणों तथा बन्दियों (चारण) को दान दिया गया।

अन्त में बिष्णु ने दश श्लोकों से गणेश-स्तुति की है (इनमें नौ अनुष्टुप् तथा दसवाँ गाथा छन्द है।)[2]

स्तुति के पश्चात् दशश्लोकी[3] गणेश-कवच को विष्णु ने शनैश्चर की प्रार्थना पर प्रदान किया जो पूजनोपरान्त पाठ्य हुआ। इसका प्रयोग यन्त्र की भाँति करना भी बताया गया है।

शिव पुराण में गणेश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बताया गया है कि पार्वती को यह आभास हुआ कि जितने भी सेवक हैं सभी शिव के ही परम उपासक हैं। कोई ऐसा नहीं जो मेरी आज्ञा की रेखा मात्र भी क्षीण न होने दे। क्योंकि एक दिन नन्दी को द्वार पर रक्षार्थ निर्धारित कर पार्वती अन्दर स्नान कर रही थीं कि शिव जी आये और अन्दर तक चले गये। शिव ने नन्दी को डाँट दिया। बेचारे पहरेदार का साहस कहाँ? शिव को रोके! और नन्दी!! वह तो शिव भक्त जो ठहरा। अतः पार्वती ने आज्ञाकारी गणेश की रचना की।

---

१. ब्रह्म वै० २।१३।३१ २. वही २।१३।४१-५० ३. वही २।१३।८०-८८

ततः कदाचिन्मज्जत्यां पार्वत्यां वै सदाशिवः।
नन्दिनं परिभर्त्स्याथ ह्याजगाम गृहान्तरम्।[1]

मदीयः सेवकः कश्चिद् भवेच्छुभतरः कृती।
मदाज्ञया परं नान्यद्रेखामात्रं चलेदिह ॥१९॥

विचार्येति सा देवी वपुषो मलसम्भवम्।
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसयुतम् ॥२०॥

सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयव सुन्दरम्।
विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रम् ॥२१॥

वस्त्राणि च तदा तस्मै दत्त्वा सा विविधानितु।
नानालंकरणं चैव बह्वाशिषमनुत्तमाम् ॥२२॥

मत्पुत्रस्त्वं मदीयो सि, नान्यः कश्चिदिहास्ति मे।
× × × ॥२३॥

हे तात शृणु मद्‌वाक्यं द्वारपालो भवाद्य मे॥
मत्पुत्रस्त्वं मदीयोऽसि नान्यथा कश्चिदस्ति मे॥२५॥

इत्युक्त्वा च ददौ तस्मै यष्टिं चातिदृढां मुने।
तदीयं रूपमालोक्य सुन्दरं हर्षमागता ॥२७॥

मुखमाचुम्ब्य सुप्रीत्यालिंग्य तं कृपया सुतम्।
स्वद्वारि स्थापयामास यष्टिपाणिं गणाधिपम् ॥२८॥[2]

पार्वती के पूर्ण आज्ञापालक गणेश अब द्वारप के रूप में अवस्थित हो चुके थे। किन्तु शिव ने पहले की ही भाँति रोकने पर गणेश को भी—

मूर्खोऽसि त्वं न जानासि शिवोऽहं गिरिजापतिः।
स्वगृहं यामि रे बाल! निषेधसि कथं हि माम् ॥[3]

कहकर डाँट दिया। किन्तु अम्बिका-तनय शिव को क्या समझें। देवगण, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु, गरुड़ आदि देवगण तथा शिव अपने रुद्रगणों सहित थे सभी युद्धस्थल में उतर पड़े, किन्तु गणेश अटल रहे। अतः विष्णु और शिव ने मिलकर प्रहार करना प्रारम्भ किया। इतने में अवसर पाकर, जबकि विष्णु पर प्रहार करने में अम्बिका-प्रदत्त यष्टि फँसी थी, शूलपाणि शिव ने अपने त्रिशूल से उत्तर भाग में आघात कर गणेश का शिरः कर्तन कर दिया।

---

१. शिव पुराण, रुद्र संहिता, कुमार खण्ड, अ० १३, श्लोक १५
२. वही, श्लोक १९-२२, २४, २५, २८ ३. वही, श्लोक ३६

एतदन्तरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे ।
आगत्य च त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृन्तत ॥[1]

अतः क्रोधित पार्वती ने अपनी शक्तियों को आदेश किया कि—वे प्रलय मचा दें। देव, ऋषि, यक्ष, राक्षस, अपने, पराये क्या, सबका संहार कर दें।

हे शक्त्योऽधुना देव्यो युष्माभिर्मन्निदेशतः ।
प्रलयश्चात्र कर्तव्यो नात्र कार्या विचारणा ॥[2]

अब तो आदेश पाते ही सबों ने देवों आदि को निगलना प्रारम्भ कर दिया—

कराला कुब्जका खंजा लंबशीर्षा ह्यनेकशः ।
हस्ते धृत्वा तु देवांश्च मुखे चैवाक्षिपंस्तदा ॥[3]

अन्त में पराजित देवर्षिगण चण्डिका पार्वती के सम्मुख अंजलिबद्ध प्रार्थना करने लगे तो अम्बिका ने कहा कि यदि मेरा पुत्र जीवित होकर आप लोगों के मध्य सर्वाध्यक्ष हो तभी यह संहार बन्द होगा।

मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं नहि ।
यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति ॥
सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि ।
तदा शान्तिर्भवेल्लोके नान्यथा सुख माप्स्यसि ॥[4]

शिव ने सर्वलोक-स्वास्थ्य-हेतु देवों से पुत्र के पुनर्जीवन के लिए बताया कि उत्तर दिशा में जाकर पहले जो मिले उसका सिर इसके शरीर से जोड़ दिया जाय तो कार्य सिद्ध हो जाय।

उत्तरस्यां पुनर्यायात् प्रथमं योमिलेदिह ॥
तच्छिरश्च समानीय योजनीयं कलेवरे । [5]

अतः वे शिवाज्ञा प्रतिपालक उत्तर दिशा में गये। उन्हें पहले हाथी मिला। वह एकदन्त था। उसका शिर गणेश का कलेवर धोकर उससे जोड़ दिया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने उसे जल से अभिमन्त्रित किया। गणेश सोकर जैसे जाग पड़े।

तज्जलस्पर्शमात्रेण चिद्युतो जीवितो द्रुतम् ॥
तदोत्तस्थौ सुप्तश्व स बालश्च शिवेच्छया ॥

---

१. शिव पुराण, रुद्र संहिता, कुमार खण्ड, अ० १५, श्लोक ३४।
२. वही, अ० १७, श्लोक १०। ३. वही, अ० १७, श्लोक १६।
४. वही अ० १७, श्लोक ४२-४३ ५. वही, श्लोक ४७।

सुभगः सुन्दरः गजवक्त्रः सुरक्तकः।
प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः॥

अम्बिका प्रहृष्ट हो उठीं। गणाध्यक्षों के द्वारा गणेश अभिषिक्त किये गये—

अभिषिक्त स्तदा देवै र्गणाध्यक्षै र्गजाननः॥[1]

अम्बिका ने विविध वस्त्र और नाना अलंकारों को प्रेमपूर्वक प्रदान किया। माता की सिद्धियों ने प्रेम से सुत का स्पर्श किया। माँ ने सुत का मुख-चुम्बन किया, सर्वाग्र पूजा का आशीष दिया। और यह भी कहा कि—

आनने तव सिन्दूरं दृश्यते साम्प्रतं यदि।
तस्मात्त्वं पूजनीयोऽसि सिन्दूरेण सदा नरैः॥[2]

पुनश्च अम्बिका ने आशीष दिया कि जो व्यक्ति पुष्प, चन्दन, गन्ध, नैवेद्य, नीराजन, ताम्बूल, दान, परिक्रमा और नमस्कार से तुम्हारी पूजा करेगा उसके समस्त विघ्न नष्ट हो जायेंगे। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने विघ्न-हर्त्ता एवं सर्वकाम फलप्रद होने का आशीर्वाद दिया।

अन्त में गणेश को सर्वाध्यक्ष किया गया।

सर्वे मिलित्वा तत्रैव ब्रह्म विष्णुहरादिभिः।
सगणेशः शिवा तुष्ट्यै सर्वाध्यक्षो निवेदितः॥[3]

शिव पुराण में गणेश-पूजा के सम्बन्ध में यह भी शिव ने बताया है कि मार्गशीर्ष मास में रमा-चतुर्थी को उपवास करके दूर्वा से रात्रि के प्रथम प्रहर में गणेश-पूजा करना चाहिए। पूजा में मूर्ति धातु की, प्रवाल की अथवा श्वेत अर्क की निर्मित मार्दव होना चाहिए। और दूर्वा-वितस्ति मात्र तथा त्र्यंगा हो किन्तु मूल न हो। संख्या १०० या २१ हो।[4]

समीक्षा की दृष्टि से विचार करने पर यह निश्चय हो जाता है कि गणेश-जन्म के कारणों में जो भी अन्तर हो किन्तु मुख्य घटनाओं में अत्यन्त साम्य है। शिव पुराण में पार्वती के शरीर मल से गणेश की उत्पत्ति है। गणेश की उत्पत्ति है तो ब्रह्मवैवर्त में भी किन्तु पुण्यक व्रत प्रभाव से श्री कृष्ण कृपा से, पूर्वोक्त में ब्रह्म वैवर्त का रूप परिष्कृत-सा है। गर्भ से उत्पन्न दोनों पुराणों में नहीं बताया गया है। दोनों में प्रादुर्भाव विलक्षण ही है।

---

१. शिव पुराण, रुद्र संहिता, कुमार खण्ड, वही, अध्याय १८, श्लोक ३।२
२. वही, अध्याय १७, श्लोक ४७ ३. वही अ० १८, श्लोक २७।
४. वही, अ० १८, श्लोक ४०-४७।

गणेश शिरःकर्तन में भी मुख्य रूप से पार्वती का अहंकार ही कारण बनता है। ब्रह्म वैवर्त में शनैश्चर के समझाने पर भी पार्वती मानती नहीं प्रत्युत शनि को दृष्टि डालने के लिए बाध्य ही करती हैं। शिव पुराण में सेविका के बताने पर भी पार्वती मानती नहीं। गणेश को शिव विष्णु आदि देवगणों से युद्ध में भिड़े रहने देती हैं क्योंकि अपनी शक्ति एवं पुत्र पर अभिमान है।

सिर कट जाने पर दोनों पुराणों में पार्वती का कोप दिखाया गया है। किन्तु भगवान शिव दोनों में अडिग बैठे हैं। ब्रह्म वैवर्त में विष्णु शिर लाते हैं तो शिव पुराण में शिव के अतिरिक्त देवगण। इसमें विष्णु को लाने वालों से पृथक् नहीं किया जा सकता।

ब्रह्म-वैवर्त में गणेश की सर्वाध्यक्षता विष्णु आदि सभी देवों से समर्थित है तो शिव पुराण में भी सर्वाध्यक्षता सभी देवों से समर्थित है।

गणेश की अग्रपूजा बलराम एवं श्री कृष्ण के उपनयन के पूर्व सभी देवों के शुभागमन सत्कार के पश्चात् नन्द जी ने की।

रत्नसिंहासने रम्ये सर्वेषां मध्यदेशतः ।।५३।।

गणेशं वासयामास पूजार्थं शुभ कर्मणि।
सप्ततीर्थोदकेनैव सुवर्णकलशेन च ।।५४।।

पुष्प-चन्दन-युक्तेन शीतेन वासितेन च।
स्वर्ग-गंगा-जलेनैव पुष्करोदक पुण्यतः ।।५५।।

पंचामृतेन शुद्धेन पंच-गव्येन भक्तितः।
हेरम्ब स्नापयामास समुद्रोदेन भक्तितः ।।५६।।

वरयामास माल्येन पारिजातस्य नारद।
रत्नेन्द्र भूषणेनैव वह्नि-शुद्धेन वाससा ।।५७।।

गन्ध-चन्दन-पुष्पैश्च रत्नमाल्याङ्गुलीयकम्।
तुष्टाव पार्वती पुत्रं सर्व देवाधिपं शुभम्।
विघ्ननिघ्नकरं शान्तं भगवन्तं सनातनम् ।।५८।।[1]

शिव-पुराण की मूर्ति-पूजा विधान में कुछ विशेष अवश्य है। ब्रह्म वैवर्त में प्रवाल अथवा श्वेतार्क मूर्ति का कोई वर्णन नहीं है। ब्रह्म-वैवर्त में दूर्वा की संख्या अथवा प्रमाण का भी कोई वर्णन नहीं। किन्तु ब्रह्म-वैवर्त का गणेश-कवच एवं गणेश-स्तोत्र एवं मन्त्र गणेश भक्तों के हृदय के लिए परम आश्रय है।

इस प्रकार गणेश जन्म के सम्बन्ध में पौराणिक साम्य अधिकतर है। कुछ

१. ब्रह्म वै० ४।२।६९।५३-५८

उत्तरोत्तर निरन्तर ऐसी वृद्धि हुई कि आज हास्यप्रद भी हो गयी है। किसी वस्तु का दान अथवा तपवर्ष का वर्णन किया गया तो कुछ पुराणों ने हजार और लाख से कम लिखना जैसे सीखा ही नहीं।

भाषा और भाव की सुगमता ही व्यास शैली की विशेषता है। साधारण जन से विशिष्ट विद्वान तक श्रोतृ-मण्डल में उपस्थित होते हैं। व्यास आनुष्टभ् धारा में सबको रसाप्लावित करते-करते कभी-कभी ललित रागमय छन्दों से भावावर्त भी पैदा कर देते हैं। भक्तिमय विभिन्न कण्ठस्थ श्लोक भावसंवलित हृदय से ललित कण्ठराग-रंजित होकर भावना की प्रगाढ़ता को अभिव्यंजित करने में पूर्ण सफल रहे। श्रवणामृत पान कराने की कला आज भी देखने को मिलती ही है जो श्रोता को विमुग्ध एवं विवश कर देती है।

एक समय ऐसा भी था जब पुस्तकें अल्प और पाठक अधिक थे। अतः इन व्यासों की कृपा से पुस्तक की अल्पता भी खलती नहीं थी, प्रत्युत एक साथ संगति भी प्राप्त हो जाती थीं।

लेखक सुन्दर लेख लिखने वाले होते और शुद्धता पर भी वे विश्वास दिला सकते तो लिखते थे। किन्तु ये प्रायः संस्कृत भाषा के पण्डित होते थे, इन्हें बोलकर भी लिखाया जाता रहा होगा। अतः कुछ इधर का उधर भी होना सम्भव था, क्योंकि अधिक कण्ठस्थ-तत्वों के मिश्रित होने में किसी आयास की आवश्यकता नहीं होती। इस सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्त में दो स्थल ऐसे हैं जिन्हें देखा जा सकता हैं। श्रीमद्भा० तृतीय स्कन्ध के अठाइसवें अध्याय में २१, २२, २७, २९वें श्लोकों में भगवान के ध्यान के विषय में पंक्ति है "संचिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्"। यह पंक्ति भक्ति के ही सम्बन्ध में ब्रह्मवैवर्त के ब्रह्म खण्ड के अन्त तीसवें अध्याय में एक से छः तक के श्लोकों में भी है।

इसी प्रकार भाव-साम्य के उदाहरण में श्रीमद्भागवत के दत्तात्रेय प्रसंग में 'परिग्रहो हि दुःखाय'[1] अथवा 'गृहारम्भोहि दुःखाय'[2] के स्थान पर ब्रह्म वैवर्त में नारद जी 'दारग्रहो हि दुःखाय'[3] मानते हैं।

ब्रह्म वैवर्त महापुराण श्री राधा कृष्ण-भक्ति का जनक है। कृष्ण-कथा सम्बन्धित पुराणों में श्री मद्भागवत महापुराण श्री कृष्ण भक्ति का परम आधार है। किन्तु दोनों में एक वैलक्षण्य यह भी है कि प्रथम विष्णु के दशावतारों और विशेष विस्तार से श्री कृष्ण की कथा कहता है तो दूसरा ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रकृति (पंच) और गणेश विशेषतः राधा-कृष्ण की कथा कहता है।

ब्रह्म वैवर्त राधा-भक्ति का सर्वश्रेष्ठ आधार है। ब्रह्म वैवर्त ने राधा-कृष्ण का जो रूप प्रस्तुत किया वह भक्तजनों का अभीष्ट बन गया। ब्रह्म वैवर्त के प्रत्येक

१. श्रीमद्भा० १२।८।१ २. वही १२।९।१५ ३. ब्रह्म वै० १।२३।२०

अध्याय में राधा-कृष्ण-भक्ति का उत्स प्रकट है। वास्तव में कृष्ण के बिना राधा और राधा के बिना ब्रह्म वैवर्त और ब्रह्म वैवर्त के बिना राधा-कृष्ण की भक्ति पूरक की ही अपेक्षा में होंगे क्योंकि ये एक दूसरे से पृथक् तो अपूर्ण ही होते हैं। इनके पार्थक्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ये सभी अन्योन्याश्रयी हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में बड़ी निपुणतापूर्वक शैव-शाक्त-गाणपत्य-पांचरात्र-वैष्णव मतों का समन्वय करते हुए सर्वाश्रिय कृष्ण में ही सब समाहित किया गया है। द्वैत का भी लय अद्वैत में किया गया है। कृष्ण से ही राधा भी प्रकट हुई हैं। ब्रह्म वैवर्त में समन्वयवादी दृष्टिकोण से कृष्ण या राधाकृष्ण मे ही सब कुछ समन्वित किया गया है।

तान्त्रिक-पूजा-विधान का भी ब्रह्म वैवर्त भण्डार है। अनेकों देव-देवियों के कवच, मन्त्र और पूजा-विधियों की निष्पत्ति इसकी विशेषता है। इन सबके प्रस्तुतीकरण के साथ यह विशेषता सर्वत्र बनी हुई है कि श्री कृष्ण कृपा प्रसाद से ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में वह सिद्धि, साधन अथवा सुख सम्भव है।

उपर्युक्त सभी विषयों की चर्चा मैंने इस अभिप्राय से की है कि इन संकलनों के लिए ब्रह्म वैवर्तकार को बड़ी दौड़, भले ही वैचारिक हो, लगानी पड़ी है। यद्यपि देवी पुराण और शिव-पुराण से ब्रह्म वैवर्त का मूलपाठ ज्यों का त्यों एवं अविकलरूपेण मिलता है, किन्तु देवी पुराण और शिव पुराण इन दोनों पुराणों का एक ब्रह्म वैवर्त पुराण में समाकलन जहाँ इसे परवर्ती या उत्तरकालीन सिद्ध कर सकता है वहीं शिव पुराण में शनिदृष्टि से गणेश शिरोभंग की कथा आ जाने से ब्रह्म वैवर्त की पूर्ववर्तिता सिद्ध होती है।

वास्तव में पुराण हमारे ज्ञान-कोष हैं। पण्डितों ने इनमें सब कुछ देखना चाहा। जो कुछ उन्हें इनमें न मिल सका उन तत्वों को अन्यत्र से ला-लाकर इनमें पाटा भी। इस प्रकार इनकी सर्वांग पूर्णता के लिए प्रयास की दिशा में चल कर प्रक्षेपण के दोष की ओर से उन्होंने अपनी आँखें मींच लीं। नारद पुराण व्याकरण-निरूपण अध्याय (पूर्व भाग, द्वितीय पाद, अ० ५२) पढ़ते समय मुझे आश्चर्य हुआ जबकि सत्तरहवीं शताब्दी के (१६२५ सन् के लगभग) वैयाकरण—वैयाकरण-भूषण-सार के रचयिता श्री कोण्डभट्ट, जो कि श्री भट्टो जी दीक्षित (पंडित राज जगन्नाथ १६०० ई० के समकालीन) के भ्रात्रिय थे, उनकी उक्त पुस्तक की निम्न दो कारिकाएँ मिलीं—

१. फलव्यापारयोर्धातुराश्रयेतु तिङःस्मृतः।
फले प्रधानं व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम्॥ [1]

---

१. नारद पुराण, पूर्व भाग, द्वितीय पाद, अ० ५२, श्लोक ८८

२. फलव्यापारयोरेक निष्ठतायामकर्मकः ।
धातुस्तयोर्धर्म भेदे सकर्मक उदाहृतः ॥[१]

हस्तलिखित प्रणाली जब तक चलती रही यह घपला बराबर चलता रहा। यद्यपि सम्भावना यह भी है कि पुराण से भट्ट जी ही गृहीत कर लिए हों।

देवी पुराण-नवम स्कन्ध—सम्पूर्ण तथा ब्रह्म वैवर्तीय-प्रकृति खण्ड-अध्याय अविकल रूप से—यत्र-तत्र प्रसंगानुकूल कुछ परिवर्तित शब्दावलि को छोड़ कर समान हैं। किन्तु ब्रह्म वैवर्तीय प्रकृति-खण्ड का विस्तार एवं परिष्कार उक्त पुराण को परवर्ती सिद्ध करता है। प्रकृति और पुरुष के विवेचन से प्रकृति-खण्डात्मक विभाजन प्रभावित प्रतीत होता है। उपनिषत्कालीन वेदान्ती पद्धति पर विचार करने के फलस्वरूप इस नामकरण की आवश्यकता हुई होगी। यहाँ इस भ्रम में भी पड़ना व्यर्थ है कि प्रकृति खण्ड में सृष्टि सम्बन्धी किसी तत्व एवं अणु-परमाणु का विवेचन हुआ है।

इस खण्ड के प्रकृति शब्द का प्रयोग सामंजस्य की दृष्टि से भी किया गया ज्ञात होता है। क्योंकि दुर्गा राधा पार्वती लक्ष्मी सरस्वती गंगा मनसा तुलसी और सुरभी आदि देवियों में किसी को अधिक श्रेष्ठ बताने के स्थान पर सभी को एक रूप अथवा एक से ही सबका आविर्भाव बताया गया। विशेषरूपेण प्रकृति (एक) के पाँच रूप हो गये। इस प्रकार प्रकृति शब्द का प्रयोग सामंजस्यपरक है।

हम यह पहले भी बता चुके हैं कि ब्रह्म वैवर्त की रचना सामंजस्य मूलक है, जिसमें कि प्रचलित सभी धार्मिक दृष्टिकोण समन्वित होकर श्री कृष्ण में सन्निहित कर दिए गये। नारद पुराण ने भी इसका समर्थन किया है।[२]

उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करने से लगता है कि ब्रह्म वैवर्त से इस प्रकृति खण्डात्मक अंश को देवी भागवत ने नहीं लिया होगा प्रत्युत ब्रह्म वैवर्त ने ही देवी भागवत से इसका समाहरण किया होगा।

गणेश खण्ड में भी स्वामी कार्तिकेय के जन्म की कथा का अंश शिव पुराण से ब्रह्म वैवर्त में लिया गया है क्योंकि इस प्रकार गणपति-कथा के साथ स्वामी कार्तिकेय की भी कथा से शिव के दोनों पुत्रों की कथा पूर्ण हो जाती है। अतः यहाँ भी समन्वय का ही दृष्टिकोण लेकर समाहरण किया गया है। मूल ब्रह्म वैवर्त, जो कि मूलतः साढ़े सोलह हजार के लगभग है, अष्टादश सहस्र श्लोकात्मक बताया गया है, उसकी पूर्ति

---

१. नारद पुराण, पूर्व भाग, द्वितीयपाद अ० ५२, श्लोक ८५/२, ८६/१

२. धर्मार्थकाम मोक्षाणां सारः प्रीतिर्हरौ हरे।
तयोरभेद सिद्धयर्थं ब्रह्मवैवर्तमुत्तमम् ॥ वही अ० १०१, द्वितीय पाठ।

का भी इस प्रकार प्रयास किया गया है। ऐसा करने से ब्रह्मवैवर्त की श्लोक संख्या बीस हजार छः सौ एकतीस तक पहुँच गयी है। आनन्दाश्रम मुद्रणालय से सन् उन्नीस सौ पैंतीस में प्रकाशित-प्रति की श्लोक संख्या हमने बतायी है। ब्रह्म खण्ड एक हजार आठ सौ बत्तीस, गणपति खण्ड दो हजार पाँच सौ तिहत्तर, प्रकृति खण्ड पाँच हजार एक सौ अट्ठारह और श्री कृष्ण-जन्म खण्ड की श्लोक संख्या ग्यारह हजार एक सौ आठ है।

गणेश-खण्ड में स्वामी कार्तिकेय की कथा चार अध्यायों में वर्णित है (१४-१७ अध्याय)। ये चारों अध्याय शिव पुराण के कुमार खण्ड (रुद्र संहिता) के चतुर्थ एवं पंचम अध्याय से पूर्णतः प्रभावित हैं। सुविधा के लिए नीचे दोनों पुराणों के समान श्लोकों की संख्या-सूची लिखित है :—

ब्रह्मवैवर्त ग० खं० अ०	कुल श्लोक संख्या	समाहृत श्लोक सं०	शिव पुराण, रु० सं० कुमार खंड अध्याय	श्लोक संख्या
१४	३९	२७	४	६७
१५	४३	३१		
१६	५४	१५		
१७	२६	८	५	६७

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में यह (कार्तिकेय जन्म) कथा केवल एक अध्याय में है।[1]

गणेश खण्ड के प्रथम अध्याय में भी प्रारम्भ में ही गणेश जन्म के प्रसंग में शिव पुराण के कुमार खण्ड, प्रथम अध्याय के कई श्लोक ज्यों के त्यों हैं :—

ब्रह्मवैवर्त ग० खं० अ० १	शिव पुराण, रु० सं० कुमार खण्ड, अ० १	ब्रह्मवैवर्त ग० खं० अ० १	शिव पुराण, रु० सं० कुमार खण्ड, अ० १
१०	८	२२	२४
११	९	२४	२५
१४	१४	२५, २६	४१
१५	१५	(वही, अ० २)	(वही, अ० २)
२०	२२	४	१८
२१	२३		

———

१. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, बाल काण्ड, अ० ३७, कुल श्लोक सख्या ३२।

अध्याय ९

श्री कृष्ण—गोलोक से गोकुल

श्री हरि अथवा विष्णु ही गोपवेष में श्री कृष्ण हैं।[1] श्री कृष्ण-कथा एवं विष्णु कथा में कोई अन्तर अथवा भेद नहीं है। यह तथ्य ब्रह्मवैवर्तीय जन्म खण्ड श्रवण के उद्देश्य पर विचार करने से ज्ञात होता है—

सदुर्लभां हरिकथां तरणिं भव सागरे।
निषेक भोग निगड क्लेश छेदन कीर्तनीम्॥

प्रापेन्धनानां दहने ज्वलदग्निशिखामिव।
पुंसां श्रुतवतां कोटि-जन्म-किल्विषनाशिनीम्॥

मुक्ति कर्णसुधारम्यां शोकसागरनाशिनीम्।
मह्यं भक्ताय शिष्याय ज्ञानं देहि कृपानिधे॥[2]

कृष्ण कथाएँ जहाँ होती रहती हैं वहाँ सभी देवता, ऋषि, मुनि एवं सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। कृष्ण कथा के वक्ता और श्रोता अपने सैकड़ों पूर्व पूर्वजों का अपने साथ उद्धार करते हैं।[3] विधाता भी श्री कृष्ण की नवधा भक्ति करते हैं।[4] श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति निम्नलिखित हैं :—

अर्चनं वन्दनं मन्त्रजपः सेवनमेव च।
स्मरणं कीर्तनं शश्वद् गुणश्रवणोप्सितम्॥

निवेदनं तस्य दास्यं नवधा भक्तिलक्षणम्।
करोति जन्मसफलं कृत्वैतानि च नारद॥

कृष्ण-कथा में जिसका चित्त संलग्न हो तथा कथा श्रवण से अश्रु एवं पुलकोद्भव हो मन निरन्तर कृष्ण कथा में मग्न रहे वह भक्त है।[6] कृष्ण-भक्तिविहीन अथवा कृष्ण-भक्त-निन्दक महापातकी होते हैं, उनके भारवाहन में पृथ्वी भी असमर्थ हो जाती है।[7]

इसके पूर्व भी यहाँ बताया गया है कि कृष्ण के द्विभुज और चतुर्भुज दो रूप हैं। इस तथ्य पर यहाँ भी पुनः प्रकाश डाला गया है।

---

१. ब्रह्म वै० ४,१।१।१३ २. वही ४,१।१।१८-२० ३. वही ४,१।१।२९-३२
४. वही ४,१।१।४४ ५. वही ४,१।१।३४,३५ ६. वही ४५। ७. वही ४,१।४।२०

अत्राहं द्विभुजः कृष्णोगोपभी राधया सह ।
तत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ॥
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेत-द्वीप-निनासकृत् ।
ममैवैताः कलाः सर्वे देवा ब्रह्मादयः स्मृताः ॥[१]

कृष्ण अपने प्रियजनों सहित जिस लोक में निवास करते हैं वह गोलोक वैकुण्ठ लोक से ऊपर एवं अगम्य है। उसका विस्तार पचास करोड योजन है। वहाँ जरा-मृत्यु का भय नहीं है वह लोक केवल वायु के आधार पर टिका हुआ है। उस लोक में पहुँचते-पहुँचते विरजा नदी प्राप्त होती है। देवों ने विरजा तट पर ही पहुँच कर गोलोक का दर्शन किया था।[२] गोलोक का विस्तृत-वर्णन श्री कृष्ण जन्म खण्ड पूर्वार्ध चतुर्थाध्याय में किया गया है।[३] इसी गोलोक वर्णन में रास-मण्डल का वर्णन समन्वित है। रास मण्डल प्राकार से घिरा है और वर्तुलाकार है। इसका विस्तार दश योजन है।[४] वस्तुतः गोलोक में रास-मण्डल ही मुख्यतः वर्णनीय है। अतः गोलोक वर्णन में रास-वर्णन ही प्रधान-तत्व है।

गोलोक में विरजा-नदी का तट शुद्ध-स्फटिक-सदृश है। मुक्ता, माणिक्य एवं परममणियों का वहाँ अक्षय भण्डार है। पद्मराग, इन्द्रनील, मरकत, स्यमन्तक के साथ-साथ पीत-वर्ण के निर्वचनीय अन्य मणियों के और कौस्तुभ-मणियों के सागर अथवा अक्षय-भण्डार हैं। नदी के उस पार सौ शिखरों वाला श्रेष्ठ-पर्वत है; जिस पर पारिजात और कल्प वृक्षों की श्रेणियाँ हैं। उस पर कामधेनु विचरण कर रही हैं। यह पर्वत कोटि योजन उच्च तथा दश कोटि योजन लम्बा है। इसी के एक शिखर पर दश योजन विस्तृत रास मण्डल है।[५]

पर्वत शिखरस्थ इस रास मण्डल से आगे रमणीय वृन्दावन है। यह वन राधा-कृष्ण को अतिप्रिय है।[६] इसके अन्तर्गत बत्तीस रम्य उपवन हैं।[७] ये वनधेनु, गोष्ठ, गोप, गोपी, मधुप, विविध वृक्ष, अनेकों आश्रम आदि से भरे हैं। आश्रमों के निवासी कृष्ण पार्षद रूप-रंग वेष-भूषा में श्री कृष्ण जैसे हैं। वृन्दावन की चारों दिशाओं में चार द्वार हैं। इन चारों द्वारों पर गोपों का समूह द्वारपालों के रूप में रहता है।[८] यहाँ रासेश्वरी राधा के साथ श्री कृष्ण नित्य विहार करते रहते हैं। गोलोक के वर्णन में कहीं विहगों एवं जलचरों का वर्णन नहीं है। वृन्दावन में लाखों क्रीडा सरोवर हैं।[९]

कृष्णप्रिया राधा का आश्रम वर्तुलाकार षड्गव्यूति (२४ मील) प्रमाण है।

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।१।४४ २. वही ४,१।४।७७ ३. वही ४,१।४।७५-१९३
४. वही ४,१।४।८५-८६ ५. वही ४, १।४।७५-८५ ६. वही ४, १।४।११४
७. वही ४, १।४।१२८ ८. वही ४, १।४।१३३ ९. वही ४, १।४।१०९

आश्रम की वेदिकाओं पर सात-सात द्वार हैं। वे रत्नखचित हैं। आश्रम में सौ सदन बने हैं और पुष्पोद्यान भी हैं। यह आश्रम रत्नप्राकारयुक्त एवं परिखा-परिवेष्टित है। षोडस द्वार इसमें क्रम से बने हैं। एक-एक द्वार पर लाखों करोड़ों की संख्या में कहीं गोप और कहीं गोपियां हैं। राधा की समवयस्क तैंतिस गोपियाँ उनके साथ आश्रम के चतुः शाल गृह में निवास करती हैं। सम्पूर्ण भवन रत्न-पात्र, रत्नकुम्भ और रत्न-निर्मित वस्तुओं से विराजित है।[1]

इस साधन प्रसाधनाडम्बर में कहीं श्रीकृष्ण के मधुर वेणु-वादन आदि पर विशेष महत्व नहीं डाला गया है।

श्री कृष्ण का अस्त्र चक्र सुदर्शन नाम से ख्यात है। यह तीक्ष्ण है और षोडशार है।

श्री कृष्ण की प्रस्तुत नामावलि जिसे देवी ने स्तुतित-के रूपमें प्रणीत किया है, अवश्यमेव ध्येय है :—

जगद्योनिरयोनि स्त्वमनन्तोऽव्यय एव च।
६. ज्योतिः स्वरूपोह्यनघः सगुणो निर्गुणो महान्॥

भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरङ्कुशः।
७. निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः॥

निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः।
८. स्वात्मारामः पूर्णकामो निमिषो नित्य एव च॥

स्वेच्छामयः सर्वहेतुः सर्वः सर्वगुणाश्रयः।
८. सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च॥

सुभगो दुर्भगः वाग्मी दूराराध्यो दुरत्ययः।
१०. वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद् विभुः॥[2]

४२

उपर्युक्त नामावलि में श्री कृष्ण के बयालिस नाम हैं।

गोलोकवासी श्री कृष्ण का महत्व तो सभी देवों को ज्ञात है। पृथ्वी भाराक्रान्त ब्रह्मा के पास गयी। ब्रह्मा पृथ्वी को साथ ले देवों सहित शंकर के पास गये। ये सभी विष्णुलोक निवासी विष्णु के पास गये। विष्णु ने पृथ्वी सहित सभी देवों को गोलोक भेज दिया। विष्णु ने स्वयं को और श्री कृष्ण को एक माना है, अन्तर मात्र इतना है कि गोलोक में गोपियों एवं राधा के साथ कृष्ण द्विभुज हैं जबकि वैकुण्ठ में कमला के साथ चतुर्भुज हैं।

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।५।१-७८ २. वही ४, १।७।५४-५९

देवानां स्तवनं श्रुत्वा तानुवाच हरिः स्वयम् ।
गोलोकं यात यूयं च यामि पश्चाच्छ्रिया सह ॥
नरनारायणौ तौद्वौ श्वेतद्वीप निवासिनौ ।
एते यास्यन्ति गोलोकं तथा देवी सरस्वती ॥
अनन्ता मम माया च कार्तिकेयो गणाधिपः ।
सावित्री वेदमाता च पश्चाद्यास्यन्ति निश्चितम् ॥
तत्राहं द्विभुजः कृष्णो गोपीभिः राधया सह ।
अत्राहं कमलायुक्तः सुनन्दादिभिरावृतः ॥
नारायणश्च कृष्णोऽहं श्वेतद्वीप निवासकृत् ।
ममैवैताः कला सर्वे देवाः ब्रह्मादयः स्मृताः ॥
कलाकलांश कलया सुरासुर नरादयः ।
गोलोकं यात यूयं च कार्यसिद्धि र्भविष्यति ॥
वयं पश्चाद् गमिष्यामः सर्वेषामिष्टसिद्धये ।
इत्युक्त्वा वै सभामध्ये विरराम हरिः स्वयम् ॥[1]

अन्त में देवगण गोलोक गये। वहाँ ब्रह्मा आदि स्तुति हेतु अवस्थित हुए। उन्होंने शिव को दक्ष पार्श्व तथा धर्म को वाम पार्श्व में किया और स्वयं मध्य में स्थित हुए।[2]

श्रीकृष्ण रम्य-रत्न-सिंहासन पर स्थित थे। वह सिंहासन मंच सौ धनुष बराबर वर्तुलाकार परिधि का था। अच्छे रत्नों से अलंकृत लघुकलश-वृन्द से विराजित था। चित्र-पुत्तलिकाओं तथा पुष्प चित्रों का कानन जैसा वह सिंहासन था। कोटि सूर्य-सम-प्रभ-तेजः-समूह से सप्तताल प्रमाण पर्यन्त उर्ध्व भाग भी इतना देदीप्यमान था कि चक्षुरोध हो रहा था। स्पष्ट देखना कठिन था।[3] ब्रह्मादि देवों ने सांजलिबद्ध ईश्वर कृष्ण की प्रार्थना की। प्रार्थना से सन्तुष्ट कृष्ण ने सान्त्वना दी :—

निश्चिन्ता भवतात्रैव का चिन्ता वो मयि स्थिते ।
स्थितोऽहं सर्वजीवेषु प्रत्यक्षोऽहं स्तवेन वै ॥
युष्माकं यमभिप्रायं सर्वं जानामि निश्चितम् ।
शुभाशुभं च यत्कर्म काले खलु भविष्यति ॥
महत्क्षुद्रं च यत्कर्म सर्वं कालकृतं सुराः ।
स्वे-स्वे काले च तरवः फलिनः पुष्पिणः सदा ॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।४।६६-७५
२. वही ४, १।४।८१
३. वही ४, १।४।८४-८७
४. वही ४, १।६।२७-२६

देवगण ! मेरे रहते भय मत करो। मैं सब समझता हूँ। समय पर तुम्हारा भी कार्य पूरा होगा। इसके पूर्व श्रीकृष्ण का विरजा के प्रति प्रेम भाव देखकर राधा जी ने सपत्नीक भाव से दग्ध होती हुई अति अप्रसन्न होकर कुछ कुवाच्य का कथन किया था।[१] श्री दामा इसे सहन न कर सका। उसने भी राधा को जली-कटी सुना दिया। असत्य भी तो क्या कहा था—त्वं वा कान्याश्च वा राधे मदीश्वर वशेऽखिलम्। अब तो राधा से भी न रहा गया, उन्होंने शाप दिया :—

यथासुराश्च त्रिदशान्नित्यं निन्दन्ति सन्ततम्।
तथा निन्दसि मां मूढ़ ! तस्मात्त्वमसुरो भव ॥[२]

यह शाप सुनते ही श्रीदामा भी अमर्ष प्रतप्त हो उठा। अतः उसने भी राधा को शाप दिया—

मानुष्या इव कोपस्ते तस्मात्त्वं मानुषी भव।
भविष्यसि न सन्देहो मयाशप्ता त्वमम्बिके ॥[३]

इस प्रकार श्री कृष्ण के कथनानुसार अवसर आने पर गोलोक एवं वैकुण्ठ की शक्तियाँ ब्रज में अवतरित हुईं। गोकुल भी गोलोक जैसा चमक उठा। श्रीकृष्ण का यह अवतरण आश्वासन स्वरूप आशीर्वाद वाराह कल्प में हुआ था।[४]

शाप-फल पर विचार करते-करते राधा और श्रीदामा दोनों विह्वल हो उठे। राधा श्रीकृष्ण से कहने लगीं कि नाथ ! तुम्हारे बिना मैं कैसे रह पाऊँगी।

चक्षुर्निमीलनं कर्तुमशक्ता तव दर्शने।
त्वया विना कथं नाथ ! यास्यामि धरणीतलम् ॥[५]

श्री कृष्ण ने राधा की विरह-व्यथा समझ कर उन्हें आश्वासन दिया :—

यशोदामन्दिरे मां च सानन्दं नन्दनन्दनम्।
नित्यं द्रक्ष्यसि कल्याणि ममाश्लेषणपूर्वकम् ॥
त्रिः सप्तशतं कोटीभिर्गोपीभि र्गोकुलं व्रज।
त्रयस्त्रिंशद् वयस्याभिः सुशीलादिभिरेव च ॥[६]

श्री कृष्ण ने यह भी कहा कि देव और देवियों का अंश अपने निवास पर (गोकुल में जहाँ इच्छा हो) जाय। मैं तुम्हारे (राधा) साथ गोलोक में पुनः स्थित होऊँगा।[७]

स्वयं कृष्ण का अवतार गोकुल में अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र को अर्धरात्रि में हुआ।

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।३।६१ २. वही ४, १।३।६८ ३. वही ४, १।३।१०३
४. वही ४, १।४।२ ५. वही ४, १।६।१८० ६. वही ४, १।६।२२६, २३१
७. वही, ४,१।६।२५७

अष्टमी कर्क्षं संयुक्ता रात्र्यर्धे यदि दृश्यते।
स एव मुख्य कालश्च तत्र जातः स्वयं हरिः॥

श्री कृष्ण जिन परिस्थितियों में अवतरित एवं पुष्ट हुए वे नितान्त विलक्षण ही रहीं। कंस के नियंत्रित कारागार से गोकुल के शैशव कालीन विनोदों एवं विपद्ग्रस्त बाधाओं में होते हुए कंस-वध तक का कृष्ण चरित्र अद्भुत उपाख्यानों का भण्डार है। इन वृत्त-प्रसंगों में राधा-कृष्ण विवाह ब्रह्म-वैवर्तीय वैशिष्ट्य है।[1]

इस कृष्णोपाख्यान निधि ब्रह्मवैवर्तीय[२] कथा-प्रसंग में राधा-कृष्ण का विवाह भी अद्भुत प्रसंगों में से एक है। वाराह कल्प में राधा गोकुल में समुद्भूत हुई। इनका विवाह रायण वैश्य के साथ बारह वर्ष की अवस्था में कर दिया गया। रायाण कृष्ण की माता यशोदा का सगा भाई था। यह भी कृष्ण का ही अंश था। चौदह वर्ष की अवस्था में राधा का विवाह पुण्य वृन्दावन में जगत् के विधाता ब्रह्मा ने कृष्ण के साथ करा दिया।[२]

रायण द्वारा राधा का गोकुल में पाणिग्रहण मूर्खों द्वारा ही माना जाएगा, क्योंकि राधा तो श्री कृष्ण क्रोड में हो स्थित रहती हैं। रायण कामिनी तो राधा की छाया है।[३]

ब्रज में अवतरण की दृष्टि से विचार करने पर तो राधा कृष्ण से ज्येष्ठ थीं।[४] किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ बताया नहीं गया है कि वह कितनी ज्येष्ठ थीं।

बलराम की अवस्था के सम्बन्ध में स्पष्ट कथन है कि वे कृष्ण से एक वर्ष ज्येष्ठ थे।

वर्षाधिको हि वयसा कृष्णात्संकर्षणः स्वयम्।
ततो मुदं वर्धयन्तौ वर्धितौ च दिने-दिने॥[५]

मथुरा के कंस-कारागार से यमुना पार करते हुए गोकुल में, यशोदा के अंक से कन्या को लेकर और कृष्ण को उसी अंक में सुला कर अज्ञात रूप से चले आने के पश्चात् नन्द के यहाँ पुत्रोत्सव हुआ। नाडी कर्तन के पश्चात् बाजे-गाने के साथ ब्राह्मण-भोजन, विविध वर-वस्त्र, रौप्य, रत्न, धन तथा गो का दान आदि बड़े हर्ष से किया गया।[६] इसके पश्चात् संकट की शृंखला ऐसी पड़ी जो बहुत दिनों तक टूटी नहीं। किन्तु कुछ ऐसा भी अज्ञात कारण था कि कंस ने स्वयं सम्मुख आकर नन्द से न तो लोहा लिया और न तो बल प्रयोग द्वारा गोकुल का तहस-नहस ही किया। सम्भवतः

१. ब्रह्म वै० ४, १।१५ अ० सम्पूर्ण विशेषतः ११८-१३५
२. वही २।४९।३५-४१ ३. वही, ४,२।८६।१३४-१४० ४. वही ४,१।१३।९९
५ वही ४, १।१३।२३८। ६. वही ४, १।९।६१-८०

उसे विश्वास था कि गोकुल तो उसका है। कंस ने स्पष्ट ही आकाशवाणी सुनी थी :—

किं करोषि महामूढ़ चिन्तां स्वश्रेयसः कुरु।
जातः कालो धरण्यांते तिष्ठोपाये नराधिप ॥
नन्दाय तनयं दत्त्वा वसुदेवस्तवान्तकम्।
कन्यामादाय तुभ्यं च दत्वा समायया विभुः ॥
मायांशा कन्यकेयं च वासुदेवः स्वयं हरिः।
तव हन्ता गोकुले च वर्धते नन्दमन्दिरे ॥[1]

ऐसी भी सम्भावना है कि वह आत्मविश्वास खो बैठा हो क्योंकि कठोर कारागार की गजमुण्डभेदी द्वार-कपाट की महाशक्ति वसुदेव को रोक न सकी। उन्हें तो तमिस्रामयी घनघोर निनादनादित व्योमाजस्रवारिधारा और कलिन्द कन्या की उद्‌यतुङ्गावलि भी कृष्ण-मुखद्युति से बाल-हास-विलास-सम सुखद हो गयी थीं। ऐसी भी सम्भावना है कि आकाश-वाणी पर भी पूर्णतः विश्वास उसे न रहा हो। तथापि अपनी रक्षा के प्रयासों से नितान्त विमुख भी नहीं था। उसने क्रमशः पूतना, तृणावर्त और शकटासुर को कृष्ण की इहलीला समाप्त करने हेतु भेजा किन्तु इन्होंने एक-एक करके सबका काम तमाम कर दिया। अभी तक कृष्ण केवल स्तनन्धय बालक थे।

नन्द ने कृष्ण के अन्न-प्राशन का शुभ मुहूर्त निश्चय किया :—

माघ-शुक्ल-चतुर्दश्यां कुरु कर्म शुभे क्षणे।
गुरुवारे च रेवत्यां विशुद्धे चन्द्र तारके ॥
चन्द्रस्थे मीन-लग्ने च लग्नेश-पूर्ण-दर्शने।
वणिजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे ॥

इसी अन्न प्राशन के अवसर पर पधारे गर्ग ने वृन्दावन में होने वाले राधा-कृष्ण विवाह की चर्चा कर दी थी। इसी प्रसंग में उन्होंने कृष्णचरित्र की एक सूची भी सुना दी।

आराद् वृन्दावने नन्द विवाहो भवितानयोः।
पुरोहितो जगद्धाता कृत्वाग्निं साक्षिणं मुदा ॥
कुबेर-पुत्र-मोक्षं च गव्यस्याहृत्य भक्षणम्।
हिंसनं धेनुकस्यैव कानने ताल भोजनम् ॥

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।१०।२-४।

बक-केशि-प्रलम्बानां हिंसनं चाथ लीलया ।
मोक्षणं द्विजपत्नीनां मिष्टान्त-पान-भोजनम् ॥

भञ्जनं शक्रयागस्य शक्राद् गोकुल रक्षणम् ।
गोपीनां वस्त्र-हरणं व्रतसम्पादनं तथा ॥

ताभ्य: पुनर्वस्त्रदानं वरदानं यथेप्सितम् ।
चेतसां हरणं तासामयं वश्या: करिष्यति ॥

रासोत्सवं महारम्यं सर्वेषां हर्षवर्धनम् ।
पूर्णचन्द्रोदये नक्तं वसन्ते रास-मण्डले ॥

गोपीनां नवसम्भोगात्कृत्वा पूर्णं मनोरथम् ।
ताभि: सह जलक्रीड़ा करिष्यति कुतूहलात् ॥

विच्छेदोऽस्य वर्षशतं श्रीदाम-शाप-हेतुकम् ।
गोपालै-र्गोपिकाभिश्च भविता राधया सह ॥

मथुरागमनं तत्र गोपीनां शोकवर्धनम् ।
पुन: प्रबोधनं तस्य दानमाध्यात्मिकस्य च ॥

स्यन्दनाक्रूरयो रक्षां सद्यस्ताभ्यां करिष्यति ।
रथमारोहणं कृत्वा मथुरागमनं पुन: ॥

पितृभ्रातृ-व्रजै: सार्धं विलङ्घ्य यमुनां व्रजे ।
अक्रूराय ज्ञानदानं दर्शयित्वा स्वकं जले ॥

कौतुकेन च सायाह्ने नगरोत्सव दर्शनम् ।
मालाकार-तन्तुवाय-कुब्जानां बन्धमोक्षणम् ॥

धनुर्भङ्गं शंकरस्य यागस्थान-प्रदर्शनम् ।
हिंसनं गजमल्लानां दर्शनं नृपते: पुर: ॥

कंसस्य हिंसनं सद्य: पित्रो निगड-मोक्षणम् ।
प्रबोधनं च युष्माकमुग्रसेनाभिसेचनम् ॥

तस्य तस्य वधूनाञ्च ज्ञानाच्छोकापनोदनम् ।
भ्रातु: स्वस्योपनयनं विद्यादानं गुरोर्मुखात् ॥

गुरुपुत्र-प्रदानं च पुनरागमनं गृहे ।
छलनं नृपसैन्यानां यवनस्य दुरात्मन: ॥

निर्माणं द्वारकायाश्च मुचुकुन्दस्य मोक्षणम् ।
द्वारकागमनं चैव यादवै: सह कौतुकात् ॥

स्त्रीसंघानां विहरणं ताभिः सार्धं च क्रीडनम् ।
सौभाग्यवर्धनं तासां पुत्रपौत्रादिकस्य च ॥

मणिसम्बन्धिनो मिथ्या कलङ्कस्य च मोक्षणम् ।
साहाय्यं पाण्डवानां च भारावतरणादिकम् ॥

निष्पन्नं राजसूयस्य धर्मपुत्रस्य लीलया ।
पारिजातस्य हरणं शक्राहङ्कार मर्दनम् ॥

व्रतपूर्णं च सत्याया वाणस्य भुजकृन्तनम् ।
मर्दनं शिव-सैन्यानां हरस्य जृम्भणं परम् ॥

हरणं वाणपुत्र्याश्चैवानिरुद्धस्य मोक्षणम् ।
वाराणस्याश्च दहनं विप्रदारिद्र्य भंजनम् ॥

विप्र-पुत्र-प्रदानं च दुष्टानां दमनादिकम् ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन युष्माभिः सह दर्शनम् ॥

कृत्वा च राधयासार्धं व्रजमागमिता पुनः ।
प्रस्थापयित्वा द्वारां च परं नारायणांशकम् ॥

सर्वनिष्पादनं कृत्वा गोलोकं राधया सह ।
गमिष्यत्येव गोलोकं नाथोऽयं जगतां पतिः ॥[१]

इस सूची के अवलोकन से ऐसी भी प्रतीति होती है कि सम्भवतः विभिन्न देवों के दर्पभंग की कथाएँ पश्चात्कालीन-प्रवर्धनहेतुक हैं ।

कृष्ण के सम्बन्ध में राधा के उपदेश एवं माधवी आदि गोपियों के संवाद[२] अध्ययनीय हैं ।

माधवी कहती है कि वही विभु कृष्ण कभी तो सगुण विष्णु कभी निर्गुण और कभी गोपवेषधारी होता है ।

स्वेच्छया सगुणो विष्णुः स्वेच्छया निर्गुणो भवेत् ।
भुवोभारावतरणे गोपवेषः शिशुर्विभुः ॥

नन्द और यशोदा द्वारका तक चले जाते हैं । किन्तु बेचारी राधा कृष्ण के वियोग में तड़पती ही रहती है ।[३] शक्ति कुण्डलिनी आदि योगोपदेश यशोदा को श्रीकृष्ण ने दिया । उपदेश पाकर द्वारका से लौटे नन्द और यशोदा को देखकर राधा ने सान्त्वनापरक उपदेश दिया ।[४] राधा ने ही बताया कि कृष्ण को अपना पुत्र मत मानो ।[५] राधा का यह कथन भक्तों का सुखान्त भाव बन जाता है । अन्त में श्रीकृष्ण

१. ब्रह्म वै० ४, ११३।११३-१३७ २. वही ४, २।६४।६-८६ ३. वही ४, २।११० अ०
४. वही ४, २।१११ अ० १२६ श्लोक ५. वही ४. २।१११।६

राधिका के स्थान वृन्दावन में नन्द यशोदा के साथ गये। देखा कि राधा निराहार रहते हुए गोपियों के मध्य थीं—

इत्युक्त्वा भगवान् कृष्णः पित्रोरनुमतेन च।
जगाम राधिकास्थानं नन्दश्च गोकुलं तथा।।

ददर्श राधां रुचिरां मुक्त्यहारां च सस्मिताम्।
यथा द्वादशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।।

देखते ही गोपियों के साथ अपने प्राणेश्वर को तुष्ट करते हुए बोली—

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
यद्दृष्ट्वा मुख-चन्द्रं ते सुस्निग्धं लोचनं मनः।।[1]

अन्त में गो, गोप और गोपियों के गोलोक पहुँच जाने पर श्री कृष्ण भी गोलोक पधारे।[2]

— — —

१ ब्रह्म वै० ४, २।१२६।७-८ २. वही ४, १।१२६।१०१-१११

श्री कृष्ण-कथा-तत्व (पूर्वार्ध)

श्रीकृष्ण में सर्वेश्वरत्व, सर्वनियन्तृत्व एवं सर्वकर्तृत्व का स्थापन करते हुए ब्रह्म वैवर्त पुराण का एक-एक श्लोक श्री कृष्ण का महत्व प्रतिपादित करता है। अन्य व्यक्तित्वों का प्रतिपादन भी अप्रत्यक्ष रूप में श्रीकृष्ण का ही यशोगान है। सभी की शक्ति एवं प्रतिष्ठा श्री कृष्ण-कृपा का ही प्रतिफल है।

ब्रह्म-वैवर्त का चतुर्थ खण्ड दो भागों में विभक्त है। ये दोनों भाग श्री कृष्ण-जन्म के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके पूर्वार्ध में चौवन अध्याय तथा उत्तरार्ध में उन्यासी अध्याय हैं। श्रीकृष्ण खण्ड ग्यारह हजार एक सौ साठ श्लोकों में विस्तृत है। इसके पूर्वार्ध में पांच हजार आठ सौ पन्द्रह-श्लोक और उत्तरार्ध में पांच हजार दो सौ तिरान्बे श्लोक हैं।

श्री कृष्ण जन्म खण्ड का महत्व प्रतिपादित करते हुए बताया गया है कि यह खण्ड मनुष्य के जन्म आदि (बन्धनों) का खण्डन करने वाला है। सभी तत्वों का प्रकाशक है। यह कर्म विनाशक और हरिभक्ति प्रदायक है। शीघ्र वैराग्य समुत्पादक तथा भव-रोग का निकृन्तक है। मुक्ति बीजों का कारण तथा भवसागर का परम तारक है। कर्मोपभोगरूपी रोग का निवारक रसायन है। श्री कृष्ण चरण-कमल की प्राप्ति का सोपान है। यह खण्ड वैष्णवों का जीवन और जगत का परम पवित्र कारक है—

श्रीकृष्ण-जन्म-खण्डं च जन्मादेः खण्डनं नृणाम् ।
प्रदीपं सर्व-तत्वानां कर्मघ्नं हरिभक्तिदम् ॥
सद्यो वैराग्य-जननं भव-रोग-निकृन्तनम् ।
कारणं मुक्ति-बीजानां भवाब्धेस्तारणं परम् ॥
कर्मोपभोग-रागाणां खण्डने च रसायनम् ।
श्री-कृष्ण-चरणाम्भोज-प्राप्ति-सोपानकारणम् ॥
जीवनं वैष्णवानां च जगतां पावनं परम् ॥[१]

अवतार हेतु

यहाँ श्री कृष्णावतार का कारण एक विलक्षण ढंग से वर्णित है यद्यपि नारायण ने अवतार की साधारण भूमिका की भी चर्चा कर दी है :—

१. श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ४।१।५-६

येन वा प्रार्थितः कृष्ण आजगाम महीतलम् ।
यं यं विधाय भूमौ स जगाम स्वालयं विभुः ।।
भारावतरणोपायं दुष्टानांच वधोद्यमम् ।
सर्वं ते कथयिष्यामि सुविचार्य विधानतः ।।

भारावतरण और दुष्टवधोद्यम प्रायः सर्वत्र ये ही अवतार के कारण बता दिये गये हैं । ब्रह्म-वैवर्त ने कृष्ण के गोप वेष और राधा के गोपालिका होने के कारणों पर भी दृष्टिपात किया है । इस प्रकार ब्रह्म-वैवर्त प्रश्न में नावीन्य ला देता है । कृष्ण-कथा का प्रारम्भ ब्रह्मवैवर्त अत्याकर्षक ढंग से प्रस्तुत करता है । नारायण नारद से यह कहते हैं कि—

अधुना गोपवेषं पूर्वं च गोकुलागमनं हरेः ।
राधा गोपालिका येन निबोध कथयामि ते ।।

इसके साथ एक कौतूहल और भी युक्त कर देते हैं—

शंखचूडवधं पूर्वं संक्षेपात्कथितं श्रुतम् ।
अधुना तत्सुविस्तार्य निबोध कथयामि ते ।।

नारायण ने यह भी बताया है कि श्रीदामा के शाप से राधा का गोकुल में अवतरण हुआ और राधा के प्रेम की रक्षा हेतु श्रीकृष्ण स्वयं गोकुल में पधारे ।[1] घटना यों घटित हुई कि गोलोक में स्वयं श्री हरि राधा के साथ निर्जन रास मण्डल में विहार कर रहे थे । राधा आत्मविभोर होकर कुछ जान न सकी । श्री कृष्ण इसी बीच में विरजा नामक अन्य गोपी, जो कि राधा के ही समान थी, उसके शृंगार के लिए गोलोकीय वृन्दारण्य में चले गये । वह अति प्रसन्न हुई । यह समाचार राधिका की सखियों ने राधिका को बताया । राधा को यह अच्छा न लगा । अपनी सखियों सहित विरजा के धाम में राधा पहुँच गयीं । विरजा के द्वार रक्षक श्रीदामा लक्ष गोपों के साथ थे । सखियों सहित राधा रथ से उतरते ही सदलबल विरजा भवन में प्रविष्ट हो कर श्री कृष्ण एवं विरजा से भिड़ना चाहती थीं । श्री दामा ने द्वार पर रोक दिया । राधा को सह्य नहीं हुआ ।[2] राक्षस होने का शाप दिया ।[3] और श्रीदामा ने राधा को भी शाप दिया कि—

(राधां शशाप श्रीदामा) याहि योनिं च मानवीम् ।
व्रजे व्रजाङ्गना भूत्वा विचरस्व महीतले ।।[4]

इस कोलाहल को सुन कर श्री कृष्ण राधा के कोप को समझ गये । वे स्वयं

१. ब्रह्म वै० ४, १।२।६, १४-१५
२. वही ४,१।२।६३, ६४
३. वही ४, १।२।५
४. श्री कृ० ज० ख० पू० २१६

अन्तर्धान हो गये। विरजा के लिए राधा का कोप और हरि का अन्तर्धान होना ये दोनों घटनाएँ अति दुःखदायी सिद्ध हुईं। अतः योग के द्वारा उन्होंने प्राण परित्याग कर दिया और वे शीघ्र ही सरित रूप में हो गयीं। यह अति गहरी कोटि योजन विस्तृत चौड़ी तथा इसका दशगुना अर्थात् दश करोड़ योजन लम्बी नदी हुई।

बेचारी राधा ने श्रीकृष्ण को नहीं देखा। विरजा भी नदी के रूप में थी। उन्हें शाप लेकर लौट जाना पड़ा। इधर श्री कृष्ण विरजा के तीर पर प्रेमविह्वल हो रो उठे। उनके आशीर्वाद से पुनः राधा के सदृश सुन्दरी विरजा मुस्कराती हुई पीतवस्त्र धारण किये सम्मुख खड़ी हुई। भगवान् श्री कृष्ण ने प्रेम शृंगार आलिंगन आदि किया।[1]

विरजा ने श्री कृष्ण का अमोघ वीर्य धारण किया। वे इस गर्भ को सौ दिव्य वर्ष धारण किये रहीं। तदनन्तर उन्होंने सात पुत्रों को जन्म दिया।[2]

एक बार वृन्दावन में साध्वी विरजा श्री कृष्ण के साथ विहार कर रही थीं। वहाँ उनके सातों पुत्र भी थे। अपने भाइयों से भयभीत होकर कनिष्ठ पुत्र माता की गोद में आ पड़ा। पुत्र को भयभीत समझ कर श्री कृष्ण ने, जबकि विरजा ने भयभीत बालक को गोद में ले लिया, राधा के यहाँ चल दिया। माता ने प्रिय पति वियोग से खिन्न होकर कनिष्ठ पुत्र को शाप दिया कि 'तुम (क्षार जल) लवणोद होगे, तुम्हारा जल कोई नहीं खायेगा।' तदनन्तर शेष अन्य बालकों को भी शाप दिया कि वे जम्बु द्वीप में जाएँ। वे एक स्थान पर नहीं रह सकेंगे। विभिन्न द्वीपों में उनकी स्थिति होगी। अन्त में सम्भवतः सान्त्वनात्मक वचन भी कहा कि उन द्वीपस्थ नदियों के साथ निर्जन में खेलते रहो।[1] इस बात को कनिष्ठ ने ही अन्य भाइयों को भी बताया। सभी माँ को प्रणाम कर धरणी तल पर आ गये। इनके सम्बन्ध में निर्देश कर दिया गया है :—

सप्तद्वीप-समुद्राश्च सप्त तस्थु विभागशः।
कनिष्ठाद्वृद्धपर्यन्तं द्विगुणो द्विगुणं मुने॥
लवणेक्षु - सुरा - सर्पिर्दधिदुग्ध - जलार्णवाः।
एतेषां च जलं पृथ्व्यां सस्यार्थं च भविष्यति॥

अब तो माता विरजा अतिविह्वल हो गयीं। क्योंकि पुत्रों को शाप दे दिया, वे पृथ्वी तल पर चले गये। श्री कृष्ण भी राधा के पास चले गये। विरजा पुत्र एवं प्रिय पति वियोग में कातर भाव से रोती रहीं। अन्त में श्री कृष्ण आये और विरजा को गोद में उठाकर प्रेम किया। प्रसन्न हरि ने विरजा के यहाँ नित्य आने का आशीर्वाद दिया। विरजा प्रसन्न हुई।

---

१. ब्रह्म वै० ४,१।३।१५,१६ २. वही ४, १।३।१७,१८

यह समाचार सखियों से राधा को विदित हुआ। राधा कुपित हो गयीं। उन्होंने श्री कृष्ण से कहा कि विरजा नदी हो गयी फिर भी तुम उससे प्रेम करते हो। यदि इतना प्रेम है तो उसी के तीर पर मन्दिर बना लो अथवा तुम भी नद बन जाओ। अपनी जाति में परस्पर प्रेम निभता है। नदी के साथ नदसंगम अच्छा होगा। इस प्रकार व्यंग्य करते हुए कोप से राधा भूमि शयन से उठी नहीं। श्री कृष्ण स्वस्थ ही रहे।[१] श्री कृष्ण वहाँ से कुछ क्षण के लिए हट गये। श्रीदामा से राधा का कोप सह्य नहीं हुआ। उन्होंने राधा से कहा कि बिना विचारे मातः तुम ब्रह्मानन्तेश देवेश जगत्कारण-कारण निर्गुण श्री कृष्ण को विडम्बित कर रही हो। किन्तु तुम जानती नहीं कि तुम्हारी जैसी करोड़-करोड़ देवियों की रचना श्री कृष्ण भ्रूभंग लीला मात्र से कर सकते हैं।[२]

राधा श्रीदामा की उक्ति से प्रकुपित हो उठीं। उन्होंने श्रीदामा से कहा कि तुम असुरों की भाँति पिता की प्रशंसा और माता की निन्दा किया करते हो। अतः तुम असुर होओ।[३] श्रीदामा ने भी मानुषी योनि में जाने का राधा को शाप देते हुए[४] यह भी कहा कि छाया से (कला मात्र से) उपस्थित तुम्हें रायण की पत्नी भी मूर्ख लोग कहेंगे। इस प्रकार एक कलंक की भी बात कही गयी। (बताया गया है कि राधा के शाप से हरि का अंश गर्भज हुआ। वही रायण हुआ)। श्रीदामा ने सौ वर्ष तक हरि से राधा का विच्छेद भी होने का शाप दिया।[५]

श्री दामा ने राधा के मर्मान्तिक शाप को श्री कृष्ण से निवेदन किया। श्री कृष्ण ने सान्त्वना देते हुए पचास युग बीत जाने के पश्चात् शकर के त्रिशूल से मरकर अपने पास पुनः आ जाने का आशीर्वाद दिया। यही श्रीदामा तुलसी का पति शंखचूड हुआ।[६]

वाराह कल्प में श्री राधा ने गोकुल में वृषभानु के गृह में जन्म ग्रहण किया। यहाँ भी उन्हें हरि का सहवास प्राप्त हुआ।

गोलोक में राधा की तैंतीस निम्नलिखित सखियाँ सदा साथ रहने वाली बतायी गयी हैं—

त्रयस्त्रिंशद् वयस्याश्च राधिकायाश्च गोपिकाः।
वेष-निर्वचनीयाश्च तासां नामानि मे शृणु ॥१८४॥

सुशीला च शशिकला यमुना माधवी रती।
कदम्बमाला कुन्ती च जाह्नवी च स्वयंप्रभा ॥१८५॥

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।३।७४ २. वही ४, १।३।८१ ३. वही ४, १।३।९९
४. वही, ४,१।३।१०२ ५. वही ४, १।३।१०६ ६. वही ४, १।३।११३-११५

चन्द्रमुखी च सावित्री गायत्री सुमुखी सुखा।
पद्मालया पारिजाता गौरी च सर्वमङ्गला ॥१८७॥
कालिका कमला दुर्गा भारती च सरस्वती।
गङ्गाम्बिका मधुमती चम्पा पर्णा च सुन्दरी ॥१८७॥
कृष्णप्रिया सती चैव नन्दिनी नन्दनेति च।
एताः समाना सद्रत्न-रचिता राधिका प्रियाः ॥१८८॥[1]

धरा धर्म आदि ने ब्रह्मा को अग्रणी करके सभी देवों के साथ गोलोक में राधा और कृष्ण के दर्शन के लिए प्रस्थान किया। वहाँ दिव्यातिदिव्य गोलोक में राधा कृष्ण का दर्शन किया। श्री कृष्ण ने ब्रह्मा आदि को सान्त्वना दिया। उन्होंने बताया कि मेरा षोडशारचक्र सदा भक्तों की रक्षा में तत्पर रहता है।[2] मेरे भक्त स्त्री पुत्र और स्वजनों को छोड़ कर मेरा अहोरात्र ध्यान करते हैं मैं भी उन्हीं का स्मरण करता हूँ।[3] जब दुष्ट मेरे भक्त ब्राह्मणों, गायों, यज्ञों और देवताओं की हिंसा करते हैं तो वे शीघ्र ही अग्नि में तृण की भाँति जल जाते हैं। उनके हन्ता के रूप में मेरे उपस्थित हो जाने पर उन्हें कोई बचा नहीं पाता है।

अन्त में देवों को निर्देश दिया कि 'यूयं चैवांशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम्।' वे सभी गये। सुबल की पुत्री वृषभान की प्रिया कमला की अंशभूता कलावती से जन्म ग्रहण करने के लिए राधा को कृष्ण ने आदेश किया। यह कलावती पितरों की मानसी कन्या होते हुए दुर्वासा के शाप से ब्रज गृह में उत्पन्न हुई।[4]

लक्ष्मी को कुण्डिनपुर में भीष्मक के यहाँ उत्पन्न होने का आदेश दिया। यहाँ वैदर्भी के उदर से रुक्मिणी हुई।[5] पार्वती को नन्दकन्या के रूप में होने का आदेश दिया, जिसे कि वसुदेव जी श्री कृष्ण को यशोदा जी के पास छोड़ कर प्रसूतिका गृह से ले गये।[6]

ब्रह्मा के पुनः यह पूछने पर कि कौन किस स्थान पर अवतीर्ण हो श्री कृष्ण ने बताया कि रुक्मिणी पुत्र (प्रद्युम्न) कामदेव हो। रति शम्बर के यहाँ मायावती के के रूप में हो। उन दोनों से ब्रह्मा काम पुत्र अनिरुद्ध के रूप में हों। भारती शोणितपुर में वाणपुत्री (उषा) होकर अवतीर्ण हो।[7] अनन्त देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ

१. ब्रह्म वै० ४, १।४।१८४-१८८ २. वही ४, १।६।५३ ३. वही ४, १।३।५८-५९
४. वही ४, १।६।६४, ६५ ५. वही ४, १।६।१२०-१२१
६. वही ४, १।६।१२५-१२६
७. तिलोत्तमे। भारते त्वं वाणपुत्री भविष्यसि।
श्री कृष्ण पौत्राश्लेषेण पुनः पूता भविष्यसि ॥—ब्रह्म वै० ४, १।२३।१४१
यह वृत्तान्त 'पाद्मकल्पं च वृत्तान्तं विचित्रं सुमनोहरम्।' है। वही ४, १।२३।५

में होकर (बलराम) अवतीर्ण हों। सूर्यतनया यमुना गंगा के अंश रूप में कालिन्दी होवें। अर्धांश से तुलसी राजकन्या लक्ष्मणा हो। वेदमाता सावित्री नग्नजित की कन्या सत्या बनें। पृथ्वी सत्यभामा होवें। देवी सरस्वती शैव्या होवें। रोहिणी राजकन्या मित्रविन्दा बने। सूर्यपत्नी संज्ञा अपनी कला से रत्नमाला (जगद्गुरु की पत्नी) बने। स्वाहा के अंश से सुशीला तथा दुर्गा अंशार्ध से जाम्बवती होवे।[१]

यहाँ एक कौतूहलपूर्ण प्रश्न भी किया गया है कि पार्वती को शिव ने कृष्ण पत्नी होने का आदेश कैसे दे दिया। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया गया है कि जब गणेश की उत्पत्ति हुई तो सभी देवता उन्हें देखने गये। श्री विष्णु भी श्वेतद्वीप से पधारे। विष्णु-आसन पर सुखासीन हुए। उनके त्रैलोक्य मोहन वपु को देख कर पार्वती मुग्ध हो गयीं, वे सकाम भाव से विष्णु को देखती रहीं। शंकर पार्वती का अभिप्राय समझ गये। किन्तु उन्होंने इसे बुरा न माना। उन्होंने पार्वती को समझाया भी—

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च ब्रह्मकं च सनातनम्।
देवकोभेदरहितो विषयो मूर्तिभेदकः॥
एका प्रकृतिः सर्वेषां माता त्वं सर्वरूपिणी।
स्वयम्भूरसि वाणी त्वं लक्ष्मी नारायणोरसि॥
मम वक्षसि दुर्गा त्वं निबोधाऽऽध्यात्मिकं सति।[२]

इसके पूर्व ही एक तथ्य और स्पष्ट कर दिया गया कि यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों समान हैं तथापि

एकं ब्रह्म मूर्ति भेदमभेदं वा निरूपितम्।

× × ×

मदंशाश्च त्रयो देवा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।
ताभ्यामौत्कर्ष्य-पाताच्च श्रेष्ठः सत्व-गुणात्मकः॥[३]

अतः जाम्बवान के घर जाम्बवती के रूप में पार्वती उत्पन्न हुई। और श्री कृष्ण की पट्टमहिषी में एक वह भी थीं।

ब्रह्म-वैवर्त में श्री कृष्णावतार की भूमिका श्रीकृष्ण जन्म खण्ड पूर्वार्ध के अध्यायों में चारुचर्चित है। तिथियों में जैसे अष्टमी तिथि को श्री कृष्ण का अवतार होता है वैसे ही अष्टम अध्याय में श्रीकृष्ण जन्म एवं उसके व्रत आदि का वर्णन प्रारम्भ

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।६।१३९-१४७ २. वही ४, १।६।१६५-१६७
३. वही ४, १।६। १५६—१६०

किया गया। श्री कृष्ण जन्म-व्रत एवं विधि भी ब्रह्म वैवर्त की ही विशेषता है। व्रत का निर्णय उसमें होने वाले सन्देहों का विभंजन, श्री कृष्ण के साथ अन्य पूज्यों का भी यथावत् वर्णन आदि कृष्ण भक्तों के मनस्तोष की विशिष्ट सामग्री से ब्रह्म वैवर्त पूर्ण है। सप्तम अध्याय में श्री कृष्ण जन्म के साथ ही अष्टम अध्याय में व्रत आदि का भी यथाप्रसंग वर्णन करके यथावत्समाधान कर दिया गया है। इस प्रसंग में श्री कृष्ण जन्म व्रत का विशेष महत्व वर्णित है—'जन्माष्टमी को उपवास करने से सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इसमें जागरण का विधान नहीं है। बचपन, यौवन और वृद्धावस्था के सभी पापों से कृष्ण जन्म व्रती मुक्त हो जाता है।'[1]

जन्माष्टम्यां शुद्धायामुपोष्य केवलं नरः।
अश्वमेध फलं तस्य व्रतं जागरणं विना॥
यद्बाल्ये यच्च कौमारे यौवने यच्च वार्धके।
सप्तजन्म कृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥[2]

श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव रात्रि के आठवें मुहूर्त, अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र में अर्धचन्द्रोदय के अवसर पर हुआ। पानी इतना बरसा कि सारी मथुरा पुरी निश्चेष्ट हो गयी थी। रात्रि घोर अन्धकार से आवृत थी। सूर्यादि ग्रह मीन राशि में उपस्थित थे। दिन का नाम नहीं बताया गया है।

ब्रह्म वैवर्तीय कृष्ण-चरित्र का महापुराणों में अपना एक विशिष्ट स्थान है। ब्रह्म वैवर्त के अतिरिक्त कोई अन्य पुराण श्री कृष्ण का आद्योपान्त इतना विस्तृत गुणगान न कर सका।

अवतार

सभी पुराणों में कृष्ण जन्म के पूर्व असुर समूह अथवा अत्याचारियों के अत्याचार का वर्णन है। सर्वत्र वर्णनों में गोकुल मथुरा आदि में देवों के उत्पन्न होने की योजना है और उन्हीं के बीच बलराम योगमाया एवं कृष्ण की उत्पत्ति की कथा संवलित है। पद्मपुराण[3] में हिरण्याक्ष के छः पुत्रों को भी लाया गया है। वे ही देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले बताये गये हैं।

कूर्म पुराण में यदुवंश वर्णन २४ (रायबरेली संस्करण) में इन देवकी पुत्रों का नाम भी गिनाया गया है—

सुषेणश्च ततोदायो भद्रसेनो महाबलः।
वज्रदम्भो भद्रसेनः कीर्तिमानपि पूजितः॥

१. ब्रह्म वै० ४, १।८।७५-७६   २. वही ४, १।७।६१-६५।
३. पद्म० उ० ख० ६।२४५।२६

यहाँ नामों की गणना में सात नाम आते हैं। श्रीमद्भागवत में केवल प्रथम पुत्र का नाम लिया गया है—

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ।
अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ॥[1]

केवल प्रथम पुत्र कीर्तिमान के नाम की चर्चा है। कंस ने बच्चे को देख कर वसुदेव के हाथ में लौटा तो दिया तो भी उन्हें उसका विश्वास नहीं हुआ (नाभ्यनन्दन्त मसतो विचितात्मनः) और अन्त में हुआ भी वही—

देवकी वसुदेवं च निगृह्यनिगडै गृंहे ।
जातं जातमहन् पुत्रं तयोरजनशंकया ॥[2]

उनके सभी (लौटाये हुए को भी) पुत्रों की एक-एक करके हत्या कर दी गयी।

सातवें पुत्र संकर्षण की उत्पत्ति सर्वत्र समान है। ये रोहि से उत्पन्न हैं। उधर देवकी का गर्भपात हो गया कंस को यह समाचार ज्ञात हुआ।

अ ठवें पुत्र श्री कृष्ण के जन्म की कथा भी सर्वत्र प्रायः समान ही है। यशोदा के घर पुत्री उत्पन्न होती है। उधर वसुदेव देवकी को कृष्ण का दर्शन होता है। किन्तु इस प्रसंग में श्रीमद्भागवतकार ने एक बड़े पते की बात कही। श्री कृष्ण ने

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥

देवकी के गर्भ में प्रवेश करने के पूर्व वसुदेव के मन में अपने अंश भाग से प्रवेश किया। यहाँ 'मन' के प्रयोग में बड़ी शिष्टता प्रकट होती है। यद्यपि मन का अभिप्राय, अनंग मन इन्द्रिय के अतिरिक्त भी है। इस प्रकार वसुदेव के सकाम भाव की ओर संकेत है जो प्राणी की उत्पत्ति के लिए प्रकृतितः अत्यावश्यक है। अगले श्लोक में यह स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है। श्रीमद्भागवत में तो 'जगन्मंगल मच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी। दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः'' यहाँ 'समाहितं शूर सुतेन' से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि देवकी ने वसुदेव के संयोग से गर्भ धारण किया। 'निगडै गृंहे' तथा 'देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम्।'

प्रतिमुच्य पदोर्लौहमास्ते पूर्ववदावृतः ।१०।३।५२
बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ।१०।४।१

में 'निगडैः', 'पदोर्लौहम्' और 'पूर्ववदावृताः' का प्रयोग प्रबल प्रमाण है कि

---

१. श्रीमद्भा० १०।१।५७ २. श्रीमद्भा० १०।१।६६

उनके पैरों में लोह का बन्धन था। यहाँ ऐसा अनुमान है कि सम्भवतः उनके हाथ खुले थे। लौह-बन्धन दम्पति को समान रूप से प्राप्त थे। वसुदेव देवकी को जीवन चलाने की अन्य सुविधाएँ प्राप्त थीं। क्योंकि इस सम्बन्ध में किसी कष्ट का संकेत नहीं है।

पद्म-पुराण—

तथेत्याह तदा कंसो वसुदेवं च देवकीम्।
निबध्य स्वगृहे रम्ये सर्व-भोगे न्यवेशयत्॥[1]

इस वर्णन से भी प्रकट है कि उन्हें सर्वभोग प्राप्त था। केवल वे निकल भाग नहीं सकते थे। ब्रह्म वैवर्त[2] में श्रीमद्भागवत की ही भांति आकाश वाणी के पश्चात् वसुदेव से आश्वासन पाकर कंस ने वसुदेव तथा देवकी को क्षमा कर दिया।

वसुदेववचः श्रुत्वा तत्याज भगिनीं नृपः।
वसुदेव प्रियां नीत्वा जगाम निजमन्दिरे॥३५॥

क्रमादपत्य-षट्कं च यद् यद् भूतं च नारद।
ददौ तस्मै वसुः सत्यात्स जघान क्रमेण तम्॥३६॥

देवक्याः सप्तमे गर्भे कंसो रक्षां ददौ भिया।
× × × ॥ ३७ ॥[3]

वह सातवें गर्भ के समय वसुदेव दम्पति को अपनी रक्षा के नियन्त्रण में कर लेता है किन्तु गर्भ स्राव होने की बात रक्षक कहते हैं। जबकि श्रीमद्भागवत में 'पौरा विचक्रुशुः' पुरवासी के दुःखी होने की बात है। रक्षक जाकर अवश्य बताये ही होंगे।

आठवें गर्भ के समय देवकी का गर्भ वायुपूर्ण हो जाता है।[4] दसवें मास में देवकी की प्रकाशमयी आकृति देखते ही कंस को आश्चर्य होने लगता है। वह अनुमान लगाता है—

क्रमाद् गर्भादपत्यं च मृत्युबीजं ममैव च।[5]

कि इस गर्भ की ही सन्तान मेरी मृत्यु का कारण है। अन्य पुराणों में भी कंस को ऐसा स्पष्ट होता है। इसे श्रीमद्भागवत में—

तां वीक्ष्य कंसः प्रभया जितान्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम्।
आहेष मे प्राण-हरो हरि गुहांध्रुवं स्थितो यन्नपुरेयमीदृशी॥[6]

---

१. पद्म पुराण, ६ खण्डे उत्तरार्द्ध २४५ अध्याये।
२. वसुदेव पितं प्रोतः प्रशस्यप्राविशद् गृहम्।—ब्रह्म वै० १०।१।५५
३. वही कृष्ण ज०, पूर्वार्द्ध ७ अध्याय
४. वही, श्लोक ३८
५ वही ४, १।७।४२
६. श्रीमद्भा० १०।२।२०

ब्रह्म वैवर्त में वसुदेव और देवकी को—

'देवकी वसुदेवं च सप्तद्वारं ररक्ष च ।'[1]

लगातार सात द्वारों के पहरे के अन्दर डाल दिया किन्तु लोह बन्धन की बात नहीं है।

ब्रह्म वैवर्त में देवकी को जब प्रसूति पीड़ा होती है उस समय मनोहर मन्दिर में रत्न प्रदीप की ज्योति बिखर रही है। किन्तु वहाँ उन दोनों का कोई सहायक नहीं है। वसुदेव स्वयं ही प्रथा के अनुकूल खड्ग लोह, जल और अग्नि स्थापित करते हैं। इसके पश्चात् मन्त्रज्ञ, बन्धु पत्नियों, एक विद्वान् ब्राह्मण तथा बन्धुओं को सादर बुलाते हैं। यद्यपि ये सब करते हुए वे भयभीत हैं।

श्रीमद्भागवत में देवकी की प्रसूति पीड़ा का वर्णन नहीं है। ब्रह्म वैवर्त ने देवकी का गर्भ वायुपूर्ण बताया है। इस पुराण के अनुसार कृष्ण के प्रकट होते ही सर्व प्रथम देवगण स्वयं प्रसन्न होकर दर्शन करने आते हैं। कृष्ण वसुदेव और देवकी को भविष्य की सारी योजना समझा देते हैं। वसुदेव वैसा ही करते हैं। यद्यपि वसुदेव को यह स्वप्न जैसा लगता है, क्योंकि सब कुछ अद्भुत हो है।

इस प्रसंग में ब्रह्म-वैवर्त ने नारद के चरित्र को उच्च करने का प्रयास किया है। श्रीमद्भागवत[2] में श्रीकृष्ण जन्म के पूर्व वसुदेव देवकी की सन्तान नारद के आगमन के पश्चात् उन्हीं के समझाने के फलस्वरूप लौटा दिये गये फिर भी प्रथम पुत्र को कंस मार देता है तथा अन्य सन्तानों को भी मारता जाता है। कंस को बाल हत्या में प्रवृत्त करने की नारदी प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगती। यह ब्रह्म-पुत्र एवं परम वैष्णव नारद पर एक लांछन है। ब्रह्म-वैवर्त इसे सँभालता है। वसुदेव के सन्तानों को मार डालने का निश्चय स्वयं कंस का अपना निश्चय है। यह उसकी स्वार्थमयी घिनौनी प्रवृत्ति का द्योतक है।

यद्यपि श्रीमद्भागवतकार ने वहीं 'भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम्' कह कर नारद को बचाने का प्रयास किया है किन्तु बाल हत्या की निर्ममता के सम्मुख यह प्रयास टिक नहीं पाता। नारद की इस प्रकार की प्रवृत्ति परवर्ती साहित्य में विशेषतः उपलब्ध है। यहाँ गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवत सम्भवतः ब्रह्म-वैवर्त के पश्चात् की रचना हो सकती है।

श्रीमद्भागवत के पश्चात्कालीन होने का एक आधार इसी कथाप्रसग में माया का है, जो श्रीमद्भागवत में योग माया, वैष्णवी, कौशिको आदि के नाम से कही गई है। ब्रह्म-वैवर्त में माया का कोई अद्भुत रूप गर्भ संकर्षण तथा कन्योत्पत्ति के अति-

१. ब्रह्म वै०, कृष्ण जन्म, पूर्वार्ध ७ अध्याय, श्लोक ४२

२. श्रीमद्भागवत १०।१।६४

रिक्त नहीं है जबकि श्रीमद्भागवत में वह आकाश-पथ से अपना अद्भुत शौर्य दिखा कर कंस को विस्मय में डालते हुए अष्टभुजा के रूप में विन्ध्याचल पर चली जाती है। कृष्ण चतुर्भुज रूप में दिखाई पड़े जबकि योगमाया अष्टभुजा है। यह माया का बढ़ता रूप अवश्यमेव ब्रह्म वैवर्त के पश्चात् का है। ब्रह्म-वैवर्त में उस कन्या का नाम एकानंशा है। वह द्वारिका में रुक्मिणी-विवाह के समय दुर्वासा के साथ विवाहित होती है।[1] उसका रूप एक पारिवारिक-कन्या का है।

श्री कृष्ण चरित्र निम्नांकित अध्यायों के क्रम में वर्णित है :—

प्रसंग	अध्याय संख्या	प्रसंग	अध्याय संख्या
पूर्वार्ध श्री कृष्ण जन्म	७	उत्तरार्ध, कंस-दु:स्वप्न	६३
नन्द पुत्रोत्सव वर्णन	९	कंस-यज्ञ	६४
पूतना मोक्ष	१०	अक्रूर हर्षोत्कर्ष	६५
तृणावर्त उद्धार	११	राधा शोकापनोदन	६६
शकटासुर भंजन	१२	विरह शोकातुरा राधा	६८
अन्नप्राशन	१३	राधा कृष्ण क्रीडा	६९
वृक्षार्जुन भंजन	१४	गोपियों के द्वारा अक्रूर के रथांग	
राधा कृष्ण विवाह	१५	भंग दुर्व्यवस्था	७०
बक, प्रलम्बक, केशि वध	१६	कुब्जा, माली, रजक का उद्धार	
वृन्दावन वर्णन	१७	तथा कंसवध, वसुदेव देवकी	
विप्रपत्नी मोक्षण	१८	मोक्षण	७२
कालियदमन, दावाग्निमोक्ष	१९	नन्दादि शोक प्रमोचन	७३
गोवत्स बालक हरण	२०	भगवन्नन्द संवाद	७४
इन्द्रयाग भंजन	२१	भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी चन्द्रदर्शन	
धेनुक वध	२२	निषेध	८०
तिलोत्तमा बलि पुत्र को ब्रह्मशाप,		तारा हरण	८१
तालफल से मोक्ष	२३-२४	वृन्दोपाख्यान	८६
		राधोद्धव संवाद	९३
मुनिमोक्षण	२५	राधा के द्वारा उद्धव को उपदेश	९६
अम्बरीष कथा	२६	उद्धव का मथुरागमन	९८
गोपिका वस्त्रहरण	२७	भगवान के उपनयन में गणेशा-	
रास क्रीडा प्रस्ताव	२८	भिषेक	९९
राधा माधव रास वर्णन	५२	देवकी आदि के द्वारा गौरी-पूजा	१००
रास क्रीडा	५३	राम कृष्ण का विद्याभ्यास	१०२

१. ब्रह्म वै० कृष्ण ज० ख०, पूर्वार्ध ७ अ०, श्लोक १३१–३३

श्री कृष्ण द्वारा द्वारका का निर्माण	१०३
द्वारका प्रवेश, उग्रसेनाभिषेचन	१०४
रेवती बलराम का विवाह	१०६
भीष्मक कृष्णस्तोत्र	१०७
श्री कृष्ण रुक्मिणी विवाह	१०८, १०९
राधा के द्वारा यशोदा को उपदेश	१११
प्रद्युम्नोत्पत्ति	११२
शिशुपाल दन्तवक्र का वध	११३
ऊषाहरण	११४
अनिरुद्ध के द्वारा वाण आदि का पराभव	११६
वाणासुर और कृष्ण का युद्ध	१२०
शृगाल वासुदेव मोक्षण	१२१
स्यमन्तक मणि हरण	१२२
राधा द्वारा गणेश पूजन	१२३
वसुदेव के द्वारा राजसूय में सर्वस्वदान	१२५
राधा द्वारा कृष्ण दर्शन पाकर स्तुति	१२६
राधा कृष्ण शृंगार	१२७
राधादि गोपियों के द्वारा गोलोक गमन	१२८
द्वारकालय	१२९
नारद के साथ संजय कन्या का पाणिग्रहण	१३०
ब्रह्मा से अग्नि और अग्नि से सुवर्ण की उत्पत्ति	१३१

वैशिष्ट्य

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त श्री कृष्ण की विशिष्ट शक्ति के द्योतक प्रसंगों से ब्रह्म वैवर्त भर दिया गया है। श्री कृष्ण की महाशक्ति के सम्मुख

१. पार्वती दर्पभंग	३९	अध्याय
२. शक्रदर्प भंग	४७	,,
३. सूर्य दर्पभंग	४८	,,
४. अग्नि दर्पभंग	४९	,,
५. दुर्वासा दर्पभंग	५०	,,
६. धन्वन्तरि दर्पभंग	५१	,,

जिनको अपनी शक्तियों पर गर्व था, उनके गर्व को कृष्ण ने खर्व कर दिया। यहाँ तक कि अपनी अतिप्रिय एवं आश्रित

धरा
सावित्री
गंगा
मनसा और
राधा

श्री कृष्ण जन्म खण्ड उत्तरार्द्ध ५८ अध्याय देखिए।

के भी गर्वों को श्री कृष्ण ने निभने नहीं दिया।

क्रमवैभिन्य

ब्रह्म-वैवर्त के कथा प्रसंग का श्रीमद्भागवत में वर्णित श्री कृष्ण चरित्र के क्रम से पूर्ण साम्य नहीं है। ब्रह्म वैवर्त में रजक, चाणूर, मुष्टिक, गज, कुब्जा और माली की कथाएँ क्रमशः हैं जबकि श्रीमद्भागवत में रजक, वायक (बुनकर), मालाकार, कुब्जा, धनुर्भंग कुवलयापीड (गज), मल्लशाला प्रवेश, चाणूर और मुष्टिक आदि का निधन क्रमशः वर्णित है। ब्रह्म-वैवर्त में पहले तृणावर्त[1] की कथा है और तत्-पश्चात् शकटासुर[2] की कथा है किन्तु श्रीमद्भागवत मे ठीक इसका उत्क्रम है। इसी प्रकार ब्रह्म-वैवर्त में कालियदमन[3] के पश्चात् दावाग्निमोक्ष, गोवत्स-बालकहरण और इन्द्रयाग भंजन की कथाएँ हैं तदनन्तर धेनुकवध[4] की कथा है। जबकि श्रीमद्भागवत में धेनुकवध पहले है और कालियदमन आदि की कथा पश्चात् कही गयी है।

ब्रह्म-वैवर्त में सुदामा ब्राह्मण की भी पूरी कथा नहीं है। मात्र नाम से सुदामा का स्मरण किया गया है। चार श्लोकों में[5] श्री कृष्ण कृपा द्वारा सुदामा के दारिद्र्यनाश एवं श्री सम्पन्नता की बात पूरी कर दी गयी। श्रीमद्भागवत ने इस कथा को लगभग दो अध्यायों में वर्णित किया है।

श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण को यशोदा जी उलूखल में बाँधती हैं और श्रीकृष्ण उसे रस्सी से खींच कर उसमें बझाकर पेड़ तोड़ देते हैं। ये दो पेड़ थे। उलूखल उन्हीं दोनों पेड़ों में बँझी। किन्तु ब्रह्मवैवर्त में यशोदा जी द्वार पर स्थित अर्जुन वृक्ष में ही कृष्ण को बाँध देती हैं और वे उसी एक अर्जुन वृक्ष को तोड़ देते हैं।

श्रीमद्भागवत की अघासुर कथा, अजगर के मुख से नन्द के बचने की कथा, अरिष्टासुर वध, और शाल्व कथाएँ ब्रह्मवैवर्त में नहीं हैं।

ब्रह्मवैवर्त में सभी कृष्ण-सम्बद्ध असुरों आदि के पूर्वजन्म की कथाएँ वर्णित हैं। सभी शापग्रस्त होकर ही गोकुल वा इतस्ततः पदार्पण किये। पूर्वजन्म के इतवृत्तों के वर्णन करने में ब्रह्मवैवर्त वास्तव में अद्वितीय एवं बेजोड़ है। इस प्रकार यह पुराण पुराकथाओं में अभिरुचि रखने वालों के मनस्तोषार्थ भूरि-भूरि सामग्रियों से समन्वित है।

श्रीकृष्ण जीवन में स्वयं उपस्थित होने वाले अरिष्टों में सर्वप्रथम पूतना आती है। स्वर्ण सिंहासन स्थित कंस द्वितीय आकाशवाणी से यह सुनकर कि—

---

१. ब्रह्म वैवर्त ४, १,।११—श्रीमद्भागवत १०।७

२. ब्रह्म वै० ४, ११।१२—श्रीमद्भागवत १०।७

३. वही ४, १।१६—वही १०।१६ ४. वही ४, १।२२—वही १०।१५

५. वही ४, १।११३।४०-४३

मायांशा कन्यकेयं च वासुदेवः स्वयं हरिः।
तव हन्ता गोकुले च वर्धते नन्दमन्दिरे ॥[१]

कंस आनम्रकन्धर हो चिन्ता करते हुए आहार तक का परित्याग कर देता है। अन्त में उसे एक उपाय सूझा। उसने अपने प्राणों से प्रिय सती पूतना को मँगा कर उससे कहा कि तुम दुर्वासा के महामन्त्र से सर्वत्र जा सकती हो अतः विषाक्त-स्तन शिशु को पिलाओ क्योंकि तुम मनोयायिनी एवं मायाशास्त्र विशारद हो।[२]

अतः पूर्ण अलंकृत एवं सुसज्जित पूतना गोकुल में अतिसुन्दरी के रूप में पहुँचती है।[३] श्रीमद्भागवत की अपेक्षा ब्रह्मवैवर्त इतना और स्पष्ट करता है कि जब वह नन्द-गृह में प्रविष्ट होती है तो पूतना को यशोदा आदि ब्राह्मणी समझती हैं। यही कारण है कि सुसज्जित पूतना को प्रणाम करते हुए स्वयं यशोदा ने उसकी गोद में प्रिय सुवन कृष्ण को दे दिया। अब तो पूतना को अवसर मिल ही गया। सहज-स्नेह-द्योतन के छल से उसने पय पान के व्याज ही चूचुक में लगे विष का पान वत्स श्रीकृष्ण को करा दिया।[४]

श्रीमद्भागवत में यशोदा को पूतना परिलक्षित नहीं होती। सामान्य महिलाओं में वह भी मिली-जुली ही गृह में प्रविष्ट हो जाती है। श्री कृष्ण को सभी का स्नेह मिलता रहा। अभी तक किसी छलकपट का दर्शन नहीं हुआ तो किसी प्रकार की परि-वर्जना भी क्यों हो। इसी सामान्यता का लाभ पूतना ने उठाया।

पूतना को सर्वेश्वर कृष्ण को दूध पिलाकर मुक्त होने का अवसर कैसे प्राप्त हुआ। ब्रह्मवैवर्त इसका उत्तर देता है कि वामन अवतार में बलि की पुत्री रत्न-माला ने वामन के रूप पर मुग्ध होकर ऐसे बच्चे को पाने की कामना की थी। वह चाहती थी कि ऐसा ही सुत हो जिसे अंक में लेकर दुग्ध-पान कराने का आनन्द आये। भगवान ने इस प्रकार उसकी कामना पूरी की। रत्नामाला ही कंस की स्वसा पूतना हुई।[५]

बाल-कृष्ण द्वितीय असुर तृणावर्त के चक्र में भी पड़े। यशोदा जी अपने पुत्र को गोद में लिये हुए कुछ गृहकार्य में व्यस्त थीं। हरि को ज्ञात हो गया कि तृणावर्त आ रहा है। श्री कृष्ण ने माया से अपने में गम्भीरता सन्निहित कर ली। यशोदा जी श्री कृष्ण का भार वहन न कर सकीं किन्तु उन्होंने इस पर कुछ विचार न किया प्रत्युत श्री कृष्ण को अंक से उतार कर शय्या पर सुला दिया। स्वयं यशोदा जी यमुना नदी चली गयीं। इधर श्री कृष्ण वात्या–चक्र में फँस कर सौ योजन तक उड़े। सारा गोकुल वात्यान्धकार से आवृत हो गया। विह्वल नन्द आदि अन्वेषण करते-करते पयः

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।१०।४ २. वहीं ४, १।१०।६-१२
३. वही ४, १।१०।१३-१५ ४. वही ४, १।१०।३३ ५. वही ४, १।१०।४२-४५

पूरित एक तडाग के तटोद्यान में धूलिधूसरित प्रिय-सुवन को देखते ही उठाया। यशोदा ने दुग्धपान कराया।

इस तृणावर्त के पूर्व जन्म का वृत्तान्त बताया गया है कि किसी समय में पाण्ड्य देश के स्वामी सहस्राक्ष हजारों कामिनियों के साथ स्थलविहार और जलक्रीड़ा आदि नाना प्रकार की काम-क्रीडा में आसक्त थे। इसी मार्ग से लाखों शिष्यों के साथ (कोई) महामुनि जा रहे थे। उन्हें काम-क्रीडा आसक्त नृपति ने विवस्त्र स्त्रियों के बीच से प्रणाम और संभाषण वचन अथवा हाथ से नहीं किया। क्रोधित मुनि ने शाप दिया कि तुम लक्ष वर्ष असुर रहो और योगभ्रष्ट हो धरती पर जाओ। स्त्रियाँ भी मनोहर रूप में भारत में जन्म ग्रहण करें। दया करते हुए यह भी कहा कि हरि पद के स्पर्श से पुनः गोलोक जाओगे। वही सहस्राक्ष यह तृणावर्त है।[1]

श्री कृष्ण अभी शिशु-शय्या पर ही हैं। माता का अंक अथवा शिशु-शय्या पर ही वे अभी रह रहे हैं कि तीसरे असुर शकटासुर[2] से भी उनकी भिड़न्त हो जाती है। यह तो स्पष्ट नहीं बताया गया है कि वह किसका भेजा आया किन्तु कुचक्रों में उलझे श्री कृष्ण के जीवन को देखते हुए स्वतः अनुमान हो जाता है कि इसमें भी कंस की ही प्रेरणा रही होगी।

यशोदा श्री कृष्ण को दूध पिला ही रही थीं कि इतने में उनसे मिलने के लिए युवती एवं वृद्धाएँ अपने पुत्र-पुत्रियों सहित आयीं। अतः यशोदा जी ने श्री कृष्ण को शय्या पर सुला दिया और अभ्यागतों के आदर में परम्परानुसार तैल, सिन्दूर, ताम्बूल मिठाई और भूषण अर्पित किये। (आज भी हमारे यहाँ ऐसी परम्परा है। नवजात के साथ आयी सौभाग्यवती को तेल सिन्दूर अवश्य दिया जाता है।) इधर तो प्रसन्नता की स्थिति थी, उधर क्षुधित स्तनार्थी श्री कृष्ण रोने लगे। जब तक यशोदा जी पहुँचतीं कि इसके पूर्व श्री कृष्ण पर एक शकट का सम्पात हो गया। सम्भवतः श्री कृष्ण दरवाजे पर ही शय्या पर पड़े थे। अब देखा तो सभी देखते ही रह गये। शय्यालम्बित श्री कृष्ण ने अपने पटकते पैरों से गाड़ी को चूर-चूर कर दिया। नन्द यशोदा ने भविष्य की सुरक्षा के लिए बच्चे के गले में योग निद्रा द्वारा निर्दिष्ट कवच बाँध दिया। इस कवच को ब्राह्मण ने बाँधा था। यह कवच[3] दस अनुष्टुपों का है। श्रीमद्भागवत के अनुसार वेदत्रयी से श्री कृष्ण का अभिषेक भी उनके जन्म नक्षत्र में हुआ। इसी प्रसंग में सभी आये थे। यशोदा को श्री कृष्ण अति भारी लगे तो उन्होंने बेटे को बिस्तर पर लिटा दिया। इसी बीच में यह दुर्घटना घटित हुई।[4]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।११।१६-३५ २. वही ४, १।१२।१-१६

श्री कृष्ण का अभी तक नाम नहीं रखा गया था। बड़े उत्साहपूर्वक नामकरण और अन्नप्राशन संस्कार सम्पन्न हुआ। इस समय का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि—

माघ-शुक्ल-चतुर्दश्यां कुरु कर्म शुभे क्षणे।
गुरु-वारे च रेवत्यां विशुद्धे चन्द्र तारके॥
चन्द्रस्थे मीन-लग्ने च लग्नेश-पूर्ण-दर्शने।
वणिजे करणोत्कृष्टे शुभयोगे मनोहरे॥[1]

इस प्रकार कृष्ण की अवस्था अभी पाँच महीने में भी चार दिन कम थी। नन्द यशोदा ने प्रसन्न हृदय होकर बहुत कुछ दान दिया।[2] प्रसन्नता में कुबेर ने तीन मुहूर्त तक ब्रज-गोकुल में स्वर्ण-वर्षा की।

त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्ण प्रीतये मुदा।
चकार स्वर्ण वृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुलम्॥[3]

अन्त में गर्ग ने श्रीकृष्ण को सघृत भोजन कराया। मंगल वाद्य बजे। जातक का 'कृष्ण' यह मांगलिक नाम रखा गया।[4]

इस प्रकार अति स्नेहपूर्ण वातावरण में राम और कृष्ण का लालन-पालन होता रहा। अवस्था में श्रीकृष्ण बलराम से एक वर्ष कनिष्ठ थे।

इसी अध्याय में इसके पूर्व प्रसंग में बताया गया है कि गिरिभानु गोप की पत्नी पद्मावती की पुत्री यशोदा थीं।

नारायण ने नारद से बताया कि जिस कल्प की यह कथा है उसमें स्वयं नारद पचास कामिनियों के पति गन्धर्व थे। पत्पश्चात् ब्राह्मण से दासी पुत्र हुए और तदनन्तर ब्राह्मण के उच्छिष्ट भोजन के फलस्वरूप इस समय वे सर्वदर्शी हैं।

ज्येष्ठ बलराम एवं कनिष्ठ कृष्ण ये दोनों अब गायों की पूँछ एवं भीत पकड़ कर खड़े होने लगे। दिन प्रतिदिन शब्दों का चतुर्थांश अर्धांश उच्चारण करने लगे। धीरे-धीरे प्रांगण तक जाने लगे। पग दो पग प्रचलन योग्य हो गये। घुटनों के बल से तो घर आँगन में दौड़ लगाने लगे।[5] वसुदेव-देवकी को भी यह समाचार गर्ग के द्वारा मिला। पुत्र-वात्सल्य के आनन्दाश्रु में उस समय वे डूब गये। किन्तु सम्भवत: कंस के भय से कोई पारस्परिक सम्मिलन न हो सका। तथापि वे निज गृह में सानन्द थे।[6]

१. ब्रह्म वै० ४, १।१३।१४०, १४१
२. वही ४, १।१३।१५२-१५६
३. वही ४, १।१३।१७८
४. वही ४, १।१३।१८२-१८३.
५. वही ४,१।१३।२३५-२३८
६. वही ४, १।१३।२४३—४, १।७।१२६-१३०

यशोदा और नन्द श्री कृष्ण के बाल-जीवन की कुछ कठिनाइयों, पूतना आदि के उत्पातों को देख चुके थे। वे अवश्य ही आतंकित रहे होंगे। श्रीमद्भागवत के अनुसार बाला योगमाया के हनन के लिए कंस उद्यत हुआ तो वह आकाश-पथ से अदृश्य हो गयी। कंस ने भावी एवं धटित विलक्षणता पर विचार किया। अन्त में वसुदेव और देवकी से प्रणाम करते हुए क्षमा याचना भी की। दम्पति को इससे भी विश्वास एवं भरोसा हुआ होगा। सुखी जीवन की परिकल्पना दृढ़ हुई होगी—

देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥

अहो भगिन्यहो भाममया वां वतपाप्मना।
पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥१५॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः।
इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥२३॥

मोचयामास निगडाद् विश्रब्धः कन्यका गिरा।
देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥२४॥[1]

ब्रह्म वैवर्त में कंस उक्त प्रकार की कोई शिष्टता नहीं करता है। वह देव-वाणी सुनते ही बालिका को मारने से विरत हो जाता है। प्रणाम अथवा क्षमा-याचना आदि विनयी कृत्य नहीं करता। तथापि दम्पति निजात्मजा को पाकर अति प्रसन्न हुए। उसे वक्ष से लगाये हुए वे सौमनस्य सहित निज-सदन सिधारे—

श्रुत्वैवं देववाणीं च तत्याज बालिकां नृपः।
वसुदेवो देवकी च तामादाय मुदान्वितौ ॥
जगाम स्वगृहं तौ च कन्यां कृत्वा स्ववक्षसि।
मृतामिव पुनः प्राप्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥[2]

ब्रह्म वैवर्त में यह बाला योगमाया एकानंशा के नाम से अभिहित हुई। इसका विवाह-दुर्वासा के साथ रुक्मिणी कृष्ण के पाणिग्रहण के अवसर पर हुआ।

बेचारे नन्द और यशोदा ने बलराम और कृष्ण से हाथ धोया। पुत्री योगमाया एकानंशा का तो वात्सल्य भी न पा सके। वास्तव में ये दम्पति धैर्य के हिमांचल, त्याग के प्रतिरूप और औदार्य के पारावार थे।

अन्न प्राशन के पश्चात् वृक्ष भंजन की कथा है। एक दिन नन्दपत्नी स्नानार्थ यमुना गयीं। इधर श्री कृष्ण ने गव्य से भरे गृह को देखा। दधि, दुग्ध, घृत, मट्ठा, मक्खन सब कुछ था। मधुसूदन हँस पड़े। सर्वत्र मधु ही मधु तो था। इस प्रसंग में मधुसूदन के एक अन्य भाव को भी स्पष्ट किया गया है। अधिकतर मधु नामक असुर

---

१. श्रीमद्भाग० १०।४।१४-२५ २. ब्रह्म वै० ४, १।७।१२६-१३०

को सूदन अथवा मारने के कारण मधुसूदन विष्णु को कहा जाता है। यहाँ श्री कृष्ण को मधु-सूदन यथा नाम तथा गुण सिद्ध किया गया है।

मधु हैयङ्गवीनं[1] सूदयति खादतीति मधुसूदनः।

मधु-सूदन शब्द मक्खन खाने वाले श्री कृष्ण का बोधक है।

श्री कृष्ण ने, जितना भी गोरस था, सब उड़ा दिया। इधर छकड़े पर भी जो लदा था उसे भी अशन कर समाप्त कर दिया। यशोदा जी स्नान करके लौटीं तो देखा—मध्वादि-रिक्त-गव्यशून्य-भग्नभाण्ड। और श्री कृष्ण खा-पी कर कपड़े से मुख पोंछ रहे थे। द्वार पर कुछ गोपाल थे। यशोदा ने उन गोपालों से पूछा। क्योंकि अकेले श्री कृष्ण सब सफाचट कर जाते यह यशोदा के लिए विश्वसनीय नहीं था। शिशुओं ने बताया कि—

'चखाद सत्यं बालस्ते नास्मभ्यं दत्तमेवच।[2]

अब तो यशोदा जी क्रोधित होकर हाथ में दण्ड लेकर लाल आँख किये दौड़ीं। शिशु कृष्ण भाग चले। धूप हो रही थी। यशोदा खदेड़ने लगीं। थक गयीं, धूप लगी। कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये—

विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालुः पुरुषोत्तमः।
संतस्थौ पुरतो मातुः सस्मितो जगदीश्वरः॥
करे धृत्वा च तं देवी समानीय स्वमालयम्।
बद्ध्वा वस्त्रेण वृक्षे च तताड मधुसूदनम्॥
बद्ध्वा कृष्णं यशोदा सा जगाम स्वालयं प्रति।
हरिस्तस्थौ वृक्षमूले जगतां पतिरीश्वरः॥[3]

श्रद्धावश माँ पर दया आ गयी। श्री कृष्ण रुक गये। माँ यशोदा ने पकड़ कर वृक्ष में बाँध दिया और पूरी मरम्मत की। बाँधने में यशोदा ने शीघ्रता एवं स्नेहवश कपड़े का प्रयोग किया। बाँधते ही वृक्ष टूट गया। यशोदा ने पुत्र को गोद में सँभाला। सम्पूर्ण ब्रज टूट पड़ा। यशोदा को पुरवासियों ने लताड़ा। लघु वयस्क सुत के प्रति यह निर्दयता किसे सह्य हो सकती है। उधर वृक्ष टूटते ही उससे स्वर्णालंकारों से विभूषित एक गौरकिशोर प्रकट हुआ। वह श्रीकृष्ण को प्रणाम कर दिव्य स्यन्दन पर आरूढ़ हो स्वर्ग धाम चला गया।

उक्त कथा में श्री कृष्ण को क्रोध करने का अवसर नहीं मिलता है। चंचलता में श्रीमद्भागवत के श्री कृष्ण कुछ आगे हैं। वे ओखली पर चढ़ कर छींके से नवनीत

१. ब्रह्म वै० ४, १।१४।३ २. वही ४, १।१४।६ ३. वही ४, १।१४।१०-१२

निकाल कर खाते हैं तथा वानरों को भी खिला देते हैं। यशोदा भी दास-दासियों से समावृत हैं। वे गीत गाती हुई दधिमन्थन का कार्य करती हैं। वे रेशमीवस्त्र धारण किये फेंट कसे, करधनी पहने, कंगन कुण्डल और मालती माला भी पहने हैं। कोमल होने के कारण मथनी की रस्सी खींचते-खींचते उनके बाल छितरा गये थे। मुख पर पसीना और मालती माला मसल उठी थी। इसी मध्य में श्री कृष्ण ने मथानी पकड़ी। माँ ने पुत्र के भाव को समझ लिया। दधि-मन्थन रोक दिया। बच्चे को दूध पिलाया। श्री कृष्ण प्रसन्न हुए। तब तक दूध में, जोकि आग पर रखा था, उफान आ गया। यशोदा उसे सँभालने चली गयीं। श्री कृष्ण माँ के चले जाने से अप्रसन्न हो उठे। दधि के पात्र पर दाँतों से काटा, दन्त-दष्ट अंकित हो गया। तदनन्तर ही लोढ़े से भाण्ड को तोड़ दिया। मक्खन खाया। अब यशोदा जी आती हैं और देखती हैं वानरों की भीड़-भाड़। सभी गोरस-पात्र फूटे पड़े थे। छड़ी लेकर दौड़ीं। अन्त में थक गयीं। दयावश कृष्ण ने अपने को गृहीत करा दिया। पकड़ कर रस्सी में सुत को बाँधने लगीं। रस्सी बार-बार दो अंगुल छोटी हो जाती थी। घर की सारी रस्सी लग जाती है। (इस प्रसंग में लंका में हनुमान के पुच्छ का स्मरण होना स्वाभाविक है।) कृष्ण बँध गये। यशोदा जी गृह कार्य में लग जाती हैं। ये अवसर पाकर ओखली खींचने ले गये और यमल (दो) अर्जुन के मध्य ओखली बझाकर खींचा, पेड़ टूट गये। नलकूबर और मणिग्रीव का उद्धार हो जाता है।

ब्रह्मवैवर्त में कुबेर के सेवक नलकूबर और रतिदात्री मनोहारिणी प्रिया रम्भा शापग्रस्त होकर पृथक्-पृथक् अवतीर्ण हुए। रम्भा जनमेजय की पत्नी हुई जो सुभगा नाम से विख्यात हुई। जनमेजय ने अश्वमेध-यज्ञ किया। घोड़ा दिग्विजय से लौटा। अश्वशाला में बाँधा गया। अश्व सौन्दर्य पर मुग्ध होकर जनमेजय की पत्नी उसे देखने गयीं। इन्द्र वहीं छिपे थे। उन्होंने उससे हठात् रति किया। पत्नी ने शरीर त्याग कर दिया। इस प्रकार रम्भा का उद्धार हुआ और अर्जुन वृक्ष के रूप में नलकूबर का उद्धार हो गया। इस प्रकार लघु अन्तर एवं अतिरंजित विस्तारपूर्वक कथा में विशेष अन्तर नहीं है। ब्रह्मवैवर्त से श्रीमद्भागवत की कथा रोचक अवश्य है किन्तु कृष्ण की अवस्था का उसमें सामंजस्य नहीं है। ओखली उठा के ले जाना, छींके से मक्खन उतारना, ये सब अर्धवर्ष वयस्क बालक के लिए सामान्यतया सम्भव नहीं है।

एक अन्य दिन नन्द जी श्री कृष्ण को लेकर भाण्डीर वन गोचारण के लिए गये। शिशु को वक्ष पर किये हुए एक वृक्ष के मूल पर बैठे थे। कृष्ण की माया से अकस्मात् आकाश मेघाच्छन्न हो गया। कानन में श्यामता छा गयी। झंझावात चल पड़ा। बिजली कड़कने लगी। वृष्टि की अति स्थूल अजस्र धारा से तरु-तरु काँप रहे थे। ऐसा लगता था कि वृक्ष अभी ऊपर गिरेंगे। बेचारे नन्द घर चले जाँय तो गायों-बछड़ों का क्या होगा। यदि इस वायु-वर्षा में पड़े रहें तो सुवन कृष्ण का क्या होगा। इसी बीच में श्री

कृष्ण भयविह्वलता प्रकट करते हुए नन्द का कण्ठ पकड़कर रोने-चिल्लाने लगे। इसी मध्य में वहीं राधा आ पहुँची। राधा के अवर्णनीय सौन्दर्य ने नन्द को विस्मय में डाल दिया किन्तु नन्द राधा से सम्भवतः पूर्वपरिचित थे। देखते ही—

ननाम तां साश्रुनेत्रो भक्ति नम्रात्मकन्धरः।
जानामि त्वां गर्ग मुखात् पद्माधिकप्रियां हरेः।।
जानामीमं महाविष्णोः परं निर्गुणमच्युतम्।
तथापि मोहितोऽहं च मानवो विष्णुमायया।।
गृहाणं प्राणनाथं च गच्छ भद्रे यथासुखम्।
पश्चाद् दास्यसि मत्पुत्रं कृत्वा पूर्णमनोरथम्।।[1]

राधा को नन्द ने पहचान लिया। नन्द ने गर्ग के मुख से पहले ही सुन रखा था कि राधा हरि की पद्माधिक प्रिया है। विष्णु की माया से सभी मुग्ध हैं। राधा ने भी बताया कि मुझे जो आपने देखा (या पहचाना) यह कई जन्मों (की तपस्या) का फल है।[1] राधा ने नन्द को वरदान भी दिया—

दास्यामि दास्य मतुलमिदानीं भक्तिरस्तुते।।
आवयोश्चरणाम्भोजे युवयोश्च दिवानिशम्।
प्रफुल्लहृदये शश्वत्स्मृतिरस्तुसुदुर्लभा।।
माया युवां च प्रच्छन्नो न करिष्यति मद्वरात्।
गोलोके यास्यथान्ते च विहाय मानवीं तनुम्।।

एतदनन्तर वहाँ से राधा दूर चली जाती हैं। दोनों हाथों से उन्हें पकड़े हैं। गोद में स्थित श्री कृष्ण का बारम्बार चुम्बन करती हैं। सर्वांग पुलकित राधा ने रास मण्डल का स्मरण किया। इतने में सर्व-सुविधा-सम्पन्न, सर्व भोगविलासित, मणीन्द्ररत्नालंकार समलंकृत मण्डप को राधा ने देखा। और देखा उस क्रोडस्थ कृष्ण को जो किशोरवय अतिकमनीय थे। राधा आश्चर्य चकित हो गयीं। अपने चक्षुचकोरों से श्री कृष्ण मुखचन्द्र का पान करती रहीं।

निमेषरहिता राधा नवसंगम-लालसा।
पुलकाङ्कित सर्वाङ्गी सस्मिता मदनातुरा।।[2]

श्री कृष्ण ने राधा को स्मरण दिलाया :—

ममाङ्गांशस्वरूपा त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी।
शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मम तुल्या वरानने।।

राधा-कृष्ण का पारस्परिक मिलन-संवाद चल रहा था कि ब्रह्मा आ पहुँचे।

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।१५।२६-२८ २. वही ४,१।१५।५६

ब्रह्मा ने कृष्ण और राधा को प्रणाम किया तथा यह भी बताया कि यह दर्शन पुष्कर तीर्थ में सात वर्ष तप करने के फलस्वरूप है।

ब्रह्मा ने राधा और कृष्ण के मध्य में अग्नि प्रज्ज्वलित की, विधिपूर्वक हवन किया। स्वयं कृष्ण ने भी हवन किया किन्तु राधा ने हवन नहीं किया क्योंकि ऐसी परम्परा भी थी कि स्त्री हवन नहीं करती थीं। ब्रह्मा ने राधा और कृष्ण से सात प्रदक्षिणा भी करायी।[१] कृष्ण के हाथ को राधा की पीठ पर और राधा के हाथ श्री कृष्ण के वक्ष पर रखवाया। राधा को तीन मन्त्र ब्रह्मा ने पढ़ाया वा उच्चारण कराया। पारिजात-पुष्प-विनिर्मित एवं जानुलम्बित माला को राधा द्वारा श्री कृष्ण के गले में और कृष्ण द्वारा राधा के गले में ब्रह्मा ने पहनवाया। पाँच वैदिक मन्त्रों को भी उन दोनों से ब्रह्मा ने पढ़ाया। ब्रह्मा ने प्रणाम कर राधा कृष्ण चरण में सुदृढ़ भक्ति का वरदान पाकर वहाँ से प्रस्थान किया।

राधा ने ब्रह्मा के गमनानन्तर लज्जा से श्री कृष्ण को देख मुख ढक लिया, जैसा कि प्रत्येक दूल्हन करती है। श्री कृष्ण ने राधा-प्रदत्त स्वादिष्ट भोजन, सुवासित ताम्बूल ग्रहण किया और राधा ने श्री कृष्ण-प्रदत्त ताम्बूल ग्रहण किया। श्री कृष्ण ने प्रेम-वश राधा के चर्वित ताम्बूल को भी माँगा किन्तु राधा ने 'क्षमा' कह कर टाल दिया। श्री कृष्ण ने राधा को सिन्दूर तिलक दिया। दोनों ने आमोदपूर्ण कामयुद्ध किया। राधा जब श्री कृष्ण का रूप धारण करने को उद्यत हुईं इतने में कृष्ण यथापूर्व शिशु हो गये। क्षुधा-पीड़ित लघु बालक के रूप में रोने लगे। राधा भी रोने लगीं। आकाश वाणी ने राधा को बताया 'कि राधे रोओ नहीं। कृष्ण-चरण का स्मरण करो।' शीघ्र ही राधा वृन्दावन से नन्दगृह गयीं। अल्पकाल में ही, आधे निमेष में राधा ने पहुँच कर यशोदा को बताया कि लो यह बालक भूखा है, तुम्हारे पति ने अति दुर्दिन बदली में दे दिया। मुझे मार्ग में लाने में भी कष्ट हुआ। दूध पिला कर सन्तुष्ट करो। मुझे भी बड़ी देर हो गयी, घर जा रही हूँ। यशोदा ने शिशु को स्तन पान कराया। अब राधा नित्य रात में श्री कृष्ण से रतिलीला करने लगीं।

श्री कृष्ण अब कुछ बड़े हो गये। बलराम के साथ जंगल तक जाने योग्य वे हो गये थे। बच्चों के साथ नानाविध क्रीडाओं में व्यस्त रहने लगे थे। एक दिन दोनों भाई खा-पीकर श्रीवन को गोधन के साथ प्रस्थान किये। वहाँ उन्होंने एक ऐसा बक देखा जो श्वेत वर्ण एवं भयंकर था। उसने देखा कि बलराम और केशव कोष्ठ में हैं। घात करने के लिए अवसर मिल गया। कृष्ण को मुखान्तर्गत कर लिया। देव भी भयभीत हो गये। सर्वत्र हाहाकार मच गया। सभी देव अस्त्र वर्षा किये। इन्द्र ने वज्र, चन्द्र ने शीतास्त्र, सूर्यपुत्र यम ने यम-दण्ड, वायु ने वायव्यास्त्र, वरुण ने शिलावृष्टि,

१. ब्रह्म वै० ४, १।१५।२३

अग्नि ने आग्नेयास्त्र, कुबेर ने अर्धचन्द्र और ईशान (शिव) ने शूल का प्रहार किया। बकासुर का इन अस्त्रों द्वारा अन्तर-बाहर सब जल गया। ऋषि-मुनियों ने कृष्ण को आशीर्वाद दिया। बक ने वमन करते हुए प्राण का परित्याग किया। कृष्ण बाल-बाल बच गये।

बकासुर से सम्बद्ध घटना की कोई सूचना गोकुल में नहीं पहुँचती न तो ग्वाल-बालों में कोई क्षोभ दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण के जीवन में यह प्रथम अवसर है कि देव प्रत्यक्ष सहायता करते हैं। वहाँ से वे गोचारण करते हुए कदम्ब-वन की ओर भी प्रस्थान कर जाते हैं।

ग्वाल-बाल और बलराम के साथ केशव गोधन लेकर कदम्ब-वन में पहुँच जाते हैं। वहाँ एक पर्वताकार वृषरूप असुर मिल गया। उसने अपनी सींगों पर कृष्ण को उठा लिया और घुमाने लगा। सभी बालक भयविह्वल हो विलाप करने लगे। इतने में बलराम ने बालकों को बताया कि श्री कृष्ण साधारण व्यक्ति नहीं किन्तु परमेश्वर हैं। भय की आशंका मत करो। तब तक मधुसूदन ने शृंग ग्रहण कर वृषभ को उठाया और आकाश में घुमा दिया। वृषभ गिरते-गिरते काल के गाल में समा गया। ग्वाल-बाल हँसने-नाचने लगे। यह असुर श्रीमद्भागवत में वृषभासुर[1] और ब्रह्म वैवर्त में प्रलम्ब कहा गया है।

तदनन्तर वहाँ से सभी गो-गोपाल भाण्डीर वन चल पड़े। उक्त घटना की भी सूचना गोकुल तक आयी नहीं। भाण्डीर वन पहुँचते-पहुँचते इन सबसे वहाँ दैत्यराज केशी से भेंट हो गयी। माधव को अकेला पाकर इन्हें केशी ने घेर लिया। खुर से धरती कुरेदने लगा जैसा कि वीरभाव में सभी पशु किया करते हैं। केशी ने श्रीकृष्ण को सिर पर उठाकर आकाश में सौ योजन घुमाया और उठाकर पटक दिया। मारे क्रोध के उसने कृष्ण को चबा लेना चाहा किन्तु कृष्ण को दाँत से पकड़ते ही उसके दाँत टूट गये तथा उसका प्राणान्त हो गया।

तदनन्तर ही तीन दिव्य देहधारी कृष्ण के सम्मुख उपस्थित हो गये। श्री कृष्ण प्रसाद से तीनों का उद्धार हो गया।

इनके परिचय में नारायण ने नारद से बताया है कि दुर्वासा के चार शिष्य वसुदेव, सुह्रोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्वक नाम के थे। ये चारों नित्य श्री कृष्ण सेवा में लगे रहते थे। नित्य ही श्री कृष्ण को कमल समर्पित कर जल ग्रहण करते थे। एक बार वे पूजा-कमल हेतु चित्र-सरोवर पहुँच गये। वहाँ शिवगण रक्षक थे। ये चारों उनसे दुर्बल थे अतः वे इन्हें पकड़ कर ले गये। शिव-समक्ष प्रस्तुत हुए। शिव ने इनका परिचय पूछा तथा बताया कि इसी सरोवर के एक सहस्र कमल-पुष्पों को पार्वती हरि पूजार्थ अर्पित करती हैं। शिव ने इनकी बातें सुनीं। अन्त में कहा कि श्री कृष्ण भक्तों का कोई

१. श्रीमद्भा० १०।३६।१

अशुभ नहीं होता किन्तु पूर्वकृत मेरी प्रतिज्ञा भी निष्फल नहीं जायेगी। तुम सब मानव योनि प्राप्त करके गोलोक निवासी होगे—

वसुदेवः पुरा मुक्तः सुहोत्रश्च बकासुरः।
सुदर्शनः प्रलम्बोऽयं स्वयं केशी सुपार्श्वकः॥[1]

इस प्रकार श्री कृष्ण ने बक, प्रलम्ब और केशी का उद्धार किया। श्रीमद्‌भागवत में बक, प्रलम्ब और केशी के पूर्वजन्म का वृत्त नहीं है।

इन असुरों को एक ही दिन वध करके श्री कृष्ण घर पहुँचे तो बालकों ने सारी वन-वार्ता का निवेदन किया। नन्द भयभीत हो गये। बड़े बूढ़ों से परामर्श किया गया। समयोचित युक्ति (शान्ति आदि) करके नन्द जी उस स्थान को ही त्याग देने के लिए उद्यत हो गये। आबाल-वृद्ध गोप-गोपी भी नन्द जी की बातों को मान कर त्वरित समुद्यत हो गये। गाते बजाते नाना वाहनों से वे चल पड़े। इनको पहुँचाने के लिए अश्व, गज, रथ, वृष और गर्दभों का प्रयोग किया गया था।

किन्तु वृन्दावन तो वन-मात्र था। उसमें रहने का स्थान कहाँ। इस सम्बन्ध में नन्द को श्री कृष्ण ने आश्वस्त किया।[2] वहाँ वन देवता की पूजा के अनन्तर रात्रि में सब सो गये तो निशाकाल में ही शिल्पियों के गुरु के भी गुरु विश्वकर्मा ने सम्पूर्ण वन मध्य में पूरित कर दिया। विश्वकर्मा ने इस कार्य को रात्रि में सबके सो जाने पर पंचम मुहूर्त लगते ही प्रारम्भ कर दिया। प्रातः सोकर उठने से पूर्व सम्पूर्ण निर्माण सम्पन्न एवं व्यवस्थित हो चुका था।

इसी प्रसंग में राधा के परिवार की भी चर्चा है। क्योंकि नन्द के साथ चन्द्र गोप भी थे।[3] ये ही राधा के पिता थे। इनका एक अपरनाम वृषभानु भी था।[4] नारायण ने नारद से कहा कि पितरों की मानसी तीन कन्याएँ थीं—

बभूवुः कन्यकास्तिस्रः पितृणां मानसात्पुरा।
कलावती रत्नमाला मेनकाश्चाति दुर्लभाः॥[5]

कलावती राधा की, रत्नमाला सीता की तथा मेनका पार्वती की माताएँ थीं।

इसी के मध्य पाती प्रसंग में पार्वती का त्रैमासिक व्रत,[6] वृन्दावनपुरी,[7] वृन्दावन-यात्रा का चमत्कृत वर्णन[8] तथा वृन्दावन का प्राचीन इतिहास[9] भी बताया गया है।

---

१. ब्रह्म वै० ४,१।१६।७१ २. वही ४,१।१६।१७५-७८ ३. वही ४, १।१७।३८
४. वही ४, १।१७।२८ ५. वही ४,१।१७।३४ ६. वही ४, १।१६।७७-१४३
७. वही ४,१।१७।१-२६ ८. वही ४,१।१६।१४६-१५४
९. वही ४, १।१६।१६०-२१८

श्रीमद्भागवत में केशी वध के अनन्तर श्री कृष्ण व्योमासुर का भी वध करते हैं।[1] ब्रह्मवैवर्त में व्योमासुर का कोई संकेत नहीं मिलता है।

ब्रह्मवैवर्त पूर्वार्ध कृष्ण जन्म के अट्ठारहवें अध्याय में विप्र-पत्नियों का रोचक प्रसंग है। सामान्य परम्परा बनी हुई थी कि भगवदर्पण के पश्चात् ही भोजन जैसे खाद्य पदार्थ का अशन होना चाहिए। किन्तु इस तथ्य को प्रकट करने के लिए कि अब विष्णु के अवतार श्री कृष्ण समाज में साक्षात् उपलब्ध हैं इस प्रसंग को अभिनीत करना आवश्यक समझा गया होगा।

यज्ञ के अवसर पर बुभुक्षित बालक की उपेक्षा की जाय और यज्ञांगभूत अन्य कार्य करना पुण्य समझा जाय अथवा किया जाय, इस भ्रान्त धारणा को ही निर्मूल करने के लिए श्री कृष्ण ने इस प्रसंग को समायोजित किया होगा।

यह तो स्पष्ट है कि विप्रगण अभी श्री कृष्ण का सम्मान नहीं कर रहे थे। अतएव श्री कृष्ण ने बालकों से कहा कि—

बाला गच्छत विप्राणां यज्ञस्थानं सुखावहम्।
अन्नंयाचत ताञ्छीघ्रं ब्राह्मणांश्च क्रतून्मुखात्॥

किन्तु

इत्यूचु बालकाः शीघ्रमन्नं दत्त द्विजोत्तमाः।
न शुश्रु वुर्द्विजाः केचित्केचिच्छ्रुत्वा स्थिराः स्थिताः॥

वे सुनते भी क्यों? वे यज्ञ की पूर्ति में लगे थे। वास्तव में भूखे की उपेक्षा कर अग्नि का पेट भरना ब्राह्मणों की अज्ञता का परिचायक है। सम्भवतः बौद्ध सिद्धान्तों का मूल इस कथा से प्रभावित हो।

श्रीमद्भागवत में ब्राह्मणों पर कटुव्यंग्य भी किया गया है—

इति ते भगवद्याञ्चां शृण्वन्तो पि न शुश्रुवुः।
क्षुद्राशाभूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः॥[2]

अन्त में इसी प्रसंग में वे ब्राह्मण स्वीकार करते हैं।

धिग्जन्मन स्त्रिवृद्विदयां धिग्व्रतं धिग् बहुज्ञताम्।
धिक् कुलं धिक् क्रिया दाक्ष्यं विमुखायेत्वधोऽक्षजे॥[3]

श्री कृष्ण यज्ञकर्ता ब्राह्मणों को समझते थे अतः याचक गोपाल बालकों को पहले ही सावधान कर दिया था कि यदि ब्राह्मण लोग याचना पर ध्यान न दें तो उनकी पत्नियों से पाकशाला तक जाकर माँग लेना—

---

१. श्रीमद्भा० १०।३७।२५-३४. २. वही १०।२३।९ ३. वही १०।२३।३८

न चेद्ददाति युष्मभ्यमन्नं विप्राः क्रतून्मखाः ।
तत्कान्ता याचत विप्रंदयायुक्ताः शिशून् प्रति ।।[1]

ब्राह्मण-पत्नियों ने सुनते ही अति प्रेममग्न हो स्वादिष्ट भोज्य लेकर वटमूल में अवस्थित श्री कृष्ण को प्रदान किया ।

नाना व्यंजन संयुक्तं शाल्यन्नं सुमनोहरम् ।
पायसं पिष्टकं स्वादु दधिक्षीरं घृतं मधु ।।[2]
श्री कृष्णं ददृशुर्गत्वा रामंच सह बालकम् ।[3]

श्री कृष्ण ने इनका उद्धार किया । इनकी पूर्व जन्म कथा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सप्तर्षियों की अप्रतिम सुन्दरी रमणियों पर अग्नि आसक्त हो गये । अंगिरा ने इसे जान लिया अतः अग्नि को सर्वभक्षी होने तथा ऋषिपत्नियों को मानुषी योनि में जाने का शाप दिया । किन्तु प्रसन्न होने पर अंगिरा ने उन्हें निस्तारात्मक आशीर्वाद भी दिया :—

यात यूयं पृथिवीं मानुषीं योनिमीप्सिताम् ।
कृष्णदर्शन मात्रेण गोलोकं यास्यथ ध्रुवम् ।।
हरिणा निर्मिताश्छाया युष्माकं योगमायया ।
ता विप्रमन्दिरें स्थित्वा चागमिष्यन्तिनो ध्रुवम् ।।[4]

इस प्रकार विप्रपत्नियों का उद्धार हो गया । उनकी छायाएँ ब्राह्मणों के गृह में विराजमान रहीं । यह ऋषि शाप भी ऋषिपत्नियों के लिए उपकार हो गया ।

निन्द्यानीचाच्च सम्पत्तिर्विपत्ते र्महतो वरा ।
अहो सद्यः सतांकोपश्चोपकाराय कल्पते ।।[5]

गोप-बालकों के साथ, जिनमें बलदेव नहीं थे, श्री कृष्ण कालिय-स्थान के निकट यमुना के तट पर खेल रहे थे । सभी गोप भूख लगने पर इच्छाभर पके फल खाकर पेट भर पानी पीए और खेल में लगे रहे । वहाँ कालिय-कुण्ड का जल विषाक्त था । गायें बेचारी क्या समझतीं । नवीन घास चर कर उन्होंने विषाक्त जल पान कर लिया । दारुण-विष से उनका प्राणान्त हो गया । गोसमूह को मृत देख कर सभी गोपाल अति व्यग्र हो गये । गोविन्द ने सबकी व्यग्रता को शान्त करने के लिए गोवृन्द को जीवित तो कर दिया किन्तु विष को वास्तविक शान्ति के लिए कालिय को कुण्ड से बाहर कर देना ही स्थायी समाधान था ।

अतएव श्री कृष्ण यमुना के कालिय-कुण्ड में कूद पड़े ।

---

१. ब्रह्म वै० ४, ११।१८।१२ २. वही ४, ११।१८।२४ ३. वही ४, ११।१८। २७
४. वही ४, ११८।१२०, १२१ ५. वही ४, ११।१८।१२५

कृष्णः कदम्बमारुह्य यमुनातीर नीरजम् ।
पपात सर्प-भवने नाग-मध्ये नराकृतिः ।।
शत-हस्त-प्रमाणं च जलोत्थानं बभूव ह ।[1]

कृष्ण को देखते ही नाग ने पकड़ तो लिया किन्तु ब्रह्म तेज का ऐसा प्रभाव हुआ कि उसका कण्ठ और उदर जलने लगा। परिणामतः उसने उगल दिया। नाग के दाँत टूट गये, मुख लाल हो गया। उसकी असमर्थ स्थिति में कालिय नाग-पत्नी सुरसा ने कृष्णाभिवन्दन किया। कृष्ण प्रसन्न हुए। उन्होंने सुरसा को अपनी कन्या तथा कालिय को अपना जामाता स्वीकार किया। यह आशीर्वाद भी दिया कि "अब गरुड से भयभीत न हो। रमणक द्वीप पर चलो। गरुड तो अब मेरे चरणर्चिचत नाग-शिर की अभ्यर्थना एवं प्रार्थना करेंगे।" अब कालिय भी गरुड़ भय से मुक्त हुआ।

उपर्युक्त प्रसंग में नारद ने नारायण से कालिय ह्रद में गरुड के न आने का कारण पूछा तो नारायण ने बताया कि सौभरि ऋषि सहस्र दिव्य वर्ष तक तप करके सिद्ध हो यहीं यमुना-तट पर रहते थे। एक दिन अपने गणों सहित गरुड को उन्होने मत्स्य ग्रहण करते देखा। एक मत्स्य तो तट पर मुनि के पास आ गया, गरुड के भय से हटा नहीं। सौभरि ने दयाप्लुत हृदय हो गरुड को रोका। उसकी धृष्टता पर क्रुद्ध हो उन्होंने गरुड को शाप दिया कि यदि अब तुम इस ह्रद में आये तो भस्म हो जाओगे।

अद्य प्रभृति पक्षीन्द्र ! यद्यागच्छसि मे ह्रदम् ।
मदीय-शापात्तूर्णं च भस्मसाद् भविता ध्रुवम् ।।[2]

नारद के इस प्रश्न के उत्तर में कि कालिय क्यों अपना स्थान छोड़ कर भाग चला, गरुड और कालिय के मध्य द्वेष के कारण क्या हैं, नारायण ने उत्तर दिया—

शेष की आज्ञा से प्रति कार्तिकी पूर्णिमा को गरुड की पूजा सभी नाग करते थे किन्तु कालिय ने मदावलेप में ऐसा न किया प्रत्युत उसने पूजोपकरण सामग्री भी भक्षित कर ली। अन्य नागों को भी पूजा से विरत कर दिया। गरुड को ज्ञात हुआ। अन्त में युद्ध ठन गया। रात भर तो भिड़े रहे, सूर्योदय होते-होते भाग कर अन्य नाग अनन्त को शरण ग्रहण कर लिये। किन्तु भगवान् विष्णु का स्मरण कर कालिय लड़ता रहा किन्तु वह भी प्राण बचाकर परिवार सहित यमुना ह्रद में समा गया। सौभरि के शाप के कारण गरुड यहाँ आ न सका।

अन्त में नागेश्वरी सुरसा को कृष्ण ने अपनी पुत्री स्वीकार कर आशीर्वाद दिया :—

मत्पादपद्मचिह्नेन गरुडस्त्वत्पति शुभे ।
कृत्वा च स्तवनं भक्त्या प्रणमिष्यति सादरम् ।।

१. वही ४, १।१९।८,९ २. ब्रह्म वै० ४, १।१९।१३२

त्यज त्वं गरुडाद् भीतिं शीघ्रं रमणकं व्रज ।
ह्रदान्निर्गच्छ वत्सेत्वं वरं वृणु यथेप्सितम् ॥[१]

इसी को श्रीमद्भागवतकार ने लिखा है :—

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ।
यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पदलांछितम् ॥[२]

कृष्ण के कालिय दह में कूदने और नाग के निष्कासन आदि की बातें सुन कर सभी नन्द यशोदा, गोपगोपी भयकातर एवं प्रेमविह्वल हो उठे। बलराम सभी को कृष्ण का महत्व समझाते रहे इतने में ही वन में आग लग गयी। सब कुछ भस्मसात् होने लगा। श्री कृष्ण की प्रार्थना ग्वालों ने की। श्री कृष्ण ने सबकी रक्षा की। यहाँ रक्षासाधन प्रस्तुत करने की कोई चर्चा नहीं है और न तो किसी राक्षस का नाम लिया गया है। कृष्ण की अमृत दृष्टि से वह अग्नि शान्त हो गयी।

दूरीभूतस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टित: ।[३]

एक बार ब्रह्मा ने भी उनके प्रभाव को जानने के लिए गायों बछड़ों और बालकों को छिपा दिया। किन्तु कृष्ण ने ज्यों के त्यों दूसरे कल्पित कर लिए। यह क्रम वर्ष भर प्रतिदिन चलता रहा—

तस्य प्रभावं विज्ञातुं विधाता जगतांपतिः ।
चकार निह्नुतिं गाश्च वत्सांश्च बालकानपि ॥

विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञः सर्वकारकः ।
पुनश्चकार तत्सर्वं योगीन्द्रः योगमायया ॥
एवं चकार भगवान् वर्षमेकं च प्रत्यहम् ॥[४]

अन्त में लज्जित होकर ब्रह्मा ने गोप एवं गोकुल लौटा कर श्री कृष्ण को प्रणाम किया। उन्होंने रोते-रोते क्षमा भी मांगी।

इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वागाश्च स बालकान् ।
निपत्य दण्डवद्भूमौ रुरोद प्रणनाम च ॥[५]

कृष्ण का अब शैशव समाप्त हो गया। शैशव की क्रीड़ाएँ कालिय-दमन तक पहुँचने-पहुँचते श्री कृष्ण को विख्यात कर चुकी थीं। कृष्ण अथवा बलराम निरे गोप नहीं किन्तु महत्वपूर्ण बहुचर्चित व्यक्तित्व से समायुक्त हो गोपों के हृदय सम्राट हो चुके थे। ब्रह्मा भी अपनी विनती अर्पित कर चुके थे। किशोरावस्था के प्रवेश द्वार पर अपनी महाशक्ति के साथ कृष्ण अब खड़े हो गये। अहंकारी इन्द्र की गोपों द्वारा

---

१. ब्रह्म वै० ४, ११९।४१-४२ २. श्रीमद्भा० १०।१६।६३ ३. ब्रह्म वै० ४, ११९।१७८ ४. वही ४, १।२०।३-४-१/२ ५. वही ४, १।२०।-४२/१, ४३/१ ।

पूजा श्री कृष्ण को सह्य नहीं थी । विशेषतः सह्य नहीं थी उस गोवर्धन की उपेक्षा जिसकी कृपा से सकल धेनुवृन्द एवं गोपाल आनन्दित एवं निश्चिन्त थे ।

इन्द्र की परम्परागत प्रतिष्ठा को इससे विशेष आघात पहुँचा होगा । प्रत्यक्षतः अब श्री कृष्ण गोपों के पूज्य हो गये ।

श्री कृष्ण ने देखा कि इन्द्र योग हेतु नन्द ने सर्वत्र घोषणा प्रसारित कर दी--

दधिक्षीरं घृतं तक्रं नवनीतं गुडं मधु ।
एतान्यादाय शक्रस्य पूजां कुर्वन्त्वितिब्रुवन् ।।
ये ये सन्त्यत्र नगरे गोपागोप्यश्च बालकाः ।
बालिकाश्चद्विजोभूयोवैश्याः शूद्राश्च भक्तितः ।।

श्री कृष्ण ने बड़ी धूम-धाम देखी । पण्डित, मुनिगण, समस्त नगरवासी पधारे । श्री कृष्ण ने नन्द को समझाने की चेष्टा की--

त्रिनिर्मितो विराट् येन तत्त्वानि प्रकृतिं जगत् ।
कूर्मश्च शेषधरणी चाऽऽब्रह्म स्तम्ब एव च ।।१८।।
तमीशं भज भक्त्या च शक्रः किं कर्तुमीश्वरः ।।२१।।
एवं भूते तिष्ठतीशे शक्रपूजा विडम्बनम् ।।२६।।
द्रव्याण्येतानि देवाय यद्यं कस्मै प्रयच्छति ।
सर्वे देवाश्च रुष्टाश्चेद्देवैः कः किं करिष्यति ।।८५।।
अथवार्धं च वस्तूनां देहि गोवर्धनाय च ।[1]

इस प्रकार श्री कृष्ण ने इन्द्र का महत्व क्षीण करते हुए गोवर्धन ब्राह्मण और विष्णु पूजा पर विशेष बल दिया है :--

साक्षात्खादति देवस्ते साक्षात्किंवा न खादति ।
साक्षाद्भुङ्क्ते च यो देवः सुप्रशस्तं द्विजार्चनम् ।।

उन्होंने बताया कि साक्षाद्देवता ब्राह्मण और गोवर्धन की पूजा प्रिय होनी चाहिए । इस विरोध को इन्द्र सहन न कर सके । परिणाम यह हुआ कि समस्त ब्रज में धूलि की आंधी से अँधेरा हो गया । समस्त वृन्दावन मेघ-वृन्द से घिर कर निरन्तर अतिवृष्टि से विह्वल हो उठा । शिलावृष्टि, वज्रवृष्टि और उल्कापात दारुण रूप से हुआ ।

अन्त में कृष्ण ने गायों, बछड़ों, बच्चों और स्त्रियों को, जोकि भयभीत थे, गोवर्धन की गुफा में रखकर निर्भय कर दिया । वाम हस्त से दण्ड की भाँति

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२१।१८,२१,२६,८५,८६

उन्होंने गोवर्धन को धारण कर लिया। श्री कृष्ण को जृम्भा आई, उसके प्रभाव से इन्द्र को तन्द्रा हो गयी। उस तन्द्रा में इन्द्र को कृष्ण शक्ति का ज्ञान हुआ और वे कृष्ण के समक्ष नतमस्तक हो गये।[१]

समस्त ब्रजवासियों का बचना, गोकुल की रक्षा सब कुछ नन्द ने निज नयनों से देखा। इन्द्र कोप करके भी कृष्ण द्वारा गृहान्तर्गत सुरक्षित गो, बालकों और पशुओं का कुछ बिगाड़ न सके। इन्द्र की प्रतिस्पर्धा में भी श्री कृष्ण खरे उतरे। समस्त ब्रज पर इनका विशेष प्रभाव व्याप्त हो गया।

एक बार ब्रातवन में राधिका नाथ कृष्ण, गोपालों एवं बालकों के साथ गये। वहाँ के ताल-फल तोड़ कर सभी के साथ खाने लगे। खर रूप में धेनुक अपने को ताल वन का रक्षक कहता था। गोपाल-गण उसे देखकर उसके विकराल रूप से भयभीत हो गये। श्री कृष्ण ने उन लोगों को साहस बँधाया और बलराम से गोपालों को दूर ले जाने को कहा। वे गोपालों के साथ हट गये। अब धेनुक ने कृष्ण को मुखग्रास बना लिया किन्तु ब्रह्म तेज से जलते श्री कृष्ण को मुख में रख न सका, त्वरित ही उगल दिया। अन्त में श्री कृष्ण के कर्कशांग को चर्वण करने के प्रयास में धेनुक के दाँत भी टूट गये। धेनुक को अपना पूर्ववृत्त ज्ञान हो गया और श्री कृष्ण के चरणों में नतमस्तक होकर गर्दभत्व से मुक्ति की प्रार्थना करने लगा। श्री कृष्ण ने षोडशार चक्र से उसे कर्तित करते ही मुक्त कर दिया।[२]

धेनुक के पूर्व-जन्म की कथा बताते हुए नारायण ने कहा कि यह पद्म-कल्प का वृत्तान्त है। उस समय नारद उपवर्हण थे। ये आकल्प-जीवी स्थिर यौवन एवं सुन्दर और पचास कामिनियों के पति थे। तभी बलि का पुत्र साहसिक अलंकृत हो गन्धमादन पर भ्रमण कर रहा था। दैववश तिलोत्तमा भी चन्द्र के पास चन्द्रलोक जा रही थी। मार्ग में मनोहर साहसिक को देखते ही मुग्ध हो गयी। चन्द्र को विस्मृत हो गयी। साहसिक भी काममत्त हो मूर्च्छित हो गये। दोनों एक दूसरे के सम्मुख निकट हुए। अति रस भरी वार्ता हुई। दोनों एक दूसरे पर लट्टू हो गये। मनमाने ढंग की रति क्रीडा जो भर हुई।

उसी गन्धमादन पर्वत की गुफा में बल्मीक से आवृत अतएव अदृष्ट मुनि दुर्वासा का ध्यान कंकण और किंकिणी के शब्द से भंग हो गया। क्रुद्ध दुर्वासा ने साहसिक की धृष्टता के कारण उसे गर्दभ योनि में जाने का शाप दे दिया और तिलोत्तमा को दानवी होने का शाप दिया। इस प्रकार गर्दभ के रूप में साहसिक ही धेनुक और तिलोत्तमा ही वाणपुत्री उषा के रूप में अनिरुद्ध की पत्नी हुई। तदनन्तर दोनों शापमुक्त हुए।[३]

१. ब्रह्म वै० ४, १।२१।१६३-१८० २. वही ४. १।२२ ३. वही ४, १।२३

यहाँ दुर्वासा-चरित्र का भी वर्णन अग्रिम दो अध्यायों में किया गया है।[1] छब्बीसवें अध्याय में विशेष रूप से एकादशी व्रत का निरूपण किया गया है।[2]

दुर्वासा यद्यपि अतीव क्रोधी थे किन्तु उनके भी हृदय में कामपूर्ण प्रेम-संचार हुआ ही। सौभाग्य से ब्रह्मा के उरु से प्रकट होने वाले और्व मुनि[3] के जानु से भी एक कन्या प्रकट हुई। अवधी भाषा में जाँघ से पैदा होना अथवा पेट से पैदा होना मुहावरे हैं जिन्हें औरस सन्तान के लिए प्रयुक्त किया जाता है। बहुत सम्भव है कि कन्या के उद्भव के सम्बन्ध में उक्त लोकोक्ति का प्रयोग किया गया हो।

और्व मुनि की कन्या कन्दली विवाह-योग्य थी। जैसे को तैसा मिले की लोकोक्ति दुर्वासा और कन्दली परिणय के सम्बन्ध में चरितार्थ हुई। क्योंकि दुर्वासा क्रोधी थे ही और पत्नी मिली तो नित्य झगड़ा करती थी—

सम्बभूव गृहासक्तस्तपस्त्यक्त्वा मुनीश्वरः।
करोति कलहं नित्यं कन्दली स्वामिना सह ॥[4]

इस कृष्ण चरित के प्रसंग में दुर्वासा की कथा देने का कारण भी बताया कि दैत्य साहसिक और अप्सरा तिलोत्तमा की रतिक्रीडा देखकर दुर्वासा का मन कामयुक्त हो गया। उसी का परिणाम हुआ कि और्व के प्रस्ताव को मानकर दुर्वासा ने कन्दली को पाणिगृहीत किया। किन्तु सुखपूर्वक यह गृहस्थी अधिक दिन चल न सकी। कन्दली का स्वभाव नित्य कटूक्ति करने का था ही दुर्वासा क्षमा भी कितना करते। अन्त में एक दिन ऊब कर उसे शाप से भस्मसात कर दिया। कन्दली का जीव क्षमा याचना कर रहा था कि मोहयुक्त मुनि प्रिया वियोग से मूर्च्छित हो गये। पुनश्च प्राण त्याग करने लगे। योगासन किया तदनन्तर ही शीघ्र वहाँ एक ब्राह्मण-बटु दिखाई पड़ा। उसने मुनि को शोकमुक्त करते हुए बताया कि वसुदेव-सुता एकानंशा उनकी पत्नी बनेगी। यह कन्दली कदली के रूप में, प्रसिद्ध हो जाएगी। अन्य कल्प में यह शान्ता अथवा शान्त रूपा होगी।

एकानंशा च भगिनी वसुदेव-सुता हरेः।
पार्वत्यंशसमुद्भूता सुशीला चिरजीविनी ॥८१॥
कल्पे-कल्पे सुन्दरी सा तव पत्नी भविष्यति ॥८२॥
कन्दली कदली जाति र्भविष्यति महीतले ॥८३॥
कल्पान्तरे शान्तरूपा तव पत्नी भविष्यति ॥८४॥[5]

यह समाचार सुनकर कन्दली के पिता और्व मुनि अति क्षुब्ध हो उठे। वे अपने

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२४, २५ २. वही ४, १।२६ ३. वही ४, १।२४।५
४. वही ४, १।२४।४८ ५. वही ४, १।२४।८१-८४

जामाता (दुर्वासा) के घर गये, अति दुःखी हुए और बोले कि वाग्दुष्ट का परित्याग किया जा सकता है किन्तु प्राणान्त कर देना अनुचित है।[1] अतः शाप दिया कि तुम्हारा भी महान् पराभव होगा।

मदपत्यं स्वल्पदोषे यतो भस्मीकृतं त्वया।
पराभवस्तव महान् भविष्यति न संशयः॥

उसी का परिणाम हुआ कि दुर्वासा अम्बरीष के यहाँ एकादशी व्रत के अन्त में द्वादशी को पारण के अवसर पर समय से स्वयं ही न उपस्थित हो राजा को नष्ट कर देने की धमकी दी तो भगवान् विष्णु के चक्र ने मुनि का गर्व खर्व कर दिया। त्रिलोक में दौड़ते रहे। अन्त में अम्बरीष से क्षमा माँग कर ही मुक्त हो सके। इस प्रकार भारी पराभव दुर्वासा को सहन करना पड़ा।[2]

हेमन्त (मार्गशीर्ष, पौष) के प्रथम मास में यमुना के तट पर पार्वती की बालुकामयी मूर्ति बनाकर गोपिकाएँ पूजा किया करती थीं। पुष्प, माल्य, नैवेद्य, धूप, दीप प्रदान कर नमस्कार करके प्रदक्षिणा करतीं और सभी नैवेद्य ब्राह्मणों को बाँट देती थीं। अन्तिम दिन वे सब गोपियाँ समस्त पूजा सामग्री तथा अपने सभी वस्त्र तट पर रखकर स्वयं नग्न हो जल-क्रीड़ा में आसक्त थीं। इसी बीच में कृष्ण ने गोपालों के साथ जाकर वस्त्रों और सभी द्रव्यों को ले लिया। खाद्य सामग्री सभी मिलकर खाने लगे—

जले क्रीडोन्मुखा गोप्यो बभूवुः कौतुकेन च।
नग्नाः क्रीडाभिरासक्ताः श्री-कृष्णार्पित-मानसाः॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च वस्त्राणि द्रव्याणि विविधानि च।
वासांस्यादाय वस्तूनि चखाद शिशुभिः सह॥[3]

कुछ कपड़े लेकर तो गोपाल दूर बैठ गये और कुछ को लेकर स्वयं श्री कृष्ण कदम्ब पर चढ़ गये और बोले। आप लोग नग्न स्नान कर रही हैं। इससे वरुण रुष्ट हो गये अतः उनके अनुचर आप सबके सभी कपड़े उठा ले गये। नग्नता से विरत करने का अच्छा ढंग श्री कृष्ण ने अपनाया।

व्रते तु नग्ना या स्नाति ता रुष्टो वरुणः स्वयम्।
वरुणानुचराश्चक्रुर्वासो वस्तूपनिर्हृतिम्॥[4]

अन्त में राधा के विनय से प्रसन्न होकर क्षमा करते हुए सभी लौटा दिया। इस अवसर पर किया गया राधाकृत स्तोत्र[5] का विशेष महत्व बताया गया है।

१. ब्रह्म वै० ४, १।२५।१८ २. वही ४, १।२५।२७-१५८ ३. वही ४, १।२७।५६,५७। ४. वही ४,१।२७।६७ ५. वही ४,१।२७।१००-१०८

इसके अनन्तर रास का वर्णन प्रारम्भ किया गया है। ब्रह्म वैवर्त ४,१।२६वें अध्याय में राधा के सम्मुख श्री कृष्ण के द्वारा अष्टावक्र का उद्धार वर्णित है।

गोपियों के साथ कृष्ण वन-विहार में लगे थे। श्रृंगार[1] एवं रतिक्रीडा[2] में आसक्त गोपियाँ कन्दर, उद्यान, नद-नदी सर्वत्र रमण कर रही थीं, तथापि उन्हें मनस्तोष न हुआ।

एवं रेमे कौतुकेन कामास्त्रिंश द्दिवानिशम्।
तथापि मानसं पूर्णं न च किंचिद् बभूव ह ॥[3]

सरोवर में कृष्ण राधा पर और राधा कृष्ण पर जल फेंक रहे थे। सहस्र दल वाले दो पद्मों को कृष्ण ने तोड़ा। एक राधा को दिया। स्नान के अनन्तर चन्दन, अगर, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव का लेप अपने और राधा के अंगों में किया। इसी प्रसन्नता की स्थिति में अष्टावक्र दिखायी पड़े।[4] राधा हँसने लगीं। इतना टेढ़ा व्यक्ति आश्चर्य का हेतु तो होगा ही। अष्टावक्र ने श्री कृष्ण की प्रार्थना की।[5] प्रार्थना के अनन्तर ही अष्टावक्र की ऊर्ध्वगति हो गयी। श्री कृष्ण ने उनका अन्तिम संस्कार किया। राधा के पूछने पर श्री कृष्ण ने उन्हें बताया कि—

महाविष्णु के नाभिपद्म से जगत के विधाता उत्पन्न हुए। तीनों लोक जलाकीर्ण था। मेरी कला से मेरे अंश स्वरूप ब्रह्मा के चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम सनक, सनन्द, सन्तान और सनत्कुमार थे। ब्रह्मा ने उनसे सृष्टि विस्तार की इच्छा की किन्तु वे तप करने चले गये। ये (शिशवः पंचवर्षीयाः नग्नाः अज्ञानिनो यथा।[1]) सभी पंचवर्षीय दिखायी पड़ते थे।

अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अंगिरा, क्रतु, वसिष्ठ, बोढु, कपिल, आसुरि, कवि, शंकु, शंख, पंचशिख और प्रचेता ये सभी तपोधन ब्रह्मा के अंग से उत्पन्न हुए। ये सभी पत्नीसहित थे। प्रचेता के पुत्र असित और इनके पुत्र देवल थे। देवल असित की उग्र तपस्या से प्रसन्न शिव के वरदान से शिवांश के रूप में उत्पन्न हुए थे। महाराज सुयज्ञ नृपति की कन्या रत्नमालावती के साथ देवल का विवाह हुआ। बड़े प्रेम से सौ वर्ष रमण में बिता दिया अन्त में एक दिन गन्धमादन की गुफा में तप करने चले गये। बेचारी रत्नमाला रोती रही। रोते-रोते विह्वल रत्नमाला का प्राणान्त हो गया। उसके पुत्र ने उसका अन्तिम संस्कार किया।

एक दिन रम्भा ने गन्धमादन पर्वत की गुफा में तप करते देवल को देखा। वह मुनि के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गयी। उनके पास एकान्त में पहुँची। देवल को उसने सौन्दर्य की ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया :—

---

१. ब्रह्म वै० ४,१।३१।१३ २. वही ४,१।३१।८ ३. वही ४,१।२८।१६८
४. वही ४,१।२६।२७-३४ ५. वही ४,१।३०।२८

स्तनयो र्युग्ममूर्वी मे सुन्दरं मुख-पङ्कजम् ।
हास्य-भ्रू भङ्ग-सहितं दृष्टवा को न लभेत् सुखम् ।। ७४।।
स्त्रीरस: सुखसारश्च मुनीनामभिवांछित: ।
रसिका-सुख-सम्भोगो निर्जने चातिदुर्लभ: ।।७५।।
रहस्युपस्थितां कान्तां न भजेद्यो जितेन्द्रिय: ।
गात्र लोम प्रमाणाब्दं कुम्भीपाके वसेद् ध्रुवम् ।।७७।।[१]

बेचारे विवश देवल ने उत्तर दिया कि स्वेच्छया उपस्थित स्त्री से रति क्रीडा तपस्वी के लिए वर्जित है—

ग्राह्या चोपस्थिता स्त्री च गृहिणा न तपस्विना ।
त्यागे दोष: कामिनीनां शापभाक्पापभाग्गृही ।।[२]

अति संक्षुब्ध रम्भा ने देवल को शाप दिया कि तुम्हारा रूप काला और सर्वावयव वक्र हो जाय ।

हे वक्रचित्त ! ते विप्र ! सर्वावयव विक्रमम् ।
शरीर भंजनाकारं रूपयौवन वर्जितम् ।।
अतीव विकृताकारं त्रिषु लोकेषु गर्हितम् ।
पुरातनं तपो नष्टं सद्यो भवतु निश्चितम् ।।[३]

किन्तु अष्टावक्र नाम श्री कृष्ण ने कौतुकवश कहा है जैसा कि इस वाक्य से सिद्ध है—

अङ्गान्यष्टौ च वक्राणि दृष्ट्वा तूर्णं महामुने: ।।६।।
अष्टावक्रेति तन्नाम कौतुकेन मया कृतम् ।।७।।[४]

महाभारत के अष्टावक्र दूसरे हैं ।

इस प्रकार अष्टावक्र श्री कृष्ण के सम्मुख शाप मुक्त हुए । श्री कृष्ण के द्वारा देवल को यह ऊर्ध्वगति साठ सहस्र वर्ष तप करने के अनन्तर प्राप्त हुई थी ।

इस शाप के प्रसंग में ब्रह्मा को भी शाप मिला जिसके कारण वे अपूज्य हो गये । श्री कृष्ण ने राधिका से कहा कि ब्रह्मा मेरे घर से जा रहे थे मार्ग में मोहिनी ने उन्हें देखा । वह उन पर आसक्त हो गयी । अहोरात्र ब्रह्मा को सोचती रहती थी । एक दिन रम्भा ने मोहिनी से पूछा तो ज्ञात हुआ कि वह ब्रह्मा में आसक्त है । रम्भा ने पुण्यवान की प्राप्ति पुण्य से बताया अत: मोहिनी ने पुष्कर में तप किया और एक दिन उनके साथ ब्रह्मलोक गयी । एकान्त एवं अवसर देख कर मोहिनी नाचने

१. ब्रह्म वै० ४,१।३०।७४-७७
२. वही ४,१।३०।८८
३. वही ४,१।३०।१०१-१०२
४. वही ४,१।३०।६-७

गाने लगी। ब्रह्मा अब भी उस पर आकृष्ट न हुए। उसने काम की प्रार्थना[१] कर अब ब्रह्मा पर विजय पाने का संकल्प लिया। काम ने प्रसन्न होकर ब्रह्मा पर शर सन्धान किया किन्तु ब्रह्मा को यह रहस्य ज्ञात हो गया अतः उन्होंने काम को शाप दिया :—

हे काम यौवनोन्मत्त मूढेश्वर्येण गर्वित।
भविता दर्पभङ्गस्ते मुरोर्मे हेलनादिति ॥[२]

काम को इस प्रकार का शाप देते हुए मोहिनी से उन्होंने कहा कि मातः! वेद में निन्दित कर्म मैं नहीं करूँगा। तपस्वियों को स्त्री सदा वर्जित है, विशेषतः पुंश्चली सबके लिए त्याज्य है।[३]

जरातुरोऽहं वृद्धश्च तपस्वी वैष्णवो द्विजः ॥१८॥
अस्वतन्त्रः पराधीनः का रतिः पुंश्चलीषु मे ॥१९॥[४]

अपने को वृद्ध कहकर मधुर ढंग से बचाना चाहा किन्तु मोहिनी को अपना अपमान सह्य न हुआ। इन्हीं को पाने के लिए उसने कितना तप, कितना कष्ट सहा। सब व्यर्थ। उसने क्रोध में कहा कि मुझे कामदेव न समझें जो शाप सहकर चले गये। बात-चीत हो रही थी कि वहाँ ऋषिगण आपहुँचे। उन्होंने वहीं स्ववेंश्या मोहिनी क्यों उपस्थित है जानना चाहा तो ब्रह्मा ने उन्हें बताया कि जैसे पिता के घर कन्या पहुँचती है उसी प्रकार।

अतः मोहिनी ने क्रुद्ध होकर शाप दिया—

यतो हससि गर्वेण ततो पूज्यो भवा चिरम्।
अचिराद्दर्पभङ्गस्ते करिष्यति हरिः स्वयम् ॥[५]

ऋषियों ने ब्रह्मा को श्री हरि शरण ग्रहण करने का विचार दिया। ब्रह्मा को अवश्य अपने विधातृत्व का दर्प रहा होगा। वहाँ दशमुख, शतमुख और सहस्रमुख वाले भी ब्रह्मा थे। बेचारे चतुर्मुख ब्रह्मा तो दंग रह गये। भगवान विष्णु को प्रणाम किया। उन्हें ज्ञात हुआ कि विष्णु के रोम-रोम में ब्रह्माण्ड है। इसी अवसर पर वहाँ शिव भी आ गये। इन्द्र आदि देवता, मुनि, आदित्य, वसु, रुद्र, मनु और सिद्ध आदि पधार कर श्री हरि की स्तुति करने लगे। संगीत के आनन्द में सभी द्रवित हो गये। यहाँ तक कि सभी पानी-पानी हो गये। उस समय सम्पूर्ण बैकुण्ठ लोक जल से पूर्ण हो गया। कोई नहीं रह गया। सब जलमय हो गये। भगवान् कृष्ण ने पुनः सबका निर्माण किया। यही गंगा है। गंगा पुष्कर से श्रेष्ठ है

१. ब्रह्म वै० ४, १।३१।६६-७४ २. वही ४, १।३२।५ ३. वही ४, १।३२।११
४. वही ४, १।३२।१८, १९ ५. वही ४, १।३३।३७

यद्यपि पुष्कर की महिमा वेदों में भी गायी गयी है। यह सम्पूर्ण जल जो गंगा के रूप में प्रवाहित हुआ, प्रस्थ में (चौड़ाई) सहस्र योजन तथा दैर्घ्य (लम्बाई) में लक्ष योजन था।

इसी गंगा में स्नान कर शापमुक्त होने का आशीर्वाद कृष्ण ने ब्रह्मा को दिया :—

उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते भविष्यति चतुर्मुख।
अत्रस्नात्वाभिशप्तस्त्वं पूतो भव ममाज्ञया।[१]

यह भी बताया कि प्रकृति का अपमान नहीं करना चाहिए। प्रकृति ही सृष्टि बीज सदृश है। इसी सृष्टि के लिए ही तो ब्रह्मा ने हजार वर्ष तप किया।[२] परिणामतः भगवान् ने ब्रह्मा को गोलोक भेजा कि वहाँ उन्हें भारती जी मिलेंगी। वास्तव में ऐसा हुआ भी, ब्रह्मा ने भी भारती के साथ आनन्दोपभोग किया।[३]

इसी प्रसंग में राधिका के यह पूछने पर कि रत्यर्थं स्वयं उपस्थित स्त्री के त्यागने में महान् दोष जानते हुए भी ब्रह्मा ने मोहिनी का परित्याग क्यों किया, कृष्ण ने पाद्मकल्प का एक वृत्तान्त ब्रह्मा के सम्बन्ध में बताया है[४] :—

ब्रह्मा ने एक मानस पुत्र एवं मानस-कन्या का निर्माण किया। यही पुत्र कामदेव[५] और कन्या रति[६] कहलायी। काम ने अपने वाणों का प्रयोग ब्रह्मा पर किया।[७] अतः ब्रह्मा में काम जागृति हुई और वे निजसुता रति पर आकृष्ट हो गये। ऋषियों के उद्बोधन[८] से वे इस कार्य से विरत हुए। और इतना पश्चात्ताप-ग्रस्त हो गये कि उन्होंने निज शरीर का त्याग कर दिया।[९] यह देख कर पितृवियोग में कन्या ने भी देह त्याग कर दिया।[१०] अन्त में नारायण ने, जो कि कृष्णांश हैं, आकर दोनों को जीवित कर दिया। और नारायण ने ब्रह्मा को आशीष दिया कि उनका मन कभी भी पर-वस्तु और पर-स्त्री पर नहीं जायेगा—

भविता न परस्त्रीषु पर-वस्तुषु ते मनः।
अद्य प्रभृति जीवान्तं विशिष्टं मद्वरेण च॥[११]

कुलटा के शाप से ब्रह्मा कैसे अपूज्य हो गये? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री कृष्ण ने बताया कि—

१. ब्रह्म वै० ४. १।३५।२ २. वही ४, १।३५।६ ३. वही ४, १।३५।२४
४. वही ४, १।३५।२९ ५. वही ४, १।३५।३८ ६. वही ४, १।३५।१०१
७. वही ४, १।३५।४५ ८. वही ४, १।३५।५० ९. वही ४, १।३५।६८
१०. वही ४, १।३५।७१ ११. वही ४, १।३५।९९

येषां येषां भवेद्‌गर्वो ब्रह्माण्डेषु परात्परः।
विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताऽहमेव च॥

प्रथमे ब्रह्मणो गर्वो मया चूर्णीकृतः श्रुतः।
शंकरस्य च पार्वत्या श्चन्द्रस्य च रवेस्तथा॥

वह्नें दुर्वाससश्चैव तथा धन्वन्तरेः प्रिये।
क्रमेण दर्पभङ्गश्च कथमामि निशामय॥

क्षुद्राणां महतां चैव येषां गर्वो भवेत्प्रिये।
एवं विधमहं तेषां चूर्णीभूतं करोमि च॥

ब्रह्मा, शिव, पार्वती, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा और धन्वन्तरि का दर्प उन्होंने ही भंग कर दिया क्योंकि श्री कृष्ण को दर्पसह्य नहीं है।

उपर्युक्त प्रसंग में ब्रह्मा के दर्प-भंग की कथा तो कही गयी। इसके आगे अन्य कथाएँ भी क्रमशः बतायी गयी हैं। शिव दर्प-भंग की दो कथाएँ कही गयी हैं। प्रथम तो भस्मासुर की कथा है जिसमें बताया गया है कि वृक नामक दैत्य ने शिव को प्रसन्न कर उनसे वर माँगा। वर माँगने में श्री कृष्ण की ही माया थी। अतः उसने शिव से यह कहा कि मैं जिसके शिर पर हाथ रख दूँ वह भस्म हो जाय।

मन्मायया वरं वव्रे दैत्येन्द्रो भक्तिपूर्वकम्।
हस्तं दधे च यन्मूर्ध्नि स भस्म भवितेति च॥[1]

शिव ने वर प्रदान तो कर दिया किन्तु वृक उन्हीं की ओर दौड़ पड़ा। बेचारे शिव 'हे हरे रक्ष रक्ष' कहते भाग चले। अन्त में श्री कृष्ण ने अपनी माया से उसे वंचित कर उसके द्वारा ही उसके अपने ही शिर पर हाथ रखवा कर उसे भस्म कर दिया।[2] यहाँ इसका विस्तार नहीं किया गया है।

द्वितीय कथा इस प्रकार है कि हरि के दिये हुए शूल और कवच को शिव ने त्याग दिया। त्रिपुर को मारने चले तो इस कवच और शूल को ग्रहण नहीं किया। शिव को अपनी अजेय शक्ति पर गर्व था। किन्तु वर्ष भर अहोरात्र युद्ध चला। अन्त में रथ सहित शिव गिर पड़े। अन्त में हर को हरि ने वृष रूप धारण कर उठाया। हर ने हरि प्रदत्त शूल का भी प्रचालन कर आघात किया। शिव ने हरि के कवच को भी अंगरक्षा हेतु धारण किया। यह रहस्य शिव को ज्ञात हो गया। त्रिपुर भी विनष्ट हुआ। शिव के मानस का अहंकार भी विनष्ट हुआ और तभी से हरि वृष रूप से शिव को वहन करते हैं।[3]

इस प्रसंग में अति ही रोचक एक प्रश्न राधा ने कृष्ण से पूछा कि शिव क्यों

---

१. ब्रह्म वै० ४, ११३६।३१ २. वही ४, ११३६।३८ ३. वही ४, ११३६।५०-५७

वृष-वाहन हैं, क्यों दिगम्बर हैं? मृगचर्म धारी हैं ? क्यों धतूर कुसुम ही धारण करते हैं। जटाधर हो श्मशान पर निवास करते हुए विल्व फल-पत्राभलाषी क्यों हैं ?[१]

इसका उत्तर देते हुए कृष्ण ने राधा को बताया कि साठ हजार युगों तक तप करके शिव ने उन्हें (कृष्ण) प्रसन्न किया। शिव के तीनों नेत्र तीनों गुणों के प्रतिरूप हैं।[२]

(१) हरि गुण-गान हेतु ये पंचवक्त्र और हरि दर्शन के लोभ में प्रतिमुख में त्रिनेत्र हैं।

(२) सती के प्रेम के कारण उनके अस्थि-भस्म को वे धारण करते हैं।

(३) सती वियोग में योग धारण करते हुए वे दिगम्बर हो गये, दिव्य माला धारण करने वाले शिव योगी ने तपस्या कालीन जटा भी धारण कर रखा है।

(४) गरुड-द्वेषी सर्पों ने शिव की शरण ग्रहण कर अपनी रक्षा की।

(५) वृष रूप में मैंने स्वयं त्रिपुरवध के अवसर पर शिव का भार उठाया।

(६) पारिजातादि सुगन्धि पुष्पों को हरि चरणार्पित कर धत्तूर को अपनाया।

(७) सुगन्धिहीन होने के कारण विल्व को ग्रहण किया।

(८) योग परायण शिव को व्याघ्रचर्म ही इष्ट है। वे तो हरि ध्यान योग में तत्पर हैं।

(९) शिव को दिव्य लोक अथवा दिव्य तल्प भी अभीष्ट है क्योंकि वे तो अहर्निशि हरि ध्यान में लीन हैं, अतः अति एकान्त श्मशान में निवास करते हैं।

(१०) मृत्युंजय शूल ज्ञान का है जिसके कारण मेरे अतिरिक्त उन्हें कोई विजित नहीं कर सकता है।[३]

भगवान शिव का प्रसाद अथवा निर्माल्य (उच्छिष्ट) ग्राह्य क्यों नहीं है? राधा ने पुनः यह प्रश्न श्री कृष्ण से पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि—

अति प्राचीन काल में सनत्कुमार वैकुण्ठ लोक गये वहाँ नारायण ने उन्हें कुछ (भुक्त शेष) अवशेष अथवा प्रसाद दिया। उसमें से सनत्कुमार ने कुछ खाया और कुछ रख लिया जिसको अपने भाइयों और सिद्धाश्रम निवासी अपने शूलपाणि गुरु शिव को दिया। शिव प्रेमविह्वल हो उसे भक्षण कर खूब नाचे। दुर्गा आयीं अति कुपित हो उठीं। उन्होंने (देवी) शाप दिया कि शिव प्रसाद त्याज्य होगा। क्योंकि शिव ने विष्णु प्रसाद को अपनी पत्नी को दिये बिना अकेले ही भक्षण कर लिया। (इस कथा से गृहस्थ जीवन का एक आदर्श भी प्रस्तुत हो जाता है) शिव की पुनः प्रार्थना पर तथा इस प्रतिज्ञा पर कि पुनः बिना तुम्हें अर्पण किए अब भविष्य में कुछ ग्रहण नहीं करूँगा, शिवा ने प्रसाद किया कि—

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।३६।८२-८६ २. वही ४,१।३६।८८ ३. वही ४, १।३६।७६-१०८

लिङ्गोपरि च यद्दत्तं तदेवाग्राह्यमीश्वर ।
सुपवित्रं भवेत्तस्य विष्णोर्नैवेद्य मिश्रितम् ।।[1]

इस प्रकार शिव प्रसाद भी शिवा की कृपा से ग्राह्य हो गया।

दुर्गा-दर्प-विमोचन

सती को गर्व हुआ। सभी देवों के तेज से आविर्भूत होकर दुर्गा ने कमनीय रूप धारण किया था। सम्पूर्ण देवगण की रक्षा दुर्गा ने की। गर्व क्यों न हो। वे दक्ष पत्नी के उदर से सती के रूप में प्रकट हुईं। उन्होंने शिव की पूर्ण सेवा की। दक्ष की शिव से (श्वसुर और जामाता में) खट-पट हो गयी थी। दक्ष ने यज्ञ किया। शिव-पार्वती अनिमंत्रित रहे। अतः शिव नहीं आये। सती ने हठ किया। किन्तु शंकर ने ठुकरा दिया। तथापि दर्प से दक्ष-यज्ञ में शिव को छोड़ कर सती चली गयीं। शिव की आज्ञा भी नहीं हुई। शिव का शाप हुआ। सती के पिता ने बात तक न की। ऊपर से उनके पति शिव की निन्दा भी दक्ष ने की। परिणामतः दुःखी शिवा ने स्वदेह परित्याग कर दिया। इस प्रकार सती का पति पर अधिकार का गर्व चूर्ण हो गया।

द्वितीय जन्म में पार्वती के रूप में सती उत्पन्न हुईं तो उनका भी दर्प भंग हुआ। घटना यों हुई कि पार्वती पूर्वजन्म के पति शिव की प्रतीक्षा करते-करते अति दुःखी थीं कि एक दिन एक दूत से पता चला कि बटमूल के नीचे शिव उपस्थित हैं। उनके निकट सपरिवार हिमालय दर्शनार्थ गये। पार्वती भी गयीं। पार्वती समलंकृत हो अनन्त सौन्दर्य सम्पन्न एवं मनोहारिणी थीं। पार्वती ने विधिपूर्वक अर्चा कर चरणोदक भी ग्रहण किया। शिव ने प्रसन्न होकर आशीष दिया। यह देख कर इन्द्र भी प्रसन्न हुए। उन्होंने कामदेव को आदेश दिया कि शिव को स्मरार्त करें। शिव को ऐसा अनुभव होते ही उन्होंने कामदहन कर दिया। रति अति विलाप करने लगी। इस दुःख से पार्वती भी मूर्च्छित हो गयीं। इधर शिव जी पार्वती को भी छोड़ कर चलते बने। अन्ततः पार्वती का भी गर्व चूर्ण हो गया।

सद्यो बभूव तत्रैव पार्वतो दर्पमोक्षणम्।
रूपयौवनयो गर्वं तत्याज शैल कन्यका ।।[1]

पुनः पार्वती के तप से प्रसन्न शिव वटु के रूप में उपस्थित हुए। उस समय पार्वती शिव के लिए तप करते-करते निराश होकर अग्नि में जल जाना चाहती थीं

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२७।३९   २. वही ४, १।३९।५९

कि बटु रूप में शिव ने उन्हें निवारित किया। पार्वती अपने घर गयीं। परम प्रसन्न उनके माता-पिता ने भी उन्हें शुभाशीष दिया।[1]

अहो तपस्ते किं भद्रे न बुद्धं किंचिदेव हि।
न दग्धो वह्निना देहो न च प्राप्तो मनोषितः ॥[2]
शीघ्रं पितुर्गृहं गच्छ तव प्रक्ष्यसि शंकरम्।
ममाऽऽशिषा स्वतपसां फलेन च सुदुर्लभम् ॥[3]

हुआ भी वही। मेनका पार्वती के साथ बैठी थीं कि उनके (द्वार) प्रांगण में एक व्यक्ति उपस्थित हुआ—

शृंगवाद्यं वाम-हस्ते डमरुं दक्षिणे तथा ॥७२॥
कृत्वा विभूति-गात्रोऽतिवृद्धोऽतीव जरातुरः।
पृष्टकन्थो रक्तवासाः सुकण्ठोऽतिमनोहरः ॥७३॥[4]

उस भिक्षुक ने पार्वती को ही माँगा। भिक्षा में कोई अन्य पदार्थ उसने न चाहा।[5] अन्य देवों ने ब्रह्मा के द्वारा इस कार्य को रोकनाचाहा किन्तु वशिष्ठ के समझाने पर हिमालय दम्पति ने शिव के साथ पार्वती परिणय को स्वीकार कर लिया।[6] इस बीच में अनरण्य की पुत्री पद्मा के साथ पिप्पलाद ऋषि के विवाह की कथा कही गयी है। पिप्पलाद का आश्रम कहीं पुष्पभद्रा के तट पर बताया गया है।[7]

ब्रह्मवैवर्तीय शिव विवाह में बारात पहुँचने पर शिव के प्रति कोई हास्य अथवा भयजनक कारण नहीं उपस्थित होता है जैसा कि आधुनिक कुछ ग्रन्थों में वर्णित है।[8] विवाह में पार्वती को वामवर्ती करके हवन किया गया। दीपक लाकर सभी स्त्रियों की उपस्थिति में मंगल कर्म भी किया गया। सम्भवतः उसी प्रकार जैसा कि आजकल भी दीपक की बाती मिलायी जाती है। सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गंगा और रति ने पार्वती को उपदेश पूर्वक आशीष भी दिया है।[9] सेन्दुर-बहोरनी के रूप में आज-कल भी ज्येष्ठ सुभगा स्त्रियाँ सिन्दूर दान के पश्चात् आशीर्वाद देती हैं।

इसी प्रसंग में शिव ने रति की प्रार्थना पर काम के पुनर्जीवन का विलक्षण कार्य भी सम्पादन किया।

ऊचुर्देव्यो बहुतरं वाक्यं विनयपूर्वकम्।
सुधा दृष्ट्या शूलभृतो भस्ततो निर्गतः स्मरः ॥[10]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।४०।६५ २. वही ४, १।४०।४९ ३. वही ४, १।४०।५६
४. वही ४, १।४०।७२-७३ ५. वही ४, १।४०।८३ ६. वही ४, १।४४।४
७. यह कथा ४, १।४१, ४२ अ० में वर्णित है। ८. तुलसी-कृत रामचरितमानस
९. ब्रह्म वै० ४, १।४५।१२-१७ १०. वही ४, १।४५।२४

प्रसन्नतापूर्वक काम ने रति के साथ आनन्द बिहार किया।[1] शिव ने भी पार्वती को उन सभी स्थानों का दर्शन कराया जहाँ-जहाँ वे सती-शव लेकर धरती-तल पर घूमे थे।

इन्द्र-दर्प-भंग

वृहस्पति के सहयोग से दीक्षित होकर शत-यज्ञ पूर्ण कर इन्द्र सिद्ध हुए। उन्हें गर्व हो गया, वृहस्पति को देख कर न खड़े हुए न प्रणाम किया। वृहस्पति ने निज पत्नी तारा को भी छोड़ कर वन प्रयाण कर दिया। इन्द्र व्याकुल होकर तारा के पास आये। तारा ने दुर्दिन में गुरु सहायता का आश्वासन दिया। संयोग की बात है कि इन्द्र स्वर्णदी पर स्नान करने गये और वहीं गौतम पत्नी अहिल्या के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर छलपूर्वक गौतम का स्वरूप धारण कर ऋषि की अनुपस्थिति में उन्होंने ऋषिपत्नी के साथ सुरति किया। ऋषिपत्नी उस समय गीले वस्त्रों में ही थीं। आश्रम में इन्द्र को गौतम ने देखा। इन्द्र ऋषि चरणों में प्रणत हो गये। ऋषि ने कोपवश इनके गात्र में सहस्र योनि होने और सहस्र वर्ष तक शरीर में योनि-गन्ध आने का शाप दिया। इन्द्र पुष्कर में तप करने चले गये और अहिल्या साठ हजार वर्ष तप करके शुद्ध हुई तथा श्रीराम के चरण रज से पवित्र हुई।

इन्द्र गुरु के कोपभाजन थे ही। ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने इन्द्र को यज्ञ करने के लिए विश्वरूप को पुरोहित के रूप में दिया। उस समय इन्द्र तो विश्वरूप के भाव को न समझ सके। अन्त में दैत्यदौहित्र के भाव को समझ कर इसका शिर काट दिया। विश्वरूप के पिता त्वष्टा क्रोधित हुए तथा उन्होंने 'इन्द्र शत्रो ! विवर्धस्व' कहकर यज्ञ किया। यज्ञ से वृत्रासुर प्रकट हुआ। इन्द्र ने महामुनि की अस्थि से उक्त दैत्य का वध किया। अब तो ब्रह्महत्या ने इन्द्र का पीछा किया। ब्रह्मा के शाप के कारण वह मानस सर न जा सकी। बेचारे इन्द्र वहीं वट शाखा पर निवास करने लगे।

इधर देवलोक के अधीश्वर नहुष हो गये। वे शची को आलिंगित करना चाहते थे। शची गुरुपत्नी तारा के पास पहुँची। गुरुपत्नी ने वृहस्पति को इन्द्र के पास भेजा। इन्द्र तो गुरुचरणों का ही जप कर हे थे। वृहस्पति ने इन्द्र को आश्वस्त किया। चलते समय इन्द्र पर ब्रह्महत्या ने धावा तो किया किन्तु इन्द्र को वृहस्पति ने राधा-कवच प्रदान कर सुरक्षित किया।

अन्त में इन्द्र ने लोमश ऋषि का दर्शन किया। उनके उपदेश सुनकर इन्द्र के होश-हवास उड़ गये। उन्हें भी अपनी शक्ति का जो दर्प था वह नष्ट हो गया। उन्होंने नहुष को हटा कर शची की प्राप्ति की। वे पुनः वृहस्पति के आज्ञानुसारी बने।[2]

१. ब्रह्म वै० ४, ११४६।१२।१८ २. वही ४, ११४७।१५७

सूर्य-दर्प-भंग

एक बार दर्पवश सूर्य ने उदय होते ही अपना अस्त कर लिया। किन्तु शिव-भक्त माली-सुमाली ने संसार में प्रकाश किया। सूर्य ने उन्हें मार कर मूर्छित कर दिया। शिव को अपने भक्तों की दुर्दशा सह्य नहीं हुई। शिव ने महाज्ञान से उसे जीवित कर दिया तथा सूर्य का संहार करने हेतु दौड़े। सूर्य ब्रह्मा को शरण में गये। अन्त में ब्रह्मा ने शिव की प्रार्थना कर उनकी रक्षा हेतु पुनः सूर्य को उनके सम्मुख प्रकट कर शिव से क्षमा दिलायी।[१]

अग्नि-दर्प-भंग

एक बार अग्नि ने सब कुछ भस्मसात करना चाहा। वहाँ विष्णु आ पहुँचे। वे शिशु रूप में थे। उन्होंने अग्नि की ज्वलन शक्ति अपहृत कर ली और कहा कि हम पर क्रोध करके हमें क्यों जला देना चाहते हैं। भृगु के शाप[२] के कारण रुष्ट हो तो हे अग्नि उन्हें जलाओ। संसार जलाना उचित नहीं है। यह कहकर एक शरपत्र सामने रखकर अग्नि को जलाने को कहा। अग्नि जला न सके। यहाँ तक कि अग्नि उस ब्राह्मण वटु का एक रोम भी न जला सके। अग्नि का दर्पभंग हो गया। अग्नि भयभीत होकर चले गये।[३]

दुर्वासा-दर्प-भंग

दुर्वासा दर्प-भंग की कथा, जिसमें कि अम्बरीष को अपनी कृत्याशक्ति से मुनि ने भस्म करना चाहा किन्तु परिणामतः हरि का चक्र अम्बरीष की रक्षा के लिए चल पड़ा। इन्द्र, ब्रह्मा, शिव आदि कोई रक्षा न कर सके। यहाँ तक कि विष्णु ने भी अम्बरीष के पास ही क्षमा करने के लिए भेजा।[४] बेचारे विह्वल दुर्वासा की शक्ति को तो चक्र ने कर्तित ही कर दिया। अब उन्हें अम्बरीष से रक्षा की भीख माँगनी पड़ी। भक्त अम्बरीष ने क्षमा किया और तब कहीं दुर्वासा शान्ति की साँस ले सके। यह कथा विस्तारपूर्वक इसी खण्ड के २५वें अध्याय में वर्णित है।

धन्वन्तरि-दर्प-भंग

प्राचीन काल में समुद्र मन्थन से धन्वन्तरि प्रकट हुए थे। वे सर्ववेद निष्णात और मन्त्र-तन्त्र-विशारद थे। ये वैनतेय के शिष्य और शिव के उपशिष्य थ। अपने हजारों शिष्यों सहित धन्वन्तरि कैलाश पर गये। वहाँ अपने गणों सहित तक्षक भी गया

---

१. ब्रह्म वै ४, १।४८ अ०
२. वही ४, १।४९।३
३. वही ४, १।४९।१४
३. वही ४, १५०।१०४

था। धन्वन्तरि के एक दम्भी शिष्य ने तक्षक को जृम्भित करके निर्विष कर दिया। सर्पगण ने यह सूचना वासुकि को दी। उन्होंने पाँच विषोल्वण नागराजों को भेजा—

सर्पसेनाग्रणीनां च मुख्यान् पंच विशारदान्।
द्रोण-कालीय-कर्कोट-पुण्डरीक-धनंजयान्॥[1]

इनके विष से धन्वन्तरि के शिष्यगण मृत हो गये किन्तु धन्वन्तरि ने अमृत-वर्षण से उन्हें जीवित कर लिया। अन्त में वासुकि ने जगद्गौरी मनसा देवी को बुलाया। मनसा ने धन्वन्तरि को ललकारा। उन्होंने कहा कि मैं और वैनतेय दोनों ही शम्भु के शिष्य हैं। उन्होंने एक पद्मपुष्प उठाकर फेंका। मन्त्र से वलित वह पुष्प अग्निशिखा जैसा हो गया किन्तु धन्वन्तरि ने उसे भी भस्म कर दिया। मनसा ने नागपाश फेंका अतः विस्मित धन्वन्तरि ने गरुड़ का आवाहन किया। गरुड़ ने आकर उसका भक्षण कर लिया। शिव की एक मुट्ठी भस्म से मनसा ने प्रहार किया तो गरुड ने उसे पक्षवात से उड़ा दिया। अन्त में मनसा ने शिव शूल का प्रयोग किया तब तक धन्वन्तरि की रक्षा हेतु शिव-गौरी और ब्रह्मा उपस्थित हो गये। उन सबों ने मनसा की प्रशंसा की तथा मनसा पूजा के लिए धन्वन्तरि को बताया।[2]

धन्वन्तरि ने मनसा की स्तुति की।[3] पुनश्च अन्य देवों को भी प्रणाम किया। इस प्रकार धन्वन्तरि के दर्पभंग की कथा कही गयी।

राधिका के प्रश्नों का उत्तर देकर श्री कृष्ण पुनः सभी गोपियों के साथ रास-विहार में लग गये। श्री कृष्ण ने मथुरा पहुँच कर जीवन की किन विविध लीलाओं का प्रदर्शन किया इसका वर्णन द्वितीय खण्ड में है। एक संक्षिप्त लेखा भी प्रस्तुत की गई है—

पुनश्चतुर्दशाब्दं च तया सार्धं जगत्पतिः।
चकार रासं रासे च पुण्यक्षेत्रे च भारते॥२१॥
पूर्णमेकादशाब्दं च निवृत्य नन्द मन्दिरे।
मथुरायां द्वारकायां पूर्णमब्दशतं विभुः॥२२॥
चकार भारहरणं पृथिव्यां पृथुविक्रमः।
पंचविंशति वर्षं च शतवर्षाधिकं मुने॥२३॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।५१।६
२. वही ४, १।५१।४८
३. वही ४, १।५१।६३-६७
४. वही ४, १।५४।२१-२३

अध्याय १२

श्री कृष्ण-कथा-तत्व (उत्तरार्ध)

श्री कृष्ण जन्म-खण्ड के उत्तरार्ध के प्रथम अध्याय (५५वें) में श्री कृष्ण के महत्व का वर्णन किया गया है। अगले अध्याय में महा विष्णु एवं विधाता के भी दर्पभंग का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

महाविष्णु को अहंकार हो गया कि मेरे लोमकूपों में अगणित विश्व अवस्थित हैं, मैं ही सर्वातिशायी हूँ। तब श्री कृष्ण ने संहार-भैरव बनकर उन्हें ग्रस्त[1] कर लिया। केवल उनका शिर ही शेष रहा तो उन पर कृपा करके उन्हें पुन: यथावस्थित कर दिया।

ब्रह्मा को भी यही दर्प हो गया। उन्होंने सोचा कि अखिल के विधाता तो वही हैं। गोलोक में रहते हुए विधाता एक दिन श्री कृष्ण निवास पर पहुँचे तो द्वार पर चतुर्वक्त्र, पंचवक्त्र, षड्वक्त्र तथा शतवक्त्र आदि ब्रह्माओं को देखा। यहाँ उनको बुद्धि विस्मित हो गयी। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनकी शक्ति से कई गुना शक्तियों वाले विधि हैं। इस प्रकार ब्रह्मा का दर्प भंग हुआ। यह कथा जन्म खण्ड पूर्वार्ध के इक्तीसवें से तैंतीसवें अध्याय तक विस्तृत रूप में वर्णित है।

धर्म के भी दर्प-भंग की कथा का संकेत किया गया है।[2] इस कथा का विस्तार छियासीवें अध्याय में वर्णित है।

इन्द्र का दर्प कई बार भंग हुआ। प्रथम बार तो दर्प में गुरु वृहस्पति का अपमान किया। द्वितीय बार समुद्र मंथन के पश्चात् शक्र दर्प को बलि द्वारा भंग किया गया। वामन की कृपा से पुन: यथावत् होकर अन्य कल्प में तृतीय बार दुर्वासा के द्वारा शक्र-दर्प-भंग हुआ जिससे इन्द्र श्रीहीन हो गये। चौथी बार दुर्मद इन्द्र ने गौतम-प्रिया अहिल्या का भोग किया। परिणामत: ऋषि गौतम के शाप वश इन्द्र भगांग हो गये।[3]

इन्द्र-दर्प-भंग की कथा में नहुष एवं शची के प्रसंग को और विस्तृत रूप दे दिया गया। यह कथा उनसठवें अध्याय से बासठवें अध्याय तक वर्णित है। इसी प्रवाह में अहिल्या के प्रसंग से श्रीराम कथा का भी वर्णन किया गया है। किन्तु यह वर्णन अति संक्षिप्त है। केवल एक अध्याय में पूरी रामकथा[4] कह दी गयी है।

---

१. ब्रह्म वै० ४,२।५६।४-६
२. वही ४,२।५६।३०
३. वही ४,२।६१।२-८
४. वही ४. २।६२ अ०

यमराज के दर्प-भंग का भी स्मरण दिलाया गया है। माण्डव (माण्डव्य) मुनि ने यम को शूद्रयोनि में जाने का शाप दे दिया क्योंकि उक्त मुनि को नरक का दर्शन कराया गया तो उन्होंने यम से पूछा कि मैंने कौन-सा अपराध किया कि मुझे नरक का दर्शन कराया गया। यम ने उत्तर दिया कि आपने कुशोत्पाटन करते समय असावधानी से अनजाने में एक जीव की हत्या की थी। माण्डव क्रोध से तिलमिला उठे। फलस्वरूप उन्होंने यम को शूद्र होने का शाप दिया। अतः यम विदुर के रूप में कौरवों और पाण्डवों के मध्य रहे तथा कृष्ण के सान्निध्य से उनका उद्धार हुआ। यह कथा महाभारत में है। इस पुराण में इस कथा का संकेत मात्र है।

इसके आगे कृष्ण-जीवन की वे मुख्य घटनाएँ, जो मथुरा और द्वारिका में घटित हुईं, उनका वर्णन किया गया है। मथुरा के क्रमिक वर्णन का प्रसंग ६३वें अध्याय से प्रारम्भ होता है।

कंस अनेकों दुःस्वप्न देखता था। अति चिन्ताग्रस्त होकर उसने पुरोहित सत्यक को बुलाया। कंस के माता-पिता एवं परिवार के लोग भी अत्यन्त दुखी थे। सत्यक आये उन्होंने एक यज्ञ करने के लिए कहा। इस यज्ञ को सत्यक ने बताया कि यह दुःस्वप्न-नाशक है।

यागो धनुर्मखो नाम बहून्नो बहुदक्षिणः।
दुःस्वप्नानां नाश करः शत्रुभीतिविनाशकः॥[1]

आध्यात्मिकमाधिदेवमाधिभौतिकमुत्कटम्।
एवं त्रिविधोत्पातानां खण्डनो भृतिवर्धनः॥[2]

कंस ने सत्यक से अपने मन की चिन्ता का कारण भी छिपाया नहीं। उसने नन्द गृह से श्री कृष्ण और बलराम को लाने के लिए कहा क्योंकि वह समझता था कि कृष्ण एवं बलराम को मारकर मैं सार्वभौम भूपति बनूँगा।

नन्द पुत्रं निहत्याहं त्रिषु लोकेषु पूजितः।
सार्वभौमो भविष्यामि सप्तद्वीपेश्वरो महान्॥

अतः **गच्छ नन्दव्रजं शीघ्रं नन्दं च नन्दनन्दनम्।**
तद्भ्रातरं च बलिनं बलमानय साम्प्रतम्॥[3]

सत्यक, शुक्र का शिष्य, वह एक चालाक था। उसने कंस को समझा दिया। अक्रूर, उद्धव वसुदेव का भेजना उचित बताया। कंस के मन में यह बात बैठ गयी। उसने वसुदेव से तुरन्त ही यह बात कही। वसुदेव बड़े असमंजस में पड़ गये। उन्होंने भी

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।६४।३ २. वही ४, २।६४।४ ३. वही ४, २।६४।२६, २९

सत्यक की भाँति यह बताया कि उनका जाना उचित नहीं है क्योंकि उक्त यज्ञ में विरोध, मामा-भाग्नेयों का रहेगा ही। और—

द्वयोरेकतरस्यापि सद्यो मृत्युर्भविष्यति।
पतिष्यन्ति च शूराश्च नास्तियुद्धं निरामिषम्॥[1]

दो में से एक की मृत्यु अवश्यम्भावी है। अतः मुझ पर अपयश होगा। अतएव उन्होंने भी अस्वीकार किया। कंस इस पर क्रोधित हो गया। मार डालने के लिए उसने असि को उद्यत कर लिया किन्तु उग्रसेन के बीच-बचाव से वसुदेव बचे। वे आसन छोड़ वहाँ से हट गये। अन्त में अक्रूर का समय उपस्थित हो गया। बेचारे अक्रूर अस्वीकार का दृश्य भी देख चुके थे। अतः वे स्वीकार कर लिए। अक्रूर ने उद्धव से अपनी व्रज यात्रा को भगवत्कृपा से अहोभाग्य बताया।[2]

इधर राधा ने दुःस्वप्न देखा। उन्हें कृष्ण-वियोग का भय उपस्थित हो गया। विह्वल राधा ने कहा कि बिना गोकुलेश कृष्ण के सारा गोकुल सूना है।

त्वया सार्धं गोकुलेश शोभा गोकुलवासिनाम्।
यथा सर्वा लोक राजी राजेन्द्रेण विराजते॥[3]

श्री कृष्ण ने इस अवसर पर राधा को आध्यात्मिक योग की शिक्षा दी। अन्त में बताया कि मेरा आधार तुम और तुम्हारा आधार मैं हूँ। तुम और हम प्रकृति और पुरुष समान हैं दोनों में किसी एक के बिना सृष्टि नहीं हो सकती है।[4]

श्री कृष्ण ने राधा को समझाते हुए उन्हें निद्रामग्न कर दिया। इसी मध्य ब्रह्मा ने भू-भार-हरण की प्रार्थना श्री कृष्ण से की। राधा जागृत होकर हरि को न पाकर अति विह्वल हो गयीं। कृष्ण वहाँ उपस्थित हो गये। राधा की सखी रत्नमाला ने बताया कि हे भगवन्! आपके वियोग में मूर्च्छित राधा के मुख में जल डाला गया तब इन्हें चेतना आयी।[5] रत्नमाला ने इस तथ्य पर अधिक बल देते हुए कि उनके बिना राधा जीवित नहीं रह सकती श्री कृष्ण को समझाया तो श्री कृष्ण ने उत्तर दिया कि राधा का मुझसे सौ वर्ष का वियोग सुदामा के शाप के कारण अवश्यम्भावी है।

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेकं खण्डितुं प्रिये।
तथापि न क्षमो रत्ने! नियतं नं करोम्यहम्॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु मर्यादा स्थापिता मया।
तया कर्मं प्रकुर्वन्ति मुनयश्च सुरानराः॥

---

१. ब्रह्म वै० ४; २।६४।४१ २. वही ४, २।६५।३७-३८
३. ब्रह्म वै० ४, २।६४।४१ २. वही ४, २।६५।३७-३८

सुदामा शापाद् विच्छेदः शतवर्षं मनोप्सितः ।
भविष्यत्येव दम्पत्यो रावयोरेव सुन्दरि ।।[१]

श्री कृष्ण ने राधा को समझाने-बुझाने को कहा और स्वयं माता के पास चले गये । वहाँ माता-पिता को प्रणाम कर गोपसमूहों से संसेवित हुए ।

इस प्रसंग में श्री कृष्ण से ब्रह्मा ने जो प्रार्थना की, रचना की दृष्टि से वह गद्यात्मक सी प्रतीत होती है ।

जय जय जगदीश वन्दित चरण निर्गुण निराकार स्वेच्छामय भक्तानुग्रह नित्य विग्रह मायया मायेश सुवेश सुशील शान्त सर्वकान्तदान्त नितान्त-ज्ञानानंद परात्परेतर प्रकृतेः पर सर्वान्तरात्मरूप निर्लिप्त साक्षिस्वरूप व्यक्ताव्यक्त निरंजन भारावतारण करुणार्णव शोक-सन्ताप-ग्रसन जरा-मृत्यु भयादि-हरण शरण-पंजर भक्तानुग्रह कारक भक्त-वत्सल संचित धन ओं नमोऽस्तुते ।[२]

अक्रूर प्रथम व्यक्ति हैं जोकि कंस द्वारा भेजे गये हैं किन्तु श्री कृष्ण का अहित नहीं चाहते । अब तक राक्षस कुल की क्रूर मण्डली का ही कोई न कोई क्रूर सदस्य श्री कृष्ण-निध्वंस हेतु आकस्मिक एवं घातक ही प्रयाण करता रहा । आज एक अक्रूर भी चला ।

द्विभुज मुरलीधर श्याम-सुन्दर की अद्‌भुत शक्ति से अक्रूर पूर्णतः अवगत हैं । उन्हें पूर्ण विश्वास है कि कृष्ण और बल का कोई अहित नहीं कर सकता । अक्रूर के स्निग्ध हृदय की यह अत्युत्कट एवं अतिशय अभिलाषा थी कि वे वासुदेव कृष्ण एवं बलराम का दर्शन करें ।[३]

अक्रूर ब्रज पहुँचने के पूर्व कंस के आदेश के अनन्तर अपने घर गये । वहाँ भोजनादि कर सोये तो अति सुखद एवं सुभग स्वप्नों को उन्होंने देखा जो शुभ शकुन-सूचक थे ।[४] उनके शकुनों की विस्तृत सूची दी हुई है ।[५] इन बातों को अक्रूर ने उद्धव से बताया और ब्रज चलते समय उनकी आज्ञा ली । प्रयाण-काल में उन्हें शुभ-शकुन हुए ।[६] चलते-चलते वृन्दावन पहुँचे ।

अक्रूर को देखते ही सभी गोप अति प्रेम से गाढालिंगन करते हुए मिले । अक्रूर ने कृष्ण और राम को गोद में उठा लिया । वे साश्रुनेत्र एवं आह्लादपूर्ण स्वयं उनके कपोलों का चुम्बन कर वात्सल्य-सागर में निमग्न होते हुए कृतार्थ हो गये । वे भगवान् श्याम-सुन्दर की रूप-सुधा-माधुरी में इतना डूबे, इतना डूबे कि निःसंज्ञ हो गये ।[७]

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।६६।८२-८४ ।　　१. वही ४, २ ६६।६८
३. वही ४, २।६५।२-६　　४. वही ४, २।७०।३
५. वही ४, २।७०।४-१६　　६. वही ४, २।७०।२३-२६　　७. वही ४, २।७०।६६

नन्द ने अक्रूर की दशा देखी। उन्हें प्रेम से ले जाकर रत्न सिंहासन पर विराजित किया, सर्ववृत्तान्त पूछा। मिष्ठान्न भोजन कराते-कराते पुनः-पुनः कुशल समाचार पूछा तो अपने माता-पिता को छुड़ाने के लिए राम कृष्ण के प्रयाण की बात अक्रूर ने बतायी। ये भोजन कर सोये। मारे प्रेम के कृष्ण को अपने वक्ष से अक्रूर रात में लगाये रहे। किन्तु इस वर्णन में नन्द में होने वाली किसी प्रतिक्रिया का चित्रण नहीं किया गया है।

प्रातः चलते समय बाजे-गाजे के साथ विदाई होने लगी तो सम्पूर्ण गोप-गोपी मण्डली अवस्थित हो गयी। कृष्ण रोकते रह गये किन्तु राधा की प्रेरणा से लोगों ने रथ को देखते-देखते चूर-चूर कर दिया। किसी ने डाँटा तो कुछ गोपियों ने मिलकर अक्रूर को वस्त्र से बाँध दिया। कुछ ने कंकण से तो कुछ ने हाथ से ही मारा भी। उन्हें निर्वस्त्र भी कर दिया। अक्रूर के सभी अंग क्षत-विक्षत हो गये। बड़ी दुर्दशा हो गयी। अन्त में श्री कृष्ण ने सबको समझाया किन्तु उस समय जा नहीं ही सके।[१] उस दिन पुनः ब्रज में अक्रूर निवास किये। भगवान् अपने बान्धवों एवं माता-पिता के साथ रहे। श्री कृष्ण और राम के न जाने से गोप-गोपी अति प्रसन्न हुए। उस रात सभी नाचते-गाते रहे।[२]

दूसरे दिन रात के चौथे प्रहर में मंगल कृत्य किया गया किन्तु वाद्य का, शंख ध्वनि के अतिरिक्त, निर्बंध कर दिया गया[३] क्योंकि वाद्य से सभी को ज्ञात हो जाता। राधा अपने श्याम को जाने न देती रथ के टूट जाने पर आकाश से विचित्र रथ तो आ ही गया था।[४] माता-पिता और परिवार से सस्नेह विदा ले कृष्ण और राम रथस्थ हो अक्रूर के साथ चले।[५]

अक्रूर के साथ श्रीकृष्ण और बल के अतिरिक्त नन्द जी भी थे। ये सभी मथुरा के वन-उपवन, वापी, कूप, तडाग आदि प्राकृतिक एवं सुरम्य स्थानों, समलंकृत मनोहर भवनों आदि का दर्शन करते जा रहे थे। मथुरा तीन करोड़ अट्टालिकाओं से अलंकृत थी। जाते-जाते मथुरा में अति जरातुर हाथ में दण्ड की सहायता से झुकी चलती कुब्जा मिली। श्री कृष्ण को उसने अंजलि बाँध कर भक्ति नम्र हो शिर से प्रणाम किया उसने श्री कृष्ण को चन्दन लगाया। श्री कृष्ण ने अपने दर्शन से ही उसे सुन्दरी नारी बना दिया। श्री कृष्ण को वह घर ले गयी। स्वयं तो वह द्वादशवर्षीया हो गयी और श्री कृष्ण की पूजा कर मनोरथ पूरा किया।[६]

कंस का माली भी माला-पुष्पों को राज मन्दिर ले जा रहा था। उसने श्री कृष्ण को सम्पूर्ण माल्य समर्पित कर दिया।[७]

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।७०।७६-८५ २. वही ४, २।७०।६० ३. वही ४, २।७१।५
४. वही ४, २।७०।८६ ५. वही ४, २।७१।२२-२३
६. वही ४, २।७२।७०-८० ७. वही ४, २।७२।८५

तदनन्तर राज-रजक से भेंट हो गयी। वह दर्पी एवं बलिष्ठ था। श्री कृष्ण ने वस्त्र माँगा तो उसने अति तीक्ष्ण उत्तर दिया। श्री कृष्ण ने उसे मार कर वस्त्र छीन लिया। उधर रजक दिव्यदेह हो गोलोकवासी कृष्ण पार्षदों में हो गया तो इन लोगों ने भी सुन्दर वस्त्र समावृत हो राजेश्वर रूप धारण कर लिया। श्री कृष्ण की अनुमति से दिनकर के अस्त हो जाने पर, अक्रूर अपने घर गये किन्तु ये नन्द-बलदेव सहित एक कुविन्द के यहाँ रहे। मिष्ठान्न ग्रहण कर पर्यंक पर सभी शयन किये और श्री कृष्ण कुब्जा के घर चले गये। वहाँ कुब्जा की इच्छानुकूल उसकी काम पूर्ति श्री कृष्ण ने की। उसका उद्धार किया। इस जन्म से वह मुक्त हो गयी। वे पुनः कुविन्द के घर आ गये।

कुब्जा दिवंगत हो गयी। गोलोक में वही चन्द्रमुखी गोपी हुई।

इस निशा में कंस दुःस्वप्न देखता रहा। सवेरे उस स्वप्न को उसने अपनी माँ से कहा। उसकी पत्नी तो प्रेमविह्वल हो इस दुःस्वप्न को सुनकर रो उठी।[१] सवेरे धनुर्मख की तैयारी पूरी की गयी। सुन्दर सभा बनी, उसमें रमणीक मंच बन गये। युद्धकोविदों, राजेश्वरों, ब्राह्मणों और मुनियों को बैठा दिया गया। कंस के मित्र वर्ग और धर्मिष्ठ जन भी सभा में विराजमान हुए। इन्हीं के मध्य बलराम के साथ गोविन्द भी पधारे।[२]

शिव के धनुष को, जो कि कंस द्वारा धनुर्मख के लिए रखा गया था, कृष्ण ने खेल में ही तोड़ दिया। उसके टूटने की ध्वनि ने एक बार मथुरा को बधिर कर दिया। श्री कृष्ण ने हाथी और पहलवान को भी मारा। (यहाँ हाथी और मल्ल का नाम निर्देश नहीं किया गया है।) इसी आवेग में मंच से कृष्ण ने कंस को खींच कर खेल-खेल में उसका भी काम तमाम कर दिया। उसके बन्धु पत्नी माता आदि अश्रुपूर्ण विलाप करते रहे।

नमस्कृत्य मुनीन् विप्रान् पितरं मातरं गुरुम्।
जगाम मंचकाभ्याशं हस्ते कृत्वा सुदर्शनम्॥
दृष्ट्वा भक्तं भक्तबन्धुः कृपया च कृपानिधिः।
आकृष्य मंचकात् कंसं जघान लीलया मुने॥[३]

तदनन्तर कृष्ण कराभिघात से काल-कवलित कंस ने विष्णु पद प्राप्त किया। श्री कृष्ण ने उसका अन्तिम संस्कार कराया और राजच्छत्र उग्रसेन को प्रदान किया।

सर्वात्मा भगवान् अब पिता के पास आये। उनकी बेड़ी काटी, माता-पिता

---

१. ब्रह्म वै ४, २।७२।७०-८० २. वही ४, २।७२।८५ ३. वही ४, २।७२।९१-९२

को प्रणाम किया। माता ने दोनों पुत्रों को गोद में भर लिया। नन्द सहित गोपालों और दोनों बेटों को देवकी ने मिठाई खिलाया। ब्राह्मणों को धनदान किया।[1]

नन्द को अब पुत्र विच्छेद की आशंका हुई। अतः वे रोने लगे। श्री कृष्ण सब कुछ समझ गये। उन्होंने नन्द को बहुत कुछ समझाया। यह भी बताया कि न कोई किसी का पुत्र है न पिता। संसार में आना-जाना लगा रहता है।

कः कस्य पुत्रः कस्तातः का माता कस्यचित् कुतः।
आयान्ति यान्ति संसारं परं स्वकृत-कर्मणा ।।

माता यशोदा, गोपाल, गोपियाँ और देवी राधा आदि को एक सन्देश भी भेजा। यह कह भी दिया कि सन्देश को इन मन्त्रको सुना देना :—

मत्प्राणाधिष्ठातृ देवी देवीनां प्रवरा वरा।
सुदाम्नः सा च शापेन वृषभानु सुताधुना ।।

शताब्दिको हि विच्छेदो भविष्यति मया सह।
तेन भारावतरणं करिष्यामि भुवः पितः ।।

तदा यास्यामि गोलोकं तया सार्धं सुनिश्चितम्।
त्वया यशोदया चापि गोपैः गोपीभिरेव च ।।

वृषभानेन तत्पत्न्या कलावत्या च बान्धवैः।
एवं च नन्दं सानन्दं यशोदां कथयिष्यसि ।।[2]

इन सब तथ्यों को जाकर नन्द ने सबके सम्मुख रखा। वे सभी शोकहीन हो चले। किन्तु यशोदा से नहीं रहा गया अतः उन्होंने पुनः नन्द को मथुरा भेजा।[3] मथुरा में नन्द के पुनरागमन प्रसंग में १७ अध्याय जुड़ गये हैं। नन्द को श्री कृष्ण का उपदेश ब्रह्मवैवर्तीय विशेषता है। यह प्रसंग श्रीमद्भागवत में नहीं है। और न तो उद्धव के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति ब्रजवासियों को समझाने आया। आध्यात्मिक उपदेश, जिनमें कि सांसारिक-सम्बन्ध मिथ्या बताये गये हैं[4] अति सरल भाषा में व्यक्त किये गये हैं। ७५ वें अध्याय में मनुष्य द्वारा कर्तव्य आचार का वर्णन किया गया है। ७६ वें अध्याय में किनका देखना पुण्य और किन वस्तुओं, पशुओं आदि का देखना अपुण्य या अपशकुन है, वर्णित है। विशेषतः पुण्य लाभ एवं जन्म-खण्डन के कर्मों की एक विस्तृत-सूची प्रस्तुत की गयी है। आगे के दो अध्यायों में सुस्वप्न[5] एवं

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।७२।११४-१५ २. वही ४. २।७३।४२-४५
३. वही ४, २।७३।१०१-२ ४. ४, वही २।७४।७-१० ५. वही ४, २।७७ अ०

ुष्कर्मों[1] का वर्णन किया गया है। दुःस्वप्नों का वर्णन नन्द-कृष्ण संवाद के ही प्रसंग में ८२ वें अध्याय में किया गया है।

सूर्य एवं चन्द्र के ग्रहण की भी कथा को इस नन्द-कृष्ण संवाद में समाविष्ट किया गया है। इसी प्रश्न में भाद्रपद की चतुर्थी के नेष्ट होने का कारण भी पूछा गया है। यहाँ प्रश्न में सित और असित दोनों पक्षों की भाद्रपदा-चतुर्थी नेष्ट बतायी गयी है।[2]

कृष्ण ने उक्त प्रश्न का उत्तर बड़ी ही शिष्टतापूर्वक प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा कि इस प्रश्न को न करें कोई अन्य प्रश्न करें, क्योंकि असत्य कहा कैसे जाए और सत्य कहने में अपने से बड़ों का छिद्र प्रकट होता है। किन्तु नन्द ने इस प्रश्न को यह कह कर कि आप उत्तर दीजिए क्योंकि वे दोनों (सू० च०) यहाँ तो हैं नहीं, आगे बढ़ा लिया।[3]

कृष्ण कहने लगे कि एक बार जमदग्नि नर्मदा तट पर अपनी पत्नी रेणुका सहित आनन्द विहार कर रहे थे। जमदग्नि को रेणुका का नवयौवन एवं आकर्षक सौन्दर्य देखकर कामावेश हो गया। पुलकतनुरुह रेणुका ऋषि के सर्वांग सम्भोग से मूर्च्छित हो गयी थी। यहाँ मूर्च्छित का अभिप्राय कामसागर में सर्वांगीण निमग्नता है।

इसी के मध्य भगवान भास्कर पहुँच कर ऋषि को उपदेश देना प्रारम्भ कर दिये। ऋषि से सहा नहीं गया। उन्होंने शाप दिया कि तूने इस निर्जन स्थान में आकर रसभंग किया अतः तुम्हारा दर्शन भी पाप और तुम राहुग्रस्त होगे।

अद्य मे निर्जने स्थाने रस भङ्गस्त्वया कृतः।
मम शापात् पापदृश्यो राहुग्रस्तो भविष्यसि॥
द्रष्टुं त्वां ये घनाः सर्वे दूरीभूताः भवन्ति ते।
त्वामाच्छन्नं करिष्यन्ति वायुना प्रेरितास्तदा॥
स्वतेजसा भवान् गर्वाद् हततेजा भविष्यसि।
मेघाच्छन्नः स्वल्पतेजा राहुग्रस्तो भवान् भव॥[4]

शम्भु के द्वारा निर्जित होने का भी शाप दिया।[5]

सूर्य ने भी जमदग्नि को शाप दिया कि तुम द्विजेश्वर होकर भी क्षत्रिय से पराजित होगे तथा क्षत्रिय के ही अस्त्र से मरोगे।

पराभूतः क्षत्रियेण भविष्यसि द्विजेश्वर।
मरणं क्षत्रियास्त्रेण भवतश्च भविष्यति॥[6]

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।७८ अ० २. वही ४, २।७६।१ ३. वही ४, २।७६।५
४. वही ४, २।७६।३०-३२ ५. वही ४, २।७६।४१ ६. वही ४, २।७६।४०

अन्त में उन दोनों के इस कलह को जान कर कश्यप के साथ ब्रह्मा स्व पधारे और भास्कर एवं मुनि को समझा कर शान्त किया।

सूर्य को शान्त करते हुए उन्हें आशीष दिया कि घनाच्छन्नता से शीघ्र मुक होकर पुण्य दृश्य होगे।

जन्म सप्ताष्ट रि: फाङ्कचतुर्थे दशमे तथा
जन्मर्क्षे निधने नृणामदृश्यस्त्वं भविष्यसि।
अस्तकाले घनाच्छन्ने मध्याह्नस्थे जलेऽपि वा
अर्धोदिते च काले च पाप-दृश्यो भविष्यसि।
भार्या-दु:ख-निमित्तेन भार्यया हेतुभूतया।
श्वसुरेण शालकेन हृत-तेजा भविष्यसि॥[1]

जमदग्नि को भी शान्त किया। उन्होंने बताया कि हरि के अंश से उत्पन्न क्षत्रिय के द्वारा आपका वध होगा। आपकी मृत्यु यश का कारण बनेगी क्योंकि इसी हेतु से आपका पुत्र २१ बार धरती को क्षत्रियहीन कर देगा।[2]

भाद्रपदा चतुर्थी के त्याज्य होने का कारण बताते हुए कृष्ण ने कहा कि गुरुपत्नी तारा का अपहरण उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर चन्द्रमा ने किया। चन्द्रमा उसे चुरा कर घूमता रहा। शरण लेने के लिए असुर गुरु शुक्र के पास गया। शुक्र ने शरण दिया। सुर समूह ने चन्द्र तथा तारा को घेर लिया। रत्नमाला नदी तट पर स्वाहा के आश्रम में असुरवाहिनी भी उपस्थित हुई। शुक्र भयभीत नहीं हुए। शिव भी सुरवाहिनी में थे। शिव शुक्र के आश्रम पर गये। शुक्र ने उनको प्रणाम आदर किया। शिव ने उन्हें शुभाशीर्वाद दिया। ब्रह्मा ने इस प्रसंग को चलाया। उन्होंने गुरु पत्नी तारा और चन्द्र जो उनके पास हैं उन्हें लौटाने के लिए कहा। शिव ने भी तीक्ष्णता प्रकट की। शुक्र ने भी पहले तो शरणागत चन्द्र को देना अस्वीकार कर दिया, किन्तु शिव की शरण में होकर यथोचित करने को कहा तो शिव प्रसन्न हो गये। ब्रह्मा ने भी कवि (शुक्र) को समझाया। चन्द्रमा ने क्षमा तो कर दिया किन्तु पतिव्रत्य भंग करने के कारण चन्द्रमा को यक्ष्माग्रस्त होने के शाप का, जिसे तारा ने दिया था, प्रतिकार कर दिया और इस भाद्रपद चतुर्थी को पापदृश्या कर दिया। तारापहरणस्वरूप चन्द्रमण्डल में अपरिहार्य कलंक कर दिया।

तारा ने पुत्र पैदा करके चन्द्रमा को दिया। इस प्रसंग में यहाँ नाम तो नहीं बताया गया है किन्तु यही बुध ग्रह है और स्वयं तारा बृहस्पति के साथ हो गयीं। तारा को शुद्ध समझा गया, क्योंकि तारा ने स्वयं चन्द्रमा के साथ होने की कामना नहीं की थी। वह तो विवशा थी।

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।७८।५०-५२ २. वही ४, २।७८।५७-५९

अकामतो बलात्साध्वी न स्त्री जारेण दुष्यति।
कामतो नरकं याति यावच्चन्द्र दिवाकरौ।।[1]

ब्रह्मवैवर्त के ८३वें अध्याय में चातुवर्ण्य एवं चारों आश्रमों, विधवाओं, वैष्णवों तथा पतिव्रताओं के धर्मों का वर्णन किया गया है। पुत्र और पुत्रियों का माता-पिता के प्रति क्या कर्तव्य है यह भी बताया गया है। ब्रह्माण्ड का भी भेद बताया गया है। ८४वें अध्याय में आचार का वर्णन किया गया है। ८५वें अध्याय में भक्ष्याभक्ष्य एवं कर्म विपाक का वर्णन किया गया है।

केदार-कन्या-कथा

ब्रह्मा के पुत्र मनु स्वायम्भुव थे। उनकी पत्नी शतरूपा थीं। इनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव थे। ध्रुव के पुत्र नन्द सावर्णि और उनके पुत्र केदार हुए। केदार परम वैष्णव थे।[2] केदार को पाँच लाख राजेन्द्र कर देते थे। केदार के यज्ञ कुण्ड से वृन्दा उत्पन्न हुई।[3] यह यमुना के तट पर तपोनिष्ठ हो गयी। वह वन उसी के नाम से प्रसिद्ध वृन्दावन हुआ।[4] उसके तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वर दिया कि 'पश्चात् कृष्णं लभिष्यसि।[5]' ब्रह्मा ने उसकी परीक्षा के लिए धर्म को भेजा। धर्म ने उसके मनोरथ को डिगाना चाहा किन्तु वह दृढ़ रही। धर्म ने अपने साथ आकृष्ट करने के लिए प्रलुब्ध करना चाहा किन्तु वृन्दा अपने निश्चय पर दृढ़ रही।[1] उसने धर्म का छल देख कर उन्हें शाप भी दिया।

शशापेति च सा कोपाद् ब्रह्मबन्धो क्षयो भव।
क्षयो भव दुराचार हे पापिष्ठ क्षयो भव।।[6]

विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, सूर्य अनन्त, चन्द्र, महेन्द्र, वरुण, पवन, वह्नि और यम ने वृन्दा को शान्त किया। धर्म की पत्नी मूर्ति रोती रही। अन्त में श्री कृष्ण स्वयं ही उपस्थित हुए। उन्होंने वृन्दा की शेष आयु को धर्म को प्रदान करा दिया। और यह भी कह दिया कि तुम इस तपोबल से मुझे बाद में प्राप्त कर लोगी।

वृषभानु सुता त्वं च राधाच्छाया भविष्यसि।
मत्कलांशश्च रायाणस्त्वां विवाहे ग्रहीष्यति।।३६

मां लभिष्यसि रासे च गोपीभी राधयासह।
राधा श्रीदाम शापेन वृषभानुसुता यदा।।१३७

सा चैव वास्तवी राधा त्वं च छाया स्वरूपिणी।
विवाहकाले रायाणस्त्वां च छायां ग्रहीष्यति।।१३८

---

१. ब्रह्म वै० ४,।८६।३-५ २. वही ४,।२।८६।१९ ३. वही ४,२।८६।२१
४. वही ४,२।८६।२४ ५. वही ४,२।८६।२१ ६. वही ४,२।८६।१०५

त्वां दत्त्वा वास्तवी राधा साऽन्तर्धाना भविष्यति ।
राधेवेति विमूढाश्च विज्ञास्यन्ति गोकुले ॥१३९
स्वप्ने राधा पदाम्भोजं नहि पश्यन्ति बल्लवाः ।
स्वयं राधा मम क्रोडे छाया रायाण कामिनी ॥१४०[1]

यह छाया की राधा भी अन्त में गोलोक में उपस्थित होकर कृष्ण-प्रसंगिनी बन जाती है। वहीं सबके सम्मुख वृन्दा स्वयं उपस्थित दिव्य रथ से गोलोक पधार गयी।[2]

नन्द ने श्रीकृष्ण से पूछा—हे कृष्ण आप यह बतायें कि वस्तुतः आप कौन हैं। इतने में वहीं ऋषि-मुनियों का एक विशेष दल उपस्थित हुआ। इसमें सनत्कुमार भृगु आदि भी थे। इस प्रश्नोत्तर प्रसंग में सनत्कुमार ने कहा कि श्रीकृष्ण से कुशल प्रश्न तो व्यर्थ ही है क्योंकि यह तो सभी शिवों अथवा कुशलों के बीज हैं।[3] श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि शरीरधारियों से कुशल प्रश्न अभीप्सित है,[4] तो सनत्कुमार ने कहा कि यह तो प्राकृत शरीरधारी के लिए है। आप तो नित्यदेह और क्षेत्रबीज हैं।[5] सबके बीज तो श्रीकृष्ण ही हैं।

सर्वबीजस्य सर्वादि भवांश्च भगवान् स्वयम् ।
सर्वेषामवताराणां प्रधानं बीज मव्ययम् ॥[6]

श्रीकृष्ण ने अपनी लघुता द्योतित करते हुए कहा कि मैं तो इस समय रक्त एवं वीर्य आश्रित देहधारी और वसुदेव का पुत्र हूँ तो वासुदेव नाम स्वीकार करते हुए सर्वनिवासी अर्थ को सनत्कुमार ने सिद्ध किया।[7] वसुदेव से अपत्यार्थक अण् से वासुदेव की सिद्धि को वासुश्चासौदेवः वासुदेवः यह सिद्ध करते हुए बताया कि वासुः सर्वनिवासः। सर्वोत्तम श्री कृष्ण ही हैं। अतः नन्द ने कहा कि श्री कृष्ण को छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा।

श्री कृष्ण ने नन्द को उस स्तोत्र राज का निर्देश दिया जो सर्वमोह निकृन्तन है; जिसका प्रयोग शम्भु ने त्रिपुर वध के अवसर पर किया था।[8]

श्री कृष्ण ने अपने बाल-चापल्य के लिए नन्द से क्षमा याचना भी की है। उनकी यह स्वीकृति नन्द के लिए अवश्यमेव हृदयद्रावक है—

यत्कृतं न सुखं तात पित्रोश्च नृप मन्दिरे ।
कृतं सुखं तत्परं च स्वर्गादपि सुदुर्लभम् ॥[9]

---

१. ब्रह्म वै० ४,२।८६।१३९-४० २. वही ४,२।८६।१४८-५० ३. वही ४,२।८७।१९
४. वही ४,२।८७।२२ ५. वही ४,२।८७।२३ ६. वही ४,२।८७।२६
७. वही ४,२।८७।२९-३० ८. वही ४,२।८८।१५-३६ ९. वही ४,२।८९।४

नन्द को श्री कृष्ण ने कलयुग-वैशिष्ट्य भी विस्तारपूर्वक सुनाया है।[1] इतना समझाने-बुझाने पर भी नन्द श्री कृष्ण को छोड़ना नहीं चाहते। अतः श्री कृष्ण ने बताया कि भाग्य चक्र को रोका नहीं जा सकता।

निषेकेन परिष्वङ्गो विभेदस्तेन वा भवेत्।
क्षणेन दर्शनं तेन निषेकः केन वार्यते ॥[2]

श्री कृष्ण अपने स्थान पर उद्धव को गोपियों, गोपों, राधा और यशोदा के सांत्वनार्थ भेजने लगे तो भी नन्द को शान्ति नहीं मिली, तब वसुदेव जी ने कहा कि नन्द! मथुरा कोई बहुत दूर नहीं। उत्सवों आनन्द मंगलों के अवसर पर ये पहुँचते रहेंगे। जैसे मेरे पुत्र वैसे आपके।

दूरीभूता गोकुलाच्च मथुरा नास्ति बान्धव।
महोत्सवे सदानन्दे नन्द द्रक्ष्यसि पुत्रकम् ॥[3]

देवकी ने भी नन्द को समझाया कि हम सब ग्यारह वर्ष बलराम सहित कृष्ण के बिना रह लिए, आप थोड़े ही समय में व्याकुल और मलिन हो गये। अभी आप मथुरा में और रहें।[4]

कृष्ण ने उद्धव को भेज दिया। नन्द मथुरा रह गये। उद्धव ने नन्द के न आने का कारण बताया कि वे अभी उपनयन तक नहीं आयेंगे।[5]

उद्धव गोकुल चलते हैं तो मार्ग में उन्हें शुभ शकुन हुए। वृन्दावन के भाण्डीर वनस्थ अक्षय वट के नीचे सुवेष में बालक बल और कृष्ण के लिए विलाप कर रहे थे। उन्हें आश्वस्त करते हुए उद्धव आगे बढ़े तो विशाल वृन्दावन देखा। वनोद्यान की तो शोभा अद्भुत ही थी। मालती, चन्दन, चम्पक, यूथिका, केतकी, माधवी, बकुल, बंजुक, अशोक, मल्लिका, पलाश, शिरीष, धात्री, कांचन, कर्णिका, नागेश्वर, लवंग, शाल, ताल, हिन्ताल, पनस, रसाल, लांगली, कुन्द, मधु, श्रीफल, निम्ब, नारंगी, पद्म, करवीर, तुलसी और कदली के वनों को उद्धव ने गोकुल नगर में प्रवेश के पूर्व देखा। विश्वकर्मा-विनिर्मित मणि-रत्न-मुक्ता-माणिक्य हीरकों से युक्त नन्द-शिविर को देखा। द्वार पर रत्न-कलश सुशोभित था। पहुँचते ही यशोदा और रोहिणी ने उद्धव से कुशल पूछा। आसन, जल, धेनु और मधुपर्क प्रदान किया। नन्द, बलराम और कृष्ण के विषय में पृथक्-पृथक् भी पूछा। नन्द के विषय में बताया कि बल और कृष्ण के उपनयन तक वे मथुरा में ही रहेंगे।

---

१. ब्रह्म वै० ४,२।६०।१-७५ २. वही ४,२।८१।१
३. वही ४,२।६१।६ ४. वही ४,२।८०।८-६ ५. वही ४,२।६२।१५

मंगल-वार्ता सुनकर यशोदा और रोहिणी ने उद्धव को सुधोपम मिष्ठान्न भोजन कराया, उत्सव मनाया। उस समय उपहार भी बाँटे गये।

सौ भैंसें, सहस्र छाग, अयुत (दस हजार) भेंड़ें, सौ गाएँ और सौ स्वर्ण ये विविध उपहारों के साथ दिये गये। वृन्दावन का गोकुल अतीव समृद्ध एवं सुसज्जित था। रत्नस्तम्भ, रत्नकलश, सिंहद्वार, रत्न सोपान, रत्न दीप, रत्न कपाट और पताकाओं से सम्पूर्ण नगर समुद्भासित था।

विश्वकर्मा विरचित नाना-रत्न-कुटीर-समलंकृत गोप-गोपी समन्वित रास मंडल की शोभा तो अद्भुत ही थी। भित्ति चित्रों से सम्पूर्ण भवन सुशोभित था। छः द्वारों वाले रास मण्डल में षष्ठ द्वार के पश्चात् राधा कृष्ण वियोग में शोक मूर्च्छित थीं। रोते-रोते उनका मुख अरुण हो गया था। उन्होंने आभूषण परित्यक्त कर दिये थे। निराहार और निश्चेष्ट राधा के कण्ठोष्ठ सूख गये थे। कुछ श्वास चल रहा था।

उद्धव ने पहुँच कर राधा को प्रणाम किया। उन्हें देखकर उद्धव को रोमांच हो[1] आया। उद्धव ने राधा-स्तोत्र का पाठ किया।

वियोग-विदग्धा राधा से श्री कृष्ण के पुनरागमन की वार्ता करते हुए उन्हें आश्वस्त किया। उद्धव पुनः मथुरा चलना चाहते हैं तो राधा ने अपनी दुःख कथा सुनने के लिए कुछ देर रोका। वे इस पर अधिक बल देती हैं कि कहीं हमें भूल न जाना। कृष्ण से अवश्य कहना। क्योंकि वास्तव में नारी के मन की वस्तुतः स्थिति को पण्डित नहीं जानते। वे लोग शास्त्र के आधार पर कुछ जानते हैं किन्तु जिसका वर्णन वेद नहीं कर सकते, शास्त्र क्या करेंगे। मैं उनसे अपनी वार्ता स्वयं कहूँगी। श्री कृष्ण से कह देना।[2]

राधा की यह उक्ति वास्तव में विशेष रूप से विचारणीय है कि नारियों के मन की दशा पर शास्त्रों ने उतना ध्यान नहीं दिया है, जितना अपेक्षित था।

माधवी, मालती, पद्मावती, चन्द्रमुखी, शशिकला, सुशीला, रत्नमाला, पारिजाता, कलावती, सनत्कुमार, तुलसी और कालिका की उक्तियाँ भी पूर्णतः आवेशपूर्ण और हृदयद्रावक हैं। वृन्दावन में उद्धव की ज्ञान गरिमा कुछ कर नहीं पाती। यहाँ तो शान्ति का एकमात्र साधन कृष्ण-दर्शन है। इस वियोग व्यथा सागर में उद्धव भी डूबे। वे भी अपने को कितना रोकते, अन्त में रो पड़ते हैं।

राधिका वचनं श्रुत्वा रुरोद भृशमुद्धवः।
रुदतीं राधिकां दृष्ट्वा बन्धु-विच्छेद-कातराम् ॥[3]

राधा एवं उद्धव में ज्ञानपूर्ण वार्ता भी होती है। राधा ने उद्धव को ज्ञानोपदेश

---

१. ब्रह्म वै० ४,२।९२।६४-६८ २. वही ४, २।९३।८२-८४ ३. वही ४,२।९५।३७

भी किया है ।[1] राधा उद्धव की श्रोता मात्र नहीं हैं। सम्पूर्ण व्रज में जो कृष्ण-वियोग-व्यथा व्याप्त है, उसका सर्वाधिक प्रभाव राधा पर है ।

उद्धव विदा होकर मथुरा चलने लगे तो सबके अन्त में यशोदा से विदा हुए। विदा के पूर्व उन्होंने यमुना में स्नान किया। यमुना तट पर खर्जुर वन उनके बाएँ पड़ रहा था। वे खा पीकर मथुरा चले। चलते-चलते यशोदा को प्रणाम किया।[2]

मथुरा पहुँचने पर उद्धव कृष्ण से मिलते हैं तो कृष्ण एक-एक करके सबके विषय में पृच्छा करते हैं। गोप-गोपी, गाएँ, बछड़े, राधा, यशोदा, रोहिणी, वन, उद्यान, गोवर्धन, यमुना, भोजन, बात-चीत, व्यवहार सभी के विषय में कृष्ण उत्सुक होकर पूछते हैं। कृष्ण के ये प्रश्न अति स्वाभाविक ढंग से हुए हैं। अपने कुछ आश्चर्यजनक कृत्यों—इन्द्रयाग का निषेध, गोवर्धन धारण आदि का भी स्मरण हो आता है।

उद्धव सबका समाचार देते हैं। राधा को प्राणान्त से बचाने के लिए उन्होंने श्री कृष्ण से बिना पूछे ही एक बात यह भी कह दिया था कि श्री कृष्ण आएंगे। इसे भी बताया। हरिरायाति चेत्येवं राधाग्रे स्वीकृतं मया।

शीघ्रं गच्छ महाभाग ! तदेव सार्थकं कुरु।
:द्धवस्य वचः श्रुत्वा जहासोवाच माधवः ॥

किन्तु श्री कृष्ण ने उद्धव को जो उत्तर दिया वह भी विचारणीय है। यह राजनीति की मलिनता का स्पष्ट उदाहरण है अथवा समाज का, जिसमें कृष्ण की अपेक्षा है, ध्यान न रख अपनी धुन में बावली गोपियों के प्रति तीक्ष्ण व्यंग्य है।

स्त्रीषु धर्मविवाहेषु वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे।
गवामर्थे ब्राह्मणार्थे नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥[3]

श्री कृष्ण और बलराम के उपनयन संस्कार में तो ऋषियों मुनियों ने भाग लिया ही। ब्रह्मा, महादेव अनन्त आदि पधारे। यज्ञोपवीत में षोडश मातृकाओं, वसु-धारा को घृत की सप्तधारा प्रदान की गयी। चेदिराज वसु को प्रणाम कर वृद्धि श्राद्ध भी सम्पन्न हुआ। सान्दीपनि ने दोनों पुत्रों को गायत्री प्रदान किया। प्रथम भिक्षा अन्नपूर्णा पार्वती ने दिया।[4] इस उपनयन में सभी देवियाँ भी उपस्थित थीं। यशोदा और रोहिणी भी थीं। उपनयन समाप्त हुआ। प्रेमनिमग्न हो पुत्र-वत्सल यशोदा और नन्द, बल और कृष्ण को गले लगा कर उनका मुख चूम कर वियोग व्यथा ले चलने लगे तो श्री कृष्ण ने उन दोनों के धैर्य का आश्रय अपने लोगों की शिक्षा बताकर उन्हें निरुत्तर कर दिया। वे बेचारे क्या बोलते बल और कृष्ण को पढ़ना तो था ही। इसके अनन्तर मिलने का आश्वासन दिया।

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।९६-९७ अ०   २. वही ४, २।९८।१-२
३. ब्रह्म वै० ४, २।९८।३९   ४. वही ४, २।१०१।१२-१५

सानन्दं गच्छ हे मात यशोदे तात सत्वरम् ।
त्वमेव माता पोष्ट्री त्वं पिता च परमार्थत: ।।

अवन्ति नगरं तात यास्यामि सबलोऽधुना ।
मुने: सान्दीपने: स्थाने वेदपाठार्थ मीप्सितम् ।।

तत आगत्य सुचिरं काले भवति दर्शनम् ।
काल: करोति कलनं स च भेदं करोति च ।।[१]

नन्द यशोदा को बड़े प्रेम से वसुदेव आदि ने उपायनों सहित विदा किया।

अब बल और कृष्ण गुरु-गृह गये। वहाँ बड़ी श्रद्धा भक्ति से गुरु सेवा करते हुए गुरु को एवं गुरुपत्नी को सन्तुष्ट रखा। एक मास में ही इन दोनों ने अपनी शिक्षा पूरी कर ली और गुरु को उनके मृत-पुत्रों को भी प्रदान कर दिया। पति-पत्नी अति सन्तुष्ट हुए। अन्य उपहारों से भी उन्हें पूर्णत: सन्तुष्ट कर दिया। मथुरा के जीवन की यह मृत पुत्र प्रदान भी एक विलक्षण घटना है। श्री कृष्ण और बल अभी तक गोपवेष में ही रहते थे।[२]

अवन्ती से परावर्तित होकर कृष्ण और बलराम ने गोपवेष छोड़ कर नृप-वेष धारण किया।[३] उनका वाहन गरुड और अस्त्र चक्र उनके सहगामी हुए।[४] श्रीकृष्ण को अब शत्रु दल का विध्वंस करना था। सुरक्षित दुर्ग एवं नगर की आवश्यकता थी। मथुरा में श्री कृष्ण का ननिहाल था। वह उनके विरोधियों की भूमि थी यद्यपि उनके अधीन थी तथापि वे अपनी शक्ति द्वारा नवीन-निर्माण करके अपने समर्थकों सहित अवस्थित होना चाहते थे। सम्भवत: द्वारिका का रहस्यमय निवास सबको अवगत एवं सरल नहीं रहा। मथुरा का रहस्य विरोधियों का ज्ञात था। समुद्र के अन्दर द्वारिका का निर्माण युद्ध-कला की दृष्टि से अत्युत्तम रहा होगा।

अत: उन्होंने विश्वकर्मा और समुद्र को गरुड द्वारा बुलवाया। जलधि से नगर-निर्माण के लिए शत-योजन-भूमि की माँग श्री कृष्ण ने यह कह कर की कि पश्चात् यह भूमि लौटा दी जाएगी। सागर ने स्वीकार किया। विश्वकर्मा को निर्माण का आदेश दिया। गरुड को भी अहोरात्र रहने के लिए आदेश दे दिया। गरुड को विश्वकर्मा की सुविधा के लिए कर दिया। चक्र को सदैव अपने पास रहने का आदेश किया।[५]

जरासन्ध को जीत कर और यवन का वध करके निर्माण क्रम प्रारम्भ हुआ।[६]

कृष्ण ने विश्वकर्मा को गृह निर्माण सम्बन्धी उपदेश के व्याज से वास्तुशास्त्र

---

१. ब्रह्म वै० ४,२।१०१।२६-२८ २. वही ४,२।१०३।२ ३. वही ४, २।१०३।२
४. वही ४, २।१०३।३ ५. वही ४, २।१०३।५-७ ६. वही ४, २।१०३।१३

का भी प्रतिपादन किया है ।[१] यद्यपि विश्वकर्मा को किसी प्रयास का कष्ट नहीं करना पड़ा । समुद्र तट पर गरुड के साथ वटवृक्ष के नीचे पहुँचे तो उन्हें रात्रि में जब नींद आ गयी तो स्वप्न में एक विचित्र द्वारिका दिखायी पड़ी वह स्वप्न ही साकार हो उठा । विश्वकर्मा लज्जित हो गये ।[२]

विविध तरु-पुष्पों नौ प्रकारों और सप्त परिखाओं से युक्त एवं चतुरस्र द्वारिका शतयोजन में बसी थी ।[३] इसमें छः अन्तर्द्वार और अन्दर कई सौ गृह थे ।[४]

इसे देखने के लिए त्रिदेव, इन्द्र आदि देव, ऋषि मुनि सभी पधारे ।[५] वसुदेव, देवकी, समातृक पाण्डव, नन्द, यशोदा,[६] द्रोण, भीष्म, कर्ण, दुर्योधन आदि[७] भी वहाँ आये थे । वहाँ बड़े उत्सव के साथ महाराज उग्रसेन का अभिषेक हुआ ।[८] यद्यपि उग्रसेन ने पैतृक भूमि का विशेष महत्व बताया है[९] तथापि द्वारिका को श्री कृष्ण ने सर्वश्रेष्ठ कहा है ।

सर्वतीर्थपरा श्रेष्ठा द्वारका बहु पुण्यदा।
यस्याः प्रवेशमात्रेण नराणां जन्मखण्डनम् ॥[१०]

विदर्भ राज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी नवयौवन सम्पन्न हो चुकी थी । भीष्मक को चिन्ता हो रही थी कि किसके साथ पुत्री को विवाहित किया जाय । उन्होंने अपने पुरोहित गौतम के पुत्र शतानन्द से मन्त्रणा किया तो उन्होंने बताया कि वसुदेव पुत्र द्वारका नगर निवासी कृष्ण के साथ सम्बन्ध उत्तम होगा । ये पृथ्वी भार-हरण हेतु नारायण ही अवतरित हुए हैं ।[११] किन्तु रुक्मि ने शतानन्द का विरोध किया । उसने यह भी बताया कि भिक्षुक, लोभी, क्रोधी, नर्तक, वैश्य, भट्ट, अर्थी (इच्छुक) कायस्थ और भिक्षुओं के वचन सदा असत्य होते हैं ।[१२]

श्री कृष्ण के सम्बन्ध में उसने बताया कि यवन को मार कर उसका धन लेकर वे धनी हुए हैं और जरासन्ध से भयभीत होकर समुद्र के अन्दर उन्होंने गृह निर्माण किया है, जबकि मैं जरासन्ध को मार सकता हूँ । मैं दुर्वासा का रणशास्त्र-विशारद शिष्य हूँ । मेरे समान केवल परशुराम और शिशुपाल हैं ।

उसने श्री कृष्ण को गोपियों का जार, उच्छिष्ट भोजी और गोरक्षक कहकर अपमानित किया । यह भी कह दिया कि यदि वह आया तो उसे यमलोक भेज दूँगा । वह श्री कृष्ण को महत्वहीन समझता है ।

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।१०३।१४-८१ २. वही ४, २।१०३।७८-८१
३. वही ४, २।१०४।७,८ ४. वही ४, २।१०४।७३ ५. वही ४, २।१०४।२
६. वही ४, २।१०४।२६-२७ ७. वही ४, २।१०४।४६ ८. वही ४,२।१०४।८४-८६
९. वही ४, २।१०४।५०-५७ १०. वही ४, २।१०४।५९
११. वही ४, २।१०५।२०-२७ १२. वही ४, २।१०५।४०-४१

मा राजपुत्रो मा शूरो मा कुलीनश्च माशुचिः।
मा दाता मा धनाढ्यश्च मा योग्यो मा जितेन्द्रियः ॥[१]

इस प्रकार रुक्मि का घोर विरोध होते हुए भी भीष्मक ने निर्जन में मन्त्री के साथ मन्त्रणा करके द्वारका में श्री कृष्ण को निमन्त्रण एक योग्य विप्र द्वारा भेज दिया। इधर रुक्मिणी का विवाह रुक्मि शिशुपाल के साथ चाहता था। निमन्त्रण सर्वत्र भेज दिया गया।[२]

अङ्गं कलिङ्गं मगधं सौराष्ट्रं वल्कलं वरम्।
राट (ठं) वरेन्द्रं वङ्गं च गर्जराठिं च पेठरम् ॥५६॥

महाराष्ट्रं विराटं च मुद्गलं च मुरङ्गकम्।
मल्लकं गल्लकं खर्वं दुर्गं प्रस्थापयद्द्विजम् ॥५७॥

महाराज भीष्मक के निमन्त्रण में उग्रसेन, बलदेव, वसुदेव, उद्धव, नन्द, अक्रूर, सात्यकि, कौरव, पाण्डव, भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शकुनि, शल्य आदि पधारे थे। योगियों ब्रह्मचारियों और अवधूतों की भी भारी भीड़ थी। गायक, गायिकायें, नर्तक और नर्तकियाँ तो लाखों लाख थे। भीष्मक के निमन्त्रण में देव देवीगण भी पधारे थे।

इस निमन्त्रण में पहुँचने के पूर्व बलदेव ककुद्मी की कन्या रेवती के साथ विवाहित हो चुके थे। यह विवाह भी बड़े धूम-धाम से हुआ था।[३]

महाराज भीष्मक के यहाँ कृष्ण के विरोधियों की संख्या भी अधिक थी किन्तु कृष्ण के पहुँचने पर उनके सौन्दर्य और उनके व्यवहार पर भीष्मक की पत्नी तथा कुण्डिनपुर के अन्य युवती जन सभी परम प्रसन्न हुए और रुक्मिणी के साथ कृष्ण-विवाह के समर्थक हुए।

विरोधी शिशुपाल, रुक्मि, शाल्व, दन्तवक्त्र आदि को बलदेव एवं कृष्ण ने युद्ध-स्थल में मार-मारकर खदेड़ दिया।[४] भीष्मक ने अपने को धन्य माना। उनकी पत्नी भी परम प्रसन्न हुई। रुक्मिणी भी अति प्रहृष्ट हुई।

परम्परा प्राप्त मांगलिक कृत्य भी किए गये। जैसे—अलंकृत करके कन्या को सात बालकों द्वारा विवाह मण्डप में आनयन, कन्या द्वारा अपने पति की सात प्रदक्षिणा, स्निग्ध चन्दन पल्लवों के द्वारा शीततोय से पति का सिंचन, पिता के क्रोड में बैठाकर पति के हाथों में कन्या का समर्पण तथा 'स्वस्ति' कहकर वर द्वारा कन्या को स्वीकृति आदि कार्य सम्पन्न हुए।[५]

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।१०५।५३　　२. वही ४, २।१०५।५६-५७
३. वही ४,२।१०७।१-१६　४. वही ४,२।१०७।१-१६　५. वही ४,२।१०८।१-१४

रुक्मिणी की माता सुभद्रा ने रोते हुए विदाई दी। द्वारका में श्री कृष्ण ने नन्द-यशोदा से अति प्रेम भेंट करके यशोदा को ज्ञानात्मक उपदेश उनके सन्तोषार्थ किया। वहाँ से नन्द दम्पति गोकुल लौटे तो कदली वन[१] में राधा अतिविह्वल विस्मृत चित्त थीं। यशोदा ने उन्हें शान्तचित्त करते हुए श्री कृष्ण के पुनरागमन का आश्वासन दिया। उन्होंने राधा को श्रीदामा के शाप का भी स्मरण दिलाया।[२] राधा ने भी चेतना प्राप्त कर यशोदा को कृष्णभक्ति का उपदेश प्रदान किया।[३] इस प्रसंग में नामों का निर्वचन विशेषत: स्मरणीय है।

सुभद्रासुता रुक्मिणी कृष्ण के साथ विवाहित होकर द्वारका पहुँची। रुक्मिणी ने प्रेम से सुखमय जीवन व्यतीत करते हुए शम्भु द्वारा भस्मीकृत कामदेव को जन्म दिया।[४] इस काम ने शम्बर का वध करके रति को प्राप्त किया। यह रति मायावती के नाम से रति-छायाभूता शम्बर-सदन में निवास करती थी।

घटना यों हुई कि अभी रुक्मिणी-पुत्र को जन्म लिए केवल सात दिन ही बीते थे कि अपुत्रक दैत्येश्वर शम्बर ने उसे अपहृत कर लिया। मायावती इस बालक को प्राप्त कर अति स्नेह से उसका लालन-पालन करने लगी। एक दिन सरस्वती ने बताया कि शिव कोपानल दग्ध तुम्हारा पति काम ही है यह शिशु इसे रुक्मिणी के सूतिका-गृह से अपहृत कर शम्बर ने तुम्हें प्रदान किया है। सदन में पलते हुए बाल को शम्बर ने मायावती का कौतुक शृंगार भी करते देखा। शम्बर से रुक्मिणी सुवन का युद्ध ठन गया। युद्ध में दुर्गा की कृपा से काम की रक्षा हो सकी। शिव शूल, जिसे शम्बर ने प्रयोग किया वह तो माल्य बन गया। मन्मथ ने शम्बर को ब्रह्मास्त्र द्वारा पराजित कर मारा। रुक्मिणी-सुवन पत्नी सहित द्वारका पधारे।[५] इस प्रसंग में यद्यपि शम्बर भवन में काम के निवास की अवधि नहीं बतायी गयी है, तथापि कई वर्ष लगने का अनुमान होता है।

कृष्ण ने रुक्मिणी के अतिरिक्त कालिन्दी, सत्यभामा, नाग्निजिती, सती, जाम्बवती और लक्ष्मणा से भी विवाह किया। इनसे दश-दश पुत्र और एक-एक कन्याएँ उत्पन्न हुईं।[६] दैत्य नरक और मुर का भी बध किया। वहाँ सोलह सहस्र कन्याओं को देखा, जिनमें कुछ तो सौ से अधिक वर्षों की थीं किन्तु वे सुस्थिर-यौवना थीं।[७]

रम्य द्वारका पुरी में अपने त्रिकोटि शिष्यों के साथ दुर्वासा मुनि पहुँचे। उन्हें मुक्ता-माणिक्य-हीरक और रत्न आदि उपहारों के साथ बसुदेव की पालिता यशोदाजात-सुता एकानंशा को वसुदेव आदि ने दुर्वासा से पाणिगृहीत कर दिया। दुर्वासा ने श्री कृष्ण की जो प्रार्थना की है वह तीन पदों में है जिनमें प्रथम गद्य[८] तथा दो अनुष्टुप हैं। यहाँ गद्यप्रयोग का द्वितीय उदाहरण है। श्री कृष्ण ने दुर्वासा को शिवांश कहा है।[९]

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।११०।१७ २. वही ४, २।११०।३७ ३. वही ४, २।१११ अ०
४. वही ४, २।११२।८ ५. वही ४, २।११२।२२-३० ६. वही ४, २।११२।३३-३५
७. वही ४, २।११२।३६-३७ ८. वही ४, २।११२।५० ९. वही ४, २ ११२।५२

मुनि-दुर्वासा यद्यपि अपनी पत्नी को छोड़ कर हिमालय तप करने पहुँच गये किन्तु पार्वती ने अनपत्या भार्या को छोड़ कर तप करना नरक प्रदायी बताया।[१]

न मोक्ष स्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम् ।
अभिशापेन भार्याया नरकं च परत्र च ॥[२]

पार्वती ने एकानंशा को अपना ही अंश बताया है।[३] परिणाम यह हुआ कि मुनि दुर्वासा कृष्ण-चरण का स्मरण करते-करते पुनः द्वारका गये और एकानंशा के भवन में पहुँच कर सुखपूर्वक रहने लगे।[४]

इसके पश्चात् श्री कृष्ण ने हस्तिनापुर जाकर युधिष्ठिर आदि से भेंट किया। तदनन्तर उपाय से जरासन्ध एवं शाल्व का वध किया। राजसूय यज्ञ कराया। उस यज्ञ में शिशुपाल और दन्तवक्त्र का वध किया। इन कथाओं की चर्चा मात्र है विस्तार नहीं।

शिशुपाल ने श्री कृष्ण की प्रार्थना करते हुए अपने को द्वारपाल बताया है। ब्रह्म-शाप के कारण स्वर्ग का द्वारपाल ही शिशुपाल हुआ। यहाँ स्पष्ट नहीं है कि जय और विजय में से कौन द्वारपाल शिशुपाल कहलाया।

गुरुमाता के पुत्रों को श्री कृष्ण ने लाकर दिया। यह सुन कर देवकी ने भी अपने मृत पुत्रों की याचना की तो श्री कृष्ण ने उन्हें लाकर दे दिया।[५]

कृष्ण ने सुदामा के पृथुक-कणों को खाकर उनकी दरिद्रता का विनाश किया[६] और शक्र के दर्प को चूर्ण कर पारिजात का अपहरण किया। सत्या से पुण्यक-व्रत कराया।[७] अर्जुन को गीतोपदेश प्रदान किया।[८] रैवत पर्वत पर रत्न-मन्दिर में गणेश का पूजन श्री कृष्ण ने किया।[९] साम्ब के कुष्ठ रोग निवारण के लिए सूर्य की पूजा करते हुए वर्ष भर हवन चलता रहा, अन्त में सूर्य ने अपने आशीष से उन्हें निरोग कर दिया।[१०]

कृष्ण के पुत्र महाबल प्रद्युम्न बलिष्ठता में प्रसिद्ध थे। प्रद्युम्न-पुत्र अनिरुद्ध ने, जो कि विधाता के अंश थे, स्वप्न में एक युवती को देखा। यह बाण-पुत्री ऊषा थी। स्वप्न में ही हुई वार्ता से ऊषा के सौन्दर्य पर प्रमुग्ध होकर अनिरुद्ध व्याकुल हो गये। श्री कृष्ण ने उनकी स्थिति को जान कर परिवार वालों को बतला दिया। साथ ही साथ बाण-पुत्री को भी स्वप्न में अनिरुद्ध दिखायी पड़े। ऊषा की विह्वलता

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।११३।५-८ २. वही ४, २।११३।७ ३. वही ४, २।११३।६
४. वही ४, २।११३।३३, ३४ ५. वही ४, २।११३।३६
६. वही ४, २।११३।४०-४३ ७. वही ४, २।११३।४४
८. वही ४, २।११३।४६ ९. वही ४,२।११३।५२, ५३ १०. वही ४,२।११३।६०-६१

से सहानुभूति रखकर चित्रलेखा ने अनिरुद्ध को निद्रित स्थिति में ही शयन-तल्प से अपहृत कर लिया। अब अनिरुद्ध वाण-पुत्री के भवन में सखियों के मध्य अवस्थित हो गये। अनिरुद्ध चौंके तो भी क्या करते। भवन में ही रहते हुए अनिरुद्ध को बाण जान न सका। किन्तु ऊषा गर्भिणी हो गयी तो रक्षकों ने चित्रलेखा द्वारा आनीत कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध की उसके गृह में स्थिति और दौहित्र अथवा दौहित्री की सम्भावना की बात कही।[१] महादेव पार्वती गणेश और स्कन्द ने वाणासुर को समझाया भी[२] कि कृष्ण-पौत्र अथवा कृष्ण से युद्ध करना उचित नहीं किन्तु सन्धि का विचार बाण को अच्छा न लगा।[३]

वाण अनिरुद्ध से युद्ध करने का निश्चय कर उनसे संग्राम करने डट गया। अनिरुद्ध को ऊषा ने स्वयं रथ प्रदान किया।[४] वाण ने श्री कृष्ण को बहुत कुछ बुरा-भला सुनाया। अनिरुद्ध ने वाण की एक-एक बात का उत्तर दिया। वास्तव में यह प्रश्न एवं उत्तर कृष्ण भक्तों के कण्ठस्थ करने योग्य है।[५]

पंचपतिका होते हुए भी द्रौपदी कैसे सती है तथा अनिरुद्ध की अम्बा रति का अपहरण कैसे हुआ? इन दो प्रश्नों का भी उत्तर सविस्तार एक ही कथा एवं अध्याय में दिया गया है।[६]

कथा इस प्रकार है। पंचवटी में सीता और लक्ष्मण के साथ रघुनाथ एक समय सरोवर में स्नान करके बैठे थे, उसी समय अग्निदेव ब्राह्मण रूप में यह जानने के लिए कि वह कैसा है लक्ष्मण जो कि चौदह वर्षों तक निद्रा एवं भोजन का परित्याग कर रावण के पुत्र मेघनाद का विजेता होगा, आये।

निद्रां न याति नो भुङ्क्ते वर्षाणां च चतुर्दश।
य एवं पुरुषो योगी तद्वध्यो रावणात्मजः॥[७]

अग्नि ने श्री राम को बताया कि एक सप्ताह के अन्दर ही दुष्ट रावण जानकी का अपहरण कर लेगा। अतः इनका संगोपन करो। राम ने अग्नि को जानकर सीता को उन्हें समर्पित किया तथा सीता की छाया को वहीं रख लिया। अन्त में लंका विजय के पश्चात् सीता को अग्नि परीक्षा के अवसर पर अग्नि ने छाया सीता को रख कर वास्तविकी सीता को राम को समर्पित कर दिया।

वह छाया व्यर्थ होकर विलाप करने लगी। दिव्य सौ वर्ष तक नारायण सरोवर पर उसने तप किया। तप से प्रसन्न होकर शिव आये। शिव को देखकर पंच बार 'पतिं देहि' उसने कहा। चौदह इन्द्रों में से पंच पाण्डव पाँच इन्द्र थे। और यह

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।११४।१ २. वही ४, २।११५।४-७
३. वही ४, २।११५।१४-३३ ४. वही ४, २।११५।३४-४२
५. ४, २।११५।५८-११६ ६. वही ४, २।११७ अ० ७. वही ४. २।११६।८

छाया ही यज्ञ कुण्ड से प्रकट हुई द्रौपदी कहलायी। पाँचों इन्द्र पाण्डव के रूप में द्रौपदी के पति हुए।

द्वितीय कथा है कि शिव कोपानल में कामदेव भस्म हुए और कामपत्नी रति को भी शिव ने शाप दिया कि वह दैत्यग्रस्त हो जायेगी। इस प्रकार इन्द्र सहित सभी देवों को जीत कर शम्बर उसका अपहरण कर लेगा।[१] यह भी आशीष शिव ने रति को दिया कि उसका सतीत्व नहीं नष्ट होगा। उपाय बताया कि छाया देकर जब तक उसका पति नहीं है वह अपने घर रहे।

सब कुछ कहते सुनते पारस्परिक युद्ध अनिरुद्ध और वाण सेनापति सुभद्र के मध्य छिड़ ही गया। वाण शिव का भक्त था अतः शिव ने स्वयं अपने पुत्र गणेश को वाण की रक्षा के लिए कर दिया।[२]

कृष्ण को भी पता लग गया। अतः बहुत बड़ी सेना लेकर शोणितपुर को घेर लिया। पार्वती और शिव ने भयंकर युद्ध के पश्चात् वाण को युद्ध से विरत होकर ऊषा को समर्पित करने की बात कही किन्तु वह न माना। बलि भी पाताल से आये किन्तु उनके भी समझाने का कोई प्रभाव न पड़ा। भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में कृष्ण ने वाण पर चक्र प्रक्षेपण किया।[३] वाण ने श्रीकृष्ण शरण ग्रहण कर लिया। अपनी पुत्री को अनिरुद्ध के लिए श्री कृष्ण को दे दिया।[४] भगवान ने वाण को क्षमा करते हुए उपहारों सहित नवोढा कन्या को ग्रहण किया। वाण की शुभगति हो गयी।

राजा शृगाल वासुदेव

सुधर्मा द्वारका में निवास करते हुए श्री कृष्ण ने एक ब्राह्मण से शृगाल वासुदेव का अहंकार सुना। श्री कृष्ण ने ब्राह्मण का सम्मान करते हुए द्वितीय दिन प्रातः ही उसके वधार्थ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचते ही उसने अपने को सुभद्र नामक गोलोकवासी शापभ्रष्ट सप्तम द्वार का[५] द्वारपाल बताया और उद्धारार्थ शिरश्छेदन की प्रार्थना भी किया। श्री कृष्ण ने पूर्व प्रहार के लिए कहा। शृगाल ने दश वाण कृष्ण पर प्रक्षिप्त किया, अन्य अस्त्र भी फेंका सब निष्फल रहे। अन्त में कृष्ण ने उसका उद्धार किया। श्री कृष्ण उसके प्रेम में रोदन भी किए। उनके नेत्राश्रु विन्दु से सरोवर नामक तीर्थ प्रकट हुआ[६] जो इस घटना का स्मारक है।

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।११६।२८,२६ २. वही ४, २।११७।१६ ३. वही ४, २।११८।६०
४. वही ४, २।११८।३० ५. वही ४, २।१२१।४२ ६. ४, वही २।१२१।४५

स्यमन्तक-मणि-कथा

नारद ने नारायण से कहा कि आपने श्री कृष्ण के सभी विवाहों का प्रसंग तो सुनाया किन्तु स्यमन्तक-मणि की कथा नहीं कही। अतः कृपया कहिए। नारायण ने प्रसंग का प्रारम्भ करते हुए बताया कि भाद्र शुक्ल चतुर्थी में ही चन्द्र ने गुरुपत्नी तारा का अपहरण किया था जिसे गुरु ने पुनः ग्रहण कर लिया था। किन्तु गुरु ने तारा की भर्त्सना भी की थी। अतः लज्जित तारा ने चन्द्र को शाप दिया था कि जो देहधारी इस तिथि में शशि को देखेगा वह कलंकी होगा और शशि तो सदा कलंकी रहेगा।[1] इस शाप के परिहार के लिए चन्द्र ने नारायण सरोवर पर तप किया अतः भगवान ने चन्द्र से कहा कि उक्त चतुर्थी को जो व्यक्ति उनका दर्शन करेगा वह कलंक उसी दर्शन-कर्ता पर जा पड़ेगा।

संयोग की बात कि श्री कृष्ण ने भी इस चन्द्र का दर्शन किया और सत्राजित, जो कि भास्कर-भक्त था, उसे सूर्य ने स्यमन्तक मणि प्रदान की थी जो कि आठ-भार नित्य स्वर्ण प्रदान करती थी। सत्राजित ने निजात्मजा सत्यभामा को श्री कृष्ण के साथ परिणीत किया था अतः यौतुक स्वरूप इस मणि को प्रदान करना चाहता था किन्तु उसके भाई प्रसेन ने मना कर दिया। उसी मणि को धारण कर वह एक दिन वाराणसी जा रहा था कि मार्ग में सिंह ने, जो कि कलिंग राज के रूप में ब्राह्मण द्वारा शाप ग्रस्त होकर पशुयोनि में था, प्रसेन को मार दिया। मणि सिंह को प्राप्त हो गयी। तत्पश्चात् उस सिंह को बली जाम्बवान भल्लूक ने मार दिया और स्यमन्तक को अपने पास रखा। इस स्यमन्तक मणि को भल्लूक के पास देख कर द्वारिका वालों ने श्री कृष्ण से कहा। अतः श्री कृष्ण ने उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास किया। इधर श्री कृष्ण पर यह लांछन मढ़ा जा रहा था। अतः उससे निवृत्त होना भी आवश्यक था। श्री कृष्ण ने मृत प्रसेनजित और सिंह को देखा। पुनः चले तो एक भल्लूक भवन में वह मणि दिखायी पड़ी। वहाँ धात्री भल्लूक शिशु को मणि से बहला रही थी। श्री कृष्ण ने मणि ले लिया तो धात्री ने क्रोधपूर्वक जाम्बवान् को बताया। जाम्बवान ने श्री कृष्ण को कन्या जाम्बवती और यौतुक स्वरूप उस मणि को भी प्रदान कर दिया। और श्री कृष्ण उस मणि को ला कर द्वारिका में सबको दिखा-बता कर निष्कलंक हुए।

राधा द्वारा गणेश-पूजा

सिद्धाश्रम में राधा ने गणेश पूजा की। यहाँ अमूल्य रत्न निर्मित गणेश प्रतिमा की पूजा वैशाखी पूर्णिमा में सभी करते हैं।[2] यह पूजा राधा ने श्री कृष्ण-प्रीति-कामना से की थी।[3] यहाँ उन्होंने 'ॐ गं गों गणपतये विघ्न विनाशिने स्वाहा' मंत्र का एक

१. ब्रह्म वै० ४, २।१२२।५ २. वही ४, २।१२३।१२-१९ ३. वही ४, २।१२३।२२

सहस्र जप किया था।[1] अपनी स्तुति से प्रसन्न गणेश ने राधा की भी प्रशंसा की। वहाँ पार्वती भी उपस्थित हुई। पार्वती ने रहस्यात्मक विधि से कृष्ण राधा का मिलन करा दिया। इसी मिलन में श्री कृष्ण ने राधा को भी परम ज्ञान का स्मरण दिलाया जो सौ वर्ष वियोग के पश्चात् होना था। राधा को स्मरण दिलाने के प्रसंग में उनकी बहिन सुधामुखी का भी नाम आया है।[2]

इस आश्रम पर सबके समक्ष वसुदेव को वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए शिव ने ज्ञान प्रदान किया। श्री कृष्ण आदि भी पूजन करने आये।

गणेश पूजन के पश्चात् श्री कृष्ण ने रुक्मिणी आदि को द्वारिका भेज दिया। किन्तु इस पूजन में राधा तथा अन्य गोपियाँ सम्मिलित नहीं थीं। राधा ने पूजन सर्वप्रथम किया था। तदनन्तर कुछ काल पश्चात् द्वारिका से जाकर श्री कृष्ण आदि ने गणेश पूजन किया था।

रुक्मिणी आदि के चले जाने पर नन्द यशोदा के साथ श्री कृष्ण सिद्धाश्रम से वृन्दावन लौट आये। उन्होंने यहाँ गोपियों से भेंट किया। श्री कृष्ण ने मरणासन्न राधा को स्वस्थ किया। उन्होंने राधा से क्षमा भी माँगी।[3]

एक बार श्री कृष्ण ने सबसे पुनः भेंट-मिलकर वृन्दावन को सुखी कर दिया।[4] भगवान ने नन्द को पुनः उपसंहारात्मक उपदेश किया। इस प्रसंग में यह बताया है कि कलियुग में उनकी पूजा दस हजार वर्षों तक होगी।[5] अन्त में कृष्ण की प्रेरणा से एक रथ आया। गोप गोपी गण अपने नश्वर शरीरों को यहीं छोड़ कर[6] सभी श्री कृष्ण के साथ गोलोक सिधार गये।

गोकुल वासियों का मोक्ष हो चुका। केवल श्रीकृष्ण पाँच गोपालों के साथ भाण्डीर वन में वट के नीचे बैठे थे। सारा गोकुल उदास था।[7] श्री कृष्ण ने उसे शोभित कर दिया। ब्रह्मा आदि देवों ने श्री कृष्ण से प्रार्थना की। १२५ (सवा सौ) वर्षों तक पृथ्वी पर रह कर इसे विरह व्याकुल करके श्री कृष्ण जा रहे थे।[8] महादेव अनन्त आदि देवों ने भी श्री कृष्ण की प्रार्थना की। सभी गोपाल गोलोक सिधार गये। ब्रह्म शाप के कारण द्वारका श्रीहीन हो गयी।[9] यादवगण एक युद्ध में विनष्ट हो गये। देवियाँ (पत्नियाँ) चितारूढ़ हो गयीं। अर्जुन आदि पंच पाण्डव पत्नी सहित स्वर्ग सिधार गये। व्याध द्वारा श्री कृष्ण के चरण में आघात कर दिया गया। उस व्याध को भी श्री कृष्ण ने अभयदान दिया।

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।१२३।५६
२. वही ४, २।१२४।६५
३. वही ४, २।१२३।८२-१०३
४. वही ४, २।१२७।४४-४५
५. ८।४ वही ४, २।१२८।२८
६. वही ४, २।१२८।४४
७. वही ४, २।१२९।१-२
८. वही ४, २।१२९।१९
९. वही ४, २।१२९।३१

यहाँ श्री कृष्ण के परलोक गमन प्रसंग में दो बातें कही गयी लगती हैं। एक तो रथ द्वारा श्री कृष्ण ने सबको गोलोक भेज कर स्वयं प्रस्थान किया। दूसरे व्याधास्त्र से परलोक गमन किया। किन्तु गोकुल को तो गोलोक भेज दिया। बेचारी द्वारिका तो पड़ी रही। अतः जो देवी जिसकी अंश थी उसमें वह प्रविष्ट हो गयीं।

या या देव्यश्च यासां चाप्यंश रूपाश्च भूतले।
तस्यां तस्यां प्रविविशुस्ता एव च पृथक् पृथक् ॥[1]

इसी प्रकार साम्ब आदि भी अपने अंशों में सन्निविष्ट हो गये। रुक्मिणी के भवन को छोड़ कर समस्त द्वारकापुरी समुद्र में समा गयी।[2] श्री कृष्ण का एक चतुर्भुज रूप, जिसका नाम नारायण भी है, बैकुण्ठ लोक का निवासी हुआ। वहाँ पहुँच कर बैकुण्ठनाथ ने वंशी रव किया।[3] इस वंशी रव से सभी मुग्ध हो गये। केवल पार्वती स्वस्थ थीं। उन्होंने गोलोक में स्थित राधा को स्वयं का रूप बताया तथा आग्रह किया कि वे कृष्ण राधा को शान्ति के लिए गोलोक में शीघ्र उन्हें दर्शन दें।[4] कृष्ण ने गोलोक के वृन्दावनीय रास मण्डल में प्रविष्ट होकर सबको प्रसन्न किया। राधा के साथ रास मंडल का भ्रमण किया। इस प्रकार श्री कृष्ण का गोलोकारोहण वर्णित है।[5]

नारद-विवाह

नारद ने नारायण से अन्त में अब क्या उन्हें करना है यह जानना चाहा तो नारायण ने उत्तर दिया कि जब वे उपवर्हण नामक गन्धर्व थे तब पचास कामिनियों के पति थे। उन्हीं कामिनियों में से एक सृंजय की कन्या हुई जो स्वर्णष्ठीवी की सगी बहन थी। उसके साथ ही उनका विवाह शंकर की आज्ञा है।[6] पिता की भी इच्छा थी। ब्रह्मा देवगणों को लेकर नारद सहित सृंजय के गृह पधारे। सृंजय ने अपनी कन्या को सहर्ष प्रदान कर दिया। बड़े प्रेम से कन्या की विदाई की। नारद सुखपूर्वक गृहस्थ जीवन बिताने लगे। अन्त में सनत्कुमार ने नारद को बोध दिया।[7] नारद पुनः गृहस्थ जीवन का त्याग करके कृतमाला नदी के तट पर तप करने लगे। वहाँ शंकर का दर्शन किया। उन्होंने भी कृष्णभक्ति का उपदेश दिया।[8]

वह्नि सुवर्णोत्पत्ति

शौनक ने सूत से वह्नि और सुवर्ण की उत्पत्ति की व्याख्या पूछा तो सूत ने बताया कि एक बार सृष्टि काल में ब्रह्मादि देव विष्णु दर्शनार्थ गये। वहाँ नाचती

---

१. ब्रह्म० वै० ४,२।१२९।४२ २. वही ४,२।१२९।४४ ३. वही ४,२।१२९।७८-८२
४. वही ४,२।१२९।८६-८७ ५. वही ४,२।१२९।१११
६. वही ४, २।१३०।३-५ ७. वही ४२।१३०।३८-४२ ८. ४, २।१३०।५८

गाती रमणियों को देख कर ब्रह्मा कामुक हो गये और उन्हें वीर्यपात हो गया। संगीत समाप्त होने पर उसे क्षीरोद में गिरा दिया। वह पुरुष रूप में उत्थित हो गया। जलदेव वरुण ने उस बालक को ग्रहण करना चाहा तो बालक ने ब्रह्मा को निज हाथों से जकड़ लिया। ब्रह्मा ने हाथों से खींच कर वरुण को ऐसा झटका देकर पटका कि वे मूर्च्छित हो गये। शिव ने वरुण को मूर्च्छाहीन किया। वरुण का कहना था कि बालक जल में उत्पन्न हुआ अतः उनका पुत्र है। ब्रह्मा का कहना था कि बालक उनकी शरण में है अतः वे उसका परित्याग कैसे करें। अन्त में शिव ने निर्णय दिया कि वह ब्रह्मा का पुत्र और वरुण का शिष्य है। शिष्य और सुत समान होते हैं। विष्णु ने उसे दाहिका शक्ति प्रदान किया। इस प्रकार यह बालक वह्निदेव हुआ।[१]

स्वर्ग संसद में एक बार अग्नि का रम्भाओं का नृत्य-गीत देखकर वीर्य-स्खलन हो गया। वही वीर्य हिरण्य पुंज हो गया। अग्नि की इच्छा से वही बढ़ कर सुमेरु हो गया। सुवर्ण को अतः हिरण्य रेता कहा जाता है।[२]

एक सौ बत्तीसवें अध्याय में ब्रह्म वैवर्त की पूर्ण सूची दी हुई है। अन्तिम एक सौ तैंतीसवें अध्याय में ब्रह्मवैवर्त एवं अन्य सप्तदश पुराणों की सूची दी गयी है तथा पुराण की दान-विधि बतायी गयी है।



१. वही, ४, २।१३१।२९-३२

२. वही ४, २।१३१।३७-३८

अध्याय १३

राधा-तत्व

अष्टादश महापुराणों की सुदीर्घ परम्परा में ब्रह्मवैवर्त ही एक मात्र ऐसा पुराण है, जिसने राधा के पवित्र-चरित्र से कृष्ण को एकीकृत करते हुए 'राधेश्याम' को जिह्वाग्र पर स्थित कर रसास्वादन स्वर प्रसारित किया। ब्रह्मवैवर्त की दृष्टि में राधा ही ईश्वरी मूल-प्रकृति हैं।[1] राधा शब्द की व्युत्पत्ति सामवेद में बतायी गयी है ऐसा ब्रह्मवैवर्त का कथन[2] है। किन्तु सामवेद में राधा शब्द का प्रयोग तो मिलता है, तथापि राधा शब्द की व्युत्पत्ति उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अंश लुप्त हो गया हो अथवा इस राधा शब्द पर किये गये भाषा या टीका-टिप्पणी को भी उसी का अंग मान कर उसे भी वेद कह दिया गया हो। सामवेद में कई मन्त्रों में राध, राधस्, राधा का प्रयोग किया गया है। पूर्वार्चिक द्वितीय प्रपाठक द्वितीयोऽर्थं तृतीय दशति के प्रथम मन्त्र में 'राधानां पते' का प्रयोग इन्द्र के लिए किया गया है।[3] इसी प्रकार' 'कृणुष्व राधो अद्रिवः' (पूर्व० प्रपाठक ३, द्वितीयोऽर्थ प्रथमदशति प्रथम मन्त्र) 'आशिषे राधसे महे' (पूर्वार्चिक, तृतीय प्रपाठक, द्वितीय दशति ५ म मन्त्र) 'ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतु तुंरनु' (पूर्वार्चिक, तृतीय प्रपाठक, द्वितीयोऽर्थं, चतुर्थदशति ७म मन्त्र) 'त्वं नश्चित्र उत्या वसो राधांसि चोदय'। (उत्तरार्चिक अष्टम प्रपाठक, प्रथमोऽर्थं, तृतीय मन्त्र, प्रथमांशः) 'स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥' (उत्तरार्चिक सप्तम प्रपाठक, तृतीयोऽर्थं, तृतीयदशति, ४थं मन्त्र) इस प्रकार सामवेद में अन्यत्र भी अनेकों बार राधस् का प्रयोग किया गया है। 'त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता।' (उत्तरार्चिक पंचम प्रपाठक द्वितीयोऽर्थं दशमदशति ४थं मन्त्र) राधा की व्याख्या सामवेदीय कौथुमी शाखा में है, ऐसा भी ब्रह्म वैवर्तीय कथन है।[4] राधसा का प्रयोग श्रीमद्भागवत में है।[5]

नक्षत्रों में विशाखा को राधा और वैशाख को राध बताया गया है। 'राधा विशाखा'—अमर कोष—दिग्वर्ग, श्लोक २२ तथा 'वैशाख माधवी राधो' (वही काल वर्ग श्लोक १६) राधा का विशाखा के स्थान पर प्रयोग अधिक प्रसिद्ध रहा। इसका पर्याप्त प्रमाण विशाखा के पश्चात् पड़ने वाला नक्षत्र अनुराधा है, जिसका नाम

---

१. ब्रह्म वै० ३।४५।२३ २. वही ४।१३।१०२ ३. सामवेद-बरेली—७६ पृ०
४. ब्रह्म वै० ४।५२।३७ ५. श्रीमद्भा० २।४।१४
नमोनमस्ते स्त्वृषभाय सात्वतां, विदूर काष्ठाय गुहः कुयोगिनाम्
निरस्त साम्याति शयेन राधसा, स्वाधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः।
राध धातु से सर्वधातुभ्योऽसुन् से असुन् होकर राधस् की निष्पत्ति हुई है।

ही राधा के आधार पर रखा गया। गोपियों में विशाखा नाम की गोपी भी प्रसिद्ध है। श्रीमद्‌भागवत में विशाखा नाम ही दिया है किन्तु उक्त पुराण में राधा नाम का नितान्त अभाव राधा और विशाखा के सम्वन्ध-सुस्थिरीकरण में भ्रम उत्पन्न कर देता है।

काल-गणना अथवा नक्षत्र-सम्बन्धी विचार करने पर एक सहज साध्य कल्पना का भी उदय होता है। ऐसा सम्भव हो सकता है कि कथ्यमान तथ्य भी इसके अन्तर्हित हो। राधा को वृषभानु-पुत्री कहा जाता है। वृष राशि स्थित भानु की पूर्णिमा विशाखा नक्षत्र में होती है। इस प्रकार वृषभानु से राधा अथवा विशाखा की पूर्णिमा का प्राकट्य स्वयं सिद्ध है। इसी राधा की पूर्णिमा के कारण वैशाख राध-मास भी है। वैशाख का पर्याय माधव भी है जो कृष्ण का भी बोधक है। इस प्रकार वृष भानु विशाखा, राधा, माधव, पूर्णिमा तथा वैशाख का सान्निध्य स्थापित हो जाता है।

राधा शब्द की निष्पत्ति संसिद्धि अर्थ बोधक राध् धातु से है। राध् से अच् और टाप् प्रत्यय करने पर राधा शब्द निष्पन्न होता है। राधा शब्द आमलकी, विष्णु-क्रान्ता, विद्युत, गोपी विशेष, विशाखा नक्षत्र एवं अधिरथ सूत की पत्नी का बोधक है।[१] शब्द स्तोम महानिधि में राधा से विशाखा का सम्बन्ध स्मरण किया गया है (विशाखा नक्षत्रे रिरंसया रमणी देहत्वेनाविभूते गोलोकस्थे परमेश्वराद्धाङ्ग-स्वरूपे-शक्तिभेदे तत्रैव श्रीदामशापात् वृन्दावने जातायां वृषभानु सुतायां प्रधान गोपिकायाम्।)

राधा के निर्वचन में बताया गया है कि महेश्वरी राधा ने कान्त कृष्ण को रमणेच्छु समझ कर उन्हें धारण कर लिया। अतः वह देवी राधा[२] हुई। रास में उत्पन्न होने तथा धावन करने के कारण राधा अभिधान हुआ।[३] राधा का अर्थ संसिद्धा है। रा दान-वाचक है, वह स्वयं निर्वाणदात्री है अतः राधा नाम से प्रसिद्ध है।[४] रास में प्रकट होने के कारण 'रा', तथा शीघ्र ही हरि का आलिंगन करते हुए धारण करने के कारण 'धा' अतः वह राधा नाम से अभिख्यात हुई।[५]

सर्व-कार्य-सिद्धि में समर्थ होने के कारण राधा को शक्ति कहा जाता है।[६] सर्व-मंगला, महालक्ष्मी, सरस्वती, वेदमातासावित्री, गायत्री, दुर्गा, आद्या, प्रकृति, नन्दा, सती, पार्वती, वसुन्धरा, तुलसी, गंगा एवं सभी स्त्रियाँ ये सभी राधा की कला से हैं।[७]

---

१. शब्दकल्पद्रुम।

२. ब्रह्म वै० २।४८।३७ ३. वही २।४८।३९ ४. वही ४।१७।२२२

५. वही ४।१७।२२३ ६. वही ४।५२।७५ ७. वही ४।५२।७५-८१

राधा के प्रभाव को व्यक्त करते हुए राधा शब्द के निर्वचन में बताया गया है कि 'रा' शब्द उस महाविष्णु का बोधक है, जिसके एक-एक लोम में विभिन्न विश्व निवास करते हैं, 'धा' शब्द धात्री वा मातृ वाचक है अत: महाविष्णु एवं विश्वों की भी धात्री होने के कारण वह राधा है।[1]

ब्रह्मवैवर्त का चरम साध्य राधा-कृष्ण की भक्ति ही है। कुछ विद्वान् राधा-कृष्ण-भक्ति का उदय आलवारों से मानते हैं।[2] कृष्ण की प्रेमिकाओं में तमिल ग्रन्थों में नप्पिन्ने का विशिष्ट स्थान बताया गया है। 'प्रबन्धम्' में ही नहीं, बल्कि उसके पूर्व के चिन्तामणि, शिलप्पधिकारम्, मणिमेखले आदि ग्रन्थों में कृष्ण की प्रमुख प्रेमिका 'नप्पिन्ने' का उल्लेख है। आलवारों ने भी नप्पिन्ने का वर्णन कृष्ण की प्रमुख प्रेमिका गोपी के रूप में सर्वत्र किया है। कृष्ण-नप्पिन्ने की केलि-क्रीडाओं को सूचित करने वाले अनेक प्रसंगों का वर्णन 'प्रबन्धम्' में है। तमिल-कथाओं के अनुसार वह लक्ष्मी का अवतार है। कृष्ण ने तत्कालीन प्रथा के अनुसार सात वृषभों को वश में कर कन्या-शुल्क के रूप में नप्पिन्ने को प्राप्त किया था। नप्पिन्ने के अपरिमित सौन्दर्य का वर्णन अनेक स्थलों में किया गया है। यही नप्पिन्ने परवर्ती संस्कृत साहित्य में तथा उनके माध्यम से मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति साहित्य में राधा नाम धारण करती है। आलवारों का काल छठीं से नवीं शती तक है। वी० आर० आर० दीक्षितार ने भी अपने 'इण्डियन कल्चर' में इसी मत का समर्थन किया है।[3]

तमिल की 'शिलप्पधिकारम्' (दूसरी शती) रचना में उल्लेख मिलता है कि उस समय कन्नन (कृष्ण) के मन्दिरों में कन्नन-नप्पिन्ने की युगल मूर्ति स्थापित होती थी। तमिल-साहित्य में, जो कि आलवारों से पूर्व ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में रचित हुआ, कन्नन-नप्पिन्ने की प्रेम लीलाओं का वर्णन मिलता है। हाल सतसई में स्पष्टत: राधा का वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोक परम्परा ने कृष्ण की विशेष प्रिया के रूप में राधा को ईसा के आरम्भ से ही ग्रहण कर लिया था। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि राधा गोपाल की तरह आभीरों की कुलदेवी या प्रेमदेवी रही होगी।[4]

आठवीं शती की संस्कृत रचनाओं में तो राधा कृष्ण के वर्णनों की भरमार दिखायी पड़ती है। भट्टनारायण कृत वेणीसंहार के नान्दी श्लोक में राधा का वर्णन

---

१. ब्रह्म वै० ४।११।५७

२. वैष्णव भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, डा० मलिक मुहम्मद-१९७१ संस्करण, राजपाल प्रकाशन, पृ० २००।

३. We venture to conjecture that Nappinnai is the Tamil name of Radha, Vol. IV (37-38). pp. 267-70:

४. मध्यकालीन कृष्णकाव्य (कृष्णकाव्य के आलम्बन और भक्ति), पृ० ९।

है (आठवीं शती)। वाक्पति राजकृत गउडवहो में मंगलाचरण में राधा का वर्णन है (आठवीं शती)। ध्वन्यालोक और कवीन्द्र वचन में भी राधा कृष्ण प्रेम सम्बन्धी श्लोक हैं। दसवीं शती के मालवाधीश वाक्पति मंजु परमार के एक अभिलेख में राधा-विरहातुर मुरारि का वर्णन किया गया है।[१] जयदेव के गीत गोविन्द के एक शती पूर्व क्षेमेन्द्र ने दशावतार चरित में सम्पूर्ण कृष्ण चरित को मार्मिक-काव्यात्मक शैली में प्रकट किया है।

कृष्ण की सखी के रूप में राधा का ऐतिहासिक उल्लेख अमोघ वर्म राजा की ६८० सं० की प्रशस्तियों में मिलता है।[२]

काव्य साहित्य में सर्वप्रथम आर्यासप्तशती में राधा का वृत्तान्त मिलता है। इसकी रचना ईसा की प्रथम शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी तक हुई मानी जाती है।[३]

राधा कृष्ण की लीलाओं को उत्कीर्ण करने का प्रथम प्रयास चतुर्थ शताब्दी में मन्दसौर मन्दिरों में हुआ। डा० सुनीति कुमार का मत है कि पहाड़ पुर (बंगाल) से प्राप्त एक मूर्ति पर राधा का चित्र एक गोपी के रूप में उत्कीर्ण है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पाँचवीं शताब्दी तक साहित्येतर क्षेत्र में भी राधा ग्राह्य हो चुकी थीं।

श्रीमद्भागवत में राधा का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता तो भी श्री सनातन गोस्वामी ने अपनी वैष्णव तोषिणी नामक उक्त पुराण की टीका में 'अनया राधितो' पद की व्याख्या में विशिष्ट गोपी को राधा सिद्ध किया है।

अनयाराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः,
यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतोयामनयद्रह।[४]

विश्वनाथ चक्रवर्ती एवं कृष्ण दास कविराज ने भी श्रीसनातन गोस्वामी का अनुसरण किया है। पश्चिम के विद्वान फर्कुहर ने भी भागवत के इस अर्थ की पुष्टि की है। किन्तु प्रो० विल्सन और मोनियर विलियम ने इसका विरोध किया है। प्रो० विल्सन राधाभक्ति को ब्रह्मवैवर्त की सूझ मानते हैं।

राधा के सम्बन्ध में भारतीय अथवा विदेशी विद्वानों के जो विचार अब तक प्रस्तुत किये गये हैं उनमें अनुमान ही आधार है। यद्यपि ये अनुमान नितान्त निराधार तो नहीं किन्तु उक्त प्रश्न पर विचार कर्ताओं ने इस तथ्य की उपेक्षा की है कि महाभारत

---

१. एपिग्राफिका इंडिका, २३।१०८।३
२. डा० र० श० केलकर, मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १०६
३. रास और रासान्वयी काव्य—डा० दशरथ, ना० प्र० स०, पृ० २६६
४. श्रीमद्भा० १०।३०।३८

काल से ही अष्टादश पुराग प्रसिद्ध थे ।[1] श्रीमद्भागवत की गणना महापुराणान्तर्गत भले ही विवादास्पद हो किन्तु ब्रह्मवैवर्त तो अष्टादश महापुराणों में दशम महापुराण निर्विवाद है । यहाँ इस तथ्य की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि ब्रह्मवैवर्त का वर्ण्य विषय राधा-कृष्ण चरित्र है । राधा के सम्बन्ध में विचार करने वाले विद्वानों ने पुराणों की उपेक्षा भी की है । यद्यपि यह भी सत्य है कि पुराणों में यत्र-तत्र और यदा-कदा परिवर्तन और परिवर्धन भी होते रहे हैं । आज इस सम्मिश्रण को पृथक् करना अति दुरूह है तथापि इस विशाल साहित्य में सब कुछ उपेक्षणीय ही नहीं है । वस्तुतः अन्वेषण की दिशा में पुराणों से ही कार्य प्रारम्भ होना चाहिए । क्योंकि आचार्यों ने अपने सम्प्रदायों एवं सिद्धान्तों की पुष्टि में पुराणों का आश्रय अवश्य लिया है । यही पौराणिक धारा ही सर्व-सरल-साधन है जिससे कि अपने धार्मिक-विचारों को जन-साधारण तक पहुँचा कर उसे पुष्ट किया जा सके ।

यह तो निर्विवाद है कि कृष्ण चरित्र का एक रूप ऐसा भी है, जिसमें राधा नहीं हैं । श्रीमद्भागवत, वायु, गरुड, हरिवंश, विष्णु एवं विष्णु धर्मोत्तर ब्रह्म, अग्नि पुराण, महाभारत आदि में कृष्ण-चरित्र का जो रूप मिलता है, उसमें राधा नहीं हैं । स्कन्द, नारद, देवीभागवत, पद्मपुराण, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त तथा शिव पुराणों में कृष्ण के साथ राधा सर्वत्र अवस्थित हैं । कृष्ण-पूजा का यह द्वितीय रूप है, जिसमें कृष्ण के साथ राधा अनिवार्य रूप से हैं ।

स्कन्द पुराण में वृषभानु एवं उनकी आत्मजा राधा का नाम केवल एक बार आया है ।

(१) वृषभानु-सुता कान्त विहारे कीर्तन-प्रिया ।
साक्षादिव समावृत्ते सर्वेऽनन्यदृशोऽभवन् ।।[2]

(२) श्रीकृष्णस्य मनश्चन्द्रो राधाऽऽस्य प्रभयान्वितः ।
तद्विहारवनं गोभि मंण्डयन्रोचते सदा ।।[3]

कृष्ण-चरित्र के प्रसंगों में रास का भी कुछ विशेष वर्णन, गोपी विरह के स्मरण के अतिरिक्त नहीं है । देवगुरु वृहस्पति से बतलाते हुए कृष्ण-सखा उद्धव विरहार्ता गोपियों का नाम-स्मरण भर कर लेते हैं—

विरहार्तासु गोपीषु स्वयं नित्य विहारिणा ।
श्रीमद्भागवत सन्देशो मन्मुखेन प्रयोजितः ।[4]

---

१. पुरानिक रिकाड्'स आन हिन्दू राइट्स ऐण्ड कस्टम्स—डा० हाजरा, पृ० १६७
२. स्क० पु० वै० खा० २।३१
३. वही, भागवतमाहात्म्य ३।५
४. स्क० पु० वै० खण्ड ३।४६

भविष्य पुराण में भी श्लोक में राधा का नाम मिल जाता है। श्री कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं कि—

राधया प्रार्थितोऽहं यदा कलियुगान्तके।
समाप्य च रहः क्रीडां कल्की च भविताऽस्म्यहम् ॥[1]

नारद-पुराण में राधा कृष्ण के सम्बन्ध में युगल-सहस्र नाम एक अच्छी सामग्री है। इसमें ५०० नाम राधा के और ५०० नाम कृष्ण के हैं। इन नामों से कृष्ण-चरित्र पर पूर्ण प्रकाश पड़ जाता है।

राधा के विषय में विचार करते हुए इस तथ्य पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है कि ब्रह्मवैवर्त, शिव पुराण तथा देवी भागवत के अंशों का पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ है। देवी भागवत का नवम स्कन्ध ब्रह्मवैवर्त का प्राकृतिक खण्ड है और ब्रह्मवैवर्त के गणेश खण्ड[2] तया शिव पुराण के कुमार खण्डीय कार्तिकेय[3] चरित्र में अन्तः पाती कुछ श्लोकों को छोड़ कर पाठ ज्यों का त्यों है, भिन्न नहीं।

शंखचूड-वध की कथा तो तीनों पुराणों की वही की वही है। इतना निकट सान्निध्य होते हुए भी शिव पुराण में राधा के सम्बन्ध में केवल दो[4] अनुष्टुप् ही हैं। अतः प्रसंगवश आवश्यकतानुकूल प्रयोग किया गया है। मेरा दृढ़ विचार है कि इन्हें प्रक्षिप्तांश नहीं कहा जा सकता है।

वृषभानस्य वैश्यस्य कनिष्ठा च कलावती
भविष्यति प्रिया राधा तत्सुता द्वापरान्ततः।[5]

कलावती सुता राधा साक्षात् गोलोक-वासिनी।
गुप्तस्नेह-निबद्धा सा कृष्ण पत्नी भविष्यति ॥[6]

शिव-पुराण के इस प्रसंग से राधा, सीता आदि का अद्भुत साम्य भी सिद्ध हो जाता है। शैव एवं वैष्णव परम्परा के तादात्म्य-सम्बन्ध का उत्तम सूत्र भी है।

इस प्रसंग में कथा इस प्रकार बतायी गयी है कि ब्रह्मा के पुत्र दक्ष की साठ कन्याओं में से स्वधा नाम्नी कन्या को पितरों को प्रदान किया गया था। स्वधा से तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। ज्येष्ठा मेना, मध्यमा धन्या और कनिष्ठा कलावती नाम की थीं। एक समय ये तीनों बहनें श्वेत द्वीप में विष्णु-दर्शन हेतु गयीं। वहाँ पहुँच कर इन तीनों ने विष्णु को प्रणाम किया। उनकी आज्ञा से वहीं ये तीनों बैठीं। वहाँ महान् समाज

१. भविष्य पु० ४।५।२८ २. ब्रह्म वै०, ग० ख० १४ से १७ अध्याय तक
३. शिव पुराण, रुद्र संहिता, कुमार खण्ड, ४ अध्याय से ५ अध्याय तक
४. शिव पु०, पार्वती ख० २।३३ ॥ यह श्लोक भी राधा का ही निर्देशक है।
५. शिव पु०, रु० सं०, पा०ख० २।३० ६. वही, ४०

उपस्थित था। अल्पकालान्तर उस सभा में सनकादि कुमार मुनि भी पधारे। सभी देवों ने मुनि कुमारों को अभ्युत्थानपूर्वक प्रणाम किया किन्तु इन तीनों ने न तो उत्थान ही किया और न प्रणाम। मुनि कुमारों ने इन्हें शाप दिया कि ये तीनों नर-स्त्री हो जांय। फलतः मैना हिमालय की, धन्या जनक की और कलावती वृषभान की पत्नी बनीं। इन्हीं तीनों की पुत्रियाँ क्रमशः पार्वती, जानकी और राधा हुईं।[1] यहाँ वृषभानु को वृषभान कहा गया है।

पद्म-पुराण में राधा जन्माष्टमी व्रत का भी विधान किया गया है। यहाँ राधा का वृषभानु की यज्ञ भूमि से प्रकट होना बताया गया है।

भाद्रे मासे सिते पक्षे, अष्टमी संज्ञके तिथौ।
वृषभानोर्यज्ञभूमौ जाता सा राधिकादिवा॥[2]

पद्म-पुराण की राधा सम्बन्धी उक्तियाँ ब्रह्म वैवर्त से आगे हैं। जैसे कि ब्रह्म-वैवर्त में कृष्ण-जन्माष्टमी का ही विधान है। पद्म पुराण तक पहुँचते-पहुँचते राधा जन्माष्टमी भी प्रसिद्ध हो जाती है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि पद्म पुराण की यह कृति ब्रह्मवैवर्त से उत्तरवर्ती हैं। श्रीमद्भागवत जैसे ग्रन्थ में राधा नाम का अभाव है इससे अनुमान होता है कि ऐसा सम्भव है कि कामोद्दीपक शृंगारी कथाओं से ऊब कर ब्रह्म वैवर्त की कथा-क्षेत्र में अश्राव्यता देखकर पारमहंस्य-संहिता की अवतारणा की आवश्यकता अनुभूत हुई हो। फलस्वरूप श्रीमद्भागवत की विद्वत्ता और चारुता ने कृष्ण-कथा को प्रधान एवं सर्वग्राह्य आधार प्रदान किया हो। रासलीला सम्बन्धी परीक्षित के प्रश्न कृष्ण के ऊपर चरित्र सम्बन्धी आक्षेपों की एक झलक प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि इनका निराकरण अत्यावश्यक था। गोपी, कृष्ण और रास ये तीनों इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध थे कि इनमें किसी एक को पृथक् सोचा ही नहीं जा सकता था। अतः काम को परिष्कृत रूप देते हुए श्रीमद्भागवतकार ने श्रीकृष्ण चरित्र की चारुता को उच्चता में परिवर्तन करने में सफलता प्राप्त की।

राधा के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमें इस तथ्य पर विशेष ध्यान देते हुए सोचना चाहिए कि राधा का वर्णन जहाँ कहीं भी किसी पुराण में मिलता है सर्वत्र इसे कृष्ण-चरित्र की उच्च भूमि प्राप्त है। राधा का कोई ऐसा क्रमिक विकास नहीं कि ये साधारण गोपी से प्रधान गोपी की स्थिति में पहुँची हों। राधा सर्वत्र प्रधानता प्राप्त करते हुए ईश्वरी के रूप में हैं।

ब्रह्मवैवर्त-प्रकृति-खण्ड में हमें यह भी देखने को मिल जाता है कि पंच-प्रकृतियों में राधा को पाँचवाँ स्थान मिलता है।[3] और अन्य देवियों के पूजकों का इतिहास

---

१. शिव पु० पार्वती ख० २।२७-४०   २. पद्म पु० ३ ब्रह्म ख०, ७।३६

३. ब्रह्म वै० २।१।५८

प्रस्तुत करते हुए राधा के पूजकों में अन्य कोई नहीं, केवल कृष्ण हैं, वह भी गोलोक रास मण्डल में—

प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रास-मण्डले ।
पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना ।।[१]

राधा का धरती पर प्रथम दर्शन वृन्दावन में होता है । वृन्दावन में राधा की स्थिति भूरि-भूरि है ।[२]

राधा-कृष्ण-प्रेम अलौकिक भाव-भक्ति के उच्चादर्शों से विलसित है । बौद्धों से भी इस कृष्ण-भक्ति को बल मिला । कुछ विद्वानों का विचार है कि ईसा दसवीं शताब्दी में पतनोन्मुख बौद्ध धर्म के प्रभाव में बंगाल में निर्वाण का एक मात्र साधन गुरु के सम्मुख शरीर समर्पण करना माना जाने लगा था तथा प्रचलित रासलीलाओं और लोक गीतों के कारण राधा कृष्ण का प्रेम लोक-प्रिय बन चुका था ।[३] रासलीला ने भावना की एक ऐसी उच्च-भूमि प्रस्तुत कर दी जिसके सम्मुख ईश्वर निष्ठ आत्मार्पण ने मात्र कायिक प्रेम को महत्वहीन बताया ।

ब्रह्म वैवर्त में इस प्रकार की शंकाओं को, जिसमें कि श्री कृष्ण पर आक्षेप की आशंका हो, प्रश्रय नहीं दिया गया । वहाँ तो प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया कि गोलोक में राधा, कृष्ण, अन्य गोप और गोपियाँ एक साथ के हैं । केवल शाप-वश गोकुल में राधा को आना पड़ा । राधा के लिए कृष्ण को और राधा कृष्ण के लिए सकल गोप-गोपियों को भी पहुँचना पड़ा । राधा के लिए कृष्ण और कृष्ण के लिए राधा पृथक् नहीं हैं प्रत्युत् एक ही के दो रूप हैं । कृष्ण के वामांग से ही तो राधा भी प्रकट हुईं । अतः राधा के प्रति प्रेम आक्षेप का विषय कैसे हो सकता है ।

स कृष्णः सर्व सृष्ट्यादौ सिसृक्षुस्त्वेक एव च ।
सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः ।।
स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधा रूपो बभूव ह ।
स्त्रीरूपा वाम भागांशाद् दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः ।।[४]
आविर्बभूव कन्येका कृष्णस्य वाम पार्श्वतः ।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे ।।
रासे सम्भूय गोलोक सादधावहरेः पुरः ।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम ।।[५]

---

१. ब्रह्म वै० २।१।१५८ २. वही २।१।५८
३. डा० र० श० केलकर कृत मराठी हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १०६ ४. ब्रह्म वै०, प्रकृति खंड २।३१-३३ ५. वही १।५।२५-२६

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त राधा के उस रूप का चित्रण करता है जिसमें राधा की चिरसाध्य आकांक्षा—श्री कृष्ण से निरन्तर मिलन की—पूरी होती रहती है। गोलोक हो या गोकुल जहाँ राधा वहाँ कृष्ण और जहाँ कृष्ण वहाँ राधा हैं।

राधा के सम्बन्ध में रायण-पत्नी होने का ब्रह्मवैवर्त [1] के अतिरिक्त अन्य कोई पुराण समर्थन नहीं करता है। रायण-पत्नी होने के कारण राधिका परकीया भी हैं। ब्रह्मवैवर्त यद्यपि पुराणों में अकेला है, जिसमें राधा को रायण-पत्नी भी कहा गया हो, किन्तु इसका भी वहीं समाधान दिया गया कि शाप-वश राधा को रायण-पत्नी होना पड़ा और रायण-पत्नी के रूप में राधा स्वयं नहीं प्रत्युत राधा की छाया रायण-गृह में उपस्थित रही।[2]

यह रायण भी श्री कृष्णांश ही था—

स च द्वादश-गोपानां रायणं प्रवरः प्रिये।
श्रीकृष्णांशश्च भगवान् विष्णुतुल्य पराक्रमः॥ [3]

लौकिक सम्बन्ध की दृष्टि से यह रायण यशोदा का भाई एवं कृष्ण का मामा था।

कृष्ण--मातुर्यशोदाया रायणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोप-कृष्णांशः सम्बन्धात् कृष्ण मातुलः॥[4]

द्वादशवर्षीया राधा से रायण का विवाह हुआ और कृष्ण का विवाह, जब राधा १४ वर्ष की हुई, तब हुआ।[5]

राधा और रायण का विवाह केवल शापवश नाम-मात्र के लिए हुआ था। श्रीदामा का शाप था कि—

मनुष्या इव कोंपस्ते तस्मात्वं मानुषीभव।
भविष्यसि न सन्देहो मयाशप्तुं त्वमम्बिके॥
छायया कलया वापि पर-शक्त्या कलङ्किना।
मूढा रायण-पत्नी त्वां वक्ष्यन्ति जगती-तले॥
रायणः श्रीहरेरंशो वैश्यो वृन्दावने वने।
भविष्यति महायोगी राधा-शापेन गर्भजः॥
गोकुले प्राप्य तं कृष्णं विहरिष्यसि कानने। [6]

रायण और राधा का जाति सम्बन्ध भी समान ही था। वृषभानु भी वैश्य थे। 'वृषभानेश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह।' अतएव औचित्य देखकर बारह वर्ष

१. ब्रह्म वै०, प्र० ख० ४९।३७ २. वही, प्र० ख० ४९।३८
३. वही, प्र० ख० २।४८।५४ ४. वही २।४९ ४०
५. वही, प्र० ख० ४९।३९ ६. वही कृ० ज० ख० ३।३।१०३-५

की अवस्था में जबकि राधा नवयुवती हो गयी थीं रायण वैश्य के साथ विवाह सम्बन्ध कर दिया गया।

अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्।
सार्धं रायण वैश्येन तत्सम्बन्धं चकार ह ॥[1]

राधा शैशव-काल में भी छाया रूप पितृ-गृह में करके स्वयं नन्द गृह में कृष्ण से खेलने आ जाती थीं। यह आकाश-वाणी हुई थी कि जब तक रास नहीं होता है इस मध्य में नन्द गृह में कृष्ण-मिलन हेतु स्वयं आ जाओ। नन्द एवं वृषभानु के घर दूर-दूर थे। अतः इस प्रकार राधा कृष्ण का मिलन होता रहा। राधा मनोयायिनी थीं।[2]

तथापि राधा के वास्तविक पति कृष्ण थे। किन्तु राधा-कृष्ण का विवाह गोकुल में सर्वसान्निध्य में नहीं प्रत्युत यह विवाह वृन्दावन के भाण्डीर नामक उपवन में दिन में हुआ। नन्द जी कृष्ण को साथ ले वृन्दावन गोचारण हेतु गये थे। अकस्मात् कृष्ण की माया से आकाश मेघाच्छन्न हो गया। झंझावात, बज्र शब्द, मेघावरण और श्यामल कान्तार देखकर नन्द जी व्याकुल हो उठे। इसी मध्य राधा वहाँ उपस्थित हुईं।[3] राधा को देखते ही नन्द परम विस्मय में पड़ गये। किन्तु उन्हें गर्गोक्ति[4] का स्मरण हुआ। राधा ने अवस्था में बड़ी होने के कारण कृष्ण को ग्रहण किया। वहाँ ब्रह्मा स्वयं उपस्थित हुए और विधिपूर्वक हवन, सप्त प्रदक्षिणा एवं अग्नि की प्रदक्षिणा कराते हुए इन दोनों का पाणिग्रहण सम्पन्न किया। राधा ने कृष्ण और कृष्ण ने राधा के गले में माला पहनायी।[5]

राधा की अनपत्यता

राधा से श्री कृष्ण को कोई सन्तान नहीं थी। इसमें भी श्री कृष्ण का शाप था। कृष्ण-शक्ति राधा ने कृष्ण से गर्भ धारण किया। सौ मन्वन्तर व्यतीत होने पर राधा ने धारण किये गर्भ को स्वर्णाभ अण्डे के रूप में उत्पन्न किया। उस अण्डे को देखकर राधा अति दुखी हुई। अतः क्रोध वश उस अण्डे को जल में प्रक्षिप्त कर दिया। यह देख कर कृष्ण ने हाहाकार किया और क्रोध में शाप दिया कि—तुम एवं तुम्हारे अंश अनपत्य हो जाँय।[6]

---

१. ब्रह्म वै० प्र० ख० २।४६।३७
२. वही ४, १।१५।१६८-७२
३. वही, ४, १।१५।१-८
४. वही ४, १।१३।६०-१४२
५. वही ४, १।१५।१२१-२६
६. वही २।२।४७-५१

यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठरे।
भवत्वमनपत्याऽपि चाद्य प्रभृति निश्चितम् ॥
या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः।
अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समाः नित्य यौवनाः ॥[1]

राधा-सौविध्य

गोलोकीय राधा की सुख-सुविधा अद्भुत है। उन्हें कल्पनातीत सौविध्य प्राप्त है। राधा की सेवा के लिए अनेकों सेविकाएँ हाथ में चामर लिए खड़ी रहती हैं। ताम्बूल, माला, सुवासित जल, क्रीडार्थ कमल, सिन्दूर, पेय-द्रव्य, रत्नालंकार, जल, वेणु, वीणा, कंकतिका, अबीर, यन्त्र (पाश), सुगन्धित तेल, करताल, गेंदा, मृदंग, तथा मुरज धारण करने वाली, मुरली तान करने वाली, संगीत निपुण, नाचती हुई अनेकों सेविकाएँ राधा के सम्मुख उपस्थित रहती हैं। कोई-कोई क्रीडा वस्तु बनाने वाली भी हैं। कुछ के हाथ में मधु, कुछ के हाथ में सुधा-पात्र हैं। कुछ हाथ में पादपीठ लिए तो कोई राधा के शृंगार-बेष-वस्तु लिए खड़ी हैं। कुछ गोपियाँ चरण-सेवा में लगी हैं तो कुछ अंजलि बाँध कर स्तुति करती हैं। राधा के द्वार पर वेत्रधारिकाएँ सतर्क हैं।[2]

राधा-आश्रम

राधा का आश्रम सुविधा-सौन्दर्य-सुख-सन्निधान है, अनिवर्चनीय है।[3] यह आकार में वर्तुल है। यह छः गव्यूति (१२ मील) तक विस्तृत है। इसमें सौ मन्दिर बने हैं। अमूल्य रत्नों का समूह भवन में जटित है। आश्रम दुर्लंघ्य परिखाओं से परिवृत है। यह सैकड़ों पुष्पोद्यान एवं अनेकों कल्प वृक्षों से भी घिरा है। सुमूल्य-रत्न-खचित प्राकार से आश्रम परिवेष्टित है। मध्य-मध्य में सुन्दर रत्न-वेदिकाएँ विनिर्मित हैं। भित्तिकाओं पर रत्न-चित्र विनिर्मित हैं। प्रधान सप्तद्वारों के आगे आश्रम प्राकार-परिवृत है। इसमें पुनः षोडश द्वार विनिर्मित हैं। यह प्राकार एक सहस्र वित्ता (२५० गज) ऊँचा है। इस पर छोटे-छोटे कलश बने हैं जिन पर रत्न-दीप प्रकाशित हो रहे हैं।[4]

---

१. ब्रह्म वै० २।२।५२, ५३
२. वही ४।१।३।४८-५७
३. वही ४, १।४।१६१
४. वही ४, १।४।१६२-६८

राधा की सखियाँ

राधा की निम्नलिखित तैंतीस [1] सखियाँ हैं —

(१) सुशीला	(१२) गायत्री	(२३) सरस्वती
(२) शशिकला	(१२) सुमुखी	(२४) गंगा
(३) यमुना	(१४) सुखा	(२५) अम्बिका
(४) माधवी	(१५) पद्मालया	(२६) मधुमती
(५) रती	(१६) पारिजाता	(२७) चम्पा
(६) कदम्बमाला	(१७) गौरी	(२८) पर्णा
(७) कुन्ती	(१८) सर्वमंगला	(२९) सुन्दरी
(८) जाह्नवी	(१९) कालिका	(३०) कृष्ण-प्रिया
(९) स्वयम्प्रभा	(२०) कमला	(३१) सती
(१०) चन्द्रमुखी	(२१) दुर्गा	(३२) नन्दिनी
(११) सावित्री	(२२) भारती	(३३) नन्दना

राधा की उपरिलिखित तैंतीस सखियों के नामों में भिन्नता भी है। गोपी-चीर-हरण प्रसंग में भी राधा ने अपनी सखियों के नाम स्मरण किये हैं। ये नाम बत्तीस हैं—

हे सुशीले; शशिकले; हे चन्द्रमुखि; माधवि !
कदम्बमाले; हे कुन्ति; यमुने; सर्वमंगले !
हे पद्ममुखि ; सावित्री; पारिजाते; च जाह्नवि !
सुधामुखि; शुभे; पद्मे; हे गौरि; हे स्वयं प्रभे !
कालिके; कमले; दुर्गे; हे सरस्वति; भारति !
अपूर्णे, रति, हे गंगे; चाम्बिके; सति; सुन्दरि।
कृष्णप्रिये; मधुमति; चम्पे, चन्दन-नन्दिनि !
यूयं सर्वाः समुत्थाय वध्वा नयत वल्लवम् ॥[2]

ये सभी गोलोक की सखियाँ गोकुल में भी पधारी थीं। अन्तर केवल इतना है कि गोलोक-वासिनी गोपियों में सुधा-मुखी; शुभा, पद्मा, अपूर्णा और चन्दन नन्दिनी भी नाम गिनाये गये हैं। यहाँ पद्मालया के स्थान पर पद्म मुखी का प्रयोग प्रतीत होता है। पूर्व सूची में पर्णा है किन्तु उक्त चीरहरण प्रसंग में पर्णा को अपूर्णा कर दिया गया है। सम्भवतः यह अपर्णा हो। नन्दिनी तथा नन्दना नाम भी उक्त द्वितीय सूची में नहीं है। यहाँ उक्त द्वितीय सूची में केवल बत्तीस सखियों के ही नाम हैं जबकि प्रथम सूची में राधा के अतिरिक्त तैंतीस सखियों के नाम हैं।

गोकुल के रास-प्रसंग में जिन सखियों का नाम आया है वे ये हैं[3] :—
अध्ययन की सुविधा के लिए यहाँ तीनों सूचियाँ दी गयी हैं।

१. वही ४,१।४।१८५-८८ २. ब्रह्म वै० ४, १।२७।७९-८२ ३. वही ४,१।२८।२६-४१

रास	चीर हरण	गोलोक
१. सुशीला	सुशीला	सुशीला
	शशिकला	शशिकला
२. चन्द्रमुखी	चन्द्रमुखी	चन्द्रमुखी
३. माधवी	माधवी	माधवी
४. कदम्बमाला	कदम्बमाला	कदम्बमाला
५. कुन्ती	कुन्ती	कुन्ती
६ जाह्नवी	जाह्नवी	जाह्नवी
७. यमुना	यमुना	यमुना
८. पद्ममुखी	पद्ममुखी	गायत्री
९. सावित्री	साबित्री	सावित्री
१०. पारिजाता	पारिजाता	पारिजाता
११. स्वयंप्रभा	स्वयंप्रभा	स्वयंप्रभा
१२. सुधामंखी	सुधामुखी	सुमुखी
१३. शुभा	शुभा	सुखा
१४. पद्मा	पद्मा	पद्मालया
१५. गौरी पद्मा	गौरी	गौरी
१६. सर्वमंगला	सर्वमंगला	सर्वमंगला
१७. कालिका	कालिका	कालिका
१८. कमला	कमला	कमला
१९. दुर्गा	दुर्गा	दुर्गा
२०. सरस्वती	सरस्वती	सरस्वती
२१. भारती	भारती	भारती
२२. अपर्णा	अपूर्णा	पर्णा
२३. रति	रति	रति
२४. गंगा	गंगा	गंगा
२५. अम्बिका	अम्बिका	अम्बिका
२६. सती	सती	सती
२७. नन्दिनी	—	नन्दिनी
२८. सुन्दरी	सुन्दरी	सुन्दरी
२९. कृष्णप्रिया	कृष्णप्रिया	कृष्णप्रिया
३०. मधुमती	मधुमती	मधुमती
३१. चम्पा	चम्पा	चम्पा
३२. चन्दना	चन्दन-नन्दिनी	नन्दना

प्रथम सूची में राधा सहित तैंतीस सखियाँ हैं। द्वितीय एवं तृतीय सूची में तैंतीस नाम हैं, इसमें राधा तैंतीस के अतिरिक्त हैं। चीरहरण प्रसंग में शशिकला नया नाम है। रास में चन्दना और नन्दिनी दो नाम हैं किन्तु चीरहरण में यह चन्दन-नन्दिनी एक नाम है। अतः रास और चीरहरण की नाम संख्या वही बनी रही। गोलोकीय नामावलि में शशिकला के अतिरिक्त गायत्री, सुमुखी, सुखा, पद्मालया, पर्णा और नन्दना ये नाम परिवर्तित करके जुड़े हैं।

गोलोक में श्री कृष्ण ने राधा को बताया था कि गोकुल में अवतरित होने के लिए सुशीला आदि अपनी ३३ सखियों के साथ-साथ इक्कीस सौ कोटि गोपियों को भी साथ लेकर इन्हें गोकुल में अवतरित होना है।

त्रिःसप्त शतकोटीभि र्गोपीभि र्गोकुलं व्रज।
त्रय स्त्रिंशद् वयस्याभिः सुशीलादिभि रेवच ॥[1]

राधा-कृष्ण के साथ रास में गोपियों की संख्या उक्त संख्या की अपेक्षा न्यूनतर बतायी गयी है। यहाँ नव लक्ष गोप तथा नव लक्ष गोपियाँ हैं।

गोपीनां नव लक्षाणि गोपानां तथैव च।
लक्षाण्यष्टादश मुने ! युक्तानि रास-मण्डले ॥[2]

इन संख्याओं में अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। निःसन्देह इन अतिशयोक्तियों का प्रयोग प्रभावोत्पादन के लिए किया गयाहोगा। तथापि उक्त संख्याओं के पीछे रहस्यात्मकता भी हो सकती है। नव संख्या ब्रह्म का प्रतिपादक मानी जाती है। तीन त्रिगुण का बोधक है। सप्त शब्द पदार्थ एवं माया संवलित रूप का बोधक है। शत शब्द पूर्णता का द्योतक है, यह ब्रह्म का भी प्रतीक है। इस प्रकार गोपियों की तीन कोटियाँ भी हो सकती हैं। जिनमें कुछ त्रिगुणों की प्रतीक, कुछ माया की प्रतीक और कुछ पूर्णता की प्रतीक हैं।

इसी प्रकार रास की संख्या में रसात्मक अनुभूति में मग्न गोप-गोपी कृष्ण के साथ ब्रह्मानुभूति कर रहे थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराणों की सरल उक्तियों के साथ रहस्यात्मकता भी पूर्णरूपेण संयुक्त है। कथा-वाचन में श्लेष एवं प्रतीकात्मक प्रयोग करके वक्ता अवश्य ही श्रोता पर प्रभावी होगा। अतः उक्त संख्या हास-विलास नहीं प्रत्युत वाग्वैदुष्य एवं वक्तृ-बोधव्य-कला है।

---

१. ब्रह्म वै० ४।६।२३१ तथा २७०-२७३ २. वही ४, १।२८।७८

रास-काल में ३३ सखियों के साथ सखियाँ भिन्न-समूहों अथवा यूथों में भी थीं। इनकी संख्या योग करने पर तीन लाख निन्यानवे सहस्र (३६६०००) है।[१] इनमें १६ सहस्र के नौ यूथ, १४ सहस्र के ७ यूथ, १३ सहस्र के ६ यूथ, १० सहस्र के ५ यूथ, नौ सहस्र के २ यूथ, ७, ११, १५ सहस्रों का एक-एक यूथ था। इन बत्तीस यूथों के साथ प्रधान ३२ सखियों से सम्मानित ३३वीं सखी राधा हैं।

इस तत्व पर विचार करते हुए वैष्णव-परम्परा में गोपियों के तीन प्रधान भेद स्वीकार किये गये हैं।[२]

१. साधन-सिद्धा २. नित्यसिद्धा ३. देवस्वरूपा

इनमें प्रथम के दो अवान्तर भेद भी हैं—

१. यौथिकी २. अयौथिकी

यौथिकी के भी दो भेद हैं—

१. ऋषि रूपा २. श्रुतिरूपा

इनके लक्षण तो नाम से ही स्पष्ट हैं। नित्य सिद्धा की कोटि में राधा, चन्द्रावली आदि हैं। देव-स्वरूपा की कोटि में गोपी रूप सुरांगनाएँ हैं। (जनिष्यते तु तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः)।[३]

अवतार्यं भवान् पूर्वं गोकले तु सुराङ्गनाः।
क्रीडार्थ मात्मनः पश्चादवतीर्णोसि शाश्वतः॥[४]

पद्मपुराण में गोपियों को पूर्वजन्मानुसार चार प्रकार का बताया गया है:—

१. श्रुति रूपा।
२. ऋषिजा।
३. गोप-कन्या।
४. देव-कन्या।

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः।
देवकन्याश्च राजेन्द्र ! न मानुष्यः कथंचन॥[५]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२८।२६-४१

२. Early History of the Vaishnava faith and movement in Bengal by S. K. De, P. 156 (Calcutta-1942).

३. श्रीमद्भा० १०।१।२३ ४. विष्णु पु० ५।७।३६

५. पद्म पुराण (विशुद्ध रसदीपिका—श्रीमद्भा० १०।२६।१ टीका में उद्धृत)

राधा आश्रम के प्रधान द्वार-रक्षक

राधा-आश्रम के सोलह प्रधान द्वारों के एकादश प्रधान द्वार-रक्षक गोपाल हैं और पाँच द्वारों की रक्षा गोपीवृन्द करता है।

१. वीरभानु नामक गोपाल रत्नसिंहासनस्थ हो द्वार-रक्षा करते हैं। ये रत्नाभरण-भूषित पीतवस्त्रधारी और रत्नमुकुटधारी हैं।[१]

२. चन्द्रभानु—ये वय में किशोर और वर्ण में श्यामल हैं। वेत्र धारण किये हुए पाँच लक्ष गोपों के साथ रत्नाभरण भूषित हो रत्न सिंहासन पर स्थित होकर द्वार की रक्षा करते हैं।[२]

३. सूर्यभानु—ये किशोर श्यामसुन्दर द्विभुज मुरली-धर मणिकुण्डल अलंकृत गोपाल अपने नव लक्ष गोपों के साथ द्वार पर रक्षा करते हैं।[३]

४. वसुभानु—ये भी किशोर वय के हैं। ये मणिदण्डकर रत्नसिंहासनस्थ और रत्नाभरण-भूषित हैं।[४]

५. देवभानु—ये मयूर पिच्छचूड और चन्दन-अगुरु-कस्तूरी तथा कुंकुम के द्रव से चर्चित हैं। इनके साथ दस लाख गोपाल हैं।[५]

६. शुक्रभानु—ये श्रीखण्ड-पल्लवधारी हैं। इनके साथ दो लाख गोपाल हैं।[६]

७. रत्नभानु—ये वेत्रहस्त और रत्न-सिंहासनस्थ हैं। ये द्वादश लक्ष गोपालों के साथ हैं।[७]

८. सुपार्श्व—गोपाल रत्नों से अलंकृत हैं। इस गोपाल के साथ द्वादश लक्ष गोप थे।[८]

९. सुबल—ये नाना भूषण-समन्वित हैं। इनके भी साथी हाथ में दण्ड धारण किये हुये दस लाख गोपाल हैं।[९]

१०. सुदाता—कृष्ण-तुल्य बीस लाख गोपों के साथ ये द्वार रक्षा करते हैं।[१०]

११. श्रीदामा—ये कोटि-गोप परिवृत हो द्वार-रक्षा करते हैं।[११]

१२वें से १६वें द्वार तक की रक्षा गोपी-वृन्द करता है। इनकी संख्या कई सौ कोटि है।[१२]

सोलहवें द्वार के अभ्यन्तर अपनी तेंतीस सखियों के साथ चतुः शाल-मन्दिर के मध्य राधा का निवास है। यहाँ ब्रह्माण्ड की दुर्लभ वस्तुएँ भी उपलब्ध हैं। यहाँ कोटि-कोटि रत्न-कुम्भ और रत्न-पात्र हैं। कृष्ण-तुल्य गोप-समूह भी सेवारत हैं।[१३]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।५।३-५ २. वही ४, १।५।८-१० ३. वही ४, १।५।१२-१४
४. वही ४, १।५।१८ ५. वही ४, १।५।१८-२२ ६. वही ४, १।५।२३-२४
७. वही ४, १।५।२६-२८ ८. वहा ४, १।५।२९-३० ९. वही ४, १।५।३२-३४
१०. वही ४, १।५।३६-३७ ११. वही ४, १।५।३८-४२
१२. वही ४, १।५।४३-५५ १३. वही ४, १।५।४३-८०

इन सबके मध्य रम्य-रत्न-सिंहासन विराजमान है। यह सौ धनुष के प्रमाण का वर्तुलाकार है। इसमें चित्र-पुत्तलिकाएँ और पुष्पचित्रों का कानन विराजमान है। इसकी साज-सज्जा ऊपर सप्त-ताल-प्रमाण तक व्याप्त एवं देदीप्यमान है। इसी शोभामय सिंहासन पर तेज-स्वरूप राधा विराजमान हैं।[1]

राधा के रत्नालङ्करण

ब्रह्मवैवर्त में राधा के पृथक्-पृथक् अंगों का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। उनका मुख प्रसन्न एवं स्मितियुक्त है। उनके नेत्र शरत्पंकजवत् और ओष्ठ बन्धु-जीव-प्रभायुत हैं। उनके मुख पर पूर्ण शरदचन्द्र कान्ति की मनोहरता है। उनके दोनों पैरों में मंजीरयुग्म झंकृत हैं। नखों में से मणि-प्रभा बिखर रही है और पैरों में कुंकुम राग विराजित है। अमूल्य-रत्नसार विनिर्मित करधनी से राधा की श्रोणि सुशोभित है। ये अग्निशुद्ध पीतवस्त्र धारण करती हैं। उनके अलंकारों के घुंघरू महामणि के सार से विनिर्मित हैं। ये रत्नहार, केयूर और कंकण से अलंकृत हैं। ये कुण्डल के साथ भी कर्ण-भूषण धारण किये हैं। इनका नासाग्र गरुड़ की चोंच जैसी है तथा अग्र-भाग पर गज-मुक्ता सुशोभित है। राधा की कबरी मालती माला से सुशोभित है। वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि की माला से देदीप्यमान है। वस्त्र कान्तिपारिजात के पुष्प जैसी प्रभामय है। अंगुलि में रत्न-जटित अंगुलीयक है। ये शंख-भूषण और गुटिका धारण करती हैं। राधा स्वर्ण वर्ण की हैं। यहाँ राधा के नैसर्गिक सौन्दर्य वर्णन के साथ इन्हें सर्वातिशायी अलंकार-सम्भार-समावृत बताया गया है। किन्तु ये जितने अलंकार वर्णित हैं इस देश में आज भी सौभाग्यवती स्त्रियाँ धारण करती हैं। आधुनिक नवशिक्षिताएँ नाममात्र ही रत्नालंकरण धारण करती हैं किन्तु विशेष अवसरों पर उन्हें भी विशेष रूप से इन अलंकारों में से कुछ लभ्य आभूषणों को धारण करने का मोह होता है। इन्हें धारण करने में सम्मान एवं गौरव का अनुभव किया जाता है। राधा के वर्णन में तत्कालीन स्त्री-सौन्दर्यमान की सामयिक-छाया है।

इस वर्णन में सिन्दूर आदि सौभाग्य एवं अलंकार की विशेष सामग्री का वर्णन नहीं है किन्तु राधा-विवाह के अवसर पर इन सामग्रियों एवं साधनों की भी चर्चा है।

चन्दनागुरु कस्तूरी कुङ्कुम-द्रव मुत्तमम्।
राधिकायाश्च सर्वाङ्गे प्रददौ माधवः स्वयम्॥[2]

× × ×

शृङ्गारेणैव कबरी सिन्दूर-तिलकं मुने।
जगामालक्तकाङ्कश्च विपरीतादिकेन च॥[3]

---

१. ब्रह्म वै० ४, ११५।८३-८० २. वही ४, ११५।१४५ ३. वही ४, ११५।१५०

गोकुल के रास-प्रसंग में भी, तिलक किस प्रकार का होता था, इस रूप का चित्रण किया गया है—

दधौ ललाटे सिन्दूरं कस्तूरी विन्दुभिः सह ।
तदध श्चन्दनेन्दु च सुसूक्ष्मं सुमनोहरम् ॥[1]

राधा-कृष्ण विलास

राधा-कृष्ण लीलाओं को पाँच भागों में विभक्त करके बिचार करने पर अधिक सुविधाजनक है । इन पाँचों में भी दो वर्ग बना लिया जाय तो और सरल होगा ।

परिस्थितियों के कारण राधा का निवास गोलोक और गोकुल में रहा । अतः गोलोक में निवास करने वाली राधा पर सर्वप्रथम विचार करना आवश्यक है ।

गोलोक में निवास करते हुए कृष्ण सृष्टि का प्रारम्भ करते हैं । किन्तु आदि में यह सृष्टि इच्छाधारित तथा मानसी हुई ।

आलोच्य मनसा सर्वं मेक एवासहायवान् ।
स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः ॥[2]

तत्पश्चात् सुरम्य-रास-मण्डल के अन्तर्गत कृष्ण के वाम-भाग से एक कन्या प्रकट हुई । उसने कृष्ण के चरणों में पुष्पार्पण किया । वही राधा कही गयीं ।[3] गोलोक का विस्तार तीन कोटि योजन है ।

तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज ।
त्रिकोटियोजनायामं विस्तीर्णं मण्डलाकृतिम् ॥[4]

यहाँ सुकोमलांगी ललिता सुन्दरी राधा से गोपिकाएँ प्रकट हुईं—

तस्याश्च लोम कूपेभ्यः सद्यो गोपाङ्गना-गणः ।
आविर्बभूव रूपेण वेषेणैव च तत्समः ॥

लक्षकोटी परिमितः शश्वत्सुस्थिर यौवनः ।
संख्याविद्भिश्च संख्यातो गोलोके गोपिका-गणः ॥[5]

गो एवं गोप श्री कृष्ण से उत्पन्न हुए ।[6] इस प्रकार राधा सृष्टि कार्य में पति का हाथ बँटाती हुई भारतीय नारी का आदर्श स्थापित करती हैं ।

काल-क्रम से श्री दामा और राधा का कलह हुआ । राधा के शाप से श्री दामा शंखचूड और श्री दामा के शाप से राधा गोपी हुईं ।[7]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२८।१४८ २. वही १।३।३ ३. वही १।५।२५-२६
४. वही १।२।६ ५. वही १।५।४०-४१ ६. वही १।५।४४-४५ ७. वही ४,१।२।५-६

राधा और कृष्ण शाप के पूर्व अति प्रेम पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए गोप, गोपियों और गायों से समावृत आनन्दोपभोग करते रहे।[१]

अतीव सुख-सौविध्यपूर्ण रास-मण्डप और वृन्दावन की शोभा विलक्षण थी, जिसे देवों ने प्रत्यक्ष देखा।

विचित्र पुष्पमालाभिः शोभितैः शोभितं पुरे।
तं रास-मण्डपं दृष्ट्वा जग्मुस्ते पर्वताद् बहिः॥
ततो विचक्षणं रम्यं ददृशुः सुन्दरं वनम्।
वनं वृन्दावनं नाम राधा माधवयोः प्रियम्॥[२]

राधा-कृष्ण के आनन्दोपभोग के लिए वृन्दावन के अभ्यन्तर वत्तीस रम्य एवं मनोहर कानन हैं।

रत्नालङ्कार शोभाढ्यै र्गोपीवृन्दैश्च वेष्टितम्।
पंचाशत्कोटि गोपीभी रक्षितं राधिकाज्ञया॥
द्वात्रिंशत् काननं तत्र रम्यं रम्यं मनोहरम्।
वृन्दावनाभ्यन्तरितं निर्जनस्थान मुत्तमम्॥[३]

नाना रत्न-खचित नाना-भोग-समन्वित शतकोटि आश्रम गो-गोप-गोपी आदि के लिए हैं।[४]

तत्राक्षयवटं रम्यं ददृशु र्जगदीश्वराः।
पंचयोजन विस्तीर्ण-मूर्ध्वं तो गुणं मुने।
सहस्रस्कन्धा संयुक्तशाखा-संख्या समन्वितम्॥[५]

यह वट रास मण्डल के तट पर अद्भुत है। लाल पके फलों से लदा है। वट के अधस्तल में अनेकों रत्न-वेदिकाएँ है, जिन पर कृष्ण स्वरूप शील शिशु क्रीडा करते हैं, इस वृक्ष से होकर आगे राजमार्ग है। यह राज मार्ग सिन्दूरी मणियों इन्द्रनील, पद्मराग, हीरों और रुचकों से जटित है। मार्ग पर बीच-बीच में रत्नमण्डप निर्मित हैं। सम्पूर्ण मार्ग दधि, लाजफल, पुष्प, दूर्वांकुर, रत्नमण्डल घटों और फलवती शाखाओं से सुसज्जित है। इसी राजमार्ग से षोडश द्वारों के पार जाने पर राधिका स्थान-मण्डप है। सभी द्वार परिखा वृत और प्राकार युक्त हैं।[६] प्राकार की ऊँचाई सहस्र धनुष बतायी गयी है।[७]

---

१. ब्रह्मवै० २।१।१५८-१६१ २. वही ४,१।४।११३-१४ ३. वही ४,१।४।१२७-२८
४. वही ४, १।४।१३४-३६ ५. वही ४,१।४।१४५-४६
६. वही ४, १।४।१४६-५८ ७. वही ४, १।४।१६६

इसके अतिरिक्त अन्य गोप-गोपियों के आश्रमों की संख्या एक अरब बतायी गयी है। यह संख्या सम्पूर्ण गोलोक की है।

गोपानां गोपिकानां च ददृशु श्चाश्रमान् परान्।
अमूल्य रत्न रचितां छतकोटि मितान् मुने ॥[1]

कृष्ण के दो रूप हैं एक चतुर्भुज और एक द्विभुज। राधा-कान्त कृष्ण गोलोक में द्विभुज हैं।

गोलोके द्विभुजः कृष्णो राधाकान्तः सनातनः।
गोपाङ्गनादिभि युंक्तो द्विभुजै र्गोपपार्षदैः ॥[2]

राधा का विवाह जब कृष्ण से हुआ उस समय कृष्ण ने चतुर्भुज रूप धारण किया।

या मे चतुर्भुजा मूर्ति विभर्ति वक्षसि प्रियाम्।
सोऽहं कृष्ण-स्वरूप स्त्वां विवहामि स्वयं सदा ॥[3]

कृष्ण के सेवक भी द्विभुज थे। चतुर्भुज सेवकों को कृष्ण ने नारायण को दिया।[4] गोलोक से वियुक्त राधा कृष्ण गोकुल में मिले। राधा कृष्ण-विवाह गोकुल के वृन्दावन में सम्पन्न हुआ। राधा कृष्ण का गोलोकीय रूप गोकुल में भी वर्तमान रहा। कृष्ण के उक्त दोनों रूप ईसा की प्रथम शताब्दी में प्रतिष्ठित हो चुके थे।[5]

केदार-कन्या-कथा के प्रसंग में धर्म ने स्पष्ट कर दिया है कि श्री कृष्ण ही बैकुण्ठ में चतुर्भुज हरि अथवा विष्णु हैं और वही गोलोक में द्विभुज कृष्ण हैं।

श्री कृष्णश्च द्विधारूपो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च बैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम् ॥[6]

राधा जी श्री कृष्ण के साथ छोटे-बड़े चारों कौतुकों में नित्य रूप से वर्तमान हैं। ये चारों कौतुक निम्न हैं—

१. गोलोकीय रास कौतुक[7]
२. वैवाहिक रति-कौतुक[8]
३. गोपी रास कौतुक[9]
४. ऐकान्तिक-रास कौतुक[10]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।४।१६९ २. वही १।१७।६४ ३. वही ४, १।१५।७८
४. वही १।५।६६-६७
५. डा० नीलकंण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, स्वतन्त्र भारत, स्वतंत्रता दिवस विशेषांक १९७६
६. ब्रह्म वै० ४, २।८६।४३ ७. वही ४, १।५-६ अध्याय ८. वही ४, १।१५ अध्याय
९. वही ४, १।२८ अध्याय १०. वही ४, १।२९।१२

इनमें अन्त के तीनों रास गोकुल के वृन्दावन में घटित होते हैं, द्वितीय एवं चौथे में केवल राधा ही कृष्ण के साथ हैं।

राधा की कृष्ण के प्रति भाव-प्रवणता का स्पष्ट चित्रण राधोद्धव संवाद[1] में किया गया है। इसके पूर्व कंस की प्रेरणा से जब अक्रूर जी कृष्ण को लेने चले तो राधा जी ने दुःस्वप्न देखा और विह्वल हो उठीं किन्तु कृष्ण ने अपने आध्यात्मिक योग से राधा को सान्त्वना प्रदान किया।

श्रुत्वा स्वप्नं जगन्नाथो देवीं कृत्वा स्ववक्षसि।
आध्यात्मिकेन योगेन बोधयामास तत्क्षणम् ॥[2]

तथापि राधा को शान्ति न मिली। कृष्ण को गमनेच्छु जानकर राधा ने कृष्ण से कातर भाव से प्रार्थना की।

क्व यासि मां विनिक्षिप्य, गम्भीरे शोक-सागरे।
विरहव्याकुलां दीनां, त्वय्येव शरणागताम् ॥[3]

उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हें अभिमानवश अपना पति मानती रही, क्षमा करो आज मेरा गर्व चूर्ण हो गया।

राधा ने क्रोधवश श्री कृष्ण को शाप भी दिया कि मुझे छोड़ कर जा रहे हो तुम सकलंक हो जाओगे और तुम्हारे पुत्र-पौत्र ब्रह्मकोपानल में जलकर नष्ट हो जाएँगे। कृष्ण को तो राधा प्रेम तथा भक्तिवश कुछ कह न सकीं। अन्त में अपनी असमर्थता भी उन्होंने प्रकट की—

क्षणं युगशतं मन्ये, त्वां विना प्राणवल्लभम्।
कथं शताब्दं त्वां त्यक्त्वा, बिभर्मि जीवनं प्रभो ॥[4]

राधा की सान्त्वना हेतु कृष्ण ने पुनः उनसे प्रेमानुराग प्रदर्शित किया।[5]

श्रीमद्भागवत में कृष्ण वंश के ब्रह्मकोपानल में विशीर्ण होने का शाप दुर्वासा आदि ऋषियों ने प्रद्युम्न आदि को दिया।[6] यह शाप कृष्ण की अनुपस्थिति में हुआ।

अक्रूर के साथ जाने के पूर्व राधा को कृष्ण-वियोग की कल्पना मात्र से पुनः पुनः मूर्च्छा हो जाती है। चार अध्यायों[7] में (२५ + ८२ + ३१ + ८० अनुष्टुप्) राधा की हृदय-द्रावी स्थिति का चित्रण किया गया है।

अन्त में कृष्ण यह कह कर विदा ले ही लेते हैं कि मर्यादा का निर्वाह करना

---

१. वही ४, २।अ० ८२-८७ २. वही ४, २।६६।२४ ३. वही ४. २।६८।१४
४. वही ४, २।६८।२४ ५. वहीः ४, २।६८।३१
६. श्रीमद्भा० ११।१।१२-१६ ७. ब्रह्म वै० ४, २।६६ से ६९ अध्याय तक

ही है। निषेक का खण्डन असम्भव है। वे राधा को सुदामा के शाप का भी स्मरण दिलाते हुए एक शताब्दी का वियोग अवश्यम्भावी बताते हैं।

ईशो यद्यपि शक्तोऽहं निषेकं खण्डितुं प्रिये।
तथापि न क्षमो रत्ने, नियतेर्न करोम्यहम् ॥
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषु, मर्यादा स्थापिता मया।
तथा कर्म प्रकुर्वन्ति, मुनयश्च सुरा नराः ॥
सुदामा-शापाद्विच्छेदः शतवर्ष मनीप्सितः ।
भविष्यत्येव दम्पत्यो रावयोरेव सुन्दरि ॥[1]

कृष्ण और बल आदि को गोपों ने बाजे बजाकर ही विदा किया। वाद्य बजते ही गोपियां भी उपस्थित हो गयीं। राधा के संकेत पर उन्होंने अक्रूर के रथ को भंग कर दिया, कृष्ण को छीन लिया। बेचारे अक्रूर को विवसन करके पीटा भी।[2] (श्रीमद्भागवत में यह प्रसंग नहीं है।)

अतः उस रात्रि को बिताकर द्वितीय दिन चले। कृष्ण कृपा से दिव्य रथ आ गया। भाई बलराम और पिता नन्द के साथ अक्रूर जी के रथ पर जाने के पूर्व श्री कृष्ण शिष्टाचार का पूर्ण पालन करते हैं। रात्रि के चौथे प्रहर में, जबकि राधा आदि गोपियाँ शयन ही कर रहीं थी, यशोदा तथा अन्य बन्धु-बान्धवों को प्रणाम कर उन्हें आश्वासन देते हुए कृष्ण आदि चल पड़ते हैं। वाद्य बजने का निषेध राधा के भय से कर दिया गया कि कहीं वे जग न पड़ें।[3]

राधा का कृष्ण के प्रति प्रेम, निष्ठा, सहिष्णुता विश्वास, एकचित्तता आदि का दर्शन वास्तव में उद्धव करते हैं। कृष्ण वियोग में राधा की विह्वलता का आकलन नहीं किया जा सकता। उस वियोगिनी के अपार प्रेम-सागर के गाम्भीर्य की थाह लेना सम्भव नहीं। राधा ने अपने प्रिय कृष्ण के लिए सर्वस्व त्याग किया। अपने सम्पूर्ण अहं को—मर्यादा, मान, प्रतिष्ठा—अपने अस्तित्व को भी कृष्णार्पण कर दिया। उद्धव चकित हो गये। उन्होंने राधा को प्रार्थना की और उन्हें श्री कृष्ण-मिलन का आश्वासन दिया। किन्तु राधा इस व्याज को समझती हैं। वे यह भी बताती हैं कि नारी-मन की व्यथा पण्डित ठीक से नहीं जानते। उद्धव शास्त्र-ज्ञानी हैं। राधा ने कहा कि ज्ञानी शास्त्र के आधार पर नारी-मन का निरूपण करते हैं। किन्तु नारी की व्यथा को वेद भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है, शास्त्र की तो बात ही क्या।[4]

अतः वे कृष्ण दर्शन की लालसा प्रकट करते हुए कहती हैं कि हरि के समाचार से ही मुझे संज्ञा हुई। मैं कृष्णाकृति देख रही हूँ, मुरली-ध्वनि सुन रही हूँ, हरि के

१. ब्रह्म वै० ४,२।६८।८२-८४
२. वही ४,२।७०।७९-८३
३. वही ४,२।७१।१-४
४. ४,२।६३।८३-८४

चरण का चिन्तन कर रही हूँ इस प्रकार कृष्ण-क्रीडाओं का स्मरण कर राधा उद्धव के सम्मुख निःसंज्ञ हो जाती हैं।[1]

मालती आदि सखियों के प्रयास से उन्हें पुनः संज्ञा प्राप्त होती है तो वे पुनः मर्मभेदी व्यथा प्रकट करते हुए कहती हैं—

उद्धव ! मेरी यह स्थिति कृष्ण से बता दो। परमानन्द श्री कृष्ण को शीघ्र लाओ। संसार में मेरी जैसी कौन दुःखी नारी होगी कि श्री कृष्ण जैसे पति को प्राप्त कर भी उसे ऐसा वियोग सहना पड़े। मेरे अतिरिक्त कोई दूसरी नहीं। मेरी विरह-व्यथा सीता कुछ समझ सकती हैं। तीनों लोक में मेरी जैसी कोई दुःखिनी नहीं है।[2]

राधिका सदृशी स्त्रीषु, न भूता न भविष्यति।
दुःखिनी विरहातप्ता, सुख-सौभाग्य-वर्जिता॥
संप्राप्य कल्पवृक्षं च, पतिं च जगतां पतिम्।
वंचिताऽहं विधात्रा च, निर्दयेन च पापिना॥[3]

राधा की इस मार्मिक व्यथा का चित्रण ब्रह्मवैवर्त में राधोद्धव-संवाद के रूप में छः अध्यायों में विस्तृत किया गया है।

ब्रह्मवैवर्त चतुर्थ खण्ड के एक सौ दसवें तथा एक सौ ग्यारहवें अध्याय में यशोदा एवं राधा का संवाद भी रोचक है। उक्त पूर्वाध्याय में यद्यपि कृष्णोक्त योग का संकेत है किन्तु भक्ति-रूपा राधा यशोदा को एक सौ ग्यारहवें अध्याय में हरि-भक्ति का ही उपदेश करती हैं। राधा अनन्य-भाव से कृष्ण-भक्ता हैं।

हरि-भक्त विहीनानां सङ्गं नाशकारणम्।
स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च॥
अङ्कुरो भक्ति-वृक्षस्य भक्तसङ्गेन वर्धते।
परं हरिकथालाप-पीयूषासेचनेन च॥
अभक्तालापदीपाग्नि ज्वालायाः कलया पि च।
अङ्कुरः शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते॥
तस्मादभक्त-सङ्गं च सावधानः परित्यज।
यथा दृष्ट्वा काल सर्पं नरो भीत्वा पलायते॥[4]

ब्रह्मवैवर्त में राधा का जीवन सुखान्त हो जाता है। १०० वर्ष बीतने के पश्चात् सिद्धाश्रम पर द्वारिका-वासियों के साथ श्री कृष्ण और गोकुल वासियों के साथ, जिनमें राधा भी थीं, नन्द जी गणेश-पूजन हेतु उपस्थित होते हैं।[5] किन्तु अभी कृष्ण

---

१. ब्रह्मवै० ४,२।९३।१० २. वही ४,२।९५।५-१४ ३. वही ४,२।९५।१५-१६
४. ब्रह्मवै० ४, २।१११।१२-१५ ५. वही ४, २।१२३।१७-१९

आदि पहुँचे नहीं थे कि इसके पूर्व ही नन्द-दल वहाँ पहुँच गया। वह राधा ने श्री कृष्ण प्राप्ति हेतुक कामना से गणेश-पूजा की। अपने एक सेवक के द्वारा श्री कृष्ण को राधा द्वारा गणेश-पूजा का समाचार मिलता है।[1] यहाँ अन्य देव भी गणेश-पूजनार्थ आते हैं, इनमें पार्वती भी हैं।

पार्वती राधा को सान्त्वना देती हैं कि राधे ! तुम पर जो श्रीदामा के शाप वश सौ वर्ष का कृष्ण-वियोग काल था, वह समाप्त हो गया।[2]

इस प्रकार गणेश-पूजनार्थ श्री कृष्ण के भी उपस्थित होने पर वहाँ सभी मिलते जुलते हैं। राधा आदि गोपियाँ श्रृंगार कर कृष्ण का दर्शन करती हैं। प्रियोपहार का भी आदान-प्रदान होता है।[3] यद्यपि नन्द आदि को प्रार्थनापूर्वक श्री कृष्ण यथास्थान भेज देते हैं और समस्त यादवों सहित रुक्मिणी आदि देवियों के साथ अंश रूप में स्वयं भी द्वारिका जाते हैं[4] किन्तु श्री कृष्ण स्वयं राधा से सखियों के मध्य मिल कर पुनः वृन्दावनस्थली में विहार करते हैं[5], तथापि भाण्डीर वन के वट-मूल में एक बार नन्द आदि सम्पूर्ण गोपों का आह्वान किया और स्पष्ट रूप से उपदेश दिया कि मुझे ही परं ब्रह्म समझो। मेरे प्रति पुत्र-भावना का परित्याग करो।

मामेव परमं ब्रह्म, भगवन्तं सनातनम्।
ध्यायं ध्यायं पुत्र-बुद्धिं, त्यक्त्वा लभ परं पदम्॥[6]

इस अवसर पर एक आश्चर्यमय रथ गोलोक से आया। उस पर गोकुलवासियों के साथ राधा पुनः गोलोक पहुँच गयीं।

गोलोकादागता गोप्य श्चायोनिसम्भवाश्च ताः।
श्रुतिपत्न्यश्च ताः सर्वाः, स्व शरीरेण नारद॥
सर्वे त्यक्त्वा शरीराणि, नश्वराणि सुनिश्चितम्।
गोलोकं च ययौ राधा, सार्धं गोकुल-वासिभिः॥[7]

गोलोक पुनः पूर्ववत् हो गया। अपनी अमृत-वर्षिणी दृष्टि से गोलोक को श्री कृष्ण ने गो, गोप और गोपियों से भर दिया।[8] इस प्रकार राधा कृष्ण संगिनी के रूप में पुनः प्रसन्न हुईं।

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।१२४।७ २. वही ४, २।१२४।४२ ३. वही ४, २।१२४।७०
४. वही ४, २।१२६।२ ५. वही ४, २।१२७।२३ ६. वही ४, २।१२८।१०
७. वही ४, २।१२८।४३-४४ ८. वही ४, २।१२६।४

अध्याय १४

ब्रह्म-वैवर्त में कृष्ण

राधा के परमाराध्य, सकल सृष्टि के प्रेरक, त्रिगुणातीत, ब्रह्मा विष्णु शिव और प्रकृति दुर्गा आदि के भी जनक श्री कृष्ण ही ब्रह्मवैवर्त के ध्येय हैं। ब्रह्म-वैवर्त के नामकरण के आधार भी श्री कृष्ण ही हैं।

विवृतं ब्रह्म कार्त्स्न्यं च कृष्णेन यत्र शौनक।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ॥[1]

उक्त श्लोक से यह विदित होता है कि कृष्ण की सम्पूर्ण पुराण में उपस्थिति ही ब्रह्म के अनावृत (विवृत) रूप की उपस्थिति है। कृष्ण का प्रत्यक्ष दर्शन ही ब्रह्म का दर्शन है।

यहाँ "कृष्णेन-विवृतम्" से दो अभिप्राय घटित हो रहे हैं—निज रूपेण ब्रह्म-स्वरूपम् विवृतम्प्रत्यक्षीकृतम् जनेभ्यः—क्योंकि अभी तक तो ब्रह्म इन्द्रियगोचर था नहीं। अब श्री कृष्ण-दर्शन से ब्रह्म चक्षुर्विषय बना।

पूर्व इतिहास है[2] कि श्री कृष्ण ने गोलोक में ब्रह्मा को इस पुराण-कथा को संक्षेप (सूत्र) में सुनाया था। अतएव 'विवृतं' से 'विवर्णितम् वा व्याख्यातम्' का भी अभिप्राय है।

शौनक जी सौति (सूत पुत्र) से प्रश्न करते हुए कहते हैं :—

"श्री कृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती।
तत्कथ्यतां महाभाग ! पुराणं ज्ञान-वर्धनम् ॥"[3]

अतः निःसन्देह श्री कृष्ण की निश्चल-भक्ति ब्रह्म-वैवर्त का साध्य है।

शौनक की प्रश्न-शृंखला[4] में यह भी सिद्ध है कि कृष्ण-मत की साम्प्रदायिक स्थापना ख्याति-प्राप्त कर समकक्षता में आकर प्रतिद्वन्द्वितापूर्वक आगे जाना चाहती है। शौनक जी स्पष्टतः कहते हैं कि :—

साकारं वा निराकारं परमात्म स्वरूपकम्।
किमाकारं च तद्ब्रह्म तद्ध्यानं किं च भावनम् ॥

---

१. ब्रह्म वै० १।१।६१
२. वही १।१।६२
३. वही १।१।१४।
४. वही १।१।११-३८

ध्यायन्ते वैष्णवाः किंवा शान्ताश्च योगिनस्तथा ।
मतं प्रधानं केषां वा गूढं वेदे निरूपितम् ॥[१]

यहाँ उपर्युक्त प्रश्न में यह असन्दिग्धरूपेण सिद्ध है कि कृष्णार्चा प्रधान मतों में है ।

इस प्रसंग में यदि हम श्री कृष्ण-जन्माष्टमी-व्रत-विधान पर दृष्टिपात कर लें ता कृष्ण-पूजा समाज में संव्याप्त है इसके निर्णय करने में भी सरलता होगी ।

जन्माष्टमी पूजन के प्रसंग में निर्देश है कि :—

घटस्यारोपणं कृत्वा सम्पूज्य पंच देवताः ।
घटेह्यावाहनं कृत्वा श्रीकृष्णं परमेश्वरम् ।
वसुदेवं देवकीं च यशोदां नन्दमेव च ॥

रोहिणीं बलदेवं च षष्ठीदेवीं वसुन्धराम् ।
रोहिणीं ब्रह्मिणीं चैव अष्टमीं स्थान देवताम् ।

अश्वत्थाम्ना सहबलिं हनूमन्तं विभीषणम् ।
कृपं परशुरामं च वेदव्यासं मृकण्डजम् ॥

सर्वस्यावाहनं कृत्वा ध्यानं कुर्याद्धूरे स्तदा ।"[२]

उक्त पूजा प्रसंग में कुछ अन्य भी देव-देवियों का नाम आगे वर्णित कर इसे पुनः परिष्कृत एवं परिवर्धित किया गया ।

सुनन्द नन्द कुमुदान् गोपान् गोपींश्च राधिकाम् ।
गणेशं कार्तिकेयं च ब्रह्माणं च शिवं शिवाम् ॥

लक्ष्मीं सरस्वतीं चैव दिक्पालांश्च ग्रहांस्तथा ।
शेषं सुदर्शनं चैव पार्षद-प्रवरांस्तथा ॥

सम्पूज्य सर्वदेवांश्च प्रणम्य दण्डवद् भुवि ।
ब्राह्मणेभ्यश्च नैवेद्यं दत्त्वा दद्याच्च दक्षिणाम् ॥[३]

इस व्रत-विधि की आवश्यकता तभी हुई जबकि व्रत का अस्थिर रूप श्रद्धा-भाजन हुआ हो । राधा-अष्टमी आज राधा सम्प्रदाय के लोग बड़ी धूम से मनाते हैं किन्तु ब्रह्म-वैवर्त ने कृष्ण जन्माष्टमी की भाँति राधा-अष्टमी का कोई प्राविधान नहीं किया है । आजकल सन्तोषी माता का व्रत प्रचलित हो रहा है । सम्भव है कि भक्त समाज इसका भी कोई स्रोत ढूँढ़ निकाले जैसा कि सन्तोषी व्रत-कथा एवं उसके उद्यापन की विधि तो निश्चित हो ही गयी है । सन्तोषी देवियों में तो मान ही ली गयी है । यहाँ यह स्मरणीय है कि अभी राधा-अर्चा का विकास नहीं हुआ था ।

---

१. ब्रह्म वै० १।१।१८-१९ २. वही ४, १।८।१४-१८ ३. वही ४, १।८।४४-४६

श्री कृष्ण के महत्व-वर्णन के सम्बन्ध में श्री विष्णु का साम्य उनसे करके पुनः उन्हें उत्तमोत्तम सिद्ध किया गया है ।

नारद से नारायण ने कहा है कि—

ब्रह्मेश शेष विघ्नेशाः कूर्मो धर्मो हमेव च ।
नरश्च कार्तिकेयश्च श्री कृष्णां नव ॥

सूकरो वामनः कल्कि बौद्धः कपिल मीनकौ ।
एते चांशाः कलाश्चान्ये सन्त्येव कतिधामुने ॥

कूर्मो नृसिहो रामश्च श्वेतद्वीप विराड्विभुः ।
परिपूर्णतमः कृष्णो वैकुण्ठे गोकुले स्वयम् ॥

वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूप भेदाच्चतुर्भुजः ।
गोलोके गोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजः स्वयम् ॥

अस्यैव तेजो नित्यं च चित्ते कुर्वन्ति योगिनाः ।
भक्ताः पादाम्बुजं तेजः कुतस्तेजस्विनं विना ॥[1]

उपर्युक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकालने में कोई काठिन्य नहीं कि ब्रह्मा, शिव, शेष, गणेश, कूर्म, धर्म, नारायण, नर, कार्तिकेय, वराह, वामन, कल्कि, बौद्ध, कपिल, मीन, नृसिंह, राम और चतुर्भुज विष्णु ये सभी कृष्ण के ही अंश हैं ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के वर्ण्य श्री कृष्ण भौतिक दृष्टि से ग्राह्य होते हुए भी सकल आध्यात्मिक उपलब्धि के प्रदाता नराकार और निराकार भी हैं । यही कारण है कि कृष्ण-भक्त उनकी जाति और वंशानुक्रम आदि पर ध्यान नहीं देते । किन्तु कृष्ण की ऐतिहासिकता में भी कोई सदेन्ह नहीं है ।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विचार करते हुए हम सर्वप्रथम डा० भाण्डारकर के कथन पर दृष्टि डालना उचित समझते हैं । उन्होंने इस सम्बन्ध में विस्तृत समीक्षा[2] की है । डा० भाण्डारकर ने महाभारत, मौसल पर्व के सातवें अध्याय की एक घटना का, जिसमें अर्जुन पर, जो कि द्वारिका से कुरुक्षेत्र जा रहे थे, आक्रमण किया गया, वर्णन किया है । वृष्णि वंश के पुरुषों का अन्त हो चुका था । अर्जुन इनकी स्त्रियों को रक्षा एवं पालन की दृष्टि से ले जा रहे थे । मार्ग में अर्जुन को रोककर गोपियों को लूट ले गये । ये लूटने वाले आभीर थे ।

ये आभीर जाति के लोग मधुवन से, जो मथुरा के निकट है, अनूप और आनर्त तथा द्वारिका तक बसे हुए थे । ये आभीर लुण्ठक एवं म्लेच्छ थे । ये पंचनद सम्भवतः पंजाब के निकट के निवासी थे । विष्णु पुराण इन्हें अपरान्त अथवा कोंकण

१. ब्रह्म वै० ४, १।६।१०-१५

२. वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड माइनर रिलोजन्स, पृ० ३७-३८

और सौराष्ट्र का निवासी मानता है। वराह मिहिर भी इसी कथन का समर्थन करते हैं। यद्यपि उन्हें दाक्षिणात्य (ब्र० सू० १४।१२) और दक्षिण पाश्चात्य (ब्र० सू० १४।१८) भी माना गया है। प्रारम्भ में ये भ्रमण करने वाले (Nomads) थे। पश्चात्काल में ये देश के पंजाब की पूर्वी सीमा से मथुरा के पार्श्वों तक तथा दक्षिण में सौराष्ट्र या काठियावाड़ तक बसे। ये सम्पूर्ण राजपूताना के उत्तर-पूर्वी भाग में फैले। इन्होंने विशेषत: गोपालन का व्यापार किया। कुछ समय के पश्चात् इनके उत्तराधिकारी अहीर कहलाए। इन अहीरों को डा० भाण्डारकर ने बढ़ई, स्वर्णकार, गोपाल और पुरोहित का भी व्यवसाय करने को लिखा है किन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि ऐसे अहीर कहाँ रहते हैं। क्योंकि इधर के अहीरों में पुरोहित-कर्म, स्वर्णाभूषण बनाने आदि का वर्णन जिस आधार पर किया है उसकी कोई चर्चा नहीं है और न तो ऐसी कोई शाखा कहीं दिखाई सुनाई ही पड़ती है। अपने को कृष्ण का वंशज मानने वाले ऐसे लोग मुरैना भिण्ड, ज़िला जयपुर में माड़ी जाति के लोग हैं जो आज भी सौ-सौ गायें रखते हैं। सम्भवत: डाक्टर साहब का इन्हीं के प्रति संकेत है। इनकी स्त्रियाँ आज भी अर्धनग्न रहती हैं, अपेक्षाकृत स्वतन्त्र भी होती हैं।

डा० भाण्डारकर ने आभीर जाति के इतिहास में पुरातत्त्व प्रमाणों की भी चर्चा की है। आभीर-राज ईश्वरसेन के राज्य के नवें वर्ष का एक शिला लेख मिला है। यह शिला लेख नासिक में उपलब्ध हुआ। ईश्वरसेन शिवदत्त का पुत्र था। ईश्वर सेन का राज्य मराठा प्रदेश के उत्तरी भाग में था। एक अन्य शिला-लेख का भी वर्णन डा० भाण्डारकर ने किया है जिसे उन्होंने पूर्वोक्त शिला-लेख के ढंग से मिलता-जुलता बताया है। यह शिला-लेख गुन्द, काठियावाड़ में मिला है। इसमें रुद्र-भूति के दानों का वर्णन किया गया है। रुद्रभूति को लेख में आभीर बताया गया है। यह शिलालेख रुद्रसिंह नामक एक क्षत्रप राजा का है जिसमें शक संवत् १०२ दिया गया है। यह ईसवी १८० सन् है। आभीरों ने उच्च राजनीतिक स्थितियों का भी आनन्द लिया। डा० भाण्डारकर का विचार है कि वे ईसा प्रथम शताब्दी में अपनी भ्रमणशीलता छोड़कर भारत के ग्रामों नगरों में अवस्थित हो चुके थे। डा० भाण्डारकर का अनुमान है कि बाल-गोपाल की पूजा इन्हीं आभीरों की देन है।

उपर्युक्त वर्णनों के अतिरिक्त डा० भाण्डारकर ने जो कृष्ण के सम्बन्ध में परिकल्पना की है वह अद्भुत-सी लगती है। उनका विचार है कि इसी भ्रमणशीला-जाति ने भारत में आकर बाल-कृष्ण की पूजा का समावेश किया। गोवा निवासियों और बंगालियों के उच्चारण का उदाहरण देते हुए भी उन्होंने बताया कि वे कृष्ण को क्रुस्टो या कुस्टो बोलते हैं। इसी प्रकार आभीरों का क्राइस्ट ही संस्कृत में कृष्ण हो गया।

डा० भाण्डारकर ने रासक्रीड़ाओं को भ्रमणशीला आभीर जाति की स्वच्छन्द निरंकुश मैथुनी प्रवृत्ति का द्योतक बताया है जिसकी वासुदेव कृष्ण के चरित्र में उत्तर-

कालीन विकास के उच्चतम चरित्र का आध्यात्मिक रूप दिया गया है। डा० भाण्डारकर ने बताया कि वे आभीर भ्रमणशील थे अत: उन्होंने अपने विकास एवं प्रजनन के लिए आर्य जाति में मिलना एवं मैथुनी सम्बन्ध की छूट देना आवश्यक समझा। यद्यपि उनकी सुन्दरी गोपियों का लाभ उनके पड़ोसियों ने भी उठाया होगा।

उपर्युक्त दोनों अनुच्छेदों में डा० महोदय ने जो बात कही है वह सत्य पर आधारित भले न हो किन्तु अंग्रेजों और उनके भक्तों को अच्छी बहुत लगी होगी क्योंकि उक्त कथन से श्री कृष्ण, जो हिन्दू जाति का आदर्श था, वह ईसामसीह प्रमाणित हो गया। क्रिश्चियन धर्म फैलाने का अच्छा आधार मिल गया। अन्त के दूसरे अनुच्छेद से कैबरे नृत्य का समर्थन हो गया। ईसाइयों का मनमाना सिद्धान्त निकल आया। डा० साहब को अवश्यमेव महती प्रतिष्ठा प्राप्त हुई होगी। किन्तु शिलालेख के अतिरिक्त उपर्लिखित अन्य आनुमानिक कथन डाक्टर साहब की कोरी कल्पना है। प्रमाणहीन एवं निराधार है। ग्राउस (Growss) ने भी अपनी पुस्तक 'मथुरा-ए डिस्ट्रिक्ट मेमोयर्स, में इस तथ्य का प्रतिपादन किया है।[1]

कृष्ण नाम भारत में वैदिक-काल में भी प्रसिद्ध था। इस तथ्य को आदरणीय डाक्टर साहब स्वीकार करते हैं।[2] यद्यपि वहाँ इस कृष्ण कथा का कोई रूप नहीं है, किन्तु दीक्षाकाल में छान्दोग्योपनिषद् में देवकी पुत्र कृष्ण को गुरु घोर आंगिरस से ब्रह्मविद्या सीखते हुए वर्णित किया गया है।

तदेतद् घोर आंगिरस: कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वोवाच, एव स बभूव' सोन्तवेलायमित प्रतिपद्येत। अक्षितमसि, अच्युतमसि, प्राणसंरक्षितमसीति।[3]

हापकिन्स इस छान्दोग्य उपनिषद को बौद्धकाल के पूर्व का प्रमाणित करते हैं। श्री मैकडानल[4] और श्री मित्र[5] भी इसी का समर्थन करते हैं। घोर आंगिरस का उल्लेख कौषीतकि ब्राह्मण[6] और काठक संहिता[7] में भी है।

श्री जैकोबी की जैनसूत्राज पार्ट-प्रथम, पृ० २७७-७९ और पार्ट २, पृ० ११२-१९ के अनुसार बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि कृष्ण के समकालीन थे। जैनियों के तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का समय ईसा पूर्व ८१७ माना जाता है अत: ईसा पूर्व नवीं शताब्दी तक कृष्ण की स्थिति पहुँच जाती है। इस प्रसंग में एक प्रतिक्रिया का स्मरण कर लेना उचित है। कृष्ण ने अरिष्टासुर का वध किया है और ललित विस्तर में एक कृष्णासुर की भी कल्पना है।

---

१. तृतीय संस्करण, पृ० ६९, ७०, ७५   २. भागवत धर्म, पृ० २८२, २८३
३. छान्दोग्य० ३।१७।६-७   ४. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २२६
५. इण्ट्रोडक्शन टु छान्दोग्योपनिषद्, पृ० २३-२४
६. कौषीतकि ब्राह्मण ३०।६   ७. काठक संहिता १।१

डा० भाण्डारकर के वासुदेव एवं गोपाल कृष्ण को भिन्न मानने वाले सिद्धान्त की भाँति विण्टरनित्स भी कृष्ण के चार पृथक् व्यक्तित्व का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। (हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, वाल्यूम प्रथम, पृ० ४५६-५७)

१. पाण्डवों के सलाहकार कृष्ण।

२. पौराणिक कृष्ण।

३. गीता के उपदेशक कृष्ण।

४. गोपाल कृष्ण।

विद्वान् 'केनेडी' ने भी गुर्जरों के द्वारा पाँचवीं शताब्दी में उत्तर-पश्चिमी भारत में कृष्ण की संस्कृति लाई गयी बताया है।[1]

वेबर ने बौद्ध और जैन ग्रन्थों में कृष्ण के मानव चरित्र के प्राधान्य की सूचना दी है।[2]

यहाँ श्री कृष्ण के व्यक्तित्व के आधार पर उनके बहुत्व कल्पना का कोई ठोस आधार नहीं है। अतः भारतीय विद्वान् इस पार्थक्य को कोई महत्व नहीं देते। जहाँ तक विद्वन्मूर्धन्य भाण्डारकर की बात है उसमें गोपालकृष्ण के पृथक् अस्तित्व के सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि वासुदेव कृष्ण एवं गोपाल कृष्ण में कोई विभिन्नता नहीं है। यह दोनों संज्ञाएँ एक ही कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुई हैं। डा० महोदय का यह विचार कि ऐसी जाति जिसने गोपालन को अधिक प्रतिष्ठा दी उसने गोपाल को ईश्वर का रूप देकर उत्तरोत्तर बढ़ा कर कृष्ण को ईश्वर के रूप में स्थित किया हो, सत्य नहीं प्रतीत होता। क्योंकि भारत में वैदिक-काल से ही गोपालन अथवा गोसेवा महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक काल के सर्वश्रेष्ठ देवता इन्द्र को सामवेद में अश्वपति, उर्वरापते के साथ ही गोपते भी कहा गया है।

१. आयाह्ययमिन्दवे श्वपते गोपते उर्वरापते।
सोम सोमपते पिब।[3]

२. स्तोता इन्द्र से प्रार्थना करता है कि गोसखा के द्वारा उसकी प्रशंसा हो।

यदिन्द्राहं यथात्वमोशीय वस्व एकइत्।
स्तोता मे गोसखा स्यात्।[4]

ऋषि बार-बार अपने कथनों में 'गावो वत्सं नधेनवः' (बछड़ों के पीछे गायों

१. जे० आर० ए० एस० १९०७, पृ० ९७६

२. वेबर : आई० ए०, वाल्यूम ३० (१९०१), पृ० २८०

३. पू० प्र० ५ (२) द० २।४, ११ सामवेद

४. सामवेद। पू० प्र० १ (२) द० ३।८

की भाँति)[1] स्मरण करता है। अतएव उक्त आदरणीय विद्वान् की यह कल्पना कि भारत में गोपालन-प्रतिष्ठित होने पर गोपाल कृष्ण, जो वासुदेव-कृष्ण से पृथक् हैं, को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, उचित नहीं है।

रे चौधरी ने सुदूर वेदों के अन्तर्गत विष्णु के नटखट स्वरूप में बालकृष्ण के बीज की उपस्थिति बतलाई है।[2]

प्रतद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगोनभीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यश्चोरुषुत्रिषु विक्रमणेष्वधिषिचन्ति भुननानि विश्वा ॥[3]

उक्त मन्त्र में कुचर और गिरिष्ठा में कृष्ण की बाललीलाओं का आभास बताया है।[4]

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णु र्गोपा अदाभ्यः।

इस मन्त्र में गोपा शब्द विष्णु से उनके निकट सम्बन्ध की कल्पना देता है। मैकडानल और कीथ ने भी 'गोपा' से गोपालक (प्रोटेक्टर आफ काऊज़) की कल्पना की है।[5] हापकिन्स ने भी गोप (हर्डस्मैन) ही अर्थ स्वीकार किया है।[6] इस प्रकार भारतीय विद्वानों के साथ-साथ पाश्चात्य विद्वानों का भी विचार गो गोप और कृष्ण का सम्बन्ध पुष्ट करता है।

ऋग्वेद में परम उच्च लोक में गायों को प्रतिष्ठित किया गया है।

तावां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावोभूरिशृंगा अयासः।
अत्राहत दुरुगायस्य कृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥[7]

यद्यपि डा० भाण्डारकर ने भी कृष्ण का पर्याय गोविन्द को माना है किंतु उसे उन्होंने पाणिनि के वार्तिक से गृहीत बताया है। किन्तु डाक्टर साहब ने सम्भवतः इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि सूत्र—'अनुपसर्गाल्लिम्प विन्दधारि पारिवेद्युदेजि चेतिसाति साहिभ्यश्च[8]' से गोविन्द की सिद्धि न होते देखकर इसी सूत्र का पूरक एक वार्तिक—'गवादिषु विन्देः संज्ञायाम्' वार्तिककार ने लिखा जिसके द्वारा गोविन्द अरविन्द आदि शब्दों की सिद्धि हो गयी। इस प्रकार गोविन्द का प्रयोग वार्तिक के पूर्व प्रचलित हो चुका था जिसकी सिद्धि का साधन स्वरूप वार्तिककार को

---

१. सामवेद पू० प्र० । (२) द० १, पू० प्र० ३ (३) द० १, का पू० प्र० ४ (१) द० १।८
२. हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पू० ४६-४८
३ ऋग्वेद १।५४।२
४. वही १।२२।१८.
५. वैदिक इण्डेक्स, वाल्यूम प्रथम, पृ० २३८
६. रिलीजन्स आफ इण्डिया, पृ०५७
७. ऋग्वेद १।१५४।६
८. पाणिनि ३।१।१३८

उक्त वार्तिक लिखना पड़ा। सामवेद में गोविन्द[1] शब्द का प्रयोग किया गया है। पाणिनि[2] ने विन्दुरिच्छुः सूत्र से विन्दु शब्द को सिद्ध किया है जो बिन्दु से पृथक् है।

इस प्रकार गोविन्द शब्द ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी में भी व्यापक हो चुका था। डा० भाण्डारकर पाणिनि का समय ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी मानते हैं।[3] यद्यपि हापकिन्स तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से पहले नहीं स्वीकार करते। गोल्डस्टूकर पाणिनि को अन्तिम सूत्रों के काल का बतलाते हैं किन्तु रे चौधरी ने अपने 'हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट में[4] पाणिनि का काल पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व स्वीकार किया है।

अतः भारतीय साहित्य में ईसा पूर्व कई सौ वर्ष पहले ही गोविन्द अथवा गोपाल की प्रतिष्ठा में कोई सन्देह नहीं हो सकता है।

पाणिनि ने अपने सूत्रों में अन्धक और वृष्णि शाखाओं का भी नाम लिया है।

ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च[5]

बौधायन धर्मसूत्र में विष्णु को गोविन्द और दामोदर कहा गया है।[6]

समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में विष्णुगोप शब्द का उल्लेख है। यह गोपाल कृष्ण और विष्णु के सम्बन्ध को प्रमाणित करता है। अतः गोपाल कृष्ण को विदेशी संस्कृति की देन मानने वाले विद्वानों का विचार अग्राह्य होना चाहिए।

पाणिनि की अष्टाध्यायी में कृष्ण-पूजा के सर्वमान्य रूप का भी दर्शन हमें हो जाता है। भक्तिः[7] तथा वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्[8] में वासुदेव के भक्तों का उल्लेख है।

कृष्ण के सम्बन्ध में विचार करने हुए दो विदेशी इतिहासकारों की भी चर्चा करना उचित होगा जो कि यहाँ आकर नगर आदि के प्रत्यक्षदर्शी थे। ये दोनों मेगास्थनीज तथा एरियन थे। एरियन ने कृष्ण को (Herakles) नाम दिया है और उन्हें मथुरा (Methora) और (Cleisobroa) के निवासी नागरिकों का आदर का पात्र बताया है। इन दोनों नगरों का तादात्म्य लाजन, हापकिन्स और मैक्रिण्डले ने मथुरा और कृष्ण पुर से सिद्ध किया है। (Joberes) यमुना का बोधक तथा (Saursenoi) से डा० भाण्डारकर ने सात्वत का अनुमान लगाया है। अन्तिम शब्द

---

१. सामवेद मन्त्र संख्या ११७७। उत्तरार्चिक नवम अध्याय प्रथम खण्ड।३११
(चमूषच्छ्येनः शकुनोविभृत्वागोविन्दु द्रंप्सआयुधानि बिभ्रत्।
अपामूर्तिसचमानः समुद्रं तुरीयंधाम महिषो विवक्ति)॥

२. पाणिनि ३।२।१६९ ३. ई० एच० डी०, पृ० ८, डा० भाण्डारकर

४. रे चौधरी : हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० २८-३०

५. पाणिनिसूत्र ४।१।११४ ६. रे चौधरी : हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० ४७

७. पाणिनि ४।३।९५ ८. वही ४।३।९८

शौरसेनी स्पष्टतः शूरसेन के जनपद का बोधक है । इस प्रकार उक्त इतिहासकारों के समय में आज की भाँति हरिकृष्ण पूजा मथुरा और कृष्णपुर (सम्भवतः वृन्दावन) में पूर्णतः प्रचलित थी । उक्त इतिहासकारों का काल रे चौधरी के अनुसार ईसवी पूर्व चतुर्थ शताब्दी से पहले का है ।[1]

नारद भक्ति सूत्र में व्रजगोपियों का स्मरण किया गया है—'यथा व्रज-गोपिकानाम्' ।२१॥

शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में भी गोपियों का उदाहरण दिया गया है—

अतएव तद् भावाद् बल्लवीनाम् ।१।२।५॥

तीन सौ चौथे ईसवी वर्ष में जेनाब नामक एक इतिहासकार ने बताया है कि ईसा पूर्व १४९-१२० में भाग कर आर्मीनिया में बसने वाले कुछ भारतीयों ने गिषने (कृष्ण) का मन्दिर बनवाया था । इस आधार पर ज्ञात होता है कि कृष्ण पूजा ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में व्यापक हो चुकी थी ।[2]

महर्षि पतंजलि ने भी 'जघान कंसं किल वासुदेवः' व्यामिश्राः दृश्यन्ते, केचित् कंसभक्ताः भवन्ति, केचित् वासुदेव-भक्ताः भवन्ति ।' कृष्ण का उदाहरण स्वरूप स्मरण किया है । अतः महर्षि के पूर्व कृष्ण भक्तों की सिद्धि में सन्देह नहीं होता ।

अथर्ववेद के ११॥८।७ और ११।७।२४ के मन्त्रों में पुराण शब्द का पाठ है । विष्णु पुराण के अंग्रेजी अनुवादक मिस्टर एच० विलसन ने भी पुराणों के सम्बन्ध में लिखा है—

क्राइस्ट व ईसा के तीन सौ वर्ष पूर्व तो पुराणों की रचना हुई ही है किन्तु इस विषय में और जो प्रमाण देखे जाते हैं उनसे तो और भी अधिक दिनों की क्या, पुराणों की इतनी प्राचीनता सिद्ध की जा सकती है जो बात पृथ्वी की किसी भी जाति की कल्पना में आ सकती है ।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी राधा की कल्पना को अतिप्राचीन स्वीकार किया है ।[3] महाकवि भास ने, जो कि तृतीय ईसवी शताब्दी के हैं, बाल-चरित नाटक में कृष्ण एवं राधा का वर्णन विस्तार के साथ किया है । तृतीय शताब्दी के साहित्यकार द्वारा रचना में समावृत तत्व होने के आधार पर कवि के दो सौ वर्ष पहले से प्रचलित मान लिया जाय तो गोपाल का समय डा० भाण्डारकर के अनुमान के साथ अर्थात् प्रथम शताब्दी में संगत हो जाता है ।

---

१. हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० ३८

२. रे चौधरी : अर्ली हिस्ट्री आफ वैष्णव सेक्ट, पृ० २३

३. पुराण विमर्श—च० परि०, पृ० १५२

कृष्ण के सम्बन्ध में विचार करते हुए हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते कि कृष्ण अथवा राधा शब्द का प्रयोग वेद में अवश्य हुआ है किन्तु इन संज्ञाओं के व्यक्तिगत अभिप्राय से उन प्रयोगों का कोई सान्निध्य नहीं। ये वैदिक प्रयोग नन्दपुत्र अथवा वृषभानुनन्दिनी से नितान्त असम्बद्ध हैं। यद्यपि राधा शब्द की व्युत्पत्ति के प्रसंग में सामवेद की ओर संकेत किया गया है किन्तु निर्वचनात्मक रूप अथवा भावग्राह्यता जो भी हो तथापि तथाकथित कथात्मक प्रसंगों की कहीं झलक भी नहीं मिलती।

पाणिनि के 'बाह्वादिभ्यश्च' ४।१।८६ सूत्र में बाह्वादिगण में कृष्ण की भी गणना है और 'नडादिभ्य: फक्' ४।१।६८ सूत्र में भी कृष्ण और रण शब्द ब्राह्मण वशिष्ट के शाखान्तर्गत गोत्रार्थक हैं। इस प्रकार कृष्ण से चलने वाली एक ब्राह्मण-गोत्रेय शाखा भी है।

कृष्ण शब्द कृष्ण वर्ण का भी बोधक है। महाभारत नारायणीय पर्व, अध्याय ३४२।७६ में कृष्ण स्वयं स्वीकार करते हैं कि—

कृष्णभिमेदिनो पार्थं भूत्वा कार्ष्णायसो महान्।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात् तस्मात् कृष्णोऽहमच्युत ॥

श्री कृष्ण का युगानुकूल तीन रंग श्रीमद्भागवत में स्वीकार किया गया है।[1]

वेद में 'आकृष्णेन रजसा वर्तमानो' में उक्त से भिन्न आकर्षण अर्थ में भी प्रयोग हुआ है।

ब्रह्मवैवर्त में कृष्ण शब्द का प्रयोग पराशर सुत[2] के अर्थ में और कृष्णवर्णार्थक भी स्वीकार किया गया है।

कृष्णवर्णः कलौ श्रीमांस्तेजसां राशिरेव च।
परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥[3]

यहाँ हम जिस ब्रह्मवैवर्तीय कृष्ण का विवेचन कर रहे हैं वह दर्शन में कृष्ण वर्ण का होते हुए भी सूर्य-चन्द्र, सृष्टि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश सबका कर्ता-धर्ता है। वह गुणातीत होते हुए प्रकृति ब्रह्मा विष्णु शिव आदि क्या, परब्रह्म का भी विधायक है।[4]

---

१. आसन्वर्णास्त्रयोह्यस्य
शुक्लोरक्तस्तथापीत इदानीं कृष्णतांगतः।
श्रीमद्भागवत १०।८।१३

२. ब्रह्मवै० १।१० ३. ब्रह्मवै० ४।१३।५६

४. वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः।
पराशरसुतः श्रीमान् कृष्ण द्वैपायनो हरिः ॥

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते ।[1]

तथा

प्रजापतिश्चरति गर्भेन्तर् जायमानो बहुधा विजायते ।[2]

आदि मन्त्रों में पुरु रूप ग्रहण करने वाले इन्द्र तथा बहुधा विजायमान प्रजापति सबका वही कृष्ण रचयिता है। उसके एक लोम विवर में एक विश्व समा सकता है। स्थूल से भी स्थूल उससे महत्तर कोई नहीं है। महाविष्णु, जो सर्वाधार हैं, वह भी कृष्ण का षोडशांश ही है।[3] त्रिकोटि देवताओं के जनक श्री कृष्ण ही हैं।[4] नवधा भक्ति, षड्विधा मुक्ति, अष्टादश सिद्धि, यश, कीर्ति, सत्यवचन, विविध-धर्म, अनशन, सर्वतीर्थ भ्रमण, अन्य देव-पूजा; देव-पूजादर्शन, सप्तद्वीपों की सप्त प्रदक्षिणा, सर्वसमुद्र-स्नान, सर्वस्वर्गदर्शन, ब्रह्मत्व, रुद्रत्व, परंपद अथवा इनसे भी अवर्णनीय पद श्री कृष्ण भक्ति के षोडशांश के भी सदृश नहीं हो सकते हैं।[5]

श्रीमद्भागवतकार ने भी अन्य अवतारों की अपेक्षा कृष्ण को श्रेष्ठतम बताया है :—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारि व्याकुलं लोकं मृगयन्ति युगे-युगे ।[6]

यही कारण है कि वे गुरु, तात, स्वामी एवं सुत कुत्सित हैं जिनसे कृष्ण-भक्ति न मिले।

स किं गुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः ।
यः श्रीकृष्ण पदाम्भोजे भक्ति दातुमनीश्वरः ॥[7]

अतएव सज्जन परमैश्वर्य को भी छोड़ कर श्री कृष्ण के पाद-पद्म का ही सदा ध्यान करते हैं :—

तस्मात्सन्तः स्वयं त्यक्त्वा परमैश्वर्य मीप्सितम् ।
ध्यायन्ते सततं कृष्ण पादपद्मं निरापदम् ॥[8]

श्री कृष्ण अपने भक्तों के शुभाशुभ कर्मों का कृन्तन कर देते हैं—

पुरातनं कृतं कर्म यद्यत्तस्यशुभाशुभम् ।
छिनत्ति कृष्णश्चक्रेण तीक्ष्णधारेण सन्ततम् ॥[9]

उन्हीं कृष्ण के भय से वायु प्रवाहित होता है, सूर्य तपता है। उनकी आज्ञा से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और विष्णु रक्षा करते हैं। उन्हीं की आज्ञा से शंकर संहार

---

१. ऋग्वेद ६।४७।१८ २. यजुर्वेद ३१।१९ ३. ब्रह्म वै० १।१।४
४. ब्रह्म वै० १।४।२५-२६ ५. वही १।५।७६ ६. श्रीमद्भाग० १।३।२७
७. ब्रह्म वै० १।८।६१ ८. वही १।१३।४९ ९. वही १।१४।६३

करने हैं, कर्मों के साक्षी धर्म उनकी आज्ञा के पालक हैं। सभी ग्रह उनके ही शासन से राशि चक्र का गमन करते हैं। दिक्‌पाल भी उन्हीं के आदेशों का पालन करते हैं। उन्हीं की आज्ञा से तरुगण पुष्प और फल देते हैं, जलधारा बरसती है, वसुन्धरा सबको धारण करती है। प्रकृति उससे भय करती है। वेद भी जिसका अन्त नहीं जानते हैं। वह सर्वेश्वर काल का भी काल, मृत्यु की भी मृत्यु, परं से भी परे है। अत: कृष्ण का चिंतन करो।[1]

ब्रह्मा एक लाख युग तक श्री कृष्ण का तप किये तो वे ज्ञानी हुए और जगत् की सृष्टि करने में समर्थ हो सके।[2]

शिव भी अपने को कृष्ण की एक उत्तम कला बताते हैं। वे भी उनका पार पाने में अपने को असमर्थ पाते हैं—

अहं कलानामृषभः कृष्णस्य परमात्मनः।
पारं महिम्नः को गच्छेन्न जानामि किं चन ।।[3]

ब्रह्मा विष्णु शिव आदि, ये चराचर और अनेकों सुरलोक ये सभी न जाने कितने हैं, ये विभिन्न विश्वों में विस्तृत हैं। इन विश्वों और देवों की संख्या का कोई अन्त नहीं है। इन सबके स्वामी भक्तानुग्रह विग्रह श्री कृष्ण ही हैं। श्री कृष्ण गोलोक में राधाकान्त के रूप में द्विभुज हो द्विभुज गोप पार्षदों और गोपांगनाओं से सेवित रहते हैं। गोलोक सबसे ऊपर अवस्थित वैकुण्ठ लोक से ऊपर पचास कोटि योजन विस्तार का है। श्री कृष्ण नवीन नीरद जैसे श्याम, पीताम्बरधारी और किशोरवय से युक्त सस्मित मुख हैं।[4] श्री कृष्ण गोपांगना परिवृत तथा रास मध्यस्थ राधा द्वारा सेवित गोप वेष में रम्य वृन्दावन में अवस्थित हैं। वे गोलोक में पारिजात वन में विरजा तट पर शिशु रूप में कामधेनुवृन्द की रक्षा करते हुए वंशी बजाते हैं। उनके वेणुवादन से गोपियाँ विमुग्ध हो जाती हैं।[5]

गणेश को भी स्वयं कृष्ण का अवतार कहा गया है।[6] परमात्मा के वाक् बुद्धि विद्या और ज्ञान की अधिदेवता सर्वविद्या स्वरूप सरस्वती रत्नमाला से सदा कृष्ण जप करती हैं। प्रकृति वर्णन में सरस्वती को तृतीया शक्ति बताया गया है।[7] इसी प्रसंग में राधा को, जो प्रकृति-वर्णन में पंचमी देवी कही गई हैं, प्रेम प्राणाधिदेवी पंचप्राणस्वरूपिणी प्राणाधिक-प्रियतमा सर्वाद्या, परमानन्दरूपा कहा गया है। ये राधा परमात्मा श्री कृष्ण के रास क्रीडा की अधिदेवी गोपी वेष-विधायिका एवं गोलोकवासिनी हैं। इन्हें वेदानुसार ध्यान से ज्ञात किया जाता है।[8] यहाँ यह स्मरणीय है कि राधा के प्रसंग को व्यास ने वेदों में देखने का प्रयास किया होगा। राधः राधासः राधानां

१. ब्रह्म वै० १।१५।४४-५४ २. वही १।१७।३१ ३. वही १।१७।४०
४. वही १।१७।५६-६४ ५. वही १।१८।१८-२५ ६. वही १।२।१५४
७. वही १।२।३१-३८ ८. वही १।२।४५-६०

आदि राध शब्द का सामवेद में पुष्कल प्रयोग हुआ है। किन्तु महाभारत तक किसी कृष्ण प्रिया राधा का दर्शन नहीं होता। पात्रों चरित्रों की महानिधि महाभारत में राधा की असम्भावना स्पष्ट प्रमाणित करती है कि राधा महाभारत काल के पश्चात्कालीन विचारधारा की देन है।

प्रकृति खण्ड में वर्णित है कि कृष्ण शक्ति राधा ने कृष्ण से गर्भ धारण किया। राधा सौ मन्वन्तरों तक ब्रह्म तेज से देदीप्यमान अथवा प्रतप्त रही। तदनन्तर स्वर्णाभ अण्डे को उत्पन्न किया। उस अण्डे को देखकर राधा अति दुःखी हुई। क्रोध से उस अण्डे को जल में उत्सर्ग कर दिया। इस प्रकार के प्रक्षेपण से श्री कृष्ण ने अति रुष्ट होकर राधा को शाप दिया कि 'कोपशीले ! तूने सन्तान परित्याग किया है अतः तू सन्तानहीन ही रहे। और तुम्हारे अंशरूप जो अन्य भी स्त्रियाँ होंगी वे भी अपत्यहीन ही रहेंगी।'[1]

इसी अवसर पर श्री कृष्ण का दक्षिणार्धाङ्ग द्विभुज श्री कृष्ण रूप और वामार्धाङ्ग चतुर्भुज श्री कृष्ण रूप हुआ। यही चतुर्भुज श्री कृष्ण[2] वैकुण्ठ लोक के स्वामी हैं।

द्विभुज श्री कृष्ण के लोम विवर से वय और तेज में समान असंख्य गोप उत्पन्न हुए। ये सभी गोप पार्षद श्री कृष्ण के प्राण तुल्य हुए।

अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतां मुने।
आसन्नसंख्य गोपाश्च वयसो तेजसा समाः॥
रूपेण सगुणेनैव वेषाद् वा विक्रमेण च।
प्राणतुल्याः प्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदाः विभोः॥[3]

ब्रह्मा सावित्री के साथ श्री कृष्ण की स्तुति कर रहे थे कि द्विभुज कृष्ण का वामाङ्ग महादेव तथा दक्षिणार्धाङ्ग गोपिका पति के रूप में हो गये।[4]

श्री कृष्ण के सम्मुख राधा ने जिस हिरण्याभ अण्डे को जल में प्रक्षिप्त कर दिया था वह ब्रह्मा की एक आयु बीतने पर फट पड़ा। उससे महाविराट् देव उत्पन्न हुआ। ये श्री कृष्ण के षोडशांश महाविष्णु असंख्य विश्वों के आधार हैं।[5] इसी महाविष्णु के नाभि पद्म से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है।[6] महाविष्णु को विराट् भी कहा गया है, जिसे बालक रूप में श्री कृष्ण-कृपा प्राप्त होती है।[7] उपर्युक्त वर्णन से श्रीमद्भागवत के सृष्टि वर्णन का साम्य है। श्रीमद्भागवत में यह प्रसंग द्वितीय स्कन्ध पंचम अध्याय में है।

---

१. ब्रह्म वै० २।२।४७-५३ २. वही २।२।५६। ३. वही २।२।६२-६३
४. वही २।२।८४ ५. वही २।३।१-५
६. वही २।३।४२, वही २।३।५२-५३ ७. वही २।३।३३, ४१

दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री ये पंच प्रकृतियाँ हैं। वाणी, वसुन्धरा, गंगा, षष्ठी, मंगल-चण्डिका, तुलसी, मानसी, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा ये प्रकृति के अंश हैं। इन्हें नारायण ने रूप और गुण में अपने ही समान बताया है।[१] नारायण की रूप-कल्पना ब्रह्म वैवर्त में वर्णित है—

आविर्बभूव तत्पश्चात्स्वयं नारायणः प्रभुः।
श्यामो युवा पीतवासा वनमाली चतुर्भुजः॥
शंखचक्रगदापद्मधरः स्मेर मुखाम्बुजः।
रत्नभूषण भूषाढ्यः शाङ्‍र्गी कौस्तुभभूषणः॥
श्रीवत्सवक्षा श्रीवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
शारदेन्दु प्रभामृष्ट मुखेन्दु सुमनोहरः॥
कामदेव प्रभामृष्ट रूप लावण्य सुन्दरः।
श्री कृष्ण पुरतः स्थित्वा तुष्टाव तं पुटाञ्जलिः॥[२]

ये नारायण एवं महाविष्णु एक हैं।[३] नारायण की उत्पत्ति भी श्री कृष्ण से ही हुई।[४] इसी प्रसंग के पूर्व

'एवं रूपं विभ्रद्भगवानेक एव सः।'[५]
'स्वेच्छया स्रष्टुमारेभे सृष्टिं स्वेच्छामयः प्रभुः।'[६]

वर्णित है। उसी श्री कृष्ण की इच्छा से सृष्टि का विस्तार होता है। इस प्रसंग पर प्रकृति खण्ड के ५४ वें अध्याय में १ से २५ श्लोक तक प्रकाश डाला गया है।

आदि काल में राधा[७] और दुर्गा[८] की उत्पत्ति श्री कृष्ण से बताई गयी है।

सुदामा नामक गोप श्री कृष्ण से ही प्रकट हुआ। राधिका के शाप से यही दानव शंखचूड हुआ।[९] यह शाप कथा ब्रह्मवैवर्त चतुर्थ खण्ड के पूर्वार्ध द्वितीय एवं तृतीय अध्यायों में वर्णित है। शंखचूड की कथा ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्ड तेरहवें अध्याय से बीसवें अध्याय तक विस्तृत रूप से वर्णित है। इसी कथा के प्रसंग में विष्णु पूजा विधि आदि २१वें २२वें तथा अध्याय में भी वर्णित है।

कालक्रम के वर्णन में सुयज्ञ और सुतपा संवाद के प्रसंग में श्री कृष्ण को निमेष-रहित बताया गया है :—

कृष्णो निमेषरहितो निर्गुणः प्रकृतोः परः।
सगुणानां निमेषश्च कालसंख्यावयोषितः॥[१०]

---

१. ब्रह्म वै० २।४।४,८ २. वही १।३।६-९ ३. वही १।४।२८
४. वही २।५४।८१-८५ ५. वही १।२।२७ ६. वही १।३।३
७. वही २।२।२८ ८. वही २।२।६६
९. वही २।१५।३०-३१; वही २।१६।१८६-२०१ १०. वही २।५४।८४

नारायण और शम्भु अपने गुणों को निर्गुण श्रीकृष्ण में लीन कर देते हैं। गोप-गोपियाँ सवत्सा गाएँ आदि प्रकृति में लीन होती हैं और प्रकृति परमेश्वर श्रीकृष्ण में लीन होती है। क्षुद्रविष्णु महाविष्णु में और महाविष्णु प्रकृति में लीन होते हैं। यह प्रकृति परमात्मा (श्री कृष्ण) में लीन होती है।

आगे श्री कृष्ण का सगुणात्मक वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्रकृति और योगनिद्रा ये दोनों श्री कृष्ण के नेत्र हैं।[1]

कृष्ण भक्तों की एक सूची दी हुई है। नाम की सूची पर विचार करते हुए विभीषण को भी कृष्ण भक्तों में पठित किया गया है जो कृष्णमय जगत को देखने का परिणाम है।

शिवः शेषश्च धर्मश्च ब्रह्मा विष्णु र्महान् विराट्।
सनत्कुमारः कपिलः सनकश्च सनन्दनः॥

वोढुः पंचशिखो दक्षो नारदश्च सनातनः।
भृगुर्मरीचि र्दुर्वासाः कश्यपः पुलहोऽङ्गिराः॥

मेधावी लोमशः शुक्रो वसिष्ठः क्रतु रेव च।
बृहस्पतिः कर्दमश्च शक्तिरत्रिः पराशरः॥

मार्कण्डेयो बलिश्चैव प्रह्लादश्च गणेश्वरः।
यमः सूर्यश्च वरुणो वायुश्चन्द्रो हुताशनः॥

अकूपार उलूकश्च नाडो जङ्गश्च वायुजः।
नर नारायणौ कूर्मं इन्द्रद्युम्नो विभीषणः॥

नवधा भक्तियुक्ताश्च कृष्णस्य परमात्मनः।
एते महान्तो धर्मिष्ठाः भक्तानां प्रवरास्तथा॥[2]

समाधि वैश्य ने कृष्ण भक्ति प्राप्त्यर्थ भगवती की आराधना की। उसने 'कृष्ण' इस दो अक्षर के ही मन्त्र का जप किया था।[3]

कृष्ण भक्तों की एक दूसरी भी सूची दी हुई है। बृहस्पति से इसे शिव बोलते हैं—

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च धर्मोऽनन्तश्च कश्यपः।
कपिलश्च कुमारश्च नर नारायणवृषो॥

स्वायंभुवो मनुश्चैव प्रह्लादश्च पराशरः।
भृगुः शुक्रश्च दुर्वासा वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराः॥

---

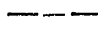
१. ब्रह्म वै० २।५४।९३-९६ २. वही २।६३।२३-२८ ३. वही २।६३।४२,४३

बलिश्च बालखिल्याश्च वरुणाश्च हुताशनः ।
वायुः सूर्यश्च गरुडो दक्षो गणपतिः स्वयम् ॥
एते पराभक्तवराः कृष्णस्य परमात्मनः ।
ये च तस्य कलाः श्रेष्ठा स्तद्भक्ति परायणाः ॥[१]

श्री कृष्ण ही गणेश के रूप में अवतरित हुए । पुण्यक व्रत के प्रभाव से गोलोक-नाथ ही पार्वती के गर्भ से गणेश हुए ।[२] इस प्रसंग में यह भी बताया है कि कृष्णमन्त्र, कृष्णव्रत सर्वकामना पूरक है । कृष्ण की चिर सेवा से भक्त कृष्णतुल्य हो जाता है ।[३]

गणेश कवच में कृष्ण के अंश गणेश का स्मरण किया गया है ।[४]

शूली शिव भी श्री कृष्ण की दी हुई विद्या द्वारा ही मृत्युंजय हैं ।[५]



१. ब्रह्म वै० २।६०।७५-७८ २. वही ३।६।६१ ३. वही ३।६।७८
४. वही ३।१३।८६; वही ३।४४।२७ ५. वही ३।४५।७६ ।

अध्याय १५

रास

रास शब्द की निष्पत्ति रस से ही होती है। रसों में श्रृंगार रसराज है, किन्तु भवभूति जैसे आचार्य करुण रस को श्रेष्ठ मानते हैं। ध्यान योगपरायण जन शान्ति की चरम अभिलाषा करते हैं। इन तीनों की समन्विति जब अध्यात्म से मिश्रित होती है तब भक्ति अवतरित होती है। इत्थं भूत कृष्ण भक्ति का ही चरम रूप रास है। अतएव किसी एक रस की ओर संकेत न करके सम्पूर्ण रसों का सम्मिश्रित चरमानन्द स्वरूप रास है। वस्तुतः रसों का निश्चयोतन भूत— चरमानन्द की अनुभूति ही रास है। रस ब्रह्मस्वरूप है। रसो वै सः। अतः रसोद्भूत भाव के परिपाक का अभिधान रास है। ब्रह्म श्रीकृष्ण की परम कृपा की अनुभूति रास में होती है। इस प्रकार योग के क्षेत्र में जो ब्राह्मी स्थिति है, वही प्रेम-भक्ति-राज्य में रास है। नारद जी ने इसी भाव को परिभाषित करते हुए 'वेदानपिसन्न्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते।' बताया है कि इस स्थिति में किसी बन्धनात्मक मर्यादा का निर्वाह जीव नहीं कर सकता।

रास के दृष्टिगोचर रूप को बताते हुए हरिवंश[1] की टीका में आचार्य नीलकण्ठ ने बताया है कि रास में एक पुरुष अनेक स्त्रियों के साथ क्रीडा करता है।

(हल्लीसक क्रीडनं एकस्यैव पुंसः बहुभिः स्त्रीभिः क्रीडनं, सैव रासक्रीडा) रास अथवा हल्लीसक नृत्य की एक ही विधा है। सरस्वती कण्ठाभरण[2] में इसे मण्डल-नृत्य का रूप स्वीकार किया गया है :—

मण्डलेन तु यत्स्त्रीणां नृत्तं हल्लीसकं तु तत्।
तत्र नेता भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥
तदिदं हल्लीसकमेवतालबन्ध विशेषयुक्तं रासइत्युच्यते।

महाकवि बाणभट्ट ने भी हर्षचरित में रास नृत्य का वर्णन किया है :—

रैणवावर्तमण्डलोरेचक रास रस रभसारब्धनर्त्तनारम्भारभटीनटाः।[3]

इसकी व्याख्या करते हुए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल[4] ने बताया है कि

---

१. हरिवंश २।२५।३५ २. सरस्वतीकण्ठाभरण २।१५६

३. हर्षचरित, द्वितीय उच्छ्वास

४. हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, द्वितीय उच्छ्वास, पृष्ठ ३२

'ज्ञात होता है कि आरभटी शैली से नाचने वाले नट मण्डलाकार रूप में रेचक अर्थात् कमर, हाथ, ग्रीवा मटकाते हुए रास नृत्य करते थे।' यहाँ इस नृत्य की पाँच विशेषताएँ कही गई हैं।

१. मण्डली-नृत्य।
२. रेचक।
३, रासरस।
४. रभसारब्ध-नर्तन।
५. चटुल-शिखा-नर्तन।

शंकर ने मण्डली नृत्य को हलीमक कहा है। इसे ही सरस्वती-कण्ठाभरण में हल्लीसक कहा गया है। डा० अग्रवाल ने अनुमान किया है कि ईसवी सन् के आस-पास यूनानी इलीशियन मिस्ट्री डांस से हल्लीसक शब्द का उद्‌भव हुआ जान पड़ता है। कृष्ण के रास नृत्य और हल्लीसक नृत्य इन दोनों की परम्पराएँ किसी समय एक दूसरे से सम्बन्धित हो गयीं।

भरत-कृत नाट्यशास्त्र में यूथ-नृत्य (रास) को आरभटी शैली के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

प्लुष्टावपात प्लुत गर्जितानि च्छेद्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्।
चित्राणियूथानि च यत्र नित्यं तां तादृशीमारभटीं वदन्ति॥[1]

डा० अग्रवाल ने हल्लीसक और रास के सम्मिश्रणात्मक रूप को आरभटी होने का अनुमान किया है :—

'यूनान के इलीशियन स्थान में होने वाले नृत्यों में भी अन्धकार, विपत्ति, मृत्यु सूचक, अनेक भयस्थान आदि उद्दाम और प्रचण्ड भाव तालबद्ध अंग संचालन से प्रदर्शित किए जाते थे। और अन्त में जब ये अंग विक्षेप जिन्हें अपने यहाँ रेचक कहा गया है, भाव की पराकाष्ठा पर पहुँचते, नाश और विपत्ति की सीमा हो जाती, तब अकस्मात् एक दिव्य ज्योति का आविर्भाव उन नृत्यों में होता था। इस प्रकार हल्लीसक और रास इन दोनों के संकर से आरभटी नृत्य शैली की उत्पत्ति ज्ञात होती है।'

रास नृत्य की संख्या के सम्बन्ध में भी संकेत उपलब्ध हैं :—

अष्टौ षोडश द्वात्रिंशद्यत्रनृत्यन्ति नायका:।
पिण्डो बन्धानुसारेण तन्नृत्तं रासकं स्मृतम्॥(शंकर)
(रास और रासान्वयीकाव्य से उद्धृत)

आरभटी के अतिरिक्त नृत्य की तीन शैलियाँ और मानी गयी हैं—

---

१. नाट्यशास्त्र २०।२६

१. भारती।
२. सात्वती।
३. कैशिकी।

इस प्रकार नृत्य की इन चारों शैलियों का नाम स्थानपरक ही ज्ञात होता है। भारती, भरत जनपद या कुरुक्षेत्र की, सात्वती गुजरात और काठियावाड़ के सात्वतों की, कैशिकी विदर्भ देश या बरार की जो क्रय कैशिक कहलाता था। इससे ज्ञात होता है कि आरभटी का भी सम्बन्ध देश विशेष से ही होगा। यद्यपि निश्चित तो नहीं किन्तु डा० अग्रवाल का अनुमान है कि "यूनानी भूगोल लेखकों ने सिन्धु के पश्चिम में बिलोचिस्तान के दक्षिणी भाग में आर्बिटाई या आर्बिटो नामक जाति का उल्लेख किया है जोकि सोन मियानी के पश्चिम में थी। उनके देश में आर्बियस नदी बहती थी। अर्रियन और स्त्राबो दोनों इस प्रदेश को भारतवर्ष का अन्तिम भाग कहते हैं। लौटते हुए सिकन्दर की यूनानी सेना इस प्रदेश में से गुजरी थी। हमारा विचार है कि यही प्राचीन आरभट देश था, जहाँ नृत्य-पद्धति; जिसमें भारतीय रास और यूनानी हल्लीसक, आरभटी कहलाई।" इस कथन की पुष्टि में प्रमाण-स्वरूप आगे यह भी बताया कि "वाण ने यह भी लिखा है कि आरभटा शैली से नाचते हुए नट खुले बालों को इधर-उधर फटकारते थे। (चटुलशिखानर्तनारम्भारभटी नटाः)। इस प्रकार बाल खोलकर सिर को और शरीर को प्रचण्ड अंग संचालन के द्वारा हिलाते हुए नृत्त की पद्धति बलूची और कबायली लोगों की अभी तक विशेषता है।"

उपर्युक्त तथ्य पर विचार करते हुए हम इस वास्तविकता की भी उपेक्षा नहीं कर सकते कि रास नृत्य की भी एक परम्परा है जो मथुरा-वृन्दावन के क्षेत्रों में विशेषतः अभिनीत होती है। इसका नाट्य-विषय कृष्ण-चरित्र ही है। सात्वत वंशियों में प्रसिद्ध नृत्य की शाखा को रास स्वीकार करने में सम्बन्ध अधिक स्पष्ट दीख पड़ता है क्योंकि कृष्ण भी सात्वतवंशी थे। उनका रास अवश्य सात्वतों की ही देन होना चाहिए। आज सम्भवतः उसमें सम्मिश्रण हो चुका हो।

ऐसी भी सम्भावना है कि ये नाम प्रारम्भ में स्थानपरक होकर भी पश्चात्काल में विशेषाभिप्रायात्मक हो गए, जिन अभिप्रायों से शब्दों का भी सम्बन्ध था। अथवा शब्द एवं स्थान दोनों का सम्बन्ध निभाते हुए ये नृत्त शैलियाँ नामकृत हुईं। यथा

भारती=मृदु मधुर वाणीयुक्त जिसमें कि करुण, शान्त भावयुक्त थे।
सात्वती=सत्व भाव वा भक्तिभावभरित।
कैशिकी=कामुकता व्यंजक।
आरभटी=साहसिक नृत्य अथवा विधियुक्त।

रास निरन्तर रूप से होते हुए आज भी जो होता है वह गोपी कृष्ण के ही

विविध प्रेम-स्वरूपों की व्यंजना है। रास नृत्त से अधिक क्रीडा है जिसमें कला से अधिक विनोद है। किन्तु विनोद-मात्र नहीं प्रत्युत आत्मसमर्पण है। रास दृश्यहीन नहीं प्रत्युत आनन्द की चरमानुभूति है। रास भक्तिभावाप्लुत गोपियों की साधना नहीं वरदान है। तपः फल की प्राप्ति है। रास के रस से वह साधारणीकरण-प्रस्रवित होता है, जिससे दर्शक की अखण्ड-चिरसमाधि लगती है। रास जीवन का वह चरम गन्तव्य है जहाँ पहुँच कर परावर्तन नहीं होता।

ब्रह्मवैवर्त में श्री कृष्ण के जिस रास की चर्चा है वह अद्भुत है। यहाँ इसे परिभाषित नहीं किया गया है। यह गोपियों के तप का फल था, जिसे पाने के लिए उन्होंने व्रत किया था। रास का जितना विस्तृत वर्णन ब्रह्मवैवर्त में किया गया है वह सम्पूर्ण पुराण-साहित्य में वेजोड़ है, सर्वश्रेष्ठ रत्नाडम्बर एवं अपेक्षाकृत चमक-दमक विस्तृत है। किन्तु ब्रह्मवैवर्त में चार[1] अध्यायों में रास है तो श्रीमद्भागवत में रास पंचाध्यायी[2] है। अतः ब्रह्मवैवर्त में रास श्रीमद्भागवत से पूर्ववर्ती प्रतीत होता है। "हरिवंश पुराण के विष्णु पर्व में रास लीला का वर्णन किया गया है। यहाँ रास के लिए हल्लीसक शब्द का प्रयोग किया गया है। अपने संक्षिप्त वर्णन के कारण रास लीला का यह सबसे प्रारम्भिक स्वरूप प्रतीत होता है।" उक्त कथन डा० वीणापाणि पाण्डे कृत 'हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन' से उद्धृत है।[3] हरिवंश पुराण के रास वर्णन में राधा नहीं हैं और न तो कृष्ण-वियोग में गोपियों के मुक्त होने का उल्लेख है।

ब्रह्म-पुराण में बत्तीस श्लोकों में रास लीला का वर्णन है।[4] यह हरिवंश की अपेक्षा विकसित है। यहाँ बलराम भी उपस्थित हो जाते हैं।

सह रामेण मधुरमतीव वनिता-प्रियम्।[5]

विष्णु पुराण के पंचम अंश में कृष्णचरित्र वर्णित है। इसमें कुल अड़तिस अध्याय हैं। यहाँ तेरहवें अध्याय में रास वर्णित है। यहाँ कृष्ण गोपियों के मध्य एकमात्र पुरुष हैं। वे गोपियों से ओझल होने के पश्चात् पुनः मिलते हैं तो गोपियों के साथ नृत्य और गीत करते हैं। और इसी पुनर्मिलन के पूर्व श्रीकृष्ण प्रत्येक गोपों का कर स्पर्श करते हुए रास मण्डल की रचना करते हैं। गोपियाँ नर्तन में श्रीकृष्ण का अनुलोम और प्रतिलोम गति से साथ देती हैं।

---

१. ब्रह्म-वैवर्त ४, १।२८।२६,५२-५३ अ०
२. श्रीमद्भाग० १०।२६-३३ अ०
३. हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३२
४. ब्रह्म-पुराण अ० १८६
५. वही १८६।१६

हस्तेन गृह्य चैकैकां गोपीनां रासमण्डलम् ।
चकार तत्करस्पर्श निमीलित दृशं हरिः ॥[१]

यहाँ रास-मण्डल में मण्डल शब्द का अभिप्राय एक विशेष स्थिति से है, जिसमें गोपियाँ खड़ी हैं । यहाँ कृष्ण के अतिरिक्त बलराम अथवा अन्य गोप नहीं ।

पद्मपुराण में श्री कृष्ण गोवृन्द एवं बालकों से रासस्थल में घिरे हैं ।

आह्लादि मधुरारावैः गोवृन्दै रभिमण्डितम् । ५।२
रम्य-स्रग्भूषणोपेतैर्नृत्यद्भिर्बालकैर्वृतम् ॥ ६।१[२]

यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य की अपेक्षा जाम्बूनद, नाना रत्न प्रवाल नाना मणि फल, तथा रत्नदीधिति से देदीप्यमान प्रभा विकीर्ण हो रही है और त्रिगुणातीत, अव्यय, जगन्नाथ रत्न वेदी पर विनिर्मित रत्न सिंहासन पर विराजमान हैं । गोपियाँ तो चुम्बन, आश्लेष, नयनाघूर्णन एवं नर्तन कर रही हैं किन्तु स्वयं श्री कृष्ण अपनी दिव्य प्रभा विकीर्ण करते हुए यथास्थान स्थित हैं । इस प्रसंग में प्राकृतिक सुरम्य वातावरण की कोई चर्चा नहीं है । वृक्ष, लता, कुंज, चन्द्रिका, मन्द सुगन्धवह, यमुना तट, लोल-लहर, पुष्प, पल्लव, वारि, बिम्ब कुछ नहीं ।

तत्र त्रयीमयं रत्न-सिंहासनमनुत्तमम् ।
तत्रासीनं जगन्नाथं त्रिगुणातीतमव्ययम् ॥
कोटि-चन्द्रप्रतीकाशं कोटि - भास्कर - भास्वरम् ।
कोटि-कन्दर्प-लावण्यं भासयन्तं दिशो दश ॥
त्रिनेत्रं द्विभुजं गौरं तप्त-जाम्बूनद-प्रभम् ।
श्लिष्यमाणं चाङ्गनाभिः मुदामानं च सर्वशः ॥
ब्रह्माद्यैः सनकाद्यैश्च ध्येयं भक्त-वशीकृतम् ।
मुदाघूर्णित-नेत्राभिर्नृत्यन्तीभि र्महोत्सवैः ॥
चुम्बन्तीभि र्हसन्तीभिः श्लिष्यन्तीभि र्मुहुः मुहुः ।
अवाप्त-गोपीदेहाभिः श्रुतिभिः कोटि-कोटिभिः ॥[३]

यहाँ स्वतः समुद्भूत प्राकृतिक-दिव्य-सौन्दर्य की अपेक्षा श्री कृष्ण आयास-साध्य रत्नाकल्पित नानासुकुसुमामोद-समीर-सुरभीकृत कलिन्द-तनया-दिव्य-तरङ्ग-शीतल जाम्बूनदपरिच्छद श्रीमान् कल्पतरु के मूल में अवस्थित-रत्नवेदी पर सुशोभित रत्न-सिंहासनासीन हैं ।[४]

पद्म-पुराण में श्री कृष्ण की रासकालीन अवस्था किशोर बतलाई गयी है,

वन्दे मदनगोपालं कैशोराकार मद्भुतम् ।[५]

---

१. विष्णु पुराण ५।१३।५०   २. पद्म पुराण, पाताल खण्ड ७७।५, २-६, १
३. पद्म पुराण : ४ पाताल खण्ड ७७।८-१२
४. वही ७७।३, ५   ५. वही ४।७७।५६

यहाँ रास की गोपियों का नाम भी कीर्तित किया गया है—

राधिका, चित्ररेखा, च चन्द्रा, मदनसुन्दरी।
प्रिया, च श्रीमधुमती, शशिरेखा, हरि-प्रिया ।।
सुवर्णशोभा, संमोहा, प्रेमरोमाञ्चरञ्जिता।
वैवर्ण्यवेद-संयुक्ता भावाशक्ता प्रियंवदा ।।
सुवर्ण-मालिनी, शान्ता सुरास-रसिका तथा।
सर्वस्त्री-जीवना, दीनवत्सला, विमलाशया ।।[1]

पद्म-पुराण के रास में कृष्ण न तो अदृश्य होते हैं और न तो गोपियाँ उन्हें ढूँढ़ती ही हैं। कोई गोपी ध्यान योग में भी लीन नहीं होती। ब्रह्म पुराण में अवश्य गोपियाँ कृष्ण को रात्रि में उनके चरणचिन्ह से उनके अदृश्य होने पर खोजने का प्रयास करती हैं।

बभ्रमुस्तास्ततो गोप्यः कृष्णदर्शन-लालसः।
कृष्णस्य चरणं रात्रौ दृष्ट्वा वृन्दावने द्विजाः ।।[2]

यहाँ रासलीला के प्रसग में श्री कृष्ण की व्यापकता का ओर भी सकेत किया गया है और साथ ही उनकी द्रुतगत्यात्मक प्रशंसा है।

यथा समस्तेषु भूतेषु नभोऽग्निः - पृथिवीजलम्।
वायुश्चात्मा तथैवासौ व्याप्य सर्वमवस्थितः ।।[3]

ब्रह्म-पुराण तथा विष्णु-पुराण के रास लीला प्रसंग की परिसमाप्ति में उन्हीं दोनों श्लोकों का पाठ है। ये दोनों पुराणों में अभिन्न हैं।[4]

ब्रह्म-पुराण के अन्तर्गत एक गोपी ऐसी है जो कृष्ण-दर्शन हेतु रास में उपस्थित न हो सकी तो आँखें मीलित कर उनके ही ध्यान में अवस्थित हो गयी।

काचिदावसथस्यान्तः स्थित्वा दृष्ट्वा बहिर्गुरुम्।
तन्मयत्वेन गोविन्दं दध्यौ मीलितलोचना ।।

इस गोपी का वर्णन विष्णु पुराण[5] में तथा श्रीमद्भागवत[6] में विस्तृत रूप से है।

विष्णु पुराण में गोपियाँ श्री कृष्ण के अदृश्य हो जाने पर उनके चरित्रों का अनुकरण करती हैं। अन्त में ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमल आदि के चिन्हों से उन्हें खोजती हैं। अन्त में उन्हें श्री कृष्ण मिलते हैं तो रास नृत्य होता है। यह शरच्चन्द्र ज्योत्स्ना में सम्पन्न हुआ।

---

१. पद्म पुराण : पाताल खण्ड४।७७।२०-२२
२. ब्रह्म पुराण १८६।२३
३. ब्रह्म-पुराण १८९।४५
४. विष्णु पुराण ५।१३।६१-६२
५. वही ५।१३।२०
६. श्रीमद्भागवत १०।२९।९-११

विष्णु पुराण में कृष्ण-चरित्र का गोपी-चीर-हरण प्रसंग नहीं है। पद्म-पुराग भी इस प्रसंग को नहीं छेड़ता। श्रीमद्भागवत-पुराण तथा ब्रह्म वैवर्त-पुराण में चीर हरण प्रसंग में ही रासलीला की भूमिका बन जाती है। श्री-कृष्ण-चरित्र का पूर्ण विकास श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्म-वैवर्त में दृश्यमान है। पद्म-पुराण तो श्रुतियों और महर्षियों के पूर्व तप का फल मान कर उन्हें गोपी होने को कहता है। किन्तु श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्म-वैवर्त में तो आग्रहायण स्नानव्रत का सद्य: फलोंपलब्धि स्वरूप श्री कृष्ण के साथ आनन्दपूर्ण नृत्य करने के अवसर की प्राप्ति है। विष्णु पुराण शरच्चन्द्र ज्योत्स्ना का समर्थक है किन्तु विष्णु पुराण किसी काल विशेष का संकेत नहीं करता है। श्रीमद्-भागवत ने भी "रात्री: शरदोत्फुल्लमल्लिका:" कहा है।[1]

श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्म-वैवर्त के रास लीला सम्बद्ध कथा-प्रसंग समान हैं। श्रीमद्भागवत में गोपियों ने कात्यायनी-व्रत आग्रहायण मास में प्रारम्भ किया।

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्द-व्रजकुमारिका:।
चेरु हैविष्यं भुञ्जाना: कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥[2]

इस कात्यायनी व्रत के फलस्वरूप उन्होंने नन्द गोपसुत को पति रूप में प्राप्त करने का वर माँगा—

कात्यायनि ! महामाये ! महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवं पतिं मे कुरु ते नम: ॥[3]

अन्त में श्री कृष्ण ने वर प्रदान किया—

यातावला व्रजं सिद्धा मयेमारंस्यथ क्षपा:।
यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सती ॥[4]

इसी वरदान के फलस्वरूप ही श्री कृष्ण ने योगमाया का आश्रय लेकर रमण की अभिलाषा की।

भगवानपि ता: रात्री: शरदोत्फुल्लमल्लिका:।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रित: ॥

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण मुरली वादन करके गोपियों को आकृष्ट नहीं करते प्रत्युत गीत गाकर उन्हें बुलाते हैं और गोपियाँ भी चुपके से आती हैं।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं ब्रजस्त्रिय: कृष्णगृहीतमानसा:।
आजग्मुरन्योऽन्य मलक्षितोद्यमा: सयत्र कान्तोज्वललोलकुण्डला: ॥[5]

---

१. श्रीमद्भागवत १०।२६।१ २. वही १०।२२।१ ३. वही १०।२२।४
४. वही १०।२२।२७ ५. वही १०।२६।४

ब्रह्मवैवर्त तो रासाश्रयी कृष्ण से अपनी भूमिका ही प्रारम्भ करता है। उसका तो अभीष्ट ही रासाश्रयी कृष्ण है। ब्रह्मवैवर्त ब्रह्म खण्ड के द्वितीय अध्याय में ही शौनक के प्रश्न का उत्तर देते हुए सौति ने बताया कि शान्त वैष्णव जन उस रास-मण्डल मध्यस्थ, शान्त, रासेश्वर, वर, मांगल्य, मंगलार्ह, मंगल और मंगलप्रद का ध्यान करते हैं—

रासमण्डलमध्यस्थं शान्तं रासेश्वरं वरम्।
माङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् ॥२४॥[1]
ध्यायन्ते वैष्णवाः शान्ताः शान्तं तत्परमायणम् ॥२६॥[1]

वसुधा का वृन्दावन गोकुल एवं रास आदि तो सभी गोलोकीय रास-मण्डल-मध्य-घटित घटना का प्रतिफलन है। इसे अर्जुन ने भी देखा है। भगवान् श्री कृष्ण राधा के साथ गोलोकीय महारण्य निर्जन रास मण्डल में विहार कर रहे थे कि वे विरजा के पास राधा को छोड़ कर चले गये। राधा के प्रणयकोप को शान्त करने पुनः राधा के पास आए तो राधा की कटूक्ति के कारण उन्हें श्री कृष्ण सेवक श्रीदामा ने शाप दिया और श्रीदामा को राधा ने शापग्रस्त कर दिया। इसी शाप के निवारणार्थ रासमण्डलाधीश्वर भी राधा आदि के साथ उपस्थित हुए। (इस प्रसंग पर पहले भी विचार किया गया है)।

राधा के बिना कृष्ण और कृष्ण के बिना राधा को सोचा ही कैसे जा सकता है। शाप तो श्रीदामा और राधा पर था किन्तु कृष्ण के प्रति राधा का अविरल प्रेम उन्हें आकृष्ट क्यों न करे।

समय का चक्र अथवा भगवान की प्रेरणा जो भी हो एक साथ ही इधर तो शापग्रस्त होकर राधा को आना था और उधर धरती पापभार से व्यथित कराह उठी।[2] अन्ततः जगत्प्रभु ने रक्षा का आश्वासन दिया।[3] उसी समय श्री कृष्ण ने बता दिया कि मैं पृथ्वी पर जाऊँगा।

यास्यामि पृथिवीं देवा यात यूयं रसातलम्।
यूयं चैवांशरूपेण शीघ्रं गच्छत भूतलम् ॥[4]

देवों को भी अवतरित होने का आदेश कर दिया। इसके पश्चात् उन्होंने गोप तथा गोपियों को नन्दव्रज में, राधा को वृषभानु गृह में अवतरित होने के लिए कहा।

---

१. ब्रह्म वैवर्त० १।२।२४,२६।२
२. ब्रह्म वै० २।२।२१
३. वही ४, १।६।२६,२७
४. वही ४, १।६।६१

गोपागोप्यश्च शृणुत यात नन्दव्रजं परम् ।
वृषभानुगृहे क्षिप्रं गच्छ त्वमपि राधिके ! ।।[1]

इसमें संदेह नहीं कि राधा और कृष्ण दोनों एकांगीभूत हैं (त्वं मे प्राणाधिका राधे ! तव प्राणाधिकोऽप्यहम् । नकिंचिदावयोर्भिन्नमेकाङ्ग सर्वदैव हि) ।।[2]

किन्तु श्री कष्ण को भक्त परमप्रिय हैं—

प्राणेभ्यः प्रेयसी राधा स्थितोरसि दिवानिशम् ।
यूयं प्राणाधिका लक्ष्मी नमे भक्तात्परा प्रिया ।।[3]

इस प्रकार जगत की रक्षा का दायित्व निभाने हेतु अवतार ग्रहण करना और साथ ही राधा का साथ देना ये दोनों कार्य साथ ही साथ सम्पन्न हो जाते हैं ।

रासेश्वरी राधा कृष्ण को छोड़ कर पहले कैसे जाँय—

शृणु नाथ ! प्रवक्ष्यामि किंकरी वचनं प्रभो ! ।
प्राणावहन्ति सतत मान्दोलयति मे मनः ।।१८६।।
चक्षुर्निमीलनं कर्तुमशक्ता तव दर्शने ।
त्वया बिना कथं नाथ ! यास्यामि धरणीतलम् ।।१६०।।
कृष्णस्त्वं राधिकाऽहं च प्रेम सौभाग्यमावयोः ।
न विस्मरामि भूमौ च देहि मह्यं वरं परम् ।।१६७।।
अतो निमेष-विरहादात्मनो विक्लवं मनः ।
प्रदग्धं सततं प्राणा दहन्ति विरह-श्रुतौ ।।२०४।।[4]

एक निमिष भी राधा के लिए कृष्ण-वियोग असह्य है । अतः श्री कृष्ण ने राधा को स्पष्ट बताया कि कंस की विभीषिका के लिए मेरा अवतार तो एक छल है, वास्तव में मैं तो तुम्हारे लिए आऊँगा ।

अयोनि - संभवा त्वं च भविता गोकुले सति ।
अयोनिसंभवोऽहं च नावयोर्गर्भसंस्थितिः ।।२२७।।
भूमिसंस्पृष्ट मात्रं मां गोकुले प्रापयिष्यति ।
तव हेतोर्गमिष्यामि कृत्वा कंसभयं छलम् ।।२२८।।
यशोदा - मन्दिरे मां च सानन्दं नन्दनन्दनम् ।
नित्यं द्रक्ष्यसि कल्याणि ! ममाऽऽश्लेषणपूर्वकम् ।।२२६।।
स्मृतिस्ते भविता काले वरेण मम राधिके ! ।
स्वच्छन्दं विहरिष्यामि नित्यं वृन्दावने वने ।।२३०।।

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।६।६३   २. वही ४, १।६।६७   ३. वही ४, १।६।५६
४. वही ४, १।६।१८६-२०६

त्रि:सप्त शतकोटीभि र्गोपीभि र्गोकुलं ब्रज।
त्रयस्त्रिंशद् वयस्याभि: सुशीलादिभिरेवच ॥२३१॥
अहं गोपाल - सुहृद: संस्थाप्यात्रैव राधिके ! ।
वसुदेवाश्रमं पश्चाद्यास्यामि मथुरापुरीम् ॥२३३॥[1]

राधा और कृष्ण पर विचार करते हुए हमें सदा स्मरण रखना होगा कि जहाँ राधा वहाँ कृष्ण और जहाँ राधा कृष्ण वहाँ रास निश्चित है। राधा जब भी कृष्ण को देखती हैं उन्हें रास का स्मरण होता है और कृष्ण राधा का स्मरण करते हैं तो वे भी रास का ही स्मरण करते हैं।

गोकुल में दोनों अवतीर्ण हो चुके हैं किन्तु अभी दोनों एक दूसरे से मिले नहीं। अर्जुन-वृक्ष-भंजन हुआ। श्री कृष्ण अब इतना दौड़ लगा लेते हैं कि यशोदा उन्हें नहीं पातीं। माता के श्रम स्वेद को देख कर रुक जाँय तो भले ही अन्यथा यशोदा का कण्ठ सूख रहा है तथापि दौड़ते-दौड़ते थक जाती हैं किन्तु वे आगे ही रहते हैं।

पलायमानं गोविन्दं ग्रहीतुं न शशाक ह।
ध्यानासाध्यं शिवादीनां दुर्लभमपि योगिनाम् ॥

यशोदाभ्रमणं कृत्वा विश्रान्ताधर्मसंयुता।
तस्थौ कोप-परीतात्मा शुष्क-कण्ठोष्ठ-तालुका ॥

विश्रान्तां मातरं दृष्ट्वा कृपालु: पुरुषोत्तम:।
संतस्थौ पुरतो मातु: सस्मितो जगदीश्वर: ॥[2]

कृष्ण इतना होते हुए भी घर से बाहर अकेले कहीं नहीं जाते थे। एक दिन नन्द जी श्री कृष्ण को लेकर गाय चराने गये। इसके पूर्व नामकरण, तथा अन्नप्राशन के अवसर पर, जबकि श्री गर्गजी आए हुए थे उन्होंने नन्द को यह बताते हुए कि श्री कृष्ण कौन हैं, राधा के विषय में स्पष्ट रूप से समझाया था।[3] इसी प्रसंग में गर्ग ने यह भी बता दिया था कि इन दोनों (राधा और कृष्ण) का विवाह वृन्दावन में ब्रह्मा के द्वारा होने वाला है—

आराद् वृन्दावने नन्द ! विवाहो भविताऽनयो:।
पुरोहितो जगद्धाता कृत्वाग्निं साक्षिणं मुदा ॥[4]

यहाँ अरण्य में अकस्मात् वर्षावातासार से नन्द व्याकुल हो उठे।[5] सहसा राधा दिव्य-प्रभायुत-रूप से सम्मुख दृश्यमान हुई। नन्द को गर्गोक्त कथा का स्मरण

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।६।२२७-२३३ २. वही ४, १।१४।८-१०
३. वही ४, १।१३। ६०-१६० ४. वही ४, १।१३।११३ ५. वही ४, २।१५।३-४

हो उठा। उन्होंने श्री कृष्ण को राधा के अंक में प्रदान कर दिया। राधा ने सहर्ष उन्हें ग्रहण किया।[1] वे कृष्ण को गोद[2] में उठा कर उन्हें बार-बार चूमती रहीं।

यहाँ राधा को कृष्ण-चुम्बन मिलते ही रासमण्डल का स्मरण हो उठता है।

कृत्वा वक्षसि तं कामाच्छलेषं श्लेषं चुचुम्ब च।
पुलकाङ्कित - सर्वाङ्गो सस्मार रासमण्डलम् ॥[3]

श्री कृष्ण नवयौवन वय धारण कर लेते हैं। रासेश्वरी राधा उनके इस रूप को देखते अपने चक्षु चकोरों से उनके मुखचन्द्र का पान करती रहती हैं—

क्रोडं बालकशून्यं च दृष्ट्वा तं नव-यौवनम्।
सर्वस्मृति - स्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययौ॥
रूपं रासेश्वरी दृष्ट्वा मुमोह सुमनोहरम्।
कामाच्चक्षुष्चकोराभ्यां मुखचन्द्रं पपौ मुदा॥[4]

इसी समय श्री कृष्ण राधा को स्मरण दिलाते हैं कि राधे! गोलोक की देव-सभा का वृत्तान्त स्मरण है? प्रिये! आज पूर्व प्रतिज्ञात की पूर्ति करूँगा।

राधे! स्मरसि गोलोक - वृत्तान्तं सुरसंसदि।
अद्यपूर्णं करिष्यामि स्वीकृतं यत्पुरा प्रिये॥[5]

यहाँ राधा ने मनोरजन करते हुए रास से भी अधिक माधव के मन को ग्रहण कर लिया—

जहार राधिका रासान्माधवस्यापि मानसम्।
निवृत्ते काम - युद्धे च सस्मिता वक्रलोचना॥[6]

ब्रह्म वैवर्त में स्पष्टतः राधा-कृष्ण की रास मण्डलीय-स्थिति की चर्चा सार्वत्रिक हुई है। राधा के सम्मुख से किशोर कृष्ण अलक्ष्य होते हैं तो वे रोदन करने लगती हैं। इस पर आकाशवाणी होती है जिसे सुनकर ही राधा को सन्तोष होता है। अब तो नित्य मिलन होगा। यहीं से राधा की छाया का रूप सान्मुखीन होता है।

रुरोद कृष्णस्तत्रैव वाग्बभूवाशरीरिणी।
कथं रोदिषि राधे! स्मर कृष्ण - पदाम्बुजम् ॥१६७॥
आरासमण्डलं यावन्नक्तमत्रागमिष्यति।
करिष्यसि रतिं नित्यं हरिणा सार्धमीप्सितम् ॥१६८॥
छायां विधाय स्वगृहेस्वयमागत्य मा रुद।
कृत्वा क्रोडे च प्राणेशं मायेशं बाल-रूपिणम् ॥१६॥[7]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।१५।२६ २, वही ४, १।१५।३८-३६
३. वही ४, १।१५।३८ ४. वही ४, १।१५।५४-५५
५. वही ४, १।१५।५७ ६. वही ४, १।१५।१५६ ७. वही ४, १।१५।१६७-६६

इस प्रकार ब्रह्म वैवर्त रास की भूमिका विस्तृत रूपेण प्रस्तुत करता है। रास कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह राधा कृष्ण के जीवन लीलाओं से समाबद्ध पूर्व-नियोजित निश्छल एवं निश्चल प्रेम का पूर्ण परिष्कृत रूप है।

इस सन्दर्भ में रास के पूर्व गोपी-वस्त्र हरण कृष्ण-जीवन की एक विशेष घटना है। वस्तुतः इसी प्रसंग से गोपी-कृष्ण की एकता के भाव मूर्तरूप ग्रहण कर लेते हैं, जिसका प्रतिफलन गोपियों द्वारा आत्मसमर्पण है। यह घटना ब्रह्म वैवर्त एवं श्रीमद्भागवत में अविकल है। किन्तु ब्रह्मवैवर्त की गोपियाँ दब्बू नहीं है। वे अपने वस्त्रों को गोपालों द्वारा अपहृत जानने पर यमुना जी से निकल कर खदेड़ लेती हैं। बेचारी करतीं भी क्या। पहले ये भा विनय करती रहीं।

देहि धौतानि धृत्वाच करिष्यामो व्रतं वयम्।
वस्तुनाऽन्येन गोविन्द! वस्तूनां भक्षणं कुरु॥[1]

वस्त्र-प्रदान शुल्क के रूप में खिलाने को भी कहा। इससे अधिक और करतीं भी क्या। किन्तु अन्त में राधा ने सुशीला आदि को गोपालों को पकड़ कर वस्त्र छीनने का आदेश दिया। गोपियाँ शीघ्र ही दौड़ पड़ीं।

वेगेन दुद्रुवुः सर्वाः श्रीदामानं च बालिकाः।
वेगेन च प्रधावन्तं बिभ्रतं वस्त्र पुञ्जिकाम्॥
जगाम शीघ्रं श्रीदामा यत्र गोपाः सहांशुकाः।
जवेन दुद्रुवुर्गोप्यस्ततपश्चाद् बल-संयुताः॥
वस्त्रचौरांश्च गोपांश्च वेष्टयामासु राशु ताः।
भिया प्रदुद्रुवु र्बाला यत्र कृष्णः सहांशुकः॥[2]

अब गोपाल गण भी क्या करता। डर कर सारे वस्त्र कृष्ण को समर्पित कर दिया। इसी मध्य में गोपियों ने इन सबों का वरण किया।

श्रीकृष्ण - सहितान् बालान् वरयामासुराशु ताः।
गोपिकानां भिया गोपा ददुर्वस्त्राणि माधवम्॥[3]

यद्यपि यहाँ 'वरयामासुः' का अर्थ पहचान लेना भी हो सकता है। प्रसंगतः यही अर्थ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि यह कार्य चोरी-चोरी किया जा रहा था। गोपियों ने खदेड़ा तो सबके सब पहचान गये। अन्त में डर कर सबों ने श्रीकृष्ण के शिर पर डाल कर किनारा कस लिया।

गोपियाँ पेड़ पर तो चढ़ न सकीं। अन्त में कृष्ण से हार माननी ही पड़ी।

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२७।७६ २. वही ४, १।१७।८५-८७ ३. वही ४, १।१७।८८

कृष्ण चिढ़ाते भी रहे।[1] कृष्ण ने गोपालों के पीछे दौड़ना बन्द करने के लिए गोपियों को वस्त्र देना मान लिया किन्तु एक प्रतिबन्ध लगा दिया। यहाँ प्रेम और पटुता है कि कृष्ण ने स्वयं अपनी ओर आकृष्ट किया—

भो भो गोपालिका ! नग्ना ! इदानीं किं करिष्यथ ।
वस्त्रयाञ्चां प्रकर्तुं च कुरुताशु पुटाञ्जलिम् ॥
गत्वा वदत युष्माक मीश्वरीमथ राधिकाम् ।
करोतु शीघ्रं वस्त्राणां याञ्चां कृत्वा पुटाञ्जलिम् ॥[2]

श्रीमद्भागवत की गोपियाँ यमुना-जल में आकण्ठ मग्न और शीतार्त काँपते हुए प्रत्यक्ष कृष्ण से; जोकि सरित्तीरस्थकदम्बतरुस्थ हैं, विनय करते हुए उन्हें करुणार्द्र कर देती हैं—

ततो जलाशयात्सर्वाः दारिकाः शीतवेपिताः ।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥[3]

ब्रह्मवैवर्त की गोपियों को दौड़ना है अतः 'पाणिभ्यां' न करके एकवचन 'पाणिना' का प्रयोग है।

सर्वा राधाज्ञया तूर्णं समुत्थाय जलान्क्रुधा ।
प्रजग्मु र्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्य पाणिना ॥[4]

यद्यपि सामाजिक-दृष्टिकोण से विचार करने पर चीर हरण की कथा उचित नहीं लगती किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ समाधान प्रहित हैं। प्रथम यह कि नग्न-स्नान वर्जित है। अतएव इसे अवरुद्ध करने के लिए एक मार्ग ग्रहण किया गया। श्री कृष्ण ने बताया कि नग्न-स्नान से वरुण रुष्ट होते हैं और व्रत भंग होता है—

भो भो गोपालिकाः ! सर्वा विनष्टा व्रतकर्मणि ।
कृत्वा विधानं मद् वाक्यं श्रुत्वा क्रीडत मन्मथात् ॥
सङ्कल्पिते व्रतार्हे च मासे मङ्गल - कर्मणि ।
यूयं नग्नाः कथं तोये व्रताङ्गहानिकारकाः ॥
व्रतेतु नग्ना या स्नाति तां रुष्टो वरुणः स्वयम् ।
वरुणानुचराश्चक्रुर्वासोवस्तूपनिर्हतिम् ॥[5]

द्वितीय कारण यह भी है कि श्री कृष्ण गोपियों द्वारा किसी अन्य देव की

---

१. ब्रह्म वै० ४, ११७।६०
२. वही ४, ११७।६१-६२
३. श्रीमद्भा०१०।२२।१७
४. ब्रह्म वै० ४, ११७।८३
५. वही वै० ४, १२७।६४, ६५, ६७

आराधना नहीं चाहते । केवल इसे वे तभी स्वीकारते हैं जबकि आराधना से प्राप्य कृष्ण हों । वे इसका संकेत स्वयं करते हैं :—

चिन्तां कुरुतां पूज्यां तुष्टां बलिभिरीश्वरीम् ।
युष्माकमीदृशीदेवी न शक्ता वस्त्ररक्षणे ॥
कथंव्रतफलं सा वो दातुं शक्ता सुरेश्वरी ।
फलं प्रदातुं या शक्ता सा शक्ता सर्वकर्मणि ॥

तृतीय भाव श्रीमद्भागवत में है । वास्तव मे अपने आराध्य की प्राप्ति में आवरण सदा बाधक ही है । जहाँ कृष्ण उपस्थित हैं वहाँ गोपियों को सब कुछ, जो अप्रिय सा है, वह भी प्रिय ही नहीं प्रेष्ठ बन जाता है :—

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः
प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं
तानाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥[1]

श्री कृष्ण भी यह तथ्य स्वयं प्रकट करते हैं कि मेरे प्रति काम भाव, जो काम की परिपक्वावस्था अथवा चरमावस्था है, उससे ही गोपी लब्धकाम[2] होती हैं । अतः वास्तविक काम की पूर्ति एवं विराम होता है । गोपियाँ पूर्णकाम होती हैं ।

न मय्यावेशितधियां कामः कामायकल्पते ।
भर्जिता क्वथिताधाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥[3]

यही कारण है कि वस्त्रहरण होने पर राधा न तो कहीं जाती हैं, न किसी से वस्त्र हेतु प्रार्थना करती हैं, प्रत्युत् वे श्री कृष्ण के इस कथन को सुनकर भी कि स्वयं राधा अंजलि बाँध कर माँगें तो वस्त्र पाएँगी—

करोतु शीघ्रं वस्त्राणां याञ्चां कृत्वापुटाञ्जलिम् ।
अन्यथाहं न दास्यामि युष्मभ्यमंशुकानि च ॥[4]

स्वयं राधा नहीं आतीं । अब वे अन्य देवों को छोड़ एकमात्र कृष्ण का ध्यान करती हैं । वे जल में योगासन लगाकर बैठती हैं । कृष्ण के चरणारविन्द का ध्यान करती हैं, और सब ठीक हो जाता है, सबके वस्त्र मिल जाते हैं ।

चक्रु निवेदनं गत्वा यदुवाच हरिः स्वयम् ।
श्रुत्वा जहास सा राधा बभूव काम-पीडिता ॥
श्रुत्वा तासां च वचनं पुलकाञ्चितविग्रहा ।
न जगाम हरेः स्थानं व्रीडया सस्मिता सती ॥

---

१. श्रीमद्भागवत १०।२२।२२ २. वही १०।२२।२८
३. वही १०।२२।२७ ४. ब्रह्म वै० ४, १।२७।६३, ६२

जले योगासनं कृत्वा दध्यौ कृष्ण-पदाम्बुजम् ।
ब्रह्मेशानन्तधर्माणां वन्द्यमीप्सितदं परम् ॥[१]

इस प्रकार ध्यान करते हुए राधा सम्पूर्ण जगत् को कृष्णमय देखती हैं । आँख खोलती हैं तो देखा यमुना तट पर सभी वस्तुएँ वस्त्र, पुष्प आदि यथापूर्व अवस्थित हैं—

जलस्था राधिका ध्यात्वा श्रीकृष्ण-चरणाम्बुजम् ।
स्तुत्वैवं चक्षुरुन्मील्य दृष्ट्वा कृष्णमयं जगत् ॥
ददर्श यमुना तीरे वस्त्रद्रव्यमयं मुने ।
दृष्ट्वा तन्द्राथवा स्वप्नमिति मेने च राधिका ॥[२]

राधा ने इस चीरहरण लीला को स्वप्न समझा ।

अन्य पुराणों पर विचार करते हुए हमें इस तथ्य पर भी ध्यान देना होगा कि विष्णु-पुराण, पद्म-पुराण, हरिवंश जैसे कृष्णचरित्र का विशद वर्णन करने वाले पुराणों ने चीर हरण प्रसंग को स्थान नहीं दिया । अतः ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती पुराणों में ये प्रसंग परिवर्धित कर दिए गए अथवा ऐसी भी सम्भावना है कि नग्नवादियों, जैनों के प्रभाव से भी यह कथा नवानुस्यूत होकर व्यापक बनी । यह प्रसंग श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त में विस्तृत रूप से है । ब्रह्मवैवर्त का रूप श्रीमद्भागवत से अधिक परिष्कृत है । श्रीमद्भागवत में तो राधा का नाम ही नहीं है ।

अस्तु, गोपियों सहित राधा का व्रत समाप्त होता है । वे सभी इस प्रकार व्रत पूर्ण करके मनीषित वर देवी से पा गयीं । अतः निज-निज स्थान पर चली गयीं—

जलादुत्थाय ताः सर्वाः व्रतं कृत्वा मनीषितम् ।
सम्प्राप्य च वरं देव्यास्ताः सर्वाः स्वालयं ययुः ॥[३]

पार्वती ने वर-प्रदान करते हुए राधा का भूत-भविष्य भी बता दिया । उन्होंने श्रीदामा के शाप का भी स्मरण कराया । यह भी बताया कि तीन मास व्यतीत होने के पश्चात् सभी गोपियों एवं हरि के साथ राधा हर्ष से क्रीडा करेंगी ।

कल्पे-कल्पे तव पतिः कृष्णो जन्मनि जन्मनि ।
व्रतं लोकहितार्थाय जगन्मातस्त्वया कृतम् ॥
अहो श्रीदामशापेन भारावतरणाय च ।
भूमौ तवाधिष्ठानं च कथं त्वं मानुषी सती ॥
अयोनिसम्भवात्वं च जन्ममृत्यु-जरापहा ।
कलावती सुता पुण्या कथं त्वं मानुषी सती ॥

१. ब्रह्म वै० ४, १।२७।९६-९८ २. वही ४,१।२७।१५, १६ ३. वही ४,१।२७।११८

त्रिषुमासेष्वतीतेषु मधुमासे मनोहरे।
निर्जने निर्मले रात्रौ सुयोग्ये रास-मण्डले।।
सर्वाभि र्गोपिकाभिश्च सार्धं वृन्दावने वने।।
हर्षेण हरिणा सार्धं क्रीडा ते भविता सति।।
विधात्रा लिखिताक्रीडा कल्पे-कल्पे महीतले।
तव श्री हरिणा सार्धं केन राधे! निवार्यते।।[1]

रास की दिव्यता

चीर-हरण से तीन मास बीत जाने पर वृन्दावन में श्री-कृष्ण-रासलीला हुई।[2] चीर-हरण का समय आग्रहायण की पूर्णिमा है। हेमन्त-ऋतु के प्रथम-मास में पार्वती की पूजा गोपियाँ कालिन्दी तट पर वालुकामयी मूर्ति बनाकर करती थीं। यह व्रत उन्होंने मास भर किया था और अन्तिम दिन श्री कृष्ण स्वयं योगों सहित तट पर चीर-हरण करने पहुँचे। यहाँ ऐसा स्पष्ट है कि रास की तिथि पूर्णिमा नहीं प्रत्युत शुभ शुक्लत्रयोदशी थी—

एकदा श्री हरि नंक्तं वनं वृन्दावनं ययौ।
शुभे शुक्लत्रयोदश्यां पूर्वे चन्द्रोदये मुने!।।[3]

इस प्रसंग में मास का नाम नहीं कथित है[4] किन्तु अगहन की पूर्णिमा को तो एक मास पूर्ण हुआ। उससे आगे तीन मास व्यतीत हुआ तो फाल्गुन की पूर्णिमा रास की तिथि हुई किन्तु सम्भावना ऐसी है कि त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा एक ही तिथि को पड़ी हो। अन्यथा पूर्ण चन्द्रोदय की सम्भावना कैसे होगी।

रास का समय वर्ष का अन्त है। रास के पश्चात् होने वाला प्रभात वर्ष का आदि-दिवस है। इस प्रकार का रास नवाभ्युदय नवविचार, नव-बोध एवं नावीन्य-राशि का अक्षुण्ण-स्रोत है।

देवी-भागवत ने रासलीला का आधिदैविक रूप भी प्रस्तुत किया है। रासलीला के प्रसंग में श्री कृष्ण को नन्द-नन्दन नहीं प्रत्युत परब्रह्म बताया गया है। 'स चात्मा परंब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।'[5] परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण अपनी चित् शक्ति स्वरूपिणी प्रकृति के साथ विहार करते हैं, यही रास कहा जाता है। महाप्रलय के पश्चात् जब पुनः सृष्टि का काल आता है तो :—

स कृष्णः सर्वसृष्ट्यादौ सिसृक्षन्नेक एव च।[6]

सृष्टि के लिए रास की भावना उदय होते ही श्री कृष्ण के स्त्री एवं पुरुष दो रूप बन जाते हैं। इसी स्त्री रूप प्रकृति के साथ रासेश रास-मण्डल में क्रीडा करते हैं।

१. ब्रह्म वै० ४, १।१७।२०४-२०६ २. ब्रह्म वै० ४, १।२८।१
३. वही ४, १।२७।२,३ ४. हरिवंश-शारदीषु सुचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी—वि० पर्व० २०।३५ ५. देवी भा० ९।२।२४ ६. वही ९।२।२६

दृष्ट्वा तु तां तया सार्धं रासेशो रास-मण्डले।
रासोल्लासे सुरसिको रास क्रीडां चकार ह ॥[1]

इस प्रकार रासलीला का आशय सृष्टि के हेतु प्रकृति तथा पुरुष का सम्बन्ध मात्र है। इसी का परिणाम जगत् है।

अथ सा कृष्णचिच्छक्तिः कृष्णगर्भं दधार ह।
शतं मन्वतरान्ते च कालेऽतीतेऽपि सुन्दरी।
सुषाव डिम्बं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम् ॥[2]

पद्म पुराण में एक अन्य स्थान पर रास लीला के समस्त उपादानों को आध्यात्मिक रूप दिया गया है, जहाँ गोपियों को योगिनी, कालिन्दी की अमृतवाहिनी सुषुम्ना, श्री कृष्ण को सर्व व्यापक परमात्मा और वृन्दावन को चर्म-चक्षुओं से अदृश्य तेजोमय स्थान के रूप में उपस्थित किया गया है—

योगिन्यस्तास्तु एव हि मम देवाः परायणाः।
कालिन्दीयं सुषुम्णाख्या परमामृतवाहिनी ॥
सर्वतो व्यापकश्चाहं न त्यक्ष्यामि वनं क्वचित्।
तेजोमयमिदं स्थानमदृश्यं चर्मचक्षुषाम् ॥[3]

हरिवंश पुराण के टीकाकार नीलकण्ठ ने रास के मूल उद्‌गम के सम्बन्ध में एक श्रुति का उल्लेख किया है :—

पद्‌यावस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वातस्थौत्र्यविरेरिहाणा।
ऋतस्य सद्म विचरामि विद्वान्मह देवानामसुरत्वमेकम् ।[4]

'पद्‌या' का भाव—पत्तु मभिसारिणीभिर्गोपीभिरभिसर्तुंयोग्या।' श्री कृष्ण की वह मूर्ति वा रूप पद्‌या है जो गोपियों द्वारा अभिसार के योग्य है—

'ऊर्ध्वा' का भाव—उर्ध्वागोपी सम्पर्कं विना तस्थौ।

श्री कृष्ण का एक रूप वा मूर्ति उर्ध्वा है; जो रास मण्डल के मध्य में अवस्थित है।

'वपूंषि' पद द्वारा यह भाव स्पष्ट हो जाता है कि श्री कृष्ण ने रासलीला के अवसर पर अनेक रूप धारण किए।

'त्र्यविम्' का भाव—त्र्यविं त्रीन् देशान् पार्श्वद्वयं पुरस्ताच्च रेरिहाणागिलन्ती।

गायन्त्यः कृष्ण चरितं द्वन्द्वशो गोप कन्यकाः ।[5]

उपर्युक्त व्याख्या नीलकण्ठ ने निम्नलिखित रूप से किया है—

---

१. देवी भागवत ६।२।३६ २. वही ९।२।४५।१, ४७
३. पद्म पुराण पाताल खण्ड ७५।१२, १३
४. हरिवंश विष्णु पर्व २०।२५ ५. वही, विष्णु पर्व २०।२५

द्वाभ्यां प्रवेशाभ्यां वर्तते गोपः कृष्णो यासां ताः द्वन्द्वशो गोपास्ताश्चताः कन्यकाश्चेत्यर्थः ।

प्रत्येक गोपी के पश्चात् श्री कृष्ण स्थित थे । श्री नीलकण्ठ ने विल्व मंगलकृत रासाष्टक से श्लोक उद्धत कर स्पष्ट किया है ।[1]

यहाँ पुरुष केवल कृष्ण हैं ।

तास्तस्य नृत्तं गीतं च विलासस्मितवीक्षितम् ।
मुदिताश्चानुकुर्वन्त्यः क्रीडन्ति व्रजयोषितः ।
शारदीषु सुचन्द्रासु निशासु मुमुदे सुखी।।[2]

विष्णु पुराण ने कृष्ण के साथ गोपियों की नित्य रास-लीला होने का समर्थन किया है—

कृष्णं गोपाङ्गना रात्रौ रमयन्ति रतिप्रियाः ।[3]

गोलोक में तो रास सदा होता रहता है । वहाँ वृन्दावन के अभ्यन्तरित बत्तीस मनोहर कानन हैं, जिसमें सहस्रों पुष्पोद्यान हैं । पचास कोटि गोपियाँ विलास करती रहती हैं ।

रत्नदीप प्रदीपैश्च धूपेन सुरभीकृतैः ।
श्रृंङ्गारद्रव्ययुक्तैश्च वासितै गंन्धवायुभिः ।।

चन्दनाक्तैः पुष्पतल्पै र्माला-जालसमन्वितैः ।
मधुलुब्ध-मधुव्राणां कलशब्दैश्च शब्दितम् ।।

रत्नालंकार शोभाढ्यै र्गोपीवृन्दैश्च वेष्टितम् ।
पञ्चाशत्-कोटि-गोपीभी रक्षितं राधिकाज्ञया ।।

द्वात्रिंशत्काननं तत्र रम्यं रम्यं मनोहरम् ।
वृन्दावनाभ्यन्तरितं निर्जनस्थानमुत्तमम् ।।

सुपक्वमधुरास्वादुफलैर्वृन्दारकं मुने ।
गोष्ठानां गवां चैव समूहैश्च समन्वितम् ।।

पञ्चाशत्-कोटि-गोपीनां विलासैश्च विराजितम् ।
श्रीकृष्णतुल्य-रूपाणां सद्रत्नगुण्ठितैर्वरैः ।।

दृष्ट्वा वृन्दावनं रम्यं ययुर्गोलोकमीश्वराः ।
परितो वर्तुलाकारं कोटियोजनविस्तृतम् ।।

---

१. अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवोमाधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना ।
इत्थमाकल्पिते मण्डलेमध्यगः संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः ।—हरिवंश विष्णु प० २०।२५

२. हरिवंश विष्णु पर्व २०।२५ ३. विष्णु पुराण ५।१३।५६

रत्नप्राकार-संयुक्तं चतुर्द्वारान्वितं मुने।
गोपानां समूहैश्च द्वारपालैः समन्वितम्॥[1]

किन्तु गोकुल का रास एक मास तक दिवानिश चलता रहा। इस रास मण्डल में अनेकों उद्यान एवं सरोवर हैं—

पुष्पोद्यानेषु रम्येषु सरसां च तटेषु च।
कन्दरे कन्दरे रम्ये नदेषु च नदीषु च॥
अतीव निर्जनस्थाने श्मशाने गिरिगह्वरे।
वाञ्छितेषु च नारीणां त्रयस्त्रिंशद् वनेषु च॥[2]
एवं रेमे कौतुकेन कामा त्रिशद्दिवानिशम्।
तथापि मानसं पूर्णं न च किंचिद् बभूव ह॥[3]

विद्वानों ने रास-लीला का आध्यात्मिक अर्थ लगाया है।[4] यह रासलीला योगियों के अन्तःकरण में नित्य हुआ करती है। इस अर्थ में वृन्दावन की सहस्रदल कमल के रूप में स्वीकार किया गया है। जिस प्रकार योग परम्परा में सहस्रदल कमल की पंखुड़ियाँ नीचे की ओर झुकी रहती हैं, उसी प्रकार वृन्दावन के भी समस्त वृक्ष अधोमुख रहते हैं। यही साम्य वृन्दावन की तुलना प्रदान करता है।

उक्त व्याख्या श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित अंश के आधार पर की गयी है :—

वृन्दावनस्था स्तरवः सर्वे चाधोमुखाः स्मृताः।[5]

समष्टि तथा व्यष्टि के पारस्परिक अभेद-सिद्धान्त को स्वीकार करके लययोग की परम्परा में जीव शरीर रूपी सहस्रदल कमल में पुरुष की सत्ता तथा मूलाधार चक्र में प्रकृति की सत्ता स्वीकार की गयी है। यही प्रकृति साढ़े तीन आँटे लगाकर सर्पिणी के आकार में अधोमुख होकर स्थित रहती है। इसी को कुल-कुण्डलिनी-शक्ति के नाम से भी जाना जाता है। यही प्रत्येक प्रकार की शक्ति का स्रोत स्थान है। यहीं से शक्ति निकल कर मन, इन्द्रियों तथा शरीर को शक्ति सम्पन्न बनाती रहती है। जब तक यह अधोमुखी रहती है तब तक जीव विषय वासना में लिप्त रहता है, जब योगाभ्यास अथवा जपयोग द्वारा कुण्डलिनी उर्ध्वमुख हो जाती है तो धीरे-धीरे सहस्रदल कमल में विराजमान परमात्मा की तरफ चलने लगती है। इसी समय जीव के सम्पूर्ण विषय-वासना-सम्बन्धी विकारों का नाश हो जाता है। उसके मन का निग्रह और प्रज्ञा की स्थिरता हो जाती है। वैराग्य भाव का उदय उसे आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है। धीरे-धीरे उसके मन की वृत्तियां तथा इन्द्रियाँ विषय पदार्थों का सर्वथा परित्याग

१. ब्रह्म वै० ४, १।४।१२५-१३३ २. वही ४, १।२८।१६१ ३. वही ४,१।२८।१६८
४. सत्यार्थ-विवेक, स्वामी दयानन्द कृत, भूमिका पृ० १६ ५. श्रीमद्भागवत,

करके परमात्मा में मिल जाती हैं। प्रकृति तथा पुरुष का यह मिलन संयोग ही रास कहा जाता है।

प्रस्तुत प्रसंग में भगवती श्री प्रिया राधा ही प्रकृति अथवा कुण्डलिनी शक्ति हैं। श्री कृष्ण परमात्मा अथवा पुरुष हैं। वृन्दावन सहस्रदल कमल है। गोपसुन्दरियाँ अन्त:-करण की वृत्तियाँ हैं। श्री कृष्ण की मुरली की श्रुति-मधुर झंकृति ही वह प्रणव नाद है, जिसे योगी सुनते हैं। इस नाद का श्रवण करते ही गोप सुन्दरियाँ विषय रूपी संसार का त्याग करके परमात्मा रूपी कृष्ण से मिलने चल पड़ती हैं।

'सत्यार्थ विवेक' के रचयिता स्वामी दयानन्द ने इस सम्बन्ध में बताया है[1] कि वास्तव में कुण्डलिनी शक्ति के जाग जाने मात्र से ही प्रकृति का परमात्मा से मिलन नहीं होता। षट्चक्रों का भेद करने के लिए योग मार्ग में अनेक क्रियाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। ये चक्र सुषुम्णा नाड़ी के साथ गुम्फित हैं। इनका भेदन करके कुण्डलिनी शक्ति को सहस्रदल कमल में स्थित परमात्मा पुरुष के समीप ले जाने में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। साधक को अनेकों कष्टों का सामना करना पड़ता है। नाभिचक्र का भेदन होते ही साधक योगी में कुछ सिद्धियों का चमत्कार प्रकट हो जाता है। इस समय गुरु-सन्निधि में अभिमान होने का भय बना रहता है। रासलीला के प्रसंग में भी गोपियों को भगवान की अनुकम्पामयी सिद्धि की उपलब्धि से अभिसार हो गया था। दोनों भ्रू के मध्य में विद्यमान आज्ञा-चक्र में कुण्डलिनी के स्थित होने पर चैतन्य का ज्ञान प्रकट होता है और साधक योगी-त्रिकालज्ञता का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। जिस प्रकार गोपियों को श्री कृष्ण में परमात्म दर्शन प्राप्त हुआ था। अन्तत: जब शक्ति का परमात्मा के साथ कमल में संयोग हो जाता है तो योगी को ब्रह्म तथा ब्रह्ममय जगत् का ज्ञान हो जाता है और वह परमानन्द की पीयूष-प्रस्राविणी-मन्दाकिनी की शीतलता के आनन्द में डूब जाता है। इस प्रकार आध्यात्मिक अर्थ में योगी के अन्त:करण में नित्य रासलीला विहार होता रहता है।

श्री मोतीलाल शर्मा ने रास प्रसंगागत नामों का वैदिक परिभाषाओं के साथ समन्वय करने का प्रयत्न किया है।[2] 'गच्छतीति गौ:' इस व्युत्पत्ति के अनुसार गतिभाव के कारण सौम्य प्राण ही पारमेष्ठ्य गो तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी गति प्रधान गो तत्त्व के संचार से उस लोक को गोष्ठान कहा जाता है। इसी गोष्ठान की सामवेद के अनुसार गोसव संज्ञा है और पौराणिक परम्परा में गोलोक नाम है। गत्यर्थक व्रजधातु के सम्बन्ध से ही इसको व्रज धाम कहा जाता है। व्रजधाम में अंगिरा तथा भृगुधारा प्रवाहित होती है जिनके द्वारा क्रमश: शब्द और अर्थ की सृष्टि होती

१. सत्यार्थ विवेक—स्वामी दयानन्द कृत, भूमिका, पृ० २०
२. सांस्कृतिक व्याख्यान पंचक—श्री मोती लाल शर्मा कृत, पृ० २०७–१०

है। दोनों धाराएँ क्रमशः सरस्वती तथा आम्भृणी को ही पौराणिक परम्परा में राधा कहा गया है।

श्री कृष्ण ने रास के अवसर पर अकेली राधा ही नहीं, अनेकों गोपियों के साथ रास-रमण किया। श्री कृष्ण का एक ही शरीर रास में नहीं था प्रत्युत उन्होंने अपने को अनेक कर लिया था—

एवं गृहे-गृहे रम्ये नाना ृतिविधाय च।
रेमे गोपाङ्गनाभिश्च सुरम्ये रास-मण्डले ॥[1]

'जनवसुमसुत्तन्त' में ब्रह्म सनङ्कुमार ने तैंतीस देवताओं को सभा में अपने प्रत्येक देवता के समीप आसन पर प्रकट किया था और प्रत्येक देवता ने सनङ्कुमार की अपने निकट उपस्थिति का अनुभव किया था।[2] ऐसा कहा जाता है कि योगी को योगसिद्धि प्राप्त होने पर वह एक साथ अनेकों शरीरों का निर्माण कर सकता है और अनेक स्थानों पर भिन्न-भिन्न शरीरों द्वारा विद्यमान रहकर पृथक्-पृथक् कार्य सम्पादन करने की विलक्षण शक्ति से अधिजुष्ट होता है।[3]

श्रीमद्भागवत के अनुसार तो श्री कृष्ण न केवल गोपियों के पार्श्वस्थ अथवा सम्मुखस्थ थे प्रत्युत वे गोपी-पतियों के पास गोपियों के रूप में भी उपस्थित थे। गोपों को यह ज्ञान नहीं था कि उनकी पत्नियाँ वहाँ नहीं हैं। गोपगण अपनी गोपियों को अपने पार्श्वस्थ ही देख रहे थे—

नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया।
मन्यमानाः स्व पार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥[4]

इस सम्बन्ध में श्री कृष्ण की स्वेच्छाचारिता पर श्रीमद्भागवत में राजा परीक्षित ने आक्षेप किया है—

सकथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥[5]

पर-पति द्वारा पर-स्त्री का सम्पर्क कब ग्राह्य हो सकता है। किन्तु इसका उत्तर शुकदेव ने वहीं सहज भाव से दे दिया है—

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२८।७६

२. रासपंचाध्यायी-रसिकविहारी जोशी कृत, भूमिका, पृ० १ में Le ritual de le dewotion Krsnaite से उद्धृत।

३. वही, रासलीला रहस्य, पृ० १६   ४. श्रीमद्भागवत १०।३३।३८   ५. वही, १०

यत्पादपङ्कजपरागनिषेकतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥[1]

ब्रह्म-वैवर्त में इस प्रकार की शंका का कहीं लेश नहीं है किन्तु यदि सन्देह के भाव पैदा होते हैं तो वहीं इस शंका को निर्मूल करने के लिए अष्टावक्र की कथा संश्लिष्ट है। इस कथा को श्रवण करते ही हम इस विचार में आ जाते हैं कि कृष्ण कोई हम जैसे साधारण जनों में नहीं हैं। वे गुणातीत, गुणाधार, गुणबीज, गुणात्मक, गुणश एवं गुणायन हैं। ब्रह्म, शिव, पार्वती, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा और धन्वन्तरि के गर्व को खर्व करने वाले हैं।

ब्रह्म-वैवर्त में स्थान-स्थान पर श्री कृष्ण का सर्व मूलत्व प्रमाणित होता रहता है। उनकी विलक्षणता पृथक् रूपेण निखरी रहती है। उसमें भक्त नारद स्वयं सन्तुष्ट हैं। वे मात्र एक प्रश्न करते हैं। नारद नारायण से कहते हैं कि—

वृन्दावनं किं प्रकारं किं विधं रासमण्डलम् ।
हरिरेक स्ताश्च बह्व्यः केन क्रीडा बभूव ह ॥[2]

इस प्रश्न के उत्तर में दो अध्याय स्वरूप समाधान अथवा रासलीला का यथा-विधि वर्णन निरन्तर रूप से कर देते हैं। 'हरिरेकस्ताश्चबह्व्याः' का भी समाधान[3] 'एवं गृहे गृहे रम्ये नानामूर्तिंविधाय च। रेमेगोपाङ्गनाभिश्चसुरम्ये रासमण्डले' से ही हो जाता है।

अन्य पुराणों के वर्णन से ब्रह्म-वैवर्तीय वर्णन का यह भी वैशिष्ट्य है कि कौतुक से सम्पादित विनोद-मुरली-रव से राधा एवं अन्य गोपियों को चेतना मिलती है और तदनन्तर वे उत्थित होकर समुद्विग्न हो जाती हैं। तत्पश्चात् तो वे सभी कर्मों को त्याग कर चल पड़ती हैं—

त्यक्त्वा चावश्यकं कर्म निस्ससार द्रुतं गृहात् ।
ययौ तदनुसारेणप्रसयीक्ष्य चतुर्दिशम् ॥[4]

इस वर्णन में गोपियों के अतिरिक्त अन्य प्राणी जैसे व्रजवासी—गो, गोप आदि किसी की चर्चा नहीं। सम्भवतः उस रास प्रयाण के अवसर पर गोपियों का गमन अन्य लोगों को प्रतीत नहीं हो पाता। ब्रह्म-वैवर्तीय वर्णन के अनुसार एक मास यावत् दिवा-निश निरन्तर चलते रास में गोपियों एवं कृष्ण की व्रज में अनुपस्थिति से नन्द, यशोदा, वृषभानु, कलावती तथा अन्य गोपों, जिनकी पत्नियाँ वे गोपियाँ थीं, के मनोभावों पर दृष्टिपात नहीं किया गया। रास मण्डल का अत्यद्भुत चमत्कार वर्णन, गोपियों की कोटि-

1. श्रीमद्भागवत १०।३३।३०, ३५
2. ब्रह्मवै० ४, १।२८।२
3. वही ४, १। २८।७७
4. वही, ४, १।२८।२१

कोटि संख्याएँ, सरोवरों, वनों, वृक्षों और सखियों का अतिशायी वर्णन लेखन्यतीत (कलम तोड़) अत्युक्तियों से भरा पड़ा है। इस वैज्ञानिक युग में ये अतीव संख्याएँ हास्यास्पद-सी लगती हैं। किन्तु कृष्ण की अनन्त-शक्तिशालिनी अद्भुत माया के सम्मुख क्या आश्चर्य है। वहाँ तो सब कुछ सम्भाव्य है। कृष्ण चरित्र में तो पदे-पदे विलक्षणता है। श्री कृष्ण अग्नि से भस्मसात् होते हुए गो, गोप और कान्तार को देखकर अरण्य की सम्पूर्ण ज्वाला अपने आस्य में विलीन कर लेते हैं। गोवर्धन पर्वत को उठा कर ब्रज की रक्षा करते हैं। मृत गुरु पुत्रों को प्रत्यक्ष जीवित करते हैं। इस प्रकार अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जिन्हें सम्पन्न करना मानव-शक्ति से परे है, उन सबको कृष्ण करते हैं। अतः अनन्त शक्तिशालिमायेश कृष्ण के सम्बन्ध में शंका व्यर्थ ही है।

श्री कृष्ण के गोकुलीय रास के दर्शनार्थ देव, ऋषि, मुनि, सिद्ध, पितर, विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर अपनी-अपनी पत्नियों सहित पधारे थे। भगवान् शिव भी पार्वती के साथ रास-नृत्य देख रहे थे। महाकाल, नन्दिकेश्वर, कार्तिकेय, गणेश, पिंगल आदि पार्षद, क्षेत्रपाल अष्ट भैरव, दुर्गा, भारती, ब्रह्मा, सप्तर्षि, सनकादि कुमार धर्म, मूर्ति, शची, महेन्द्र, रोहिणी, शशि, स्वाहा, अग्नि, सूर्य, संज्ञा, काम, रति सभी ग्रह और सपत्नीक दिक्पाल ये सभी आकाशस्थ हो रास देख रहे थे।[1]

अहोभाग्य है इन देवादिकों का! क्योंकि यह पूर्ण-ब्रह्म और माया का रास है—

राधया सह कृष्णाख्य पूर्णं ब्रह्म सनातनः।
गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्णरूपिकाः॥[2]

श्री कृष्ण की माया गोपियों के साथ श्री कृष्ण के रूप में थी। इस प्रकार एक ही कृष्ण सभी के पास थे। इस स्थिति में गोपों के पास श्री कृष्ण की माया से गोपियों की अपने-अपने परिवार में मायाकृत अनुकृति की उपस्थिति भी सम्भव है। जैसा कि श्रीमद्भागवत का समाधान है। इस वर्णन से श्रीमद्भागवत के इस कथन का भी सामंजस्य हो जाता है—

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः।
प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत्॥[3]

मायाकृत रूप के बिना सभी गोपियों के साथ रमण करना सम्भव ही कैसे होता। किन्तु इस रमण में श्री कृष्ण की आसक्ति थी या नहीं? पूर्ण ब्रह्म में आसक्ति वा व्यसन की सम्भावना कहाँ? अतः अपने ही रूप के साथ वह क्रीडा मात्र है।

एवं परिष्वंगकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः।
रेमे रमेशो व्रज-सुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२८।११२-२८
२. वही ४, १।२८। १३१, १३२
३. श्रीमद्भागवत १०।२९।४२
४. वही १०।३३।१७

राधा के साथ रमण भी स्वयं अपने ही से रमण जैसा है। ब्रह्म-वैवर्त के प्रथम खण्ड[1] में ही यह स्पष्ट किया गया है कि गोलोक में कृष्ण के वाम-पार्श्व से एक कन्या प्रकट हुई है। वह दौड़ कर पुष्प लायी और प्रभु श्री कृष्ण चरण में उसने अर्घ्य समर्पित किया। वह गोलोकीय राम-स्थली में प्रकट होकर अर्घ्य-प्रदानार्थ हरि के सम्मुख दौड़ी, अतः राधा के नाम से ख्यात हुई।

आविर्बभूव कन्यका कृष्णस्य वाम पार्श्वतः।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावार्घ्यं प्रभोः पदे॥
रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥

उक्त भाव से मिलता हुआ राधा शब्द का एक अन्य निर्वचन भी है :—

रा च रासे भवनाद् धाएव धारणादहो।
हरे रालिङ्गनादारात्तेन राधा प्रकीर्तिता॥[2]

पद्म-पुराण में भी राधा को चिन्मयी माया का रूप दिया गया है :—

स्वरूपा शक्तिरूपा च मायारुपा च चिन्मयी।[3]

ब्रह्मवैवर्त-पुराण में स्वयं श्री कृष्ण राधा को सान्त्वना देते हुए बताते हैं :—

ममाधार-स्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि साम्प्रतम्।
त्वं च शक्ति-समूहा च मूल-प्रकृतिरीश्वरी॥
त्वं शरीर-रूपाऽसि त्रिगुणाधार-रूपिणी।
तवाऽऽत्माऽहं निरीहश्च चेष्टावाँश्च त्वया सह॥[4]

इस प्रकार मूल-स्थिति पर विचार करते हुए तो सब कुछ कृष्णमय ही प्रतीत होता है। यह प्रेमरसाप्लुति अनुपम है। कृष्ण-ध्यानैकतानमानसा गोपियों की यह स्वार्पणार्चना अद्भुत है।

रास की रमणीयता

ब्रह्म वैवर्त में वर्णित रास तीन प्रकार का है। एक रास तो गोलोकीय-रास है और द्वितीय गोकुलीय रास है, जिसमें सभी गोपियाँ और राधा हैं। तृतीय गोकुलीय रास का एक अंग है जिसमें राधा माधव का ही रास विशेष है। प्रथम दो में राधा कृष्ण और गोपियाँ प्रेमानन्द नन्दित हैं।

गोलोकीय रास प्रकृति के सुरम्य वातावरण में नहीं प्रत्युत रम्य कल्पवृक्षों के मध्य कुसुम एवं मण्डलाकृति में है। चन्दन अगुरु कस्तूरी और कुंकुम से अलंकृत अथवा

१. ब्रह्म वै० १।५।२५-२६ २. वही ४, ११७।२२३
३. पद्म पुराण, पाताल खण्ड ७७।१५ ४. ब्रह्म वै० ४, १।६।२,२५,३

इनसे सिंचित और दधि, लाज, सक्तु, धान्य एवं दूर्वा-पत्र से समन्वित है। चन्दन के नवपल्लवों से सुसज्जित है। कदली स्तम्भ लगे हैं। यहाँ रत्नविनिर्मित त्रिकोटि मण्डप हैं, जिनके अन्दर रत्न प्रदीप प्रज्ज्वलित हैं और अन्तर्भाग पुष्प एवं धूप से अधिवासित है। शृंगार एवं भोग की सभी वस्तुएँ भरी पड़ी हैं। तल्प भी अतीव ललित वस्तु आकल्पित हैं।[1] स्वर्ण एवं हीरों की क्या चर्चा, जहाँ सर्वत्र रत्न-सार-निर्माण ही है। सम्पूर्ण गोलोक मुक्तामाणिक्य एवं परममणियों का रत्नाकर है। यहाँ पद्मराग, इन्द्रनील, मरकत, स्यमन्त एवं कौस्तुभ मणियों का रत्नाकर है। पारिजात, कल्पवृक्ष एवं काम-धेनुओं से गोलोक ही वेष्टित है।[2]

रास मण्डल दश योजन विस्तीर्ण एवं वर्तुलाकार है।[3] गोपियाँ रत्ननिर्मित कंकण, केयूर, नूपुर, एवं कुण्डलों से सुशोभित हैं। उनके पदाङ्गुलियों में रत्नपाशक शोभित हैं। नासिका में वे गजमुक्ता धारण किए हैं। वे सिन्दूर-विन्दु एवं चन्दन-द्रव-चर्चित हैं। उनके परिधान पीत हैं। गोपी-मुख-कान्ति शरत्पूर्ण चन्द्र प्रभा को लघु करती है। शरत्प्रफुल्ल पद्म से भी अधिक सुन्दर उनके लोचन हैं। कस्तूरी-पत्रिका एवं कज्जल की रेखाओं से ये सुशोभित हैं। मधुलोभी भ्रमरों से घिरी प्रफुल्ल मालती मालाओं से उनकी कबरी सुशोभित है। गोपियों की वक्रभृकुटियों का संचालन मनोहर स्मित समन्वित है। वे पक्व-दाडिम-बीजाभ-दन्तपंक्ति-विराजित एवं खगेन्द्रचञ्चुशोभाढ्य नासिका-भूषित हैं, गजेन्द्र-गण्ड युग्माभस्तनों के भार से जैसे नत हैं। उनकी श्रोणियाँ कठिन-नितम्ब एवं स्तन के पीन भार से नत हैं। उनका मानस मन्मथ-शर से जर्जरी-भूत है। उनके पूर्णचन्द्र जैसे आनन को देखने के लिए दर्पण स्वयं उत्सुक हैं। राधिका-चरणाम्भोज-सेवासक्त-मनोरथा सुन्दरी-गोपी-समूहों के द्वारा राधिका की आज्ञा से रास-मण्डल की रक्षा की जाती है। यहाँ लाखों क्रीडा सरोवर स्थित हैं। इनमें श्वेतरक्तलोहित वर्णों के पद्म खिले हैं। सहस्र-पुष्पोद्यान-समन्वित इस रास मण्डल में पुष्पशय्या-समन्वित करोड़ों कुंज कुटीर हैं।[4]

यहाँ रास मण्डल में सम्पूर्ण भोगद्रव्यसमन्वित रास-मण्डप है।[5] रसिक शिरोमणि श्री कृष्ण के संग राधा एवं अन्य गोपियाँ यहाँ क्रीडा करती हैं। यह भगवान् कृष्ण का नित्य लीला क्षेत्र है। यह गोलोकीय रास है। यहाँ कृष्ण गोपियों को मुरली रव से संकेत नहीं करते। गोकुल का रास सदा चलने वाला नहीं है। वह तो त्रिंशद्दिवानिश यावत् है। यह रास वृन्दावन में होता है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में सर्वविध-सुख-सुविधापूर्ण प्रकृति-कृत-सकल-कलित कला-कलाप-मण्डित रास-स्थली को देखकर श्री कृष्ण भी अपनी प्रसन्नता को रोक न सके, हँस पड़े।[6]

---

१. ब्रह्म वै० १।५।१९-२६ २. वही ४, १।४।७८-८४ ३. वही ४, १।४।८६
४. वही ४, १।४।८७-११२ ५. वही, ४, १।४।११३ ६, वही, ४, १।२८।१७

यूथिका, मालती, कुन्द और माधवी पुष्पों की वायु से वृन्दावनस्थ रासस्थली सुवासित है। भ्रमर गुंजार कर रहे हैं। नवपल्लवों में कोकिल मधुर स्वर में अलाप रही हैं। नव लाख वास स्थल बने हैं।[१] ये सभी चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम से सुवासित हैं। कर्पूर युक्त ताम्बूल तथा भोगद्रव्ययुक्ता चम्पा के पुष्पों और कस्तूरी एवं चन्दन से युक्त रतियोग्य अनेकों आसन सुशोभित हैं।[२]

रास-मण्डल चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम से सुसंस्कृत है। इसमें विकसित पुष्पों के उद्यान तथा अनेकों क्रीडा-सरोवर हैं। सरोवरों में हंस, कारण्डव तथा जल-कुक्कुट बोल रहे हैं, वहाँ सुरति-शैथिल्यापहारी सुन्दर क्रीडनीय-स्थल हैं। सरोवरों के जल शुद्धस्फटिक-सदृश निर्मल है। यहाँ दधि, अक्षत, लाज (लावा) रम्भा-स्तम्भ आम्रपल्लव, मंगलघट, सिन्दूर, चन्दन, मालतीमाला, नारियल और सूत्र भी हैं। इन सभी वस्तुओं को देख श्री कृष्ण अति प्रसन्न हुए। इसी प्रसन्न स्थिति में श्री कृष्ण विनोदित करने वाले मुरली-रव को करते हैं।[३]

यह मुरली-रव कामुकी-गोपियों का काम-वर्धनकारी था। राधा तो मदनातुर-शीघ्र मुग्ध हो जाती हैं। श्री कृष्ण-ध्यानस्थराधा स्थाणुवत् होती हैं। पुनः वंशी-रव सुना तो उठ खड़ी हुईं और सारे काम-धाम छोड़ कर श्री कृष्ण के चरण-कमल का ध्यान करती चल पड़ती हैं। उनके पीछे उनकी सखियाँ भी वंशी-ध्वनि का अनुसरण करती चलती हैं।[४]राधा की तैंतीस वयस्क सखी-गोपियाँ हैं। इनमें एक-एक सखी नव सहस्र से सत्तरह सहस्र तक संख्या वाले गोपी-यूथ की अग्रणी हैं। सुशीला, चन्द्रमुखी, माधवी, कदम्बमाला, कुन्ती, यमुना, जाह्नवी, पद्ममुखी, सावित्री, पारिजाता, स्वयम्प्रभा सुधामुखी, शुभा, पद्मा, गौरी पद्मा, सर्वमंगला, कालिका, कमला, दुर्गा, सरस्वती, भारती, अपर्णा, रति, गंगा, अम्बिका, सती नन्दिनी, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, मधुमती, चम्पा, चन्दना, ये बत्तीस सखियाँ राधा के साथ तैंतीस होती हैं।

ये सभी गोपियाँ वंशी-रव से काम मोहित हो निःशंक भाव से कृष्ण मिलन हेतु चल पड़ती हैं—

बहिर्बभूवुस्त्रस्ता रवेण हृत-चेतनाः।
कुलधर्मं परित्यज्य निःशङ्काः काम-मोहिताः ॥[५]

ये गोपियाँ नव लाख हैं, उन सबके साथ इतने ही गोप अथवा कृष्ण हैं—

एवं गृहे-गृहे रम्ये नाना मूर्तिं विधाय च।
रेमे गोपाङ्गनाभिश्च सुरम्ये रासमण्डले ॥

---

१. ब्रह्मवै०, ४, १।२८।८ २. वही ४, १।२८।७-१० ३ वही ४, १।२८।१२-१७
४. वही ४, १।२८।१८-२३ ५. वही, ४, १।२८।२३

अभ्यन्तरे रतिं कृत्वा बहिः क्रीड़ां चकार ह ।
गोपी-गोप-समाश्लिष्टे सर्वत्र रास-मण्डले ॥
गोपीनां नवलक्षाणि गोपानां च तथैव च ।
लक्षाण्यष्टादश मुने ! युक्तानि रास-मण्डले ॥[१]

गोपियों एवं कृष्ण की यह काम-क्रीड़ा स्थल ही नहीं जल में भी होती है।

एवं कृत्वा तत्र स्थलक्रीड़ां ययुस्तानि जलं मुदा ।
कृत्वा तत्र चिरक्रीड़ां परिश्रान्तानि साम्प्रतम् ॥[२]

कोई गोपी कृष्ण की वंशी ले लेती है, तो कोई कृष्ण को खींचती है। कोई उन्हें नग्न करती है, कोई उनका चुम्बन करती है। इस प्रकार विभिन्न-काम-क्रीडाएँ, जिन्हें लिखने में संकोच होता है, होती रहीं। ऐसा नग्न चित्रण सम्भवतः अग्राह्य हो सकता है। यही यद्यपि कामकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण भी है। इसी प्रसंग में नव-विध-आलिंगन, अष्टविध-चुम्बन, षोडश-विध-शृंगार तथा द्वादशविध प्राकृत का वर्णन मिलता है। इस प्रसंग में वर्णित काम-क्रीड़ा अति-प्रेमभाव-भरित है।

पुनः जल से निकल कर स्थल-क्रीडा और पुनः यमुना जल में रास क्रीड़ा होती रहती है।

तूर्णं जलात्समुत्थाय वासांसि परिधाय च ।
ददृशु मुंख-पद्मानि सद्रत्नदर्पणेषु च ॥[३]
स्थले रतिरसं कृत्वा जगाम यमुना जलम् ।
राधया सह कृष्णश्च पूर्णं ब्रह्म सनातनः ॥
गोपीभिः सह जग्मुश्च मायाः श्रीकृष्ण-रूपिकाः ।
प्रपीडिताः कामबाणैः क्रीड़ां चक्रुर्जले मुदा ॥[४]

इस प्रकार श्री कृष्ण गोपियों की मान रक्षा में उनकी वेणी गूथना[५], उन्हे सिन्दूर लगाना[६], उनके पैरो में आलक्तक[७] लगाना जैसे भी कार्यों को करते हैं। उनके साथ रम्य-उद्यानों, सरोवरों नदी-तटों एवं गिरि-गह्वरों में भी श्री कृष्ण रमण करते हैं। उनके अतिरिक्त तैंतीस निम्नलिखित वनों में वे गोपियों के साथ भ्रमण करते हैं—

भाण्डीरे श्रीवने रम्ये कदम्ब-कानने तथा ।
तुलसी-कानने कुन्द-वने चम्पक-कानने ।
निम्बारण्ये मधुवने जम्बीर-कानने तथा ।
नारिकेल-वने पूगवने च कदली-वने ॥

१. ब्रह्म वै० ४, १।२८।७६-७८ २. वही, ४, १।२८।८० ३. वही ४, १।२८।८१
४. वही ४, १।२८।१३१-१३२ ५. वही ४, १।२८।१४६
६. वही, ४, १।२८।१४८ ७. वही ४, १।२८।१५२

बदरी-कानने बिल्व-वने नारिङ्ग-कानने ।
अश्वत्थ-कानने वंश-वने दाडिम-कानने ।।
मन्दार-कानने तालवने चूत-वने तथा ।
केतकी-काननेऽशोक-वने खर्जूर-कानने ।।
आम्रातक-वने जम्बू-गहने शाल-कानने ।
कण्टक-कानने पद्म-वने जाति-वने मुने ।।
न्यग्रोध गहने घोरे श्रीखण्ड-कानने तथा ।
प्रकृष्ट-केसर-वने सर्वतोऽपि विलक्षणे ।।[1]

गोपाङ्गनाएँ काममत्तता में अतिप्रौढ़ होने के कारण श्री कृष्ण को पति नहीं मानती हैं—

अथ गोपाङ्गनाः सर्वाः काममत्ततया मुने ।
अतिप्रौढ़ाश्च मानिन्यो नेश्वरं मेनिरे पतिम् ।।[2]

राधा के साथ माधव गोपियों की दृष्टि से अन्तर्हित भी हो जाते हैं ।[3] गोपियों का ध्यान इस वियोग पर जाता नहीं । प्रेम भाव में राधा कृष्ण में पुष्प का आदान-प्रदान भी होता है ।[4] राधा श्री कृष्ण को ताम्बूल समर्पित करती हैं वे उसे ग्रहण कर खा लेते हैं । और चर्बित ताम्बूल को प्रभु राधा को प्रदान करते हैं । राधा उसे शीघ्र ही मदनातुर हो खा लेती हैं । किन्तु जब राधा चर्बित ताम्बूल की कृष्ण ने याचना की तो राधा कृष्ण के चरण-कमल ग्रहण कर लेती हैं ।[5]

इस द्वितीय रास में श्री कृष्ण गोपियों की दृष्टि से कभी ओझल नहीं होते । इस रास प्रसंग में किसी वियोगात्मक स्थिति का समागम नहीं है ।

ब्रह्म-वैवर्त में गोकुलीय-रास का अंगीभूत-रास और राधा-माधव के रास का वर्णन पृथक् रूपेण किया गया है । यह प्रसंग रास के ही अन्तर्गत है जब श्री कृष्ण राधा को विभिन्न दर्प-भंग की कथाएँ सुनाते हैं वहाँ राधा और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है । अकस्मात् वट वृक्ष के नीचे अष्टावक्र का दर्शन और उनकी ऊर्ध्व गति के पश्चात् कुछ काल के लिए राधा-कृष्ण की काम-क्रीडा विश्रान्त हो जाती है ।

दत्तचित्त हो राधा ब्रह्मा के शाप तथा उनके दर्पभंग के अनन्तर ही अन्य देवों के दर्पभंग की कथा सुनाती हैं ।

तदनन्तर श्री कृष्ण राधा को वृन्दावन चलकर गोपियों से पुनः मिलने के लिए कहते हैं—

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२८।१६२-६७ २. वही ४, १।२९।१ ३. वही, ४, १।२९।१२
४. वही ४, १।२८।२८ ५. वही, ४, १।२८।६८-७०

अधुना च समुत्तिष्ठ गच्छ वृन्दावनं वनम्।
गोपिका विरहार्ताश्च शीघ्रं पश्यामि सुन्दरि ॥[1]

इसी बीच तीसवें अध्याय से इक्यावनवें अध्याय तक निरन्तर बाइस अध्याय में दर्पभंग की कथाएँ कहीं गयी हैं। ये प्रसंग अति ही रोचक एवं रहस्यपूर्ण हैं।

निस्सन्देह उक्त सारी कथाओं का श्रवण कर कृष्ण के प्रति तथा विशेषत: अपने ऊपर भी रासेश्वरी राधा को गर्व हुआ। उन्होंने श्री कृष्ण से वृन्दावन के उस स्थान पर जहाँ गोपियाँ होंगी चलने की बात सुनकर यह कहा कि मैं चलने में असमर्थ हूँ, अत: मुझे ले चलें। रसिकेश्वरी की इस बात को सुनकर मधुसूदन ने उत्तर दिया कि आओ तैयार हूँ, मुझ पर चढ़ जाओ।

इतना कहते ही प्रिय कृष्ण अन्तर्धान हो गये। इधर-उधर राधा ने देखा वे कहीं गये। बेचारी रोती-बिलखती श्री कृष्ण का अन्वेषण करती वृन्दावन में पुन: पहुँचीं। वे रोती हुई चन्दन वन में पहुँचती हैं। गोपियों को देखती हैं। निराहार राधा गोपियों को अपनी भ्रमण की कथा भी सुनाती हैं उनके साथ 'हा नाथ-नाथ' कह कर रोती भी हैं। राधा सहित सभी गोपियाँ शरीर ही त्याग देने हेतु उद्यत हो जाती हैं। अब तो श्री कृष्ण को चन्दन वन में प्रकट होना ही पड़ता है। प्रेमपूर्ण अनेकों उपालम्भ गोपियाँ देती हैं। अनेकों मधुर व्यंगों की वर्षा भी करती हैं। एक तो कहती हैं—इन्हें घेर कर बीच में कर लो और प्रेम-पाश से बाँध कर हृदय में रख लो, जिससे कि पुन: कहीं न छिप सकें—

काश्चिदूचुरिमं मध्ये यूयं कुरुत सत्वरम्।
निबद्ध-प्रेम-पाशेन हृदये चेति काश्चन ॥[2]

सबके उपालम्भ-श्रवण कर उन्हें प्रसन्न कर पुन: वे उसी रास-मण्डल में उपस्थित होते हैं—

एवं तं गोपिका: सर्वा: मध्येकृत्वा सदीश्वरम्।
ययुर्वनान्तरं यत्र सुरम्यं रास मण्डलम् ॥
रासं गत्वा स्वर्णपीठे तस्थौ स रसिकेश्वर:।
निशि भाति यथाऽऽकाशे चन्द्रस्तारागणै: सह ॥
नाना मूर्ति विधायात्र सह ताभि र्जनार्दन:।
चकार च पुन: क्रीडां कामुकीनां मनोहराम् ॥
एवं तौ तस्थतु स्तत्र राधाकृष्णौ रसोत्सुकौ।
तस्थुस्ता गोपिकाभिश्च सुरतौ कृष्णमूर्तय: ॥

---

१. ब्रह्म वै० ४, १५२।२ २. वही ४, १५२।२१

अन्त में रासेश्वर श्री कृष्ण यमुना-जल में गोपियों एवं रासेश्वरी राधा के साथ स्नान करते हुए जल-क्रीड़ा करते हैं।[१] गोपाङ्गनाएँ तो विरह-व्यथित स्थिति में अपने-अपने गृह पधारती हैं किन्तु रासेश्वर रासेश्वरी के साथ भाण्डीर वन चले जाते हैं। वहाँ दोनों ही सुख शयन करते हैं। रासेश्वर स्वयं राधा का शृंगार करते हैं। राधा की कबरी के लिए ब्रह्मा पारिजात पुष्प और शिव सहस्र दल कमल प्रदान करते हैं। वह आसव जिसे श्री कृष्ण राधा को प्रदान करते हैं उसे श्री कृष्ण को अश्विनी-कुमार ने अर्पित किया था।[२] राधा की नाक के लिए देवराज गजमुक्ता प्रदान करते हैं।[३]

तत्पश्चात् सुशीला आदि गोपियाँ, जो कि माठ सहचरियाँ परम विख्यात हैं, वे सभी उपस्थित होती हैं। छत्तीस राग-रागिनियाँ भी गोपिका-रूप धारण कर आती हैं—

षट्त्रिंशद्-रागरागिण्यो गोपिकारूप-धारिकाः।
गोलोकादागता याश्च भारने राधया सह ।[४]

इस प्रकार गोपियों एवं राधाकृत नानाविध सेवाओं को श्री कृष्ण ग्रहण करते हैं। अन्त में ये सभी निज-निज स्थानों को प्रस्थान करते हैं।

रास वर्णन के प्रसंग में राधा-कृष्ण विवाह की उपेक्षा करना रास वर्णन को अधूरा छोड़ना होगा। अतः चौथा रास तब होता है जबकि राधा-कृष्ण विवाहार्थ स्वयं राधा रास-मण्डल का स्मरण वृन्दावन में करती हैं। यहाँ रास मण्डल में रत्नमण्डप है। मायाकृत रत्न-मण्डप विवाह के पूर्व क्यों न निर्मित हो।

पुलकांकित सर्वाङ्गी सस्मार रासमण्डलम्।
सतस्मिन्नन्तरे राधा माया सद्रत्न मण्डपम् ॥
ददर्श रत्नकलशशतेन च समन्वितम् ॥[५]

इस रास मण्डल में ब्रह्मा ने राधा कृष्ण को विवाहित किया :—

तदा ब्रह्मातयोर्मध्ये प्रज्वाल्य च हुताशनम्।
हरिं संस्मृत्य हवनं चकार विधिना विधिः ॥
श्रीकृष्णस्य गले ब्रह्मा राधा द्वारा ददौ मुदा।
राधा गले हरिद्वारा ददौ मालां मनोहराम् ॥[६]

तदनन्तर राधा-कृष्ण की काम क्रीड़ा का वर्णन है। यह वर्णन तैंतालिस अनुष्टुपों में किया गया है (१३६ से १७८ तक)।

---

१. ब्रह्म वै० ४, १।५३।२
२. वही ४, १।५३।३०-३४
३. वही, ४, १।५३।३८
४. वही, ४, १।५३।$\frac{४५}{२}$—$\frac{४६}{१}$
५. वही ४, १।१५।३८-४०
६. वही, ४, १।१५।१२१-१२९

श्री कृष्ण की आज्ञा से मनोयायिनी राधा शिशु श्री कृष्ण को, जिसे उन्होंने वृन्दावन में नन्द से आँधी-पानी में रक्षार्थ ग्रहण किया था, निमिषार्ध में यशोदा की गोद में दे देती हैं।[1]

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त रास-स्थल एव रास-क्रीड़ा के वर्णन के क्षेत्र में अद्वितीय है। यह वैवाहिक रास-मण्डल घटना-क्रम की दृष्टि से तो गोकुल का प्रथम रास है।

रास वर्णन का गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि रास काम-क्रीड़ा का भी अपर पर्याय है। पद्म पुराण तथा श्रीमद्भागवत ने रास-क्रीड़ा को रहस्यात्मक तथा परिष्कृत रूप देने का प्रयास किया है, किन्तु ब्रह्म वैवर्त ने इसे काम-क्रीड़ा का रूप दे दिया है।

कुछ ब्रह्म-वैवर्तीय विशेष स्थल अवश्यमेव उस काल की देन हैं जबकि काम-क्रीड़ा के आसनों को जगन्नाथ के मन्दिर में भी दिखाने में संकोच नहीं हुआ। विशेषतः यह भी आशा की जा सकती है कि इस प्रसंग में प्रक्षिप्तांश के रूप में बहुत कुछ परिवर्धित कर दिया गया हो। मूल के साथ क्षेपक भी उतना ही पूज्य एवं परिष्कृत लगने लगा हो।

संख्याओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन भी इस पुराण को बहुत पीछे ढकेल देता है। प्राचीनतम के स्थान पर नवीनतम सिद्ध होता है।

रास-स्थली का वर्णन भौतिकता की दृष्टि से अनुपम है। हीरक, मणि, स्वर्ण से रास-स्थल भरा है। सर्व-सुख-सौविध्य से सम्भृत सम्पूर्ण-रास-मण्डल है। प्रेम-सौन्दर्य-विश्वास-आत्मार्पण-निश्छलता तथा त्याग का ऐसा सर्वसमन्वित एकत्रीकृत रूप अन्यत्र असम्भव है। रास-स्थल प्रेम के उस उद्दाम रत्नाकर का आधार है जहाँ गोपी-स्रोतस्विनी का एक-एक बिन्दु श्रीकृष्ण प्रेमाम्बुधि में समाविष्ट होने के लिए विह्वल है।

वर्णन की दृष्टि से डा० रसिक बिहारी जी का यह कथन[2] श्रद्धय है कि 'अन्य किसी भी पुराण में रासलीला के लिए रास-स्थली की रचना का विन्यास उपलब्ध नहीं होता। पुराणों में प्राप्त होने वाली रासलीला की वर्णन सामग्री में सर्वत्र कालिन्दी के सैकत पुलिन पर ही रासलीला होने का प्रमाण प्राप्त होता है।"

ब्रह्मवैवर्त-पुराण में प्राप्त होने वाले रास-मण्डल तथा रत्न-मण्डल की अद्भुत रचना यह प्रमाणित करती है कि इस पुराण के काल तक रासलीला वर्णन धीरे-धीरे निसर्ग सुन्दर सादगी का त्याग करके कृत्रिमता की चादर ओढ चुका था। वास्तु-कला का यह प्रमाण इस वर्णन को उत्तरकालीन सिद्ध करता है।

---

१. वही, ४, ११५।१७१-७८   २. रास-पंचाध्यायी—भूमिका

राधा की सखियाँ, उनके यूथ, सखियों के नाम, वेष और संख्याएँ, राधा का निवास-स्थल, उसकी सुरक्षा हेतु गोप एवं गोपियों का समवाय, रास-मण्डल की रत्न-प्रभा, मणि-हीरक-रत्नाकल्पित निवास, आमोद-प्रमोद के मनोमुग्धकारी विशाल वैभव विभासित वातावरण, रास-मण्डप राधाहेतु दिव्योपहार, राग-रागिनियों का अवतरण, जल-क्रीड़ा, वन-क्रीड़ा, भाण्डीर आदि तैंतीस वनों में परिभ्रमण आदि ब्रह्मवैवर्तीय रास की ऐसी विशेषताएँ हैं, जो अन्यत्र अप्राप्य हैं।

इस प्रसंग में इस तथ्य को भी अनावृत नहीं छोड़ा जा सकता कि नारी के मान का इस प्रसंग में विशेष महत्व दिया गया है। ब्रह्मा को भी नारी का अपमान कर उसका कुफल भोगना ही पड़ता है। भले ही नारी कुलटा अथवा व्यभिचारिणी हो।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मवैवर्त अपने इस रास-क्रीडा प्रसंग से उस सारे समाज को झकझोर देना चाहता है जो कि अपने उद्दण्ड वैभवों के बल पर नारी को अपने हाथ की कठपुतली बना कर रखते हुए उसे प्रताड़ना और प्रतारणा का आखेटक बनाता रहा। ब्रह्मवैवर्त ने एक दिशा दी काम को, जिसमें नारी अपने प्रिय से, अपने जीवन-धन से, निस्संकोच निर्भय होकर खेलती है, शृङ्गार करती है, प्रिय से कबरी में माला बँधाती है, नयनों में काजल लगवाती है, कुसुमतल्प पर वह मोदमय-वातावरण में पति के संग शयन करती है। इस प्रसंग पर नाक-भौ सिकोड़ना कोई अधिक परिश्रम साध्य नहीं किन्तु वे अपने. हृदय पर हाथ रखकर पूछें कि गार्हस्थ्य जीवन की सुखमयी कल्पना पति-पत्नी के मध्य कितने प्रतिशत प्रतिफलित है। केवल वैभवों से जीवन सुखी नहीं होता। राधा को चाहिए उसका प्यारा कृष्ण, जो उसे प्यार करे, उसका साथ दे, एक पल के लिए भी पृथक् न हो, उसका सम्मान करे, उसके लिए गोलोक से भी धरा पर आँधी तूफान में साथ देने आए। भाव-निशा के प्रेम-व्योम में मनोहारी कृष्ण-चन्द्र बन कर चमके!

———

अध्याय १६

ब्रह्मवैवर्त में विष्णु

विष्णु शब्द व्यापनार्थक विष् धातु से नुक् आगम होकर सम्पन्न होता है। इस प्रकार सर्वव्यापी प्रभु के अर्थ में पुराणों ने इसका प्रयोग किया है। विष्णु शब्द वैदिक-काल से आज तक की रचनाओं में सर्वव्यापी के अभिप्राय में असन्दिग्ध रूप से प्रयुक्त होता रहा है।

कभी-कभी विष्णु का अर्थ सूर्य भी लगाया गया। इस सम्बन्ध में आचार्य 'और्ण काम' का नाम स्मरणीय है। यास्काचार्य ने 'इदं विष्णुर्विचक्रमे, त्रेधा निदधे पदम् (ऋग्वेद १।२२।१७) में विष्णु एवं उनके तीन पद-क्रमणों की व्याख्या करते हुए 'शाकपूणि' और 'और्णकाम' का नाम लिया है। उन्होंने बताया है कि शाकपूणि विष्णु शब्द का अभिप्राय 'बलि के सम्मुख वामन रूप में उपस्थित सर्वव्यापी परमात्मा को' मानते हैं। किन्तु आचार्य 'और्णकाम' ने अपने रश्मिजाल से सर्वत्र व्याप्त रहने वाले सूर्य को ही विष्णु माना है। प्रातः, मध्याह्न एवं सायं ही उनके तीन पद हैं, बलि अन्धकार है।

उपर्युक्त और्णकाम की व्याख्या के होते हुए भी विष्णु शब्द सर्वव्यापी, अप्रमेय-पराक्रम, सर्वलोक-पालक, लक्ष्मीकान्त के अभिप्राय में ही प्रयुक्त होता रहा है।[1]

विष्णु का महत्व उपेन्द्र होने के कारण भी घटा नहीं। प्रत्युत उप का अर्थ उपवर्हण के उप की भाँति (उप शब्दोऽधिकार्थः)[2] अधिक हो गया। वास्तव में इन्द्र की वैदिककालीन प्रतिष्ठा ने विष्णु को उपेन्द्र स्वीकार किया। किन्तु शनैः-शनैः विष्णु की प्रतिष्ठा अणु से ब्रह्माण्ड तक के स्वामी के रूप में स्वीकार की गयी। विष्णु की छत्र-छाया में इन्द्र को भी आना पड़ा।

ब्रह्म-वैवर्त में विष्णु शब्द का निर्वचन करते हुए 'विष् का अर्थ व्याप्त तथा नु का अर्थ सर्वत्र है। इस प्रकार सर्वव्यापी एवं सबके आत्मा रूपी देव को विष्णु कहते हैं।'[3] विष्णु का महत्व बताते हुए आगे यह स्पष्ट किया गया है कि अपवित्र, पवित्र अथवा किसी भी अवस्था में जो व्यक्ति कमल-नयन विष्णु का स्मरण करता है, वह बाहर और अन्दर से पवित्र हो जाता है। कर्म के आरम्भ, मध्य अथवा अन्त में जो व्यक्ति श्री विष्णु का स्मरण करता है, उसका कर्म परिपूर्ण एवं वैदिक हो जाता है।[4]

---

१. विष्णु पु० १।२।६२ २. ब्रह्म वै० १।१२।४५
३. वही १।१७।१६ ४. वही १।१७।१७-१८

ब्रह्म-वैवर्त में विष्णु का दर्शन ब्रह्म-खण्ड के द्वितीय अध्याय में होता है। स्वेच्छामय प्रभु श्री कृष्ण जब बिना किसी की सहायता से सृष्टि करना चाहते हैं तो उनके दक्षिण-पार्श्व से सत्, रज एवं तमोगुण मूर्तिमान होते हैं। अहंकार एवं पंचतन्मात्राएँ प्रकट होती हैं। तदनन्तर सर्वव्यापी प्रभु का प्रत्यक्षदर्शी विष्णु-रूप होता है। ये श्याम-वर्ण, युवक, पीत वस्त्र-धारी, वन-माली, चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदा-पद्म-धर मन्द स्मित-युत, रत्न-जटित-आभूषण-विभूषित हैं। इनके कर-कमलों में शाङ्‌र्ग नामक धनुष तथा वक्ष पर कौस्तुभ-मणि विराजित है। इनके वक्ष पर श्री-वत्स-पद अंकित है। ये श्री-निवास एवं श्री के परम-भण्डार हैं। ये श्री को प्रसन्न करने वाले तथा इतने मनोहर हैं कि अपनी मुख-द्युति से शरच्चन्द्र-प्रभा को मात करते हैं। ये अपने सौन्दर्य से काम-देव के भी सौन्दर्य को नत करते हैं।[1]

विष्णु के इस विलक्षण, इन्द्रिय-ग्राह्य एवं मनो-मुग्धकारी रूप को ब्रह्मवैवर्त में नारायण कहा गया है।[2] श्री कृष्ण के सम्मुख अवतरित होते ही नारायण उनकी स्तुति करते हैं। नारायण को श्री कृष्ण ससम्मान रत्नमय-सिंहासन पर बैठाते हैं। इस सृष्टि-वर्णन-प्रसंग में श्री कृष्ण ने विष्णु को जितना बड़ा सम्मान दिया है, अन्य किसी को नहीं। देव-रूपों के अवतरित होने में चतुर्थ-स्थान धर्म का है। इन्होंने कृष्ण एवं विष्णु को एक माना है।[3]

ब्रह्म वैवर्त, ब्रह्म-खण्ड के चतुर्थ अध्याय में उक्त विष्णु के अतिरिक्त एक महा-विष्णु भी हैं। सृष्टि-विस्तार के क्रम में वायु एवं वायवी के निर्माण के पश्चात् अद्भुत-घटना-घटायान् कृष्ण का वीर्य-स्राव हुआ।[4] इस वीर्य को जल में प्रेरित कर दिया गया। यह एक सहस्र वर्ष के अनन्तर डिम्भ के रूप में हुआ। उस डिम्भ से विराट्, जो कि समस्त विश्व-सृष्टि के विस्तार का आधार बना, उत्पन्न हुआ। यह विराट् ही महाविष्णु हैं।[5] महाविष्णु का भी अपर नाम नारायण है।[6]

महाविष्णु की उत्पत्ति मार्तण्ड की उत्पत्ति के समान है। महाविष्णु के उद्भावक डिम्भ की कथा ब्रह्म खण्ड के अतिरिक्त गणेश खण्ड के बयालिसवें, प्रकृति खण्ड के द्वितीय, ५३वें और ५४वें अध्याय में तथा श्री कृष्ण जन्म खण्ड के ८४वें अध्याय में भी वर्णित है। तुलना की दृष्टि से ये महाविष्णु श्री कृष्ण के सोलहवें अंश हैं।[7] वैकुण्ठ-लोक-वासी विष्णु को श्री कृष्ण का अर्धांश भी बताया गया है।[8]

महाविष्णु प्रादुर्भाव-काल में पद्म-पत्र-सदृश जल में—महासागर में—स्थित रहे।[9] महाविष्णु के कर्ण-मल से दो दैत्य उत्पन्न हुए। (यहाँ पुराणकार ने इन दोनों दैत्यों का नाम नहीं बताया है। इनका नाम ब्रह्म वैवर्त[10] में आया है।) इनका नाम

---

१. ब्रह्म वै० १।३।७-६ २. वही १।३।६ ३. वही १।३।४५ ४. वही १।४।२२
५. वही १।४।२३ ६. वही १।४।२८. ७. वही १।४।२३ ८. वही ३।४२।६३
६. वही १।४।२६ १०. वही १।५।१३

मधु और कैटभ था। ये उत्पन्न होते ही ब्रह्मा को मारने दौड़ पड़े। महाविष्णु ने सर्व-समर्थ अदम्य-शौर्य से अपने जघन-स्थल पर ही उन दोनों को मार दिया। उनके मेद से व्याप्त यह धरती मेदिनी कहलायी।[1]

इस मधु-कैटभ-कथा में एक रूपक भी समाविष्ट हो सकता है। यहाँ कान के दैत्य मधु और कैटभ बताये गये हैं। इनके नाम से रूपक स्पष्ट प्रतीत होता है। अपनी प्रशंसा अथवा असत्य-मधु-श्रवण ही मधु नामक दैत्य है। और दूसरों का कीट की भाँति समझने वालों का आलाप अथवा अपना अहंकार ही कैटभ दैत्य है, जिन्हें मारे बिना प्राप्तव्य की प्राप्ति सम्भव नहीं है। जब मनुष्य कर्ण-कटु उक्तियों से उत्पन्न क्षोभों एवं श्रुति-मधुर-उक्तियों से अहंकार को स्वयं अपने शरीर पर—निजी व्यक्तित्व के क्षेत्र में—नष्ट कर देगा तभी विष्णु—यशस्सौरभ से दिग्दिगन्त व्याप्त—हो जायगा।

इस प्रकार क्रमशः विकसित सृष्टि ब्रह्म-सृष्टि हुई। मुख्यतः सृष्टि का विभाजन ब्राह्म वाराह एवं पाद्म इन तीन कल्पों में किया गया है। ब्राह्म-कल्प में विष्णु द्वारा ब्रह्म की रक्षा हुई। वाराह-कल्प में (जलार्णव में) लुप्त (हिरण्याक्ष द्वारा) धरित्री का विष्णु ने वाराह का रूप धारण कर बड़े परिश्रम से उद्धार किया। इस सृष्टि में विष्णु ने हिरण्याक्ष को मारा। इसीलिए ही विष्णु हिरण्यकशिपु के भी शत्रु बन कर समुद्धारक हुए। यह कथा विष्णु एवं भागवत पुराणों में विस्तार के साथ दी गयी है। पाद्म-सृष्टि में जलार्णव में भगवान् विष्णु की नाभि से पद्म का उत्पत्ति होती है। पुनश्च-सृष्टि-क्रम पाद्म-सृष्टि के नाम से अग्रसर होता है।[2]

ये विष्णु सृष्टि के आदि काल से ही कमल-प्रेमी थे। अतः श्री कृष्ण ने जब रक्त-वर्ण के असंख्य-कमलों का निर्माण रत्नों द्वारा किया था तो राधा से भी पूर्व एक कृत्रिम कमल-पुष्प नारायण को समर्पित किया।[3] सृष्टि का क्रम आगे बढ़ा, ब्रह्माण्ड निर्माण के अधिकारी ब्रह्मा हुए। तत्पश्चात् महाविष्णु के एक-एक रोम-विवर में कृत्रिम-ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई, जिनकी संख्या अगणित है।[4] प्रत्येक ब्रह्माण्ड के पृथक्-पृथक् ब्रह्मा-विष्णु एवं महेश हैं।[5] ब्राह्मण वेषधारी स्वयं विष्णु भी स्वीकार करते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की गणना नहीं की जा सकती है।[6]

विष्णु-भक्तों को चेतावनी दी गयी है कि विष्णु की सेवा करके जो मूढ़ अन्य वर माँगता है, वह विष्णु की माया से प्रभावित है। वास्तव में वैष्णव का प्राप्तव्य विष्णु-मन्त्र है। इसके द्वारा मनुष्य अपने मनोरथों को पूर्ण कर लेता है। अन्त में विष्णु-पद भी प्राप्त करता है।[7]

---

१. ब्रह्म वै० १।४।२८-२९ २. वही १।५।१२-१५

३. वही १।५।५९ ४. वही १।७।१५ ५. वही १।७।१६—१।१७।६०-६१

६. वही १।१७।६१ ७. वही १।१४।४२-४८

विष्णु कृष्ण के भक्तों की भी रक्षा करते हैं।[१] ये विष्णु विश्व में व्याप्त भी हैं तथा श्वेत-द्वीप निवासी भी हैं।[२]

विष्णु गुरुश्च सर्वेषां जनको ज्ञानदायक:।
पोष्टा, पाता, भय-त्राता, वर-दाता जगत्त्रये ॥[३]

विष्णु तीनों लोक में सभी के गुरु, पिता, ज्ञान-दाता, पोषक, रक्षक, भय से बचाने वाले एवं वर देने वाले हैं।

विष्णु का लाक्षणिक वर्णन भी किया गया है यथा—प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान ये पंच प्राण स्वयं विष्णु हैं।[४] वास्तव में शरीर में प्राणों की व्याप्ति ही इनका विष्णुत्व है।

इच्छा अथवा अनिच्छा से जो विष्णु की निन्दा करता है अथवा इस निन्दा को सुनता और सुन कर हंसता है, वह ब्रह्मा की आयु तक नरक का भोगी होता है। विष्णु की निन्दा तीन प्रकार की बतायी गयी है।

१. विष्णु को प्रत्यक्ष न मानना।
२. विष्णु को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कुछ न मानना।
३. अन्य देवों के साथ विष्णु की तुलना करना।[५]

ब्रह्म-वैवर्त के कथा-प्रसंगों में विष्णु के महत्व को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। शिव भी देवों में विष्णु तथा मनुष्यों में वैष्णव को नमस्कार करते हैं।[६]

विष्णु के वैष्णवास्त्र तथा नारायणास्त्र का विशेष प्रभाव भी वर्णित है।[७]

विष्णु की पत्नी लक्ष्मी का भी विशेष महत्व एवं मनोरथदायी प्रभुत्व स्वीकार किया गया है। लक्ष्मी-स्तव-कवच और पूजन का सांगोपांग वर्णन किया गया है।[८]

विष्णु का वैकुण्ठ लोक गो-लोक के अधोभाग—दक्षिण-पार्श्व में पचास करोड़ योजन दूर मण्डल के आकार में एक करोड़ योजन विस्तृत है। यह लोक लय-काल में शून्य किन्तु सृष्टि-काल में जरा-मृत्यु-विहीन चतुर्भुज-पार्षदों से सुसेवित लक्ष्मी-नारायण से सुशोभित होता है।[९] विष्णु की पत्नी महालक्ष्मी वैकुण्ठ में पति-सेवा परायण रहती हैं।[१०]

स्कन्द को विष्णु-कला से समुद्भूत बताया गया है।[११] ब्रह्म वैवर्त का यह तथ्य वैष्णवों एवं शैवों को समन्वय एवं सामंजस्य का मार्ग प्रस्तुत करता है। इसी

---

१. ब्रह्म वै० ३।४४।५५ २. वही १।१७।५९—३।४४।५५ ३. वही १।१७।५१
४. वही १।२८।१३ ५. वही १।१७।४९ ६. वही ३।३२।४१
७. वही ३।२६।१४,१५ ८. वही ३।२२ ९. वही १।२।१०-१३
१०. वही २।१।२५ ११. वही २।१।१५४

प्रकार गणपति खण्ड में भी पार्वती के रोष से शिव के शिष्य एवं कृष्ण के भक्त परशुराम को बचाने के लिए विष्णु वामन-रूप में रहस्यात्मक ढंग से उपस्थित होते हैं।[१] ये वामन गुरु-प्रशंसा के ब्याज से शिव की प्रशंसा करते हैं, और गुरु का महत्व भी प्रकट करते हैं।[२] विष्णु-(वामन रूपधारी) पार्वती को गणेश-नामाष्टक भी बताते हैं।[३] गणेश का दाँत तोड़ने के कारण विष्णु ने परशुराम को फटकारा भी है।[४] इस दुष्कृत्य को शान्ति के लिए परशुराम को विष्णु ने गणेश-माता की स्तुति करने के लिए कहा। परशुराम ने स्वीकार करके पार्वती की स्तुति की।[५]

पूर्वोक्त प्रसंग में इस तथ्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि वामन विष्णु ने यह भी कहा है कि "कृष्ण-भक्त का कोई अशुभ नहीं हो सकता। हाथ में चक्र लिए हुए में स्वयं उनकी रक्षा करता हूँ।" इस कथन से कृष्ण के महत्व को अवश्य स्वीकार किया जा सकता है किन्तु शैव अथवा वैष्णव का वैषम्य नहीं उद्भासित किया जा सकता। वास्तव में यह ब्रह्म-वैवर्तीय वैशिष्ट्य है कि परशुराम शिव के शिष्य एवं कृष्ण के आराधक हैं, और विष्णु रक्षक हैं।

ब्रह्म वैवर्त सभी देवों की उपासना का समर्थन करते हुए[६] भी यह सन्देश अवश्यमेव देता रहता है कि महाविष्णु से ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सभी सृष्टि उत्पन्न हुई है। श्री कृष्ण महाविष्णु के भी जनक हैं।

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः।
आविर्बभूवुः प्रकृति-ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः॥[७]

मालावती के प्रसंग में ब्राह्मण-रूप में स्वयं विष्णु ही देवों के सम्मुख श्री कृष्ण के महत्व की व्याख्या करते हैं। वे विष्णु से भी श्रेष्ठतर तत्व की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। ब्रह्मा तथा अन्य देव इस तर्क के सम्मुख निरुत्तर हो जाते हैं कि यदि विष्णु सर्वव्यापी हैं तो आप सभी अभीष्ट वर की प्राप्ति के लिए श्वेत-द्वीप क्यों गये थे?[८] वे (विष्णु) अंश एवं अंशी के भेद को स्वीकार करते हुए अंश को छोड़ कर अंशी (श्री कृष्ण) को ग्रहण करने का निर्देश देते हैं।[९] तत्पश्चात् वे निश्चित तथ्य भी बताते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं सुर-समूह और लोकों की गणना करना सम्भव नहीं है। सबके ईश्वर कृष्ण हैं जो कि भक्त पर अनुग्रह करने हेतु विग्रह धारण करते हैं।[१०] इस प्रकार का संकेत मालावती से काल-पुरुष ने भी किया है।[११]

मालावती की इस कथा में तर्क-वितर्क के अतिरिक्त कृष्ण की श्रेष्ठतरता का

---

१. ब्रह्म वै० ३।४४।३०　२. वही ३।४४।५६-७७　३. वही ३।४४।८५
४. वही ३।४५।२　५. वही ३।४५।१२　६. वही १।१४।२०, २१,२६
७. वही १।१।४　८. वही १।१७।५५　९. वही १।१७।५६
१०. वही १।१७।६१　११. वही १।१५।५४

एक प्रत्यक्ष उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया है। ब्रह्मा-आदि ने उप-बर्हण के शव में मन, सौन्दर्य, ज्ञान, धर्म, जीव, अनल, काम, निःश्वास, दृष्टि, वाणी तथा शोभा सब कुछ दे दिया तो भी वह उठ न सका। अन्त में जब श्री कृष्ण ने अपनी शक्ति उसके अन्तः करण में अधिष्ठित की तब वह जीवित हो गया।[१] इस प्रकार ब्रह्मा की विष्णु के प्रति सम्भूत आस्था[२] को भी एक दिशा उपलब्ध होती है।

कृष्ण-शक्ति-प्रदर्शन का यह प्रसङ्ग उपनिषद् की हैमवती-कथा से पूर्णरूपेण मिलता है।[३]

गणपति खण्ड के अड़तीसवें अध्याय में भी विष्णु ब्राह्मण वेष में उपस्थित होते हैं। अपने पिता जमदग्नि की हत्या के कारण क्रोधाविष्ट परशुराम जब सुचन्द्र-तनय पुष्कराक्ष पर पाशुपत का प्रयोग करना चाहते हैं तभी विष्णु वृद्ध ब्राह्मण के वेष में उनके सम्मुख प्रकट होते हैं। और परशुराम उनको सफलता का मार्ग बताते हैं। अपना परिचय भी देते हैं।[४] ब्राह्मण (विष्णु) पाशुपत एवं सुदर्शन को सर्वोत्तम अस्त्र बताते हुए कहता है कि पाशुपत के प्रयोग करने पर श्रीकृष्ण के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहेगा। पाशुपत से उग्रतर तो सुदर्शन ही है।[५] इस प्रकार परशुराम को वार्ता के व्याज से ब्राह्मण आकृष्ट करता है। राजा पुष्कराक्ष तथा अपराजेय कार्तवीर्य पर विजय के लिए महालक्ष्मी-कवच की प्राप्ति का वह आवश्यक बताता है। यह भी कहता है कि "कवच की भिक्षा के लिए मैं स्वयं जाऊँगा।" अन्त में परशुराम को ज्ञात भी हो जाता है कि वे अकारण-करुणा-वरुणालय श्री विष्णु हैं।[६] विष्णु ने ऐसा करके जगत् की रक्षा की और परशुराम को लक्ष्मी-कवच की प्राप्ति कराकर उनके विजय का पथ-प्रशस्त किया। शिव परशुराम के गुरु तथा श्रीकृष्ण उनके अभीष्ट देव हैं।[७]

इस कथा में विष्णु, शिव, कृष्ण एवं लक्ष्मी का विचित्र-सामंजस्य है। विष्णु की यह सुरक्षात्मक-प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई पड़ती है। शिवपुराण, रुद्रसंहिता-सती खण्ड के उन्नीसवें अध्याय में भी शिव के कोप से ब्रह्मा को विष्णु ने बचाया है।

गंगा को विष्णु-पद-कमल से उत्पन्न बताया गया है।[८] गङ्गा श्री कृष्ण के पादांगुष्ठ-नखाग्र से भी उत्पन्न बतायी गयीं हैं।[९] गङ्गा का विष्णु-पदी नाम विष्णु-चरण-कमल से उत्पन्न होने के कारण हुआ।[१०]

तुलसी को विष्णु कामिनी, विष्णुभूषण-रूपा तथा विष्णु-पादस्थिता

---

१. ब्रह्म वै० १।१८।३६, ३७ २. वही १।१७।१३-१५
३. केनोपनिषद्, तृतीय एवं चतुर्थ खण्ड ४. ब्रह्म वै० ३।३८।२४-३४
५. वही ३।३८।२५-२७ ६. वही ३।३८।३३, ३६ ७. वही ३।४३।३१
८. वही २।१।६२ ९. वही २।१२।९ १०. वही २।११।१४०—२।१२।२०

कहा गया है ।[1] तुलसी की कथा देवी-भागवत (नवम स्कन्ध, अध्याय १५ से २५वें अध्याय तक), ब्रह्मवैवर्त (प्रकृति खण्ड तेरहवें अध्याय से बाइसवें अध्याय तक), शिवपुराण (रुद्र-संहिता, युद्ध खण्ड, २६वें अध्याय से बाइसवें अध्याय तक), शिवपुराण (उत्तर खण्ड, द्वितीयाध्याय) में वर्णित है। देवी-भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त की शब्दावली भी समान है। शिव-पुराण की भी शब्दावली वही है किन्तु यत्र-तत्र कुछ विशेष विस्तार तथा संक्षेप है। पद्म-पुराण का वर्णन अति संक्षिप्त है, शब्दावली का भी मेल नहीं है, किन्तु मूल कथा वही है।

ब्रह्मवैवर्त, देवी-भागवत तथा शिव-पुराण की तुलसी-कथा में यह अनुमान करना कठिन है कि उसकी मूल रचना सर्वप्रथम किसने की। यह पृथक् विचार करने का विषय है। कथा नितान्त समान है। इन सभी पुराणों में शंखचूड़ के वध के कारण विष्णु ही हैं। तुलसी का पातिव्रत्य विष्णु ही भंग करते हैं।

तुलसी का पातिव्रत्य-भंग एक विवादास्पद विषय है। यद्यपि नारी के शील-भङ्ग का कृत्य निन्दनीय है तथापि अकेले ब्रह्म वैवर्त ही नहीं प्रत्युत सभी पुराणों ने इस घटना को मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया है, विष्णु के इस कार्य की प्रशंसा भी की गयी है।[2]

अत: विष्णु पर लांछन की कल्पना के पूर्व कथा के पूर्वापर प्रसंग पर भी ध्यान देना आवश्यक है। जिनके कारण धरित्री एवं देवगण दु:खार्त हैं उनमें शंख का भी नाम आता है।[3] राधा के शाप से सुदामा गोप शंखचूड़ हुआ।[4] तुलसी नाम की गोपी भी गोलोक में राधा के शाप से भूतल पर मानवी हुई।[5] दुर्वासा के शाप से तुलसी को शंखासुर पति प्राप्त हुआ।[6] तुलसी से (धर्मध्वज-सुता) दानव शंख ने इसे संक्षेप में बताया भी है।[7] ब्रह्मा ने भी वन में तुलसी और शंख-चूड़ को गान्धर्व विवाह की रीति से विवाहित कर दिया किन्तु तुलसी तो नारायण को अपना पति चाहती थी। अत: ब्रह्मा ने समझाया कि शाप को भोगना ही पड़ेगा। इसके पश्चात् अपने अभीष्ट नारायण को प्राप्त करोगी।

अधुना तस्य पत्नी च भव भामिनि शोभने।
पश्चान्नारायणं कान्तं शान्तमेव लभिष्यसि ॥३४॥
शापान्नारायणस्यैव कलया दैव योगत:।
प्राप्नोषि वृक्ष-रूपं च त्वं पूता विश्वपावनी ॥३५॥[8]

---

१. ब्रह्म वै० २।१।६६-६७
२. शिव पु० रुद्र० यु० ४१ अध्याय ५६,६४—ब्रह्म वै० २।२१।२६,१००,१०१
३. ब्रह्म वै० ४।४।२६ ४. वही २।१६।१६५ ५. वही २।१५।२३-२६
६. वही ४।१७।२०८ ७. वही २।१७।८०-८४ ८. वही २।१५।३४-३५

अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि ।
स्थाने-स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु साम्प्रतम् ॥
पश्चात्प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च ।[1]
तुलसी च तपस्तप्त्वा वांछां कृत्वा हरिं प्रति ।
दैवाद्दुर्वासः शापात्प्राप्य शंखासुरे पतिम् ॥
पश्चात्सम्प्राप्य कमला-कान्तं कान्तं मनोहरम् ।
सा चैव हरि-शापेन वृक्षरूपा सुरेश्वरी ॥[2]

इस प्रकार तुलसी को यह ज्ञात हो जाता है कि नारायण (चतुर्भुज-विष्णु) उसको पतिरूप में मिलेंगे । तथापि तुलसी ब्रह्मा से कहती है कि ब्रह्मन् मेरी जितनी इच्छा द्विभुज श्याम-सुन्दर को प्राप्त करने की है, उतनी चतुर्भुज को पाने की नहीं ।[3] किन्तु गोलोक में ही कृष्ण ने बताया था कि 'भारत में तप करके ब्रह्मा के वर से मेरे अंश चतुर्भुज (विष्णु) को प्राप्त करोगी' ।[4] अतः तुलसी कहती है कि गोविन्द के वचन के अनुसार चतुर्भुज को माँगती हूँ । आपकी कृपा से पुनः दुर्लभ गोविन्द को अवश्य प्राप्त करूँगी ।[5]

अतएव राधा-तपोजन्य भव्य-भावना-समन्वित श्री विष्णु का तुलसी के प्रति अभिगमन अभीष्ट है, इसे अन्यथा अवगमन करना यथेष्ट नहीं है ।

वास्तव में लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी ये चारों हरि की प्रिया हैं ।[6] तप का फल व्यर्थ नहीं जाता है । तुलसी गोलोक में पुनः पहुँची । गोप के रूप में शंख भी गोलोक-निवासी हुआ ।

मेरे विचार से यह कथा जन्म-मरण के घटीचक्र तथा जीवन के द्वन्द्व की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने के लिए है । क्रोध के क्षणिक आवेश के द्वारा सुदामा, तुलसी एवं स्वयं राधा को भी भूतल की धूलि फाँकनी पड़ी । विष्णु को भी पाषाण होना पड़ा । अतः क्रोध एवं ईर्ष्या की दुर्दान्त स्थिति का संयमपूर्ण नियन्त्रण करना चाहिए । धैर्य तथा सौमनस्य के अभाव में जीवन का स्वारस्य क्षीण हो जाता है ।

ब्रह्म वैवर्त के चतुर्थ खण्ड में (श्री कृष्ण-जन्म खण्ड) विष्णु-सम्बन्धित कोई विशेष कथा नहीं है क्योंकि विष्णु और कृष्ण का भेद सभी देवों के सम्मुख (श्री कृष्ण जन्म खण्ड, अध्याय ६, श्लोक ६४) मिटा दिया गया है । देवों ने देखा कि श्वेतद्वीप निवासी, पीताम्बरधारी, वनमाला-विभूषित, चतुर्भुज, नारायण, विष्णु सौ कलशों वाले रथ से उतरे और श्री कृष्ण के शरीर में विलीन हो गये ।[7] इस प्रकार विष्णु और

---

१. ब्रह्म वै० २।१६।११३-११४ २. वही ४।१७।२०८-२०६
३. वही २।१५।४० ४. वही २।१५।२६ ५. वही २।१५।४१-४२
६. वही २।२१।१०२ ७. वही ४।६।८६-६४.

कृष्ण का अन्तर्भेद समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि आगे दर्प-भंग की कथाओं में विभिन्न देवों के मध्य विष्णु का दर्प-भंग नहीं हुआ है। इस प्रकार कृष्ण ही विष्णु भी हैं।

विष्णु की भक्ति, यज्ञ, मन्त्र एवं उपासना आदि की भी ब्रह्म वैवर्त में संक्षिप्त चर्चा की गयी है। वैष्णवों के वर्णन में चार प्रकार के वैष्णव भक्तों का वर्णन मिलता है।

१. वैष्णव

(क) निर्जन और तीर्थ में असंग-भाव से प्रसन्नतापूर्ण होकर जो श्री हरि के चरण-कमल का ध्यान करते हैं, वे वैष्णव हैं।[१]

(ख) जिनका मन स्वप्न, जागरण, दिन एवं रात्रि में हरि-चरण-कमल में लगा है, तथा पूर्ण-कर्मों का भोग बाहरी-रूप से सम्हाले रहता है, वह वैष्णव है।[२]

(ग) वैष्णव अपनी पत्नी, बेटी, बन्धु, शिष्य, दौहित्र, नाती, नौकर, नौकरानी इन सबों का उद्धार करता है।[३]

२. भक्त-वैष्णव

जो सभी जीवों पर दया करता है, सम्पूर्ण जगत् को कृष्ण-मय देखता है, जो ज्ञानी और महाज्ञानी है वह भक्त-वैष्णव कहलाता है।[४]

३. अति-वैष्णव

जो सदा हरि-नाम का गान करते हैं, हरिके गुण एवं मन्त्र का जप करते हैं और सदा हरि-गाथा का श्रवण करते हैं, वे अति-वैष्णव हैं।[५]

४. महापवित्र-वैष्णव अथवा जीवन्मुक्त-वैष्णव

गुरु-मुख से निकला हुआ विष्णु-मन्त्र जिसके कर्ण-कुहर में प्रविष्ट होता है, मनीषी उसे महापवित्र-वैष्णव कहते हैं।[६]

इसी अभिप्राय के समान

विष्णु-मन्त्र सर्वोत्तम मन्त्र है। यह गुरु के मुख से जिसके कर्ण-कुहर में प्रवेश करता है, ब्रह्मा उसे महापवित्र वैष्णव और जीवन्मुक्त कहते हैं।[७]

विष्णु यज्ञ

सभी यज्ञों में विष्णु-यज्ञ प्रधान यज्ञ है। इसे पूर्व-काल में ब्रह्मा ने महासम्भार-संयुत होकर किया था।[८]

---

१. ब्रह्म वै० ४।१।४७   २. वही ४।१।५०   ३. वही ४।१।५३-५४
४. वही ४।१।४८   ५. वही ४।१।४९   ६. वही ४।१।५२
७. वही १।११।४१   ८. वही २।२७।१२५

दक्ष के जिस यज्ञ में दक्ष और शंकर का कोप हुआ, नन्दी ने ब्राह्मणों को, ब्राह्मणों ने नन्दी को शाप दिया, वह विष्णु-यज्ञ ही था।[१]

वेद में विष्णु-यज्ञ से श्रेष्ठ फल देने वाला कोई यज्ञ नहीं है।[२]

ब्रह्म-वैवर्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की भाँति वैष्णवों की एक स्वतन्त्र जाति मानी गयी है।[३] अवैष्णव ब्राह्मण से वैष्णव-चाण्डाल को श्रेष्ठ माना गया है।[४] ब्रह्मा ने कहा है कि विष्णु को अनिवेदित अन्न और जल ब्राह्मणों के लिए क्रमशः विष्ठा एवं मूत्र है।[५] विष्णु को निवेदित अन्न अमृत होता है।[६] भोज्य वस्तुओं की शुद्धि के सम्बन्ध में बताया गया है कि वस्तु का कुछ अंश सुवर्ण से शुद्ध होता है और कुछ अंश वायु से शुद्ध होता है। कुछ अंश प्रक्षालन से शुद्ध होता है और विष्णु को निवेदित कर देने से वस्तु पूर्ण रूप से शुद्ध हो जाती है।[७]

विष्णु के द्वारा गणेश पूजा का भी वर्णन है।[८] दश श्लोकों में रचित गणेशस्तोत्र सर्व-विघ्न-निवारण है। इसे विष्णु कृत बताया गया है।[९] गणेश-मन्त्र की रचना भी विष्णु ने की है।[१०]

---

१. ब्रह्म वै० २।२७।१२६-२७ २. वही २।२७।१३० ३. वही १।११।४३
४. वही १।११।३९ ५. वही १।११।३५ ६. वही ४।३७।२६
७. वही ४।३७।२२ ८. वही ३।१३।१ ९. वही ३।१३।४१-५०
१०. वही ३।१३।३२

अध्याय १७

ब्रह्मवैतीय निर्वचन

निरुक्ति के क्षेत्र में ब्रह्मवैवर्त का भी विशिष्ट स्थान है। नामों का निर्वचन जितना ब्रह्मवैवर्त में किया गया उतना किसी भी पुराण में नहीं किया गया है। प्राचीन भारत में निरुक्ति का इतना महत्त्व बढ़ा कि पृथक् शास्त्र बन गया। "शिक्षाकल्पोथ व्याकरणं निरुक्तं छन्द ज्योतिषम् ।" ये षड्-वेदाङ्ग वैदुष्य के आधार हुए।

मैक्समूलर ने अपने 'प्राचीन संस्कृत साहित्य' में बताया है कि यास्क निरुक्तकारों में सम्भवतः अन्तिम व्यक्ति है (४—पृ० १३५)। यास्क ने एक अन्य निरुक्तकार स्थौलाष्ठोवि की भी चर्चा की है। सायण ने इन्हें स्थूल-स्थिवि कहा है (पृ० १३६)। 'बृहद्देवता' नामक ग्रन्थ में (४।५।७१ शुनासीरमिन्द्रं यास्कस्तुमेने, सूर्येन्द्रोतु मन्यते शाकपूणिरिति पराशरः।) शाकपूर्णि का भी नाम निरुक्तकारों में आया है।

निरुक्ति का संक्षिप्त वर्णन काशिकावृत्ति में (पाणिनि ६।३।१०९) इस प्रकार किया गया है—

वर्णागमो वर्ण-विपर्ययश्च द्वौ चापरौ-वर्ण-विकार नाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योग स्तदुच्यते पंचविधन्निरुक्तम् ॥

वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार और वर्णनाश का उदाहरण एक ही श्लोक में प्रस्तुत है। यह बहुशः उद्धृत है—

भवेद्वर्णागमाद्धंसः सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्ण विकृते वंर्णनाशात्पृषोदरम् ॥

शब्दों का अर्थ-निश्चय एवं व्युत्पत्ति का मूलाधार धातु को ही माना गया है। शाकटायन आदि कुछ आचार्य ऐसे भी थे जो धातुओं के अर्थनिर्णय के मूलाधार के अन्वेषण के पक्ष में थे। किन्तु धातु को ही आधार मानने वाले गार्ग्य आदि आचार्यों का ही पक्ष प्रबल पड़ा (प्रा० सं० सा०, पृ० १४५)। वास्तव में अर्थ निश्चय की आस्था कहीं बनानी ही पड़ती। यही कारण है कि स्वयं शाकटायन भी इसी पक्ष को ग्रहण कर लिये।

ब्रह्मवैवर्त ने जिन नामों का निर्वचन किया है उनकी संख्या लगभग पौने दो सौ है। किन्तु यह संख्या उस समय और अधिक हो जाती है जबकि एक ही नाम के भिन्न प्रकार के निर्वचनों को जोड़ा जाय।

यहाँ यह अवश्य विचारणीय है कि क्या यह निर्वचन ब्रह्मवैवर्त की अपनी विशेषता है ? वास्तव में वेदों की निरुक्ति-परम्परा की ही भाँति पुराणों को निरुक्ति करने वाले भी कुछ ऐसे विद्वान् थे जो इस क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुके थे। ब्रह्माण्ड पुराण[1] ने शाकपूर्णि नामक एक पौराणिक निरुक्तिकार का नाम बताया है। यद्यपि कोलब्रुक ने[2] ने यास्क और शाकपूर्णि को एक बताया है किन्तु एक मानने का कोई मूल कारण नहीं बताया है। अतः शाकपूर्णि ही पौराणिक-निरुक्ति-परम्परा के एकमात्र आचार्य हैं। सम्भवतः अन्य विद्वानों की निरुक्तियाँ पौराणिक-विशाल रचनाओं में समाती गयीं। उनमें से किसी का नाम उमड़ न सका।

ब्रह्मवैवर्त में जिन शब्दों का निर्वचन किया गया है वे सभी शब्द व्याकरण-सम्मत तथा तदर्थ अभिव्यंजक हैं। नामों का ही निर्वचन इस पुराण में किया गया है। यहाँ मैंने यह प्रयास किया है कि जिन शब्दों का जो अर्थ विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है, क्या उनका सम्बन्ध उन प्रकृति-प्रत्ययों से है, अथवा नहीं।

लोमहर्षण-सूत के प्रभविणु-वैदुष्य एवं अप्रतिम-प्रतिभा का चमत्कार निर्वचन की अभिव्यंजनाओं में प्रत्यक्ष है। भावुकता एवं यथार्थता का ऐसा अनुपम सामंजस्य ब्रह्म-वैवर्त का अपना वैशिष्ट्य है। पौराणिक निरुक्तकारों के सम्बन्ध में अपना यह विचार है कि सूत ही पौराणिक सर्वश्रेष्ठ निरुक्तकार भी थे। ब्रह्मवैवर्तीय-निर्वचन अभिधान से चरित्र-ज्ञान के क्षेत्र में एक अद्भुत प्रयोग है।

ब्रह्मवैवर्तीय निर्वचनीकृत शब्द सूची

१. अङ्गिरा
२. अचला
३. अत्रि
४. अनन्त
५. अनन्ता
६. अपान्तरतमा
७. अभया
८. अम्बिका
९. आद्या
१०. आनक-दुन्दुभि
११. आरुणि
१२. आस्तीक-माता
१३. इज्या
१४. ईश
१५. ईशान
१६. उप बर्हण

---

१. ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्व भाग, अ० ३४

प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूणो स्योतरः ।
निरुक्तं च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विज-सत्तमः ॥३॥
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः पैलश्चेक्षलकस्तथा ।
धीमान् शित बलाकश्च गजश्चैव द्विजोत्तमाः ॥४॥

२. मिसलेनियस एसेज् १-१५

१७. उर्वी
१८. एक-दन्त
१९. कर्दम
२०. काश्यपी
२१. कान्त
२२. कृष्ण
२३. कृष्ण-जीवनी
२४. कृष्ण-प्राणाधिका
२५. कृष्ण-प्रिया
२६. कृष्ण-वामाङ्ग-सम्भूता
२७. कृष्ण-स्वरूपिणी
२८. कृष्णा
२९. क्रतु
३०. क्षिति
३१. क्षोणी
३२. गजवक्त्र
३३. गजाननः
३४. गणेश
३५. गंगा
३६. गुरु
३७. गुहाग्रज
३८. गुह्यक
३९. गुह्यकेश्वर
४०. गोवर्धन
४१. गौरी
४२. चण्डी
४३. चन्द्रशेखर
४४. चन्द्रावलि
४५. जगद्गौरी
४६. जया
४७. जयन्ती
४८. जरत्कारु
४९. जरत्कारु प्रिया
५०. जाह्नवी
५१. तुलसी
५२. त्रिपथ-गामिनी
५३. त्रिपुरा
५४. त्रि-हायणी
५५. दक्ष
५६. दुर्गा
५७. देव-सेना
५८. धरा
५९. धरिणी
६०. धरित्री
६१. नन्दा
६२. नन्दिनी
६३. नागेश्वरी
६४. नारद
६५. नारायण
६६. नारायणी
६७. नित्या
६८. नैर्ऋत
६९. पंचशिख
७०. पति
७१. पद्मावती
७२. परमानन्द-रूपिणी
७३. पार्वती
७४. पुराण
७५. पुलस्त्य
७६. पुलह
७७. पृथ्वी
७८. प्रकृति
७९. प्रचेता
८०. प्रवालवर्णः
८१. प्राण-नायक
८२. प्रिय

८३. बन्धु
८४. बलदेव
८५. ब्रह्म वैवर्त
८६. ब्राह्मण
८७. ब्राह्मी
८८. भगवान्
८९. भगवती
९०. भर्ता
९१. भागीरथी
९२. भारती
९३. भीष्म-सूः
९४. भृगु
९५. मङ्गला
९६. मधुसूदन
९७. मनसा
९८. मन्दाकिनी
९९. मरीचि
१००. महालक्ष्मी
१०१. मही
१०२. माया
१०३. मुकुन्द
१०४. मुसली
१०५. मृतसंजीवनी
१०६. मेदिनी
१०७. यति
१०८. यशोदा
१०९. योगी
११०. योजना
१११. रक्तबीज-विनाशिनी
११२. रमण
११३. रसिकेश्वरी
११४. राजा
११५. राधा
११६. रास-वासिनी
११७. रासेश्वरी
११८. रुचि
११९. रुद्र
१२०. रेवती-रमण
१२१. रौहिणेय
१२२. लम्बोदर
१२३. वसिष्ठ
१२४. (वशिष्ठ)
१२५. वसुधा
१२६. वसुन्धरा
१२७. वाणी
१२८. वासुदेव
१२९. विघ्न-नायक
१३०. विघ्न-निघ्न
१३१. विष-हारिणी
१३२. विष्णु
१३३. विष्णु-पदी
१३४. विष्णु-माया
१३५. विश्वम्भरा
१३६. वृन्दा
१३७. वृन्दावन
१३८. वृन्दावन-विनोदिनी
१३९. वृन्दावनी
१४०. वेदवती
१४१. वैद्य
१४२. वेदमाता
१४३. वैष्णवी
१४४. वोढु
१४५. शक्ति
१४६. शरच्चन्द्र-प्रभानना
१४७. शर्वाणी
१४८. शिति-वासा

१४६. शिव
१५०. शिवा
१५१. शूर्प-कर्ण
१५२. शैवो
१५३. षष्ठी
१५४. सङ्कर्षण
१५५. सती
१५६. सत्या
१५७. सनक
१५८. सनत्कुमार
१५६. सनन्द
१६०. सनातन
१६१. सनातनी
१६२. संन्यासी
१६३. सरस्वती
१६४. सर्व-मङ्गला
१६५. सर्वानन्दा
१६६. सिद्ध-योगिनी
१६७. सैहिकेय
१६८. स्वामी
१६६. हरि-भक्त
१७०. हली
१७१. हेरम्ब
१७२. हंसी

ब्रह्मवैवर्तीय निर्वचनम्

भावाभिव्यंजन हेतु प्राणी शब्द का प्रयोग करता है। मनुष्य अपने मेधा-बल से इन शब्दों के प्रयोग में चमत्कार दिखाता है। शब्द पंच तन्मात्राओं में से एक है। शब्द का प्रयोग मेधा की कला है। शब्दों में कुछ ऐसे भी हैं, जिनका अर्थ दुरूह है। यह दुरूहता कई कारणों से है। कुछ शब्द उच्चारणों की कठिनाई से परिवर्तित हो गए, कुछ अधिक प्राचीन होते हुए भी प्रयोग से बाहर हो गए, उनका स्थान नवीन अथवा सरल शब्दों ने ग्रहण कर लिया, कुछ शब्दों को विभिन्न दलों अथवा समाजों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग कर दिया, कुछ शब्दों का अन्य समानोच्चारण वाले (अन्य भाषा के भी) शब्दों के प्रभाव से परम्परातिशायी अर्थों का प्रतिपादन किया। इस प्रकार वैदिक शब्दों के अर्थों में भ्रम अथवा विभिन्न अर्थ-बोध की गहनता को दूर करने के लिए निरुक्तकारों ने प्रयास किया। निःसन्देह निरुक्तकारों ने जो कुछ अर्थ प्रतिपादित किया वह समाज प्रचलित संगृहीत तत्व था, भले ही प्राचीनता के आवरण में वह अत्यधिक दब गया था।

इस दिशा में सबसे अधिक यश निरुक्तकार यास्क ने प्राप्त किया। यास्क के अतिरिक्त कुछ निरुक्तकारों का नाम अवश्य उपलब्ध है किन्तु उनकी रचनाएँ अभी काल की गहनता में ही डूबी हैं। निरुक्तकार यास्क ने आधुनिक प्रचलित प्रणाली पर ही शब्दों की व्युत्पत्ति करते हुए अर्थावबोधन का स्तुत्य प्रयास किया है जिसके कारण दुरूह शब्दों का यास्क-निरुक्त के आधार पर अर्थबोध होने पर उस शब्द की दुरूहता समाप्त होने के साथ ही साथ वे अर्थ सटीक बैठ भी जाते हैं।

यास्क निरुक्त में चौदह अन्य निरुक्तकारों का नाम निर्देश किया गया है। नि० भा० १।१३—निरुक्तं चतुर्दशप्रभेदम् ॥ निरुक्तं चतुर्दशधा नि० भा० १।२०।

इन चौदहों निरुक्तकारों के नामों का संकलन श्रीमद्भगवद्दत्त ने किया है[1]—

(१) औपमन्यव (२) औदुम्बरायण (३) वार्ष्यायणि (४) गार्ग्य (५) आग्रायण (६) शाकपूणि (७) और्णवाभ (८) तैटिकि (९) गालव (१०) स्थौलाष्ठीवि (११) क्रौष्टुकि (१२) कात्स्यक्य (१३) यास्क (१४) शाकपूणि के पुत्र कौत्सव्य ।[2]

विष्णु पुराण में निरुक्त ग्रन्थ की रचना करने वाले ऋषि का नाम शाकपूर्ण बताया गया है। सम्भवत: शाकपूणि और शाकपूर्ण एक ही हैं। निरुक्त को विष्णु पुराण में वेद की अनुशाखा के रूप में स्वीकार किया गया है। शाकपूर्ण-निर्मित ग्रन्थों के अध्येता, जिनमें निरुक्त भी सम्मिलित है, उनके तीन शिष्य महामुनि (१) क्रौञ्च (२) वैतालिक (३) और बालक हुए। चौथे शिष्य का नाम नहीं बताया गया। सम्भवत: निरुक्त सम्बन्धी विशेष प्रतिभा के कारण वे 'निरुक्तकार' के ही नाम से विख्यात हुए।

निरुक्त शास्त्र-ज्ञान-परम्परा में वाष्कल तथा उनके तीन शिष्य कालायनि गार्ग्य और कथाजव को पृथक् नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनके अध्ययन अध्यापन तक वेद की अनुशाखाओं में निरुक्त को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था। अत: वाष्कल और उनके उक्त तीनों शिष्य भी निरुक्त को अपना कार्यक्षेत्र अवश्य बनाये।[3]

यहाँ एक अध्ययनीय एवं अन्वेषणीय तत्व है कि विष्णु-पुराण ने केवल शिष्य प्रशिष्यों का नाम निर्देश मात्र किया है न कि उनके किसी रचना का। ग्रन्थ के नाम पर यास्काचार्य के निरुक्त के अतिरिक्त नारद पुराण में एक अध्याय में निरुक्त[4] का प्रतिपादन किया गया।

नारद पुराणीय निरुक्ताध्याय से स्पष्ट है कि पौराणिक निरुक्त की भी परम्परा वैदिक निरुक्त की ही भाँति रही। किन्तु उनका विशेष-पार्थक्य नहीं रहा। अतएव वैदिक अथवा पौराणिक जो भी निर्वचन निरुक्त द्वारा किया गया वह निरुक्त शास्त्र मात्र रहा।

शब्द-बोध की दृष्टि से व्याकरण और निरुक्त का लक्ष्य एक ही है किन्तु विशेषता यह है कि व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति अथवा निष्पत्ति निश्चित प्रक्रिया (सापेक्ष्य-पद्धति)

---

१. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भाग १, खण्ड २,

२, निरुक्तम् (निघण्टु) मनसुखराय, मोर-प्रकाशन, पृ० ३५

३. विष्णु पुराण, तृतीय अंश, चतुर्थ अध्याय

४. नारद पुराण—पूर्व भाग—द्वितीय पाद, ५३ वाँ अध्याय

द्वारा करता है जबकि निरुक्त निरपेक्षतापूर्वक पद पदार्थ की सिद्धि का आदेश करता है। 'अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्'।[1]

यही कारण है कि जिन शब्दों की व्युत्पत्ति अथवा अर्थबोध व्याकरण द्वारा सम्भव नहीं हुआ निरुक्त ने उन्हें भी सिद्ध कर अर्थबोध प्रसारित किया। इस प्रकार वेदों का उपकारक होते हुए यह व्याकरण का भी स्वार्थ-साधक हुआ। जैसा कि निरुक्त-शास्त्र ने स्वयं स्वीकार किया है 'तदिदं विद्या-स्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यंस्वार्थं साधकञ्च, (नि० १।१५)। यहाँ यह भाव भी स्पष्ट कर दिया गया है कि निरुक्त के बिना व्याकरण सम्पूर्ण नहीं हो सकता।

सुदूर अतीत के वैदिक-प्रयोग जिस प्रकार निरुक्त के बिना अवगत नहीं हो सकते ठीक वैसे ही पुराणों की विशाल-रचना-राशि में विभिन्न एवं महान् भावों को समाहृत किए हुई कुछ ऐसी भी विशाल शब्द-राशि है कि निर्वचन किए बिना उन विशेष शब्दों का शाब्दबोध अथवा तत्तत् प्रसंगों का वस्तुतः अवगमन सम्भव नहीं है। अतः पौराणिक-निर्वचन की विशेष आवश्यकता हुई।

निरुक्त ने बहुत पहले ही ध्वनित[2] किया था कि—

स्थाणुरयं भारहरःकिलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञान-विधूत-पाप्मा॥

उपर्युक्त वास्तविक उद्देश्य को ही सिद्ध करने हेतु पौराणिक-निर्वचन किया गया है।

निरीक्ष्य अथवा निरपेक्षतया यदुच्यते तन्निर्वचनम्।

निरीक्षण करके, शास्त्र का ज्ञान करके और व्याकरण प्रकृति-प्रत्यय आदि की अपेक्षा न करके जो अर्थबोध प्रतिपादित किया जाय वह 'निर्वचन' है। इस प्रसंग में इस तथ्य की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती है कि वैदिक अर्थ-बोध में वेदों के षडङ्गों में निरुक्त को श्रोत्र कहा गया है—

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्र मुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥४३॥[3]

अतः यह सिद्ध है कि निरुक्त अथवा निर्वचन ऋषि एवं आचार्य की आर्थबोधिक श्रुत परम्परा प्रणयन करने हेतु अवतरित हुआ। इसके बिना भाव का अवगमन किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

---

१. वैयाकरणभूषण-सार—भूमिका, पृ० २ २. निरुक्त १।६ ३. पाणिनीय-शिक्षा

पौराणिक निर्वचनों में ब्रह्म वैवर्त का विशेष महत्व है। वैसे तो महाभारत[1] एवं सभी पुराणों ने शब्दों का निर्वचन किया है किन्तु ब्रह्म वैवर्त ने निर्वचन को विशेष स्थान दिया है।

ब्रह्मवैवर्तीय-निर्वचन अतीव मनोरंजक भी है। एक शब्द का निर्वचन विभिन्न प्रकार से किया गया है। एक-एक अक्षर अथवा मात्रा देवता-सम्बन्धित कहीं अन्तर-कथाओं का तो कही उनकी शक्तियों और कहीं उनके सम्बन्धों का बोध कराते चलते हैं।

अङ्गिरा (व्यु० अङ्ग असि ङिरागमः) ब्रह्मा (धाता) के प्रधान अंग मुख से जो बालक उत्पन्न हुआ और जो इर अर्थात् तेजस्वी था, वह अङ्गिरा नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह सप्तर्षियों में से एक है। इसका नाम चित्रशिखण्डी भी है।[2]

प्रधानाङ्गं मुखं धातुस्ततो जातश्च बालकः।
इर स्तेजस्वि-वचनेऽप्यङ्गिरास्तेन कीर्तितः ॥[3]

अचला (व्यु० न चलति चल् टाप) स्थिर होने के कारण पृथ्वी को अचला कहा गया है।

अचाला स्थिति रूपतः।[4]

अत्रि (अ + त्रि) अकार विष्णु का बोधक है। त्रि शब्द त्रिगुणात्मक प्रकृति का द्योतक है। विष्णु और प्रकृति इन दोनों में समान भक्ति जिसकी है, वह बालक (ब्रह्म-पुत्र) अत्रि कहा जाता है।

त्रिगुणायां प्रकृत्यां त्रि विष्णावश्च प्रवर्तते।
तयोर्भक्तिः समा यस्य तेन बालोऽत्रिरुच्यते ॥[5]

अत्रि की सप्तर्षियों में गणना की गयी है।

अनन्त १. बलराम (नास्ति अन्तः यस्य सः) जिसका नाम गुण आदि का अन्त (पारंगत ज्ञान) वेदों में भी नहीं वर्तमान है उस बलराम को अनन्त कहा गया है।

नास्त्यन्तोऽस्यैवं वेदेषु तेनानन्त इति स्मृतः।[6]

२. विष्णु—चारों वेदों में, सभी पुराणों में, अन्य शास्त्रों में और (पातंजल

---

१. महत्त्वाद् भारतत्वाच्च महाभारत मुच्यते। निरुक्तमस्ययो वेदसर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥ तेषांनिरुक्तं तत्वेन श्रोतुमिच्छामि केशव ! नह्यन्यो नाम्नां निरुक्तं त्वामृते प्रभो ॥

२. सप्तर्षयो मरीच्यत्रिमुखाश्चित्रशिखंडिनः।—अमरदिग्वर्ग २७

३. ब्रह्म वै० १।२२।८ ४. वही २।८।२२

५. वही १।२२।१६ ६. वही ४।१३।८२

जैसे) योगों में जिसका सम्पूर्ण वर्णन न किया जा सका, अतः विष्णु को अनन्त कहा गया है।

नास्त्यन्तो यस्य वेदेषु पुराणेषु चतुर्षु च।
शास्त्रेष्वन्येषु योगेषु तेनानन्तं विदुर्बुधाः ॥[1]

अनन्ता पृथ्वी (अनन्त + टाप्)। उच्च, अधः, उर्वर, ऊषर, कृष्ण, पीत, आदि असंख्य रूपों में होने के कारण पृथ्वी को अनन्ता कहा गया है—

.........अनन्ता नन्तरूपतः।[2]

अपान्तरतमा (अप + अन्तर + तमस्) जन समाज से अतिदूर निर्जन स्थान में पूर्व ज़न्म में जिसने तप किया था वह शिशु अपान्तरतमा नाम से प्रसिद्ध हुआ—

अपान्तरतमे देशे तप स्तेपेऽन्य जन्मनि।
अपान्तरतमा नाम शिशोस्तेन प्रकीर्तितम् ॥[3]

अभया (न + भा + अच् + टाप्) अभय का अभिप्राय 'भय का नाश' कहा गया है। आकार प्रदानार्थक है। अतः जो शीघ्र ही अभय प्रदान करती हो वह अभया कहलाती है।

अभयो भयनाशोक्तश्चाकारो दातृवाचकः।
प्रददात्यभयं सद्यः साभया परिकीर्तिता ॥[4]

अम्बिका (अम्बा, स्वार्थकः अत इत्थम् टाप्) = दुर्गा माता अम्बा यह शब्द मातृवाचक, वन्दना तथा पूजनार्थक है अतः सम्पूर्ण जगत् की पूजित एवं वन्दित माता अम्बिका हैं—

अम्बेति मातृवचनो वन्दने पूजने तथा।
पूजिता वन्दिता माता जगतां तेन साम्बिका ॥[5]

आद्या सभी देवों के तेज से पुरा काल में प्रकट होने के कारण देवी आद्या नाम से प्रसिद्ध हुई। इस आद्या को प्रकृति के भी नाम से समझना चाहिए। यह आद्या प्रकृति सभी असुरों की विमर्दन कारिणी हैं। ये सबको आनन्द प्रदान करने वाली, स्वयं आनन्द स्वरूपा, दुःख एवं दरिद्रता को नष्ट करने वाली हैं। ये शत्रुओं को भय देने वाली और भक्तों का भय हरने वाली हैं।

---

१. ब्रह्म वै० ४।१११। २५/२, २६/१ २. वही ४।८।३३/२ ३. वही १।२२।१८
४. वही ४।२७।२६ ५. वही २।५७।१९

तेजसः सर्वदेवाना माविर्भूता पुरा सती ॥७८॥
तेनाद्या प्रकृतिर्ज्ञेया सर्वासुर विमर्दिनी।
सर्वानन्दा च सानन्दा दुःख दारिद्र्यनाशिनी ॥७९॥
शत्रूणां भयदात्री च भक्तानां भयहारिणी ॥८०॥[1]

आनक-दुन्दुभि: आनयति सोत्साहान् करोति (देवकृत) दुन्दुभिना = आ नि + पिच् + ण्वुलु + दुन्दुभिः।

पिता देवमोढ और माता मारिषा से महान् वसुदेव उत्पन्न हुए, जिसकी उत्पत्ति के अवसर पर देवों ने दुन्दुभि और आनक अति प्रसन्न होकर बजाया। अतः श्रीहरि (कृष्ण) के पिता (वसुदेव) को सज्जन आनक-दुन्दुभि कहते हैं—

देवमोढान्मारिषायां वसुदेवो महानभूत्।
यस्योद्भवे देव-संघो वादयामास दुन्दुभिम् ॥५॥
आनकं च महाहृष्टाः श्री हरेः जनकं च तम्।
सन्तः पुरातना स्तेन वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ॥६॥[2]

आरुणि: (अरुण + इच्) उत्पन्न होते ही अत्यन्त तेजस्वी बालक अरुण वर्ण होने के कारण और अपनी उग्र तपस्या से जाज्वल्यमान होने के कारण (ब्रह्म-पुत्र) आरुणि हुआ—

बालोऽप्यरुण वर्णश्च जातः सद्योऽति तेजसा।
प्रज्वलन्नूर्ध्वं तपसा चारुणि स्तेनकीर्तितः ॥[3]

आस्तीक-माता (जरत्कारुः) मुनीश्वर तपस्वी आस्तीक की जननी जरत्कारु अथवा आस्तीक-माता कही गयी—

आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सा वै तपस्विनः।
आस्तीक-माता विख्याता जरत्कारु रितिस्मृता ॥[4]

इज्या (यज् भावे क्यप् स्त्रीत्वात् टाप्)

याग सम्बन्धी कार्यों की भरणात्मक व्यवस्था के कारण इज्या कहा जाता है।

इज्या च याग भरणात्।[5]

ईश: (ईश् + अच्)

ऐश्वर्य दान करने के कारण ईश अभिधान है—

ऐश्वर्यदाना दीशश्च।[6]

---

१. ब्रह्मवैवर्त ४।८४।७८-८० २. वही ४।७।५-६ ३. वही १।२१।१०
४. वही ४।४५।१२ ५. वही २।६।३१ ६. वही २।४२।२८

ईशाना ईश् ऐश्वर्ये (अदादि आत्मने पद सक० से ट्) + शानच् स्त्रीत्वात् टाप् ।

ईशानो भूतभव्यस्य इति श्रुतिः ।

ईशान शब्द सर्व सिद्धि का वाचक और आकार दानार्थक है । अतः सर्व सिद्धियों की प्रदात्री ईशाना कही गयी है—

ईशानः सर्वसिद्ध्यर्थे चाशब्दो दातृवाचकः ।
सर्वसिद्धि प्रदात्री या सापीशाना प्रकीर्तिता ॥[1]

उपबर्हण (उप+बृह्+यु=अन)
उप शब्द का अर्थ 'अधिक' होता है और बर्हण पुलिङ्ग पूज्य अर्थ का बोधक होता है । अतः पूज्यों में अधिक अथवा श्रेष्ठ ब्रह्म-पुत्र उपबर्हण संज्ञक हुआ ।

उपशब्दोऽधिकार्थश्च पूज्ये च बर्हणः पुमान् ।
पूज्यानामधिको बालस्तेनोपबर्हणाभिधः ॥[2]

उर्वी (उरु स्त्रियां गुणवचनत्वात् ङीप्)
हरि के उरु से उत्पन्न होने के कारण पृथ्वी उर्वी संज्ञक है ।

हरे रूरौ च या जाता सा चोर्वी परिकीर्तिता ।[3]

एकदन्त (एकोदन्तोऽस्येति)
एक शब्द प्रधान वाचक है और दन्त शब्द बलवाचक है । अतः सबसे प्रधान बली को एकदन्त कहा गया है ।

एकः शब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बल-वाचकः ।
बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम् ॥[4]

कर्दम कद्र्द कुत्सितरवे उदर शब्दे च कद्द्+अम, पंके पापे मासे पि । वेदों में कर्दम शब्द छाया अर्थ में स्पष्ट है । अतः कर्दम (छाया) से उत्पन्न बालक कर्दम संज्ञक हुआ ।

वेदेषु कर्दमः शब्द श्छायायां वर्तते स्फुटः ।
बभूव कर्दमाद्बालः कद्र्दम स्तेनकीर्तितः ॥[5]

काश्यपी कश् कशि वा = गतिशासनयोः (१०९६) भ्वादि अक० से ट् । कश्+यत् कशामर्हतिकश्ये श्वादौ । कश्यं मद्यमपि । कश्यं पाति पिबति वा कश्यपः । कश्य+पा+कः कश्यपस्य अपत्यं स्त्री कश्यप+अण्+ङीप् ।

---

१. ब्रह्म वैं० २।५७।१० २. वही १।१२।४५ ३. वही २।८।-३९
४. वही ३।४४।८८ ५. वही १।२२।५

(ब्राह्मणस्तनयो योऽभूत् मरीचिरिति विश्रुतः ।
कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् कश्यपानात् सकश्यपः ।
इति निरुक्ते मुनिभेदे मृगभेदे मत्स्य भेदे च ।)

कश्यप की आत्मजा होने के कारण काश्यपी पृथ्वी का अपर नाम है ।

काश्यपी कश्यपस्येयम् ।[1]

कान्तः (कमु[2] = कान्तौ, कान्तिरिच्छा वा कनी[3] = दीप्तिकान्ति-गतिषु + क्त ।। कस्य ब्रह्मणो न्तो यस्यमाद्, वासुदेवे पत्यौ, लौहे, वसन्ते, हिज्जलवृक्षे च कुंकुमे । लौहभेदे न० मनोरमे, शोभने, अभीष्टे च त्रि० । नार्यां प्रियङ्गुवृक्षे च स्त्री०)

मनोरथदायक होने के कारण श्री कृष्ण को कान्त कहा गया है—

कामदः कान्त एव च ।[4]

कृष्णः कृष विलेखने विलेखनमाकर्षणं परस्मै पद भ्वादि १०५६ तुदादि १३७० आत्मने पद + नक् ।

(१) परिपूर्णतम ब्रह्म का कृष्ण नाम है । युग भेद से इसका सत्य युग में शुक्ल वर्ण, त्रेता में रक्त वर्ण, द्वापर में पीत वर्ण और कलियुग में वह तेजों की राशि कृष्ण वर्ण है ।

(२) क अक्षर ब्रह्मन् का वाचक है । ऋकार अनन्त का वाचक है । मकार शिव का वाचक है, नकार धर्म का वाचक है, अकार श्वेत द्वीप निवासी विष्णु का वाचक है । विसर्ग के दोनों बिन्दु नर और नारायण अर्थ का वाचक है ।

(३) सभी तेजों की राशि, सर्वमूर्ति स्वरूप, सबका आधार और सबका बीज होने के कारण उसे कृष्ण कहा जाता है ।

(४) कृषि कर्म निर्मूल अर्थ का वाचक है, नकार दास्य वाचक है, अकार प्रदाता अर्थ का वाचक है । अतः उसे कृष्ण कहा जाता है ।

(५) कृषि चेष्टाहीन वाचक है, नकार भक्ति का वाचक है और अकार प्राप्ति वाचक है । अतः उसे कृष्ण कहा जाता है ।

(६) कृषि का अर्थ निर्वाण, नकार का अर्थ मोक्ष है और अकार का अर्थ दाता है । अतः निर्वाण एवं मोक्षदायक होने के कारण उसे कृष्ण कहा जाता है ।

(७) कृषि उत्कृष्टपरक है, ण सद्भक्ति वाचक है । अकार प्रदातार्थक है । अतः उत्कृष्ट भक्तिप्रदायक होने के कारण उसे कृष्ण कहा जाता है ।

(८) कृषि परमानन्द वाचक है, ण उसके (कृष्ण) दास्य कर्म का वाचक है ।

---

१. ब्रह्म वै० २।६।२२ २. भ्वादि ४७२ ३. भ्वादि ४८२ ४. ब्रह्म वै० २।४२।२७

परमानन्द और सेवा भाव इन दोनों का प्रदाता होने के कारण उसे कृष्ण कहा जाता है।

(९) कोटि जन्मार्जित पाप और क्लेश का वाचक कृषि है, ण निर्वाण का बोधक है अतः भक्तों के पापों एवं क्लेशों के विनाशक होने के कारण उसे कृष्ण कहा जाता है।

(१०) कृषि सर्व का वाचक और नकार आत्म वाचक है सबकी अन्तरात्मा, सर्वत्र प्रत्यक्ष, सबमें परिव्याप्त होने के कारण वह परब्रह्म कृष्ण कहा जाता है।

(११) कृषि सर्व का बोधक और नकार आदि का बोधक है। अतः सर्वादि एवं सर्वव्यापी पुरुष श्री कृष्ण कहा जाता है।

(१२) ब्रह्मा की आयु जिसका एक निमेष है, उस आत्मा परब्रह्म का कृष्ण अभिधान है।

(१३) कृषि उस (वासुदेव) की भक्ति का वाचक है और नकार उस (वासुदेव) की सेवा का वाचक है। अतः भक्ति और दास्य का प्रदायक होने के कारण उसे कृष्ण कहा जाता है।

(१४) कृषि सर्व वाचक है और नकार बीज वाचक है। अतः सबके बीज अथवा जनक होने के कारण उस परब्रह्म को कृष्ण कहा जाता है।

(१) युगे युगे वर्णभेदो नाम भेदोऽस्य बल्लव !।
शुक्लः पीतस्तथा रक्त इदानीं कृष्णतां गतः ॥५४॥
शुक्लवर्णः सत्ययुगे सुतीव्रतेजसाऽऽवृतः।
त्रेतायां रक्तवर्णोऽयं पीतोऽयं द्वापरे विभुः ॥५५॥
कृष्ण वर्णः कलौ श्रीमां स्तेजसां राशिरेव च।
परिपूर्णतमं ब्रह्म तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥५६॥[1]

(२) ब्रह्मणो वाचकः कोऽयं मकारोऽनन्तवाचकः।
शिवस्य वाचकः षश्च नकारो धर्मवाचकः॥
अकारो विष्णुवचनः श्वेतद्वीप-निवासिनः।
नर-नारायणार्थस्य विसर्गो वाचकः स्मृतः ॥[2]

(३) सर्वेषां तेजसां राशिः सर्वमूर्ति स्वरूपकः।
सर्वाधारः सर्वबीजस्तेन कृष्णइतिस्मृतः ॥[3]

(४) कर्म निर्मूलवचनः कृषिर्नोदास्यवाचकः।
अकारो दातृ वचनस्तेन कृष्ण इतिस्मृतः ॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० ४।१३।५४-५६ २. वही ४।१३।५७, ५८
३. वही ४।१३।५९ ४. वही ४।१३।६०

(५) कृषि निश्चेष्ट वचनो नकारो भक्तिवाचकः ।
अकारः प्राप्तिवचनस्तेन कृष्ण इतिस्मृतः ॥[१]

(६) कृषि निर्वाण वचनो नकारो मोक्ष वाचकः ।
अकारः प्राप्तिवचनस्तेन कृष्ण इति स्मृतः ॥[२]

(७) कृषिरुत्कृष्टवचनो णश्च सद्भक्ति वाचकः ।
अश्चापि दातृ वचनः कृष्णतेन विदुर्बुधाः ॥[३]

(८) कृषिश्च परमानन्दे णश्च तद्दास्यकर्मणि ।
तयोर्दाता च यो देवस्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥[४]

(९) कोटि-जन्मार्जिते पापे कृषिः क्लेशे च वर्तते ।
भक्तानां णश्च निर्वाणे तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥[५]

(१०) सर्वान्तरात्मा सर्वत्र प्रत्यक्षः सर्वगः स्मृतः ।
कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चात्म वाचकः ॥
सर्वात्मा च परं ब्रह्म तेन कृष्ण प्रकीर्तितः ॥[६]

(११) कृषिश्च सर्ववचनो नकारश्चादिवाचकः ।
सर्वादि-पुरुषोव्यापी तेन कृष्णः प्रकीर्तितः ॥[७]

(१२) ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते ।
स चात्मा परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥[८]

(१३) कृषि स्तद्भक्ति वचनो नश्च तद्दास्य वाचकः ।
भक्तिदास्य प्रदाता यः सकृष्णः परिकीर्तितः ॥[९]

(१४) कृषिश्च सर्व-वचनो नकारो बीज वाचकः ।
सर्वबीजं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥[१०]

कृष्ण जीवनी कृष्णः जीवनं यस्याः सा (कृष्णः+जीव् यु (अन्) ङीप्) कृष्ण ही जिसके जीवन हैं अथवा जो कृष्ण की जीवन-स्वरूप है और जो सर्वदेव श्री कृष्ण की अतिप्रिय सती स्वरूप है। वह कृष्ण जीवनी है। मेरे भी जीवन की रक्षा करे।

---

१. ब्रह्म वै० ४।१३।६१
२. वही ४।१३।६२
३. वही ४।१११।३१/२-३२/१
४. वही ४।१११।३२/२-३३/१
५. वही ४।१११।३३/२-३४/१
६. वही १।२८।६६-६७/१
७. वही १।२८।६७/२-६८/१
८. वही २।२।२४
९. वही २।२।२५
१०. वही २।२।२६

कृष्ण जीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती।
तेन कृष्ण-जीवनीति मम रक्षतुजीवनम् ।।[1]

कृष्णप्राणाधिका कृष्ण+प्र+अन्[2] प्राणने+धा, अधिक+टाप् कृष्णस्य प्राणेभ्यो पि अधिका या सा ।।

परमात्मा श्री कृष्ण की प्राण से भी अधिक प्रेयसी होने के कारण (राधा) को श्री कृष्ण ने ही कृष्ण प्राणाधिका के नाम से अभिहित किया—

प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
कृष्ण प्राणाधिका सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ।।[3]

कृष्ण-प्रिया कृष्णं प्रीणातीति। कृष्ण+प्रीञ्[4]+क, इयङ् टाप्। वा कृष्णः प्रीयते-एनाम्।

कृष्ण की अतिप्रिय कान्ता अथवा इसको कृष्ण अति प्रिय होने के कारण यह (राधा) कृष्ण-प्रिया है। यह नाम सभी देव-गणों ने अभिहित किया है।

कृष्णस्याति प्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा।
सर्वैः देवगणैरुक्ता तेन कृष्ण-प्रिया स्मृता।[5]

कृष्णवामाङ्गसम्भूता कृष्णस्य वामात्अङ्गात् सम्भूता जातेति। कृष्णगात्र के वामार्धं से जो सती पुराकाल में उत्पन्न हुई उसे श्री कृष्ण ने वामांगसम्भूता कहा है।

वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या सम्भूतापुरासती।
कृष्णवामाङ्गसम्भूता तेन कृष्णेन कीर्तिता ।।[6]

कृष्णस्वरूपिणी कृष्णस्य स्वरूपमस्या अस्तीति कृष्णस्वरूपिणी।
कृष्ण + स्व + रूप (चुरादि २०८५ रूपयति=रूपक्रियायाम्) + इनुङीप् = कृष्णस्वरूपिणी ।।

क्रीडा में कृष्ण के रूप को धारण करने में जो समर्थ है तथा जो सभी अंशों में कृष्ण के सदृश है अतः उसे कृष्णस्वरूपिणी कहा गया है—

कृष्णरूपं संविधातुं या शक्ता चावलीलया।
सर्वांशैः कृष्ण सदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी ।।[7]

---

१. ब्रह्म वै० २।२२।२५ २. अदादि परस्मैपद ११४६ ३. ब्रह्म वै० ४।१७।२२६
४. प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च क्रयादि १५६७, चुरादि-प्रीञ्तर्पणे प्रीणयति १६८१, प्रीङ् प्रीतौ दिवादि प्रीयते सकर्मक १२१८ ५. ब्रह्म वै० ४।१७।१२७
६. वही ४।१७।२३१ ७. वही ४।१७।२३०

कृष्णा कृष् + नक् + टाप्

(१) कृषि मोक्ष अर्थ का वाचक है। न उत्कृष्ट वाचक है और आकार दाता वाचक है। अतः यह राधा मोक्ष की उत्कृष्ट प्रदायिका होने के कारण कृष्णा नाम से प्रसिद्ध है—

कृषि र्मोक्षार्थ वचनो न एवोत्कृष्ट वाचकः।
आकारो दातृ वचन स्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता ॥[1]

(२) विष्णु एवं कृष्ण की भक्त होने के कारण द्रौपदी को कृष्णा कहा गया।

वैष्णवी कृष्ण-भक्ता च तेन कृष्णा प्रकीर्तिता।[2]

क्रतुः कृ[3] + कतु = क्रतुः।

जन्मान्तर में यज्ञसमूह सम्पन्न करने के कारण इस समय (जन्म) में भी ब्रह्म-पुत्र क्रतु नाम से प्रसिद्ध हुआ—

क्रतु संघश्च बालेन कृतो जन्मान्तरेऽधुना।
ब्रह्मपुत्रेऽपि तन्नाम क्रतुरित्यभिधीयते ॥[4]

क्षिति क्षि[5] निवासे, आधारे क्तिन् भूमौ, भावेक्तिन् निवासे। क्षियति अत्रेतिक्षितिः। क्षिणोतीतिवा।[6]

समस्त चराचर का आधार अथवा निवास होने के कारण इसे व्युत्पत्ति के आधार पर क्षिति कहा जाता है। किन्तु ब्रह्म-वैवर्त महाप्रलय में यह नष्ट हो जाती है अतः इसे क्षिति मानता है—

महालये क्षयं याति क्षिति स्तेन प्रकीर्तिता।[7]

क्षोणी क्षु + नि + ङीप् = क्षौतीतिक्षोणी। पाणिनि ने क्षु को शब्दार्थक माना है किन्तु यह क्षीणार्थक भी प्रतीत होती है। ब्रह्मवैवर्त में क्षोणी को क्षीणार्थक ही मानकर निर्वचन किया गया है जैसा कि निम्नलिखित है—

क्षोणी क्षीणा लये यया।[8]

---

१. वही ४।१७।२३३ २. वही ४।११६।२४/१

३. डुकृञ् करणे १५६५ तनादि उ० प० ४. ब्रह्म वै० १।२२।७

५. क्षि, निवासगत्योः तुदादि १५०० क्षियति। क्षिक्षयेम्बादि २४४

६. क्षिहिंसायां स्वादि १३५६। टुक्षु शब्दे ११११ अदादि प० प०

७. ब्रह्म वै० २।६।३१ ८. ब्रह्म वै० २।६।३१/१

गजवक्त्र: गज[1] शब्दे वा स्वने + अच्, वच्[2] परिभाषणे + त्र

गजस्य वक्त्र मिव वक्त्रं यस्य स: गजवक्त्र: ।

विष्णु प्रसाद स्वरूप पुष्प को मुनि दुर्वासा ने जिस मस्तक पर रखा वह सुन्दर गजेन्द्रमुख जिसका सुन्दर मुख है उसे मैं नमस्कार करता हूँ। (दुर्वासा द्वारा प्राप्त पुष्प इन्द्र ने गजमस्तक पर रखा था। यह कथा गजपति खण्ड के बीसवें अध्याय में वर्णित है।)

विष्णु प्रसादं मुनिना दत्तं यन्मूर्ध्नि पुष्पकम् ।
तद्गजेन्द्रमुखं कान्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम् ॥[3]

गजानन: गज इव आननं यस्य स: ।

शनि दर्शन से शिर[4] कटने पर गणेश की धड़ से गजमुख संयोजित होने के कारण शिशु (गणेश) को गजानन कहा गया ।

शनि दृष्ट्या शिरश्छेदात् गजवक्त्रेण योजित: ।
गजानन: शिशुस्तेन सर्वेषां सर्वसिद्धिद: ॥[5]

गणेश गण्[6] + अच्. ईश्[7] + अच् । गणानामीश: गणेश:

(१) ग, ज्ञानार्थ वाचक और ण निर्वाण वाचक हैं। उन दोनों ज्ञान और निर्वाण के ईश अथवा स्वामी को मैं प्रणाम करता हूँ—

ज्ञानार्थं वाचको गश्च णश्च निर्वाण-वाचक: ।
तयोरीशं परंब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥[8]

(२) देवगणों का स्वामी होने के कारण वे गणेश नाम से त्रिलोक में विख्यात हैं—

स्वयं देवगणानां स यस्मादादीश: कृपानिधि: ।
गणेश इति विख्यातो भविष्यति-जगत्त्रये ॥[9]

गङ्गा गम् + गन्

(१) स्रोतों से अंश रूप में धरती पर आयी, अत: यह नदी देवी गंगा के नाम से प्रख्यात हुई—

---

१. गजशब्दे भ्वादि २५४ प० प० अकर्मक सेट । शब्दार्थो चुरादावपि १७७३ प० प०
२. चुरादि १६८७ वाचयति, वचति ।
३. ब्रह्म वै० ३।४४।६३ ४. वही ३।११।१२ अ० ५. वही ३।६।६५
६. गणसंख्याने प० प०, चुरादि १६६८ ७. ईश ऐश्वर्ये, अदादि १०६० आ० प०
८. ब्रह्म वै० ३।४४।८७ ९. वही ३।६।६२

गामागता स्रोतसोंशाद् गङ्गा तेन प्रकीर्तिता ।[1]

(२) गोलोक में वैकुण्ठ लोक, शिवलोक और ब्रह्मलोक में परमात्मा की आज्ञा से गयीं । अतः (अतिशय गमन करने के कारण) वे गंगा हुई ।

गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके ।
ब्रह्मलोके तथान्यत्र यत्र-यत्र पुरा स्थिता ।
तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञया परमात्मनः ॥[2]

गुरुः गिरत्यज्ञानं गृणाति उपदिशति वा धर्मम् ।

गॄ[3] + कु, उच्च ।

मंत्र आदि उद्गिरण अथवा प्रवचन करने के कारण गुरु कहा जाता है—

मन्त्राद्यु द्गिरणेनैव गुरुरित्युच्यते बुधैः ।[4]

(क) निषेकादीनिकर्माणि यः करोति यथाविधि ।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥ इतिमनुः

(ख) स गुरु यः क्रियां कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ।

(ग) गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥

इतिपुराणोक्तिः

गुहाग्रज गुह[5] संवरणे गुह् + क, अग्र + जन्[6] + ड

गूहतीति गुहः, अग्र जात इत्यग्रजः गुहस्याग्रजः ।

गुह (कार्तिकेय) से ये गणेश ज्येष्ठ हैं । शिव भवन में उत्पन्न हुए । सर्वदेव से ये अग्रपूजित हैं । अतः मैं उस गुहाग्रज देव की वन्दना करता हूँ—

गुहस्याग्रे च जातो यमाविर्भूतो हरालये ।
वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्र पूजितम् ॥[7]

गुह्यकः गुहू संवरणे, गुह+क्यप+कर गूहितुं योग्य ।···गुह दण्डमर्हतीति देव । वा गूहितं योग्यं गुह्यकं सुखं यस्य सः गुह्यकः । गुह्यं कुत्सितं कायतीति[8] गुह्यकः ।

कृष्ण के गुह्य देश से पिङ्गलवर्ण वाले गणों के साथ एक पिङ्गल पुरुष उत्पन्न हुआ । गुह्य से उत्पन्न होने के कारण वे सभी पुरुष गुह्यक हैं—

---

१. ब्रह्म वै० ४।३४।३/१ २. वही २।११।१३९, १४०-१४/१
३. गॄ शब्दे क्र्यादि १५९७ प० प० । ग निगरणे, तुदादि १५०३
४. वही ४।५९।४६/१ ५. भ्वादि सकर्मक वेट् उ० प० ९६२
६. जनी प्रादुर्भावे दिवादि १२२४ आ० प० जन जनने जुहोत्यादि ११८०
७. ब्रह्म वै० ३।४४।८४ ८. कै शब्दे, भ्वादि, पर० प० ९८२

आविर्बभूव कृष्णस्य गुह्यदेशान्ततः परम् ।
पिङ्गलश्च पुमानेकः पिङ्गलैश्च गणैः सह ॥
आविर्भूता यतो गुह्यात्तेन गुह्यकाः स्मृताः ॥[1]

(गुह्य शब्दः कच्छपे, दम्भे, परमात्मनि, रहसि, भगेच लिङ्गे रहस्ये अप्रकाश्ये च । गुह शब्दः कार्तिकेये, अश्वे, रायमित्रे, गर्ते, विष्णौ, सिंहपुच्छीलतायाम्, अकृत्रिमे-देवखाते, पर्वतगर्ते, हृदये च स्त्रियां गुहां प्रविष्टावितिश्रुतिः ।)

गुह्यकेश्वरः गुह्यकानां जाति विशेषाणामीश्वरः गुह्यकेश्वरः ।

गुह्यक+ईश्+वरच् ।

श्री कृष्ण के गुह्य देश से जो पुरुष उत्पन्न हुआ वह धन का स्वामी कुबेर है वही समस्त गुह्यकों का स्वामी है अतः कुबेर गुह्यकेश्वर हुए ।

यः पुमान् स कुबेरश्च धनेशो गुह्यकेश्वरः ।[2]

गोवर्धन : गाः वर्धयतीति, गो, वृध्+यु, अन

जो नित्य नवीन तृण, घास देकर गायों का संवर्धन करता है उस पर्वत को गोवर्धन कहा जाता है—

गाः वर्धयति नित्यं य स्तेन गोवर्धनः स्मृतः ॥
नित्यं ददाति गोभ्यो यो नवीनानि तृणानि ॥[3]

गौरी गुरो[4] हिंसागत्योः । गूर+र निपानात् गौर+ङीप् गूर्यतेऽनयागूरयतीति वा । गौरस्येयं गौरीतिवा । गुरो रियं वा ।

(१) गौर शब्द पीतवर्ण, निर्लिप्त, परंब्रह्म और निर्मल अर्थ में है । उस निर्मल परंब्रह्म आत्मा की शक्ति होने के कारण उस देवी शिवा को गौरी कहा जाता है ।

गौरः पीते च निर्लिप्ते, परे ब्रह्मणि निर्मले ।
तस्यात्मनः शक्तिरियं, गौरी तेन प्रकीर्तिता ॥[5]

(२) गुरु शम्भु का वाचक है । शम्भु सबके गुरु हैं । अतः उनकी शक्ति गौरी है ।

गुरुर्शम्भुश्च सर्वेषां, तस्य शक्तिः प्रियासती ।[6]

(३) गुरु कृष्ण का भी पर्याय है अतः उनकी माया होने के कारण उन्हें गौरी कहा जाता है ।

---

१. ब्रह्म वै० १।४।६०, ६१/१ २. वही १।५।६१/२ ३. वही ४।२१।८६/२-८७/१
४. दिवादि १२२६ आ० प० गूर्यते । अगोरिष्ट ॥ गूर उद्यमने चुरादि १८३० आत्मने प० ५. ब्रह्म वै० २।५७।२२ ६. वही ४।५७।२३/१

गुरुः कृष्णश्च तन्माया, गौरी तेन प्रकीर्तिता ।[१]

चण्डी चण्डते इति चण्डी,[२] चडि कोपे+अच् बह्वादि त्वान्ङीप् ।

(१) शत्रु मण्डल में सावधान होकर जो क्रोधवती अथवा उग्र रूप में वर्तमान रहती है वह चण्डो कहलाती है ।

(२) चण्डी (देवी) दुर्गा का अपर नाम है ।

चण्डा या वर्तते चण्डी जाग्रती शत्रु मण्डले ।
दुर्गाया विद्यते चण्डी.........।।[३]

चन्द्रशेखर चन्द्रः शेखरे यस्य सः ।

चदि आह्लादे दीप्तौच भ्वादि ७० प० प० अकर्मक इदित । चन्दति इति । चदि+रक् । चन्द्र इन्दौ, मृगशिरा नक्षत्रे, कर्पूरे, काम्पिल्ले, हीरके, शोणमुक्ता फले, आह्लादकद्रव्ये, स्वर्णे, चुक्रे । शिखिगतौ (भ्वादि १६३) शिख+अरण्

चन्द्रमा को, जो कि दक्ष शाप से यक्ष्माग्रस्त हो गये थे, रोगमुक्त करके अपने कपाल अथवा शिर पर स्थान दिया । चन्द्र निर्भय होकर शिव-शेखर में निवास करने लगे अतः शिव चन्द्रशेखर हुए ।

निर्मुक्तं यक्ष्मणा कृत्वा स्वकपाले स्थलं ददौ ।
अमरो निर्भयो भूत्वा स तस्थौ शिव शेखरे ।।
तं शिवः शेखरे कृत्वा चाभवच्चन्द्रशेखरः ।[४]

चन्द्रावली चन्द्राणां चन्द्रिकाणां अवलि यत्र ।

नखरूपी चन्द्रों की अवलि अथवा पंक्ति वा समूह (२० नख, मुख आदि) जिसके शरीर में सन्निहित हैं अथवा नख से मुख तक जिसके शरीर से सौन्दर्य के कारण किरणावलि बिखर रही है । अतः ऐसी सखी को श्री कृष्ण ने चन्द्रावली कहा ।

नखचन्द्रावली वक्त्र चन्द्रोऽस्ति यत्र सन्ततम् ।
तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ।।[५]

जगद्गौरी जगतां गौरी, जगतां श्रेष्ठा सुन्दरीतमा वा ।

स्वर्ग, नाग, पृथ्वी और ब्रह्म लोकों में जो अति मनोहर और सुन्दरी है । अतः वह जगद्गौरी के नाम से पूजी जाती है ।

स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः ।
जगद् गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती ।।[६]

जया जयतीति । जि[७]+अच्+टाप् ।

---

१. ब्रह्म वै० ४।५७।२६ २. भ्वादि, २८६ ३. ब्रह्म वै० २।४४।३-४
४. ब्रह्म वै० १।८।५८, ५६ ५. वही ४।१३।२३७ ६. वही २।४५।७
७. जिजये भ्वादि ६००, अभिभवेभ्वादि १०१२ आप्यायने चुरादि १६३४

जय शब्द कल्याण और आकार दातावाचक है अतः जो जय प्रदान करे उस देवी को जया कहते हैं—

जयः कल्याण वचनो आकारोदातृ वाचकः ।
जयं ददाति या नित्यं सा जया परिकीर्तिता ॥[१]

जयन्ती जयं कुर्वन्तीति जि+शतृ+ङीप् ।

(श्री कृष्ण की) जय-जयकार और पुण्य (दान, व्रत, स्वाध्यायादि) किया जाता है (कृष्ण-जन्म के उपलक्ष्य में) जिस तिथि में उसे जयन्ती कहा जाता है ।

जयं पुण्यं च कुरुते जयन्ती तेन संस्मृता ।[२]

जरत्कारु जॄ[३]+शतृ, करोतीति कारुः । जॄणन् करोतीति जरत्कारुः ।
कृ+उण्=कारुः ।

यह देवी आत्माराम वैष्णवी एवं सिद्ध योगिनी है । तीन युगों तक परमात्मा श्री कृष्ण के लिए तप करती रही । जिस समय भगवान् श्री कृष्ण ने इसे देखा वह जरा जर्जर तथापि तपः कार्य संल्लग्न थी । अतः गोपीपति श्री कृष्ण ने उसका नाम जरत्कारु रख दिया ।

आत्मारामा च सादेवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी ।
त्रियुगं च तपस्त्तवा कृष्णस्य परमात्मनः ॥
जरत्कारु शरीरं च दृष्ट्वा यां क्षणमीश्वरः ।
गोपी पति र्नाम चक्रे जरत्कारुरितिप्रभुः ॥[४]
(आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सावै तपस्विनः ।
आस्तीक माता विख्याता जरत्कारुरिति स्मृता ॥)

जरत्कारु-प्रिया जरत्कारोः प्रियेति ।

महात्मा मुनीश्वर जरत्कारु, जो कि योगी एवं विश्वपूज्य थे, की प्रिय-पत्नी जरत्कारु-प्रिया नाम से विख्यात है ।

प्रिया मुनुर्जरत्कारो मुनीन्द्रस्य महात्मनः ।
योगिनी विश्वपूज्या जरत्कारोः प्रिया ततः ॥[५]

जाह्नवी जह्नोरियं जाह्नवी, जह्नु+अण्+ङीप् ।

महर्षि जह्नु ने क्रोध से गंगा का पान कर लिया । पुनः जानु द्वारा उन्हें

---

१. ब्रह्म वै० ४।२७।३१ २. वही ४।८।५२/१
३. वयोहानौ क्र्यादि १५९१ चुरादि १९५५ जॄणाति, जारयति
४. ब्रह्म वै० २।४५।३, ४ ५. वही २।४५।१३

प्रकट किया एवं गंगा जह्नु जङ्घा से प्रकट होने के कारण पुत्री स्वरूपा हुई। अतः गंगा को जाह्नवी कहा जाता है।

जानु द्वारा पुरा दत्ता जह्नुना पीय कोपतः ॥
तस्य कन्यास्वरूपा सा जाह्नवी तेन कीर्तिता ।[1]

तुलसी तुलां स्यतीति षोन्तकर्माणि।

(१) समस्त नर-नारी जिसकी तुलना में कोई नाम नहीं दे सकते उसे तुलसी कहा जाता है।

नराः नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः ।
तेन नाम्ना च तुलसी तां वदन्ति पुराविदः ॥[2]

(२) उपर्युक्त भावों से मिलता अन्य निर्वचन भी है।

यस्या देव्या स्तुलानास्तिविश्वेषु निखिलेषु च ।
तुलसी तेन विख्याता………… ॥[3]

(३) देवियों या पुष्पों में जिसकी समानता में अन्य कोई न हो। और सबों में जो पवित्ररूपा है, उसे तुलसी कहा जाता है।

पुष्पेषु तुलनाप्यस्याः नासीद्देवीषु वा मुने ।
पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता ॥[4]

त्रिपथगामिनी त्रयाणां पथां समाहारः त्रिपथम्, त्रिपथेन गच्छतीयं त्रिपथगामिनी। त्रि पथिन्+अच्, गम्+णिनि+ङीप्।

स्वर्ग, पृथ्वी और अतल इन तीन लोकों से जिनकी धाराओं के (श्री कृष्ण की आज्ञा से) चलने के कारण यह त्रिपथगामिनी कही गयी है।

धाराभिस्तिसृभिः स्वर्गं पृथिवी मतलं तथा ।
ममाज्ञया च गच्छन्ती तेन त्रिपथगामिनी ॥[5]

त्रिपुरा त्रिपुर नामक असुर का वध करने के कारण दुर्गा देवी का नाम त्रिपुरा है—

…त्रिपुरा त्रिपुरे वधे ।[6]

त्रिहायणी त्रयोहायनाः वयो मानमस्याः,
त्रि+हायन+ङीप्।

(१) यहाँ हायन शब्द युग का प्रतीक है। अतः तीनों युगों में वर्तमान रहने के कारण त्रिहायणी कहा गया है।

---

१. वही ४।३४।२१-२२ २. वही २।१५।१३ ३. वही २।२१।२४
४. वही २।२।४२ ५. वही ४।३४।२३ ६. वही ४।१२३।६१

त्रिहायणीति सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये ।[1]

(२) कृतयुग में वेदवती, त्रेता में जनकात्मजा और द्वापर में द्रौपदी (छाया = रूप) आकार में होने के कारण त्रिहायणी कहा गया है ।

कृतयुगे वेदवती त्रेतायां जनकात्मजा ।
द्वापरे द्रौपदी छाया तेन कृष्णा त्रिहायणी ।।[2]

दक्षः दक्षवृद्धौ शीघ्रार्थे च भ्वादिः ६४७ आत्मनेपदी, अक० दक्षते क्रियासु दक्ष+अच् ।

ब्रह्मा के दक्ष भाग से उत्पन्न होने के कारण तथा सभी कार्यों में निपुण होने के कारण ब्रह्मपुत्र को दक्ष कहा गया—

बभूव धातुर्यः पुत्रः सहसा दक्षपार्श्वतः ।
सर्वकर्मणि दक्षश्च तेन दक्षः प्रकीर्तितः ।।[3]

विशेष—ब्रह्मा के दक्षाङ्गुष्ठ से भी दक्ष की उत्पत्ति बतायी गयी है ।

दुर्गा दुःखेन गच्छति गम्यते वा ।

दुर्+गम्+ड+टाप् ।

(१) दुर्ग शब्द दुर्ग नामक असुर, महाविघ्न, भवबन्ध, कर्म-शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महाभय, और अतिरोग का बोधक है । आकार विनाशार्थक है । अतः दुर्ग आदि का विनाशक होने के कारण देवी को दुर्गा कहा जाता है—

दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे चकर्मणि ।
शोके दुःखे च नरके यमदण्डे च जन्मनि ।।
महाभयेऽतिरोगे चाप्या शब्दो हन्तृवाचकः ।
एतान् हन्त्येव या देवी सा दुर्गा परिकीर्तिता ।।[4]

(२) दकार दैत्य नाश का बोधक, उकार विघ्ननाश का वाचक है, यह वेदसम्मत है । रेफ रोग-नाश का बोधक है ग पाप विनाश का वाचक है । आकार भय एव शत्रु-नाश का बोधक है । जिसकी स्मृति और उक्ति से उपर्युक्त बाधा नष्ट हो जाँय, हरिकी उस शक्ति को दुर्गा कहते हैं—

दैत्यनाशार्थं वचनो दकारः परिकीर्तितः ।
उकारो विघ्ननाशार्थ-वाचको वेदसंमतः ।।
रेफो रोगघ्न-वचनो गश्च पापघ्न वाचकः ।
भय शत्रुघ्न-वचनश्चाकारः परिकीर्तितः ।।

---

१. ब्रह्म वै० २।१४।५५-५६ २. वही ४।११६।२३
३. वही १।२२।४ ४. वही २।५७।७-८

स्मृत्युक्ति स्मरणाद्यस्या एते नश्यन्ति निश्चितम् ।
अतो दुर्गा हरेः शक्तिः हरिणा परिकीर्तिता ॥[1]

(३) दुर्ग शब्द विपत्ति का वाचक और आकार नाश का वाचक । अतः जो नित्य विपत्ति का नाश करती है उसे दुर्गा कहते हैं ।

विपत्तिवाचको दुर्गश्चाकारो नाशवाचकः ।
दुर्गं नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥[2]

(४) दुर्ग शब्द दैत्येन्द्र का बोधक और आकार नाश वाचक है । देवों ने दुर्गा देवी के द्वारा (शुम्भनिशुम्भ आदि) दैत्यों का विनाश किया अतः उसे दुर्गा कहा गया है ।

दुर्गो दैत्येन्द्र वचनोऽप्याकारो नाश-वाचकः ।
तं ननाश पुरातेन बुधैर्दुर्गा परिकीर्तिता ॥[3]

(५) प्राचीन काल में दुर्ग का विनाश करके दुर्गा नाम से प्रसिद्ध हुई—

पुरा संहृत्य दुर्गं च सा दुर्गा च प्रकीर्तिता ।[4]

(५) दुर्ग नामक दैत्य को मार कर मैं (पार्वती) हुई ।

दुर्गं निहत्य दुर्गा हम्...[5]

देवसेना देवानां सेना वा देवं देवान् वा सेनयति । दिवु-क्रीडा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मदस्वप्रकान्ति गतिषु दिवादि प० प० ११८२ । दिवु परिकूजनेचुरादि १८४३ आ० । दिवु मर्दने, देवति देवयति चुरादि १८६१

दिव् + अच् = देव

दैत्यों से भयभीत देवों की वह सेना बनी । इस प्रकार देवों को उसने विजय प्रदान किया अतः वह देवसेना हुई—

देवानां दैत्यभीतानां पुरासेना बभूव सा ।
जयं ददौच तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा ॥[6]

धरा ध्रियते धरतीति वा धृ[7] + अच् + टाप् ।

सबको धारण करने के कारण पृथिवी धरा धरित्री धरणी के नाम से प्रख्यात है ।

धरा धरित्री धरणी सर्वेषां धारणात् या ।

धरित्री धृ + इत्र + ङीप् (गौरादि०) ।

धरणी धृ + अनि वा ङीप् धरणिर्वाधरणी ।

---

१. ब्रह्म वै० २।२७।१८-२० २. वही २।२७।२१
३. वही २।२७।२२ ४. वही ४।८४।७८
५. वही ४।१२६।६१ ६. वही २।४३।२४ ७. वही २।८।-१-२

नन्दा नन्दयतीति नन्दते वा टुनदि समृद्धौभ्वादि ६६ ।

सबको आनन्द देने वाली एवं दुःख दारिद्र्य को विनाश करने वाली होने के कारण यह नन्दा है।

सर्वानन्दा च सा नन्दा दुःखदारिद्र्य नाशिनी ।[1]

नन्दिनी नन्दयतीति । नदि + णिनि + ङीप् ।

विश्व में जिसकी प्राप्ति से भक्तियुक्त आनन्द अवश्य होता है अतः उसे नन्दिनी कहते हैं। वह मुझ पर प्रसन्न हो—

विश्वे यत्प्राप्ति मात्रेण भक्त्यानन्दो भवेद्ध्रुवम् ।
नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भविताहि मे ।।[2]

नागेश्वरी नागानामीश्वरी नागेश्वरी । नगच्छति अगः न अगः नागः नगे जातौ वा । न + न + गम् + उ = नागः

जनमेजय के नाग यज्ञ में नागों की प्राण रक्षा करने के कारण यह नागेश्वरी कही जाती हैं। यह नागभगिनी हैं।

नागानां प्राणरक्षित्री जनमेजयनागयज्ञके ।
नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनी तथा ।।[3]

नारद नरस्यायं नारः बालकः नारं जलं (आपो नाराइति प्रोक्ता आपो वैनर सूनवः । मनुस्मृति) ।

नर + अण् = नारम् । नारं जलं ददाति नारदो वा नाम ज्ञानं द्यति खण्डयतीति । दो अवखण्डने नारं ज्ञानं ददातीति । नार + दा अथवा दो + क ।

(१) अनावृष्टि का अवसर था किन्तु इनके जन्म होते ही वर्षा हुई अतः नार अर्थात् जल देने के कारण इन्हें नारद कहा गया।

अनावृष्ट्यवशेषे च काले बालो बभूव ह ।
नारं ददौ जन्मकाले तेनायं नारदाभिधः ।।[4]

(२) बालक होते हुए भी बालकों को ये (नार) ज्ञान देते थे। क्योंकि ये जातिस्मर अर्थात् अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्तों के ज्ञाता थे। महाज्ञानी थे अतः इन्हें नारद कहा गया।

ददाति नारं ज्ञानं च बालकेभ्यश्च बालकः ।
जाति स्मरो महाज्ञानी तेनायं नारदाभिधः ।।[5]

---

१. ब्रह्म वै० २।८४।९६ २. वही २।२२।२३ ३. वही २।४५।६
४. वही १।२१।७ ५. वही १।२१।७

(३) नारद (ज्ञान देने वाले) के वीर्य से जो बालक उत्पन्न हुआ। अथवा मुनीन्द्र के वर से जिस बालक की उत्पत्ति हुई उसे नारद कहा गया।

वीर्येण नारदस्यैव बभूव बालको मुने।
मुनीन्द्रस्य वरेणैव तेनायं नारदाभिधः॥

विशेष—यहाँ मुनीन्द्र को भी, जिसके वर से नारद की उत्पत्ति हुई, नारद बताया गया है। नीचे उन्हें नारद सिद्ध करने का व्युत्पत्तिपरक विलक्षण ढंग सदा स्मरणीय एवं प्रशंसनीय है।

(४) नर नामक मुनि ने पुत्रहीन ब्राह्मण कश्यप को पुत्र दिया। अतः ना मुनि का बालक नार हुआ उस बालक को 'नर' मुनि ने कश्यप को दिया। अतः वे नार को देने के कारण नारद कहलाये।

अपुत्रकाय विप्राय धर्मपुत्रो नरो मुनिः।
ददौ पुत्रं कश्यपाय तेनायं नारदाभिधः॥[1]

(५) ब्रह्मा के नरोत्पादक कण्ठ देश से जिस बालक की उत्पत्ति हुई उसे नारद कहा गया। ब्रह्मा कण्ठ से (एक कल्प में) बहुत नर उत्पन्न हुए। इस प्रकार नर प्रदान अथवा उत्पन्न करने के कारण ब्रह्मा का कण्ठ नरद कहा गया है।

कल्पान्तरे ब्रह्मकण्ठाद् बभूवुर्बहवोनराः।
नरान् ददौ तत्कण्ठं च तेन तन्नरदं स्मृतम्॥

ततो बभूव बालश्च नरदात् कण्ठ देशतः।
अतो ब्रह्मा नाम चक्रे नारदश्चेति मङ्गलम्॥[2]

(६) उपर्युक्त अभिप्राय को निम्न श्लोक में भी प्रकट किया गया है—

विधेर्नरद नाम्नश्च कण्ठदेशाद् बभूव सः।
नारदश्चेति विख्यातो मुनीन्द्रस्तेन हेतुना॥[3]

नारायण नारं जलं अयनं निवासो यस्य, समुद्रशायी वा नारे ज्ञाने निवासो यस्य अथवा नाराणां ज्ञानानां अयनं यः। अथवा नराणां समूहः नारः तेषामयनमयं नारायणः

(१) नार शब्द सारूप्य एवं मुक्ति का वाचक है। इनका जो देव अयन है उसे नारायण के नाम से स्मरण किया जाता है—

सारूप्य मुक्ति वचनो नारेति च विदुर्बुधाः।
यो देवे प्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० १।२१।८ २. वही १।२१।१३, १४
३. वही १।२२।२ ४. वही ४।१११।२१/२, २३/४

(२) नार पापकर्मियों का बोधक है और अयन[1] गमन का बोधक है अत: पापों से पृथक् कर्ता को नारायण कहा गया।

नाराश्च कृत पापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम्।
यतोहि गमनं तेषां तेन नारायण: स्मृत:॥[2]

(३) एक बार नारायण नाम उच्चारण करके तीन सौ कल्प तक गङ्गादि तीर्थों में स्नान करने के समान होता है। इस प्रकार नारायण नाम मोक्ष एवं पुण्य का प्रदाता है।

नार शब्द मोक्ष एवं पुण्य का बोधक है। अयन शब्द का अभिप्राय ज्ञान अभीप्सित है। मोक्ष और पुण्य का ज्ञान जिससे हो उसे नारायण कहा जाता है।

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम्।
गङ्गादि सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्॥
नारं च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम्।
तयोर्ज्ञानं भवेद्यस्मात्सो ऽयं नारायण: प्रभु:॥[3]

नारायणी नारं अयनं अस्या.। शब्दस्तोम महानिधौ—

जलायना, नराधारा; समुद्रशयनापि वा।
नारायणी समाख्याता नानारी प्रकीर्तिता॥
विष्णुशक्तौ, लक्ष्म्यां, दुर्गायां, च चण्ड्यां, गंगायां शतवर्यां च।

(१) यश, तेज, रूप और गुणों में जो देवी नारायण के समान है वह नारायणी है।

यशसा तेजसा रूपैर्नारायणसमागुणै:।
शक्तिर्नारायणस्येयं तेन नारायणी स्मृता॥[4]

(२) नारायण (श्री कृष्ण) का कथन है—मेरी इच्छा से सृष्टि में देवी प्रकट हुई है सृष्टि-संहार होने पर मुझ अशेष में विलीन हो जाती है। सृष्टि करने वाली प्रकृति सबकी परा जननी है। यह प्रकृति रूपी मेरी माया मेरे ही सदृश है। अत: यह नारायणी है।

आविर्भूता च सा मत्त: सृष्टौ देवी मदिच्छया॥
तिरोहिता च सा शेषे सृष्टि संहरणे मयि॥

---

१. अयगतौध्वादि आ० प०   २. ब्रह्म वैं० ४।१११।२३-२४
३. वही ४।१११।२४-२५   ४. वही २।५७।६

प्रकृतिः सृष्टिकर्त्री च सर्वेषां जननी परा।
ममतुल्या च मन्माया तेन नारायणी स्मृता ॥[1]

(३) कृष्ण की शक्ति होने के कारण नारायणी कहा गया।

कृष्णस्य भवती शक्तिः तेन नारायणी स्मृता।[2]

(२) पार्वती की उक्ति है—

नारायण की माया हूँ, अतः नारायणी हूँ।

नारायणस्य मायाऽहं तेन नारायणी स्मृता।[3]

(५) नारायण के अर्धाङ्ग से उत्पन्न, तेज में उन्हीं के समान, तथा सदा उन्हीं के शरीर में स्थित होने के कारण उस देवी को नारायणी कहा जाता है।

नारायणार्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा।
सदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता ॥[4]

नित्या नियमेन नियता वा भवा, नि+त्यप्+टाप्।

जिस प्रकार भगवान् नित्य हैं वैसे ही भगवती नित्य हैं। अपनी माया से प्राकृत लय होने पर उसी ईश में तिरोहित हो जाती हैं। अतः नित्या अभिधान है।

यथा नित्यो हि भगवान् नित्या भगवती तथा।
स्वमायया तिरोभूता तत्रेशे प्राकृते लये ॥[5]

नैऋत: निऋतेरयम्। (निर्) नि+ऋ + क्तिन्=निऋतिः। निऋति +अण् नैऋतः। निर्ऋतेरयमपि। नैर्ऋतोपि।

निऋति शब्द सिंहिका का बोधक है। सिंहिका के पुत्र राहुनैऋत हुए।

निर्ऋतिः सिंहिका सा च तेन राहुश्च नैर्ऋतः।[6]

पञ्चशिख: पंच शिखाः सन्ति अस्येति।

अग्निशिखा सदृश जिसके मस्तक पर तपस्तेज से उत्पन्न पाँच जटायें हैं वह पञ्चशिख है।

जटा वह्नि शिखा रूपाः पंच सन्ति च मस्तके।
तपस्तेजो भवा यस्य स च पंचशिखः स्मृतः॥[7]

पति: पाति रक्षतीति पतिः। पाते डंतिः पा + ति = पतिः पालन करने के कारण पति कहा जाता है।

---

१. ब्रह्म वै० ३।७।६४, ६५ २. वही ४।११८।२४ ३. वही ४।१२६।$\frac{६३}{२}$
४. वही ४।२७।२६ ५. वही २।५७।१४
६. वही १।६।$\frac{६६}{१}$ ७. वही १।२२।१७

पालनात्पतिरुच्यते ।[1]

पद्मावती पद्यते इति पद्म। पद् गतौ, अर्तिस्तुसुहुस्त्रिति, उणादि सूत्रेण मन्। अर्शआदिभ्योऽच्, टाप् पद्मा। लक्ष्मीरिति पद्मा। अस्ति-अस्मिन्निति मतुप् मस्यवत्वम् ङीप्, संज्ञायाम् दीर्घः।

स्वयं पद्मा अथवा लक्ष्मी जिसमें कला से सङ्गत हुई वह नदी पद्मावती हुई।

पद्मा जगाम कलया साच पद्मावती नदी ।[2]

(२) इसी अभिप्राय को प्रतिध्वनित कर्ता निम्न श्लोक भी है—

कलयात्र सरिद्भूत्वा शीघ्रं गच्छ वरानने ।
भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव ॥[3]

विशेष—पद्मा वा पद्मावती की स्थिति मध्य देश है।

पद्मा मध्यदेश स्थिता सती ।[4]

परमानन्दरूपिणी आ समन्तात् नन्दते वानन्दयतीत्यानन्दः, परमश्चासावानन्दः परमानन्दः परमानन्दं रूपमस्याः। रूप् + इन्—ङीप् रूपान्वितिकरणे। स्वयं परमानन्द की मूर्तिमती राशि होने के कारण श्रुतियों ने उन्हें (राधा) परमानन्दरूपिणी कहा है।

परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती ।
श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी ॥[5]

पार्वती पर्वति पूरयतीति पर्व पूरणे-भृमृदृशियजिपर्वीति उणादि सूत्र ३/११० इति अतच् पर्व + अतच् पर्वतस्यापत्यं स्त्री, पर्वत + अण्, ङीप्। पर्वाणि भागाः सन्त्यत्र पर्वतः, पर्वतस्य इयं पार्वती।

(१) तिथि, पर्व, कल्प के तथा अन्य के भेदों के अर्थ में और ख्याति अर्थ में प्रसिद्ध होने के कारण उसे पार्वती कहा गया।

तिथिभेदे पर्वभेदे कल्पभेदेऽन्य भेदके ।
ख्यातौ तेषु च विख्याता पार्वती तेन कीर्तिता ॥[6]

(२) महोत्सव-विशेष अर्थ में पर्वन् शब्द प्रसिद्ध है। उसकी अधिदेवी होने के कारण इसे पार्वती कहा जाता है।

महोत्सव विशेषे च पर्वन्नितिसुकीर्तिता ।
तस्याधिदेवी या सा च पार्वती परिकीर्तिता ॥[7]

---

१. ब्रह्म वै० २।४२।२७ २. वही २।७।६ ३. वही २।६।४८
४. वही २।६।३१ ५. वही २।१७।२३०
६. वही २।५७।२४ ७. वही २।५७।२५

(३) (क) पर्वत की (हिमालय) पुत्री और वह देवी पर्वत पर ही प्रकट हुई। (ख) वह पर्वत की अधिदेवी भी है। अतः वह पार्वती के नाम से प्रसिद्ध हुई।

(क) पर्वतस्य सुता देवी साविर्भूता च पर्वते।

(ख) पर्वताधिष्ठातृदेवी पार्वती तेन कीर्तिता।[1]

(४) यही अभिप्राय निम्नलिखित में भी है—

शैल जातेति पार्वती।[2]

पुराणम् पुरा भवमिति। पुरा, सायं चिरं प्राह्णे प्रगे व्ययेभ्य टुलौ तुट् च पा० ४।३।२३ इति ट्यु:, पूर्वकालैक सर्व जरत्पुराण नवकेवला: समानाधिकरण्येन पा० २।१।४९ इति निपातनात् तु भावः। यद्वा पुराण प्रोक्तेषु ब्राह्मण-कल्पेषु पा० ४।३।१०५ निपातितः। यद्वा पुरा नीयते इति पुरा + नी + ड, णत्वञ्च।

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पाँच पुरुष के लक्षण हैं। पुराण में इन पाँचों का विशेष वर्णन है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं विप्र पुराणं पंच लक्षणम्॥[3]

पुलस्त्य: पुल महत्वे भ्वादि ८९८ पुल चुरादिरपि १७२१ पुल + क्विप्, अस् भ्वादि गतिदोप्त्यादानेषु ९५० असते, असति उ० प० पुलं महत्वं असते गच्छतीति उत्त्वलदत्त। पुलस्त्य उणादि सिद्धिः। (शब्दस्तोम महानिधौ।) पूर्व जन्म में जिसको पुल अर्थात् तप: समूह प्राप्त हुआ (तपस्वी होने के कारण) अतः तप: संघ स्वरूप होने के कारण वे ऋषि पुलस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुए।

पुलस्तपः समूहश्च यस्यास्ति पूर्वजन्मनाम्।

तपः संघ स्वरूपश्च पुलस्त्य स्तेन बालकः॥[4]

पुलह: पुल शब्द तप अर्थ में और ह स्फुट अथवा स्पष्ट अर्थ में वेदों में प्रसिद्ध है। अतः जो स्फुट तपसमूह स्वरूप है वह बालक पुलह कहा गया।

पुलस्तपः सु वेदेषु वर्तते हः स्फुटे पि च।

स्फुट स्तपः समूहश्च पुलहस्तेन बालकः॥[5]

पृथ्वी पृथोरियं पृथ्वी। प्रथते विख्यातोभवतीति पृथुः प्रथिभ्रादिभ्रस्जांसम्प्रसारणं स लोपश्च, उणादिसूत्र १।१२९ इति कुः पृथु+ङीप् वोतोगुणवचनात् इति। पृथु की पुत्री होने के कारण पृथ्वी है।

---

१. ब्रह्म वै० २।५७।२६ २. वही ४।८।४।८० ३. वही ४।१३३।६
४. ब्रह्म वै० १।२२।१५ ५. वही १।२२।१४

पृथ्वीयं पृथुकन्यात्वाद्......[1]

प्रकृतिः प्र + कृ + क्तिन् । प्रकृष्टा कृतिः प्रकृतिः ।

(१) प्र शब्द प्रकृष्ट का बोधक और कृति शब्द सृष्टि का बोधक है । अतः सृष्टि में जो प्रकृष्ट देवी है वह प्रकृति है ।

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टि वाचकः ।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥[2]

(२) प्रशब्द श्रुति में प्रकृष्टसत्वगुण कृ शब्द रजोगुण तथा ति तमोगुण का बोधक है । त्रिगुणात्मस्वरूपा सर्वशक्तिसमन्वित और सृष्टि रचना में प्रधान को प्रकृति कहते हैं—

गुणे प्रकृष्ट सत्वे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतौ ।
मध्यमे कृश्च रजसि तिशब्द स्तमसि स्मृतः ॥

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता ।
प्रधानासृष्टिकरणे प्रकृति स्तेन कथ्यते ॥[3]

(३) प्रशब्द प्रथम का बोधक और कृति शब्द सृष्टि का बोधक है । सृष्टि की प्रथम अथवा आद्या देवी प्रकृति है ।

प्रथमो वर्तते प्रश्च, कृतिः स्यात्सृष्टिवाचकः ।
सृष्टे राद्या या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता ॥[4]

(४) सृष्टि विधान में उस (परमात्मा श्री कृष्ण) ने योग के द्वारा आत्मा (अपने) के दो रूप किये । दक्षिणार्धाङ्ग पुरुष और बामाङ्ग ही प्रकृति हुई ।

योगेनात्मा सृष्टि विधौ द्विधारूपो बभूव सः ।
पुमाँश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिः स्मृतः ॥[5]

(५) यह ईश्वरी राधा अपने प्रहृष्ट प्रकृति अथवा स्वभाव के कारण प्रकृति कही जाती है ।

प्रहृष्टा प्रकृतिश्चास्यास्तेन प्रकृतिरीश्वरी ।[6]

प्रचेता प्र चेततीति । प्रचित्[7] तृच् । सारथिरपि हेमचन्द्रः सारथिपक्षे

प्रचेतति युद्धादि स्थानेवीरान् संचिनोति ।
प्रकृष्ट रूपेण चिनोति चिनुतेवा प्र+चि+तृ ॥

---

१. ब्रह्म वै० २।८।३३ २. वही २।१।५ ३. वही २।१।६७
४. वही २।१।८ ५. वही २।१।९ ६. वही ४।८४।१४
७. चितो संज्ञानेभ्वादि प० प० ३९

प्रचेतस्— प्रचित असुन् (वरुणः)—जो मुनिश्रेष्ठ पुत्र ब्रह्मा के चेतस् से प्रकट हुआ वह ब्रह्मा के द्वारा प्रचेता कहलाया।

यः पुत्रश्चेतसो धातु र्बभूव मुनिपुंगवः।
तेन प्रचेता इति नाम चक्रे पितामहः ॥[1]

प्रवालवर्णः प्रवालं इव वर्ण यस्य सः प्रवालवर्णः।

पृथ्वी ने विष्णु के बीज को धारण करने में अक्षम होकर प्रवाल के आकर में वीर्य न्यास कर दिया। अतः कुमार (पुत्र, मंगल) प्रवाल वर्ण का हुआ। तेज में सूर्य सदृश वह नारायण-पुत्र महान् प्रवाल-वर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ—

वीर्यसंवरणं कर्तु स चा शक्ता च दुर्बला।
प्रवालस्याकरे त्रस्ता वीर्यन्यासं चकार सा।
तेन प्रवाल वर्णश्च कुमारः समपद्यत।
तेजसा सूर्य-सदृशो नारायण-सुतो महान् ॥[2]

प्राणनायकः—प्राणितीति प्राण्यते व प्र+[3]अन्+अच्=प्राणः, नयति नायतिवा-नायकः। नि+वुञ् अक, वृद्धि, नायकः। प्राणानां नायकः।

पत्नी के प्राणों का स्वामी होने के कारण पति प्राणनायक है।

प्राणेशात् प्राणनायकः।[4]

प्रिय— प्रीणातीति प्रो इगुपथज्ञा प्रीकिरः कः ३।१।१३५ पाणिनिः॥ प्री+क, इयङ्=प्रियः

(१) (पत्नी को) प्रीतिदान करने के कारण वह परम 'प्रिय' है।

प्रीतिदानात् प्रियः परः।[5]

(२) पति से अधिक कोई प्रिय नहीं है। स्वामी के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण पुत्र होता है। अतः पति अधिक प्रसन्नता देने के कारण प्रिय है—

प्रियोनास्ति प्रियात्परः।
पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन सप्रियः ॥[6]

बन्धुः— बध्नातीति (मनोस्नेहेन) बन्ध बन्धने, शृस्वृस्निहि त्रपि। उणादि १।१११॥ इति उः=बन्धुः।

---

१. ब्रह्म वै० १।२२।३ २. वही १।६।३२, ३३

३. अन प्राणने अदादि अनिति ११४६, अण वा अन प्राणनेदिवादि १२५१, १२५२ अण्यते अन्यते। ४. ब्रह्म वै० २।४२।२५ ५. वही २।४२।२५

६. वही २।४२।२६

बन्धुश्च सुख बन्धात् ।[1]

बलदेव— बलति[2] बलयति वा बलं+अच्, दिवु+अच् । बलनेदीव्यति । बलके उद्रेक अथवा आधिक्य के कारण बलदेव हैं—

बलदेवो बलोद्रेकाद्…।[3]

ब्रह्मवैवर्तम् बृहिवृद्धौभ्वादिः ७८१ अयं शब्देऽपि बृंहतीतिरूपम् । बृहिभाषार्थः चुरादिः १८०८ बृंहयति रूपम् । बृंहेर्नोऽच्च ४।१४५ उणादिसूत्रेण मनिन्, नकारस्याकारः रत्वं च ।

विशेषेण वृ[4] णुते, वृणाति, वृणीते वा वारयतीति विवृतिः (यत्र तकार द्वित्वं तत्र विशेषेण वर्तते ८०६ भ्वादि, वृत्यते १२३६ दिवादि, वर्तयति १६२२ चुरादि, वर्ततीति वा विवृत्तिः) । विवृति रेव वैवर्तं, ब्रह्मणो वैवर्तं ब्रह्म वैवर्तम् ।

ब्रह्म + वि + बृ + क्तिन् = विवृति + अण् स्वार्थे, ब्रह्मवैवर्तम् ।

(१) पुराणों में एकमात्र सारस्वरूप, वेद सम्मत और कृष्ण के द्वारा सम्पूर्ण रूप से जिसमें ब्रह्म का वरण, वर्णन अथवा व्याख्या की गयी है पुराण वेत्ता उस पुराण को ब्रह्मवैवर्तक कहते हैं ।

सारभूतं पुराणेषु केवलं वेदसम्मतम् ।
विवृतं ब्रह्म कात्स्न्यं च कृष्णेन यत्रशौनक ॥
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ॥[5]

(अत्र संज्ञार्थे क प्रत्ययः । ब्रह्मवैवर्त संज्ञाऽस्त्यस्येति ब्रह्मवैवर्तकम्) ।

(२) यह अभीप्सित ब्रह्मवैवर्त पुराण अतिदुर्लभ है । ब्रह्म अर्थात् जीव धारियों के परमात्मा, जो कि विश्व के राशि रूप हैं, को जो पुराण वरण करता है अथवा स्वविषय बनाता है वह ब्रह्मवैवर्त है ।

सुदुर्लभं पुराणं च ब्रह्मवैवर्तमीप्सितम् ।
यद्वृणोत्येव विश्वौघं जीविनां परमात्मकम् ॥[6]

(३) ब्रह्म कर्ता के कर्म का साक्षी है । उस ब्रह्म की अनुपम विभूति का वर्णन इस पुराण में किया गया है । अतः बुधजन इसे ब्रह्मवैवर्त कहते हैं ।

---

१. ब्रह्म वै० २।४२।३५/१
२. बल प्राणने धा वरोधने च भ्वादि ८८७ बलति । बल प्राणने चुरादि १७५० बलयति
३. ब्रह्म वै० ४।१३।८१/१
४. वृवरणेस्वादि १२३४, क्र्यादि १५८३ । वृङ् संभक्तौ १६०८ वृ आवर चुरादि १६५४ ५. ब्रह्म वै० १।१।६०,६१ ६. वही ४।१३३।३१

तद्ब्रह्म साक्षिरूपं च कर्मणामेव कर्मिणाम् ।
तेनेदं ब्रह्मवैवर्तमित्येवं च विदुर्बुधाः ॥[1]

ब्राह्मण ब्रह्मणोऽयं ब्राह्मणः । ब्रह्मन्+अण् ।

कर्म के द्वारा ब्राह्मण होता है । जो ब्रह्म की भावना अथवा चिन्तन करता है और अपने धर्म में शुद्ध रूप से निरत रहता है वह ब्राह्मण है ।

अथवा

(कुछ प्रतियों में) कर्म में असद्बुद्धि रखकर ब्रह्म का चिन्तन इत्यादि बताया गया है ।

कर्मणा ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्म भावनाम् ।
स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद् ब्राह्मण उच्यते ॥

वा

(पाठान्तर) कर्मणा वा प्यसद्बुद्ध्या करोति ब्रह्मभावनाम् ।[2]

ब्राह्मी ब्रह्मण इयं, ब्रह्मन्+अण्, टिलोप, स्त्रियां ङीप् ।

ब्रह्मा की प्रिया होने के कारण ब्राह्मी अभिहित हुई—

ब्राह्मी च ब्राह्मणः प्रिया ।[3]

भगवान् भज्यते इति भगः भज सेवायां धातोः (भ्वादि) पुंसि संज्ञायां घःप्रायेण ३।३।११८ इति घः कुत्वं भगः ।

ज्ञानवैराग्ययोर्योनौ भगमस्त्रीतु भास्करे । इतिरुद्राः ।
भगं श्री काममाहात्म्यवीर्य यत्नार्ककीर्तिषु । नानार्थ० २६ । अमरः
भगं योनिः । मनुष्यवर्ग ७६।अमरः ।
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्याथ मोक्षस्य षण्णां भग इतिरिणा । विष्णुपुराणे ।
भग+नित्ययोगे मतुप्, मस्यवः ।

भग शब्द समृद्धि बुद्धि सम्पत्ति और यश का वाचक है । शक्ति भगवती भी भगरूपा है । अतः भग शब्द शक्ति का भी बोधक है । अतः स्वेच्छामय साकार निराकार आत्मा श्री कृष्ण समृद्धि आदि शक्तियों से सदा युक्त होकर भगवान् हैं ।

समृद्धि बुद्धि सम्पत्ति यशसांवचनो भगः ।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा ॥
तयायुक्तः सदा त्मा च भगवांस्तेन कथ्यते ।
सचस्वेच्छामयः कृष्णः साकारश्च निराकृतिः ॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० ४।१३३।३२,-$\frac{३३}{१}$ २. वही ३।३५।७०
३. वही २।७।$\frac{३}{१}$ ४. वही २।२।११, १२

भगवती भगवत्+ङीप्=भगवती।

(१) समृद्धि बुद्धि सम्पत्ति आदि का वाचक भग है। शक्ति भी समृद्धि आदि के रूप में भगरूपा है अतः शक्ति भगवती है।

समृद्धि बुद्धि सम्पत्ति यशसां वचनो भगः।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा॥[1]

(२) सिद्ध ऐश्वर्य आदि भग के वाचक हैं। ये भग-सिद्ध आदि जिसमें प्रत्येक युग में निवास करते हैं वह भगवती है।

सिद्धैश्वर्यादिकं सर्वं यस्यामस्ति युगे-युगे।
सिद्धादिके भगो ज्ञेय स्तेन सा भगवती स्मृता॥[2]

भर्ता बिभर्तीति (११६२) जुहोत्यादि डुभृञ् धारण पोषणयोः।[3] भरतीत्यपि ण्वुलतृचौ ३ १।१३३।

इति तृच्। भृ+तृ॥

भरण-पोषण करने के कारण इसे भर्ता कहा जाता है।

भरणादेव भर्ताऽयम्।[4]

भागीरथी भगीरथस्येयं भागीरथी।

(१) महाराज भगीरथ स्तुति करके गङ्गा को, जहाँ सगर के पुत्र (६० सहस्र) नष्ट हुए थे, ले गये। गंगा के स्पर्श वायु से वे सभी शीघ्र वैकुण्ठ लोक सिधार गये। अतः भगीरथ द्वारा आनीत होने के कारण गंगा भागीरथी कही गयीं।

भगीरथोऽनया स्तुत्यास्तुत्वा गङ्गा च नारद।
जगाम तां गृहीत्वा यत्र नष्टाश्च सागराः॥
वैकुण्ठं ते ययु स्तूर्णं गंगायाः स्पर्श वायुना।
भागीरथेन सा नीता तेन भागीरथी स्मृता॥[5]

(२) इसी अभिप्राय का संकेत करते हुए निम्नांश भी है—

भगीरथेन चानीता तेन भागीरथी स्मृता॥[6]

भारती भरतीति। भृ+ अतच् भृमृदृशियजीति, उणादि ३।११० स्वार्थे प्रज्ञादिभ्यो ण् स्त्रियां ङीप्।

भारत में जाने के कारण सरस्वती को भारती कहते हैं।

भारती भारतं गत्वा…।[7]

---

१. ब्रह्म वै० २।२।११ २. वही २।५७।१६ ३. भृ भरणेभ्वादिः ८६४
४. ब्रह्म वै० २।४२।२४/१ ५. वही २।१०।१४०, १४१
६. वही २।३४।३०/२ ७. वही २।७।३/१

भीष्म सूः भीष्मं सूयते षूङ् प्राणि प्रसवे दिवादि १२०७ ॥
अंश रूप से स्वयं वसु भीष्म रूप में गंगा से प्रकट हुए। अतः वह भीष्म-सू हुई।

भीष्मः स्वयं वसुजातिस्तस्यांशात्तेन भीष्मसूः ।[1]

भूमिः भवन्ति भूतानि अस्यामिति भूमिः। 'भुवः कित्' उणादि ४।४५ इति भिः स च कित्।
जहाँ सभी (चराचर) की उत्पत्ति अथवा निवास भवन हो उसे भूमि कहते हैं।

भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता ।[2]

भृगुः भृज्ज्यते तपसा पंचतपादिभिर्वा। भ्रस्ज् पाके, तुदादिः १३६८। प्रथिभ्रादिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च उणादि । १।२६ इति कुः सम्प्रसारणं सलोपः न्यङ्कादित्वात् कुत्वञ् च । यद्वा भृज्जतीति क्विप् । भृक् ज्वाला तयामहोत्पन्न इति उः=भृगुः (शब्दस्तोम महानिधिः)।
भृगु शब्द अति तेजस्वी वाचक है। उत्पन्न होते ही बालक अति तेजस्वी था अतः भृगु नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अति तेजस्विनि भृगु वंर्तते नाग्नि शौनक।
जातः सद्योऽति तेजस्वी भृगुस्तेन प्रकीर्तितः ॥[3]

मङ्गला मङ्गतीति मङ्गला, मगि गत्यर्थः भ्वादिः प० प० १५२। मंगतेर, उणादि ।५।७० ॥ मङ्गल+अच्=अर्शआद्यच् टाप्=मङ्गला।
मङ्गल कार्यों में दक्ष चण्डिका मङ्गलानाम से अभिहित है।

मङ्गलेषु च या दक्षा मङ्गला सैव चण्डिका ।[4]

मङ्गल-चण्डिका मंगलस्य चण्डिका, मङ्गलाचैषा चण्डिका।
चण्डी वा चण्डिका दुर्गा का बोधक है। मङ्गल पृथ्वी पुत्र का बोधक है। अतः मङ्गल की अभीष्ट देवी होने के कारण देवी का नाम मंगल-चण्डिका है।

दुर्गायां विद्यते चण्डी मङ्गलोऽपि महीसुतः।
मङ्गलाभीष्ट देवी या सा स्यान्मङ्गलचण्डिका ॥[5]

मधु-सूदन मधुं सूदयतीति । सूद् णिच् ल्यु, अन = सूदनः।
(१) मधुदैत्य का सूदन अथवा विनाश जिसके द्वारा हुआ वह मधुसूदन है।

---

१. ब्रह्म वै० २।३४।२२   २. वही २।८।३६/१   ३. वही १।२२।८
४. वही २।४४।३   ५. वही २।४४।५

सूदनं मधुदैत्यस्य यस्मात्सः मधुसूदनः ।[1]

(२) सज्जनों को मधुसूदन का विभिन्न अर्थ अभीप्सित है । ये भिन्नार्थ वेद में हैं । नपुंसक लिङ्ग मधु शब्द का अर्थ मद्वीक अथवा महुए की शराब तथाशु भ अशुभ दोनों कर्मों का बोधक है । अत: भक्तों के कर्मों का, जो विनाश कर्ता है, वह मधुसूदन है ।

इति सन्तो वदन्तीशं वेदे भिन्नार्थ मीप्सितम् ।
मधुक्लीवं च माध्वीके कृतकर्म शुभाशुभे ॥
भक्तानां कर्मणां चैव सूदनः मधुसूदनः ॥[2]

(३) भ्रान्त जन, अशुभ प्रतिफल देने वाले भी कर्म करते हैं, भ्रमवश ये कर्म उन्हें मधुर हैं । मधु शब्द उक्त मधुर का बोधक है । इसका जो विनाश कारक है वह मधु-सूदन है ।

परिणामाशुभं कर्म भ्रान्तानां मधुरं मधु ।
करोति सूदनं योहि स एव मधुसूदनः ॥[3]

मनसा मन ज्ञाने भ्वादि १२५३ मन्यते, मनु अवबोधने तनादि १५६४ मनुते । मननमस्ति अस्याः । मनस् अर्शआदित्वाद् च्, ततष्टाप् । यद्वा मनं मननमहङ्कारमिति यावत्स्यति नाशयतीति । षोन्तकर्मणि, सो + कः ।

(१) वह भगवती कश्यप की मानसी कन्या है अत: मनसा है ।
कन्या भगवती सा च कश्यपस्य च मानसी ।[4]

(२) मन से दिव्य देवी मनसा देवी है ।
तेनेयं मनसा देवी मनसा या च दीव्यति ॥[5]

(३) मन से जो परमात्मा ईश्वर का ध्यान करती है, वह मनसा देवी है ।
मनसाध्यायते या वा परमात्मानमीश्वरम् ।[6]

(४) योग के द्वारा जो दिव्य स्वरूप है वह मनसा है । (इस अर्थ में शब्द की निष्पत्ति में सो धातु का प्रयोग है । योग से मनका अहंकार नष्ट होता है)

तेन च मनसा देवी योगेनैतेन दीव्यति ।[7]

मन्दाकिनी मदि स्तुतिमोद मद स्वप्नकान्ति गतिषु । भ्वादि १३ ॥ मन्दते मन्द्यते स्तूयते इति मन्दाकम् । मन्द + बाहुलकात् आकः स्तवन इत्युधरादिकोषः ।

---

१. ब्रह्म वै० २।१११।$\frac{२८}{२}$ २. वही २।१११।२८,$\frac{३०}{१}$
३. वही २।१११।$^{३}\frac{०}{२}$, $\frac{३१}{१}$ ४. वही २।४५।$\frac{२}{१}$
५. वही २।४५।$\frac{२}{२}$ ६. वही २।४५।$\frac{३}{१}$ ७. वही २।४५।$\frac{३}{२}$

स्रोत इत्युज्ज्वलदत्तः। मन्दाकानिस्रोतांसि सन्त्यस्या इति। मन्दाक + णिनिः। यद्वा मन्दमकितुंशीलमस्याः। णिनिः। यद्वा मन्दनाम्नः सरसः अकति गच्छति। जिस प्रधान धारा से स्वर्ग में गंगा गयी वह मन्दाकिनी है। (ऊँची चढ़ाई में गंगा की गति मन्द हुई होगी।)

प्रधानधारया स्वर्गे सा च मन्दाकिनी स्मृता।[1]

मरीचिः— म्रियते पापराशिर्यस्मिन्निति। मृकणिभयामीचिः उणादि ४।७०॥ इति ईचिः मृ + ईचिः = मरीचिः। म्रियन्ते क्षुद्र जन्तव रस्तमांसिवाऽनेन मरीचिः।

मरीचि शब्द वेदों में तेज के भेद का वाचक है। वह उत्पन्न होते हो अति तेजस्वी था अतः मरीचि कहा जाता है।

तेजो भेदे मरीचिश्च वेदेषु वर्तते स्फुटम्।
जातः सद्योऽतितेजस्वी मरीचि स्तेन कीर्तितः॥[2]

महालक्ष्मीः लक्ष्यत इति लक्ष्मीः महती चैषालक्ष्मीः।

जो विश्व को स्निग्ध-दृष्टि से निरन्तर देखा करती है वह लक्ष्मी है तथा देवियों में महती होने के कारण महालक्ष्मी है।

लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या यया निशम्।
देवीषु या च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता॥[3]

मही मह्यत इति मही। मह पूजायाम् भ्वादिः ७७५। चुरादि रपि २०१२॥ मह + अच्, गौरादिभ्यश्च ४।१।४१ इति ङीप् विस्तृत होने के कारण मही कही जाती है।

विस्तृत त्वान्मही मुने।[4]

माया मीयते अपरोक्षवत् प्रदर्श्यते ऽनया।[5] माङ् माने शब्दे च ११६३ दिव्यादिः। 'माच्छाससि सूभ्यो यः' उणादि ४।१०८ इति यः. टाप् माति विश्वमस्यां मनीषादिः। बुद्धिः इति मेदिनी। मिमीते जानाति संख्यात्यनयेति।मा + यः, टाप्।

(१) मा शब्द राज्य और श्री का वाचक, या शब्द प्रापण या पाने के अर्थ में है। अतः शीघ्र राज्य एवं श्री को प्राप्त कराने वाली देवी माया है।

राज्य श्री वचनो माश्च याश्च प्रापण वाचकः।
तां प्रापयति या सद्यः सा माया परिकीर्तिता॥[6]

---

१. ब्रह्म वै० ४ ३४।२४/१ २. वही १।२२।६ ३ वही २।३५।१३ ४. वही २।६।२३
५. माङ् माने दिवादि १२१७ मायते। मा, माने अदादिः ११३८ अकर्ममाति। माङ् माने शब्दे च जुहोत्यादिः मिमीते ११६३॥ ६. ब्रह्म वै० २।२७।२७

(२) मा शब्द मोक्ष का वाचक और या शब्द प्रापणवाचक है। अतः नित्य मोक्ष प्रदात्री होने के कारण माया है।

माश्चा मोक्षार्थं वचानो याश्चा प्रापणवाचाकः।
तां प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता ॥[1]

मुकुन्दः मुकुं मोक्षं ददातीति। मुच प्रमोचने मोदने च चुरादिः १८८३ ॥ मुच् कुः, चकारस्य कुत्वम्, मुम्।

मुकुमव्ययमान्त च निर्वाण मोक्षवाचाकम्।

तद्ददाति च योदेवः मुकुन्दस्तेन कार्तित इति निरुक्ते विष्णौ। शब्द स्तोम महानिधेः। शब्द कल्पद्रुमे :—

मुकुर्मुक्तौ महेशेभुः कुः पृथिव्यामशोमने।

मुकुन्दो निधि भेदे।

कुन्दुरुस्तु मुकुन्दः स्यात्सुगन्धः कुन्द इत्यपि।

(१) मुकुं शब्द अध्ययन, निर्वाण और मोक्ष का वाचक है अतः जो देव उसे प्रदान करे वह मुकुन्द है।

मुकुमध्ययमानं चा निर्वाणं मोक्ष वाचाकम्।
तद्ददाति च यो देवो मुकुन्दस्तेन कीर्तितः ॥[2]

(२) मुकुं शब्द का वेद सम्मत अर्थ भक्ति, रस और प्रेम है। उसे जो भक्तों को प्रदान करता है वह मुकुन्द है।

मुकुं भक्ति रस प्रेमवचनं वेद सम्मतम्।
यस्तं ददाति भक्तेभ्यो मुकुन्द स्तेन कीर्तितः ॥[3]

मुसली मुस्यतीति[4] मुसलम्, मुस् + अलच् ॥ मुसलमस्यास्तीति मुसली। मुसल + इन् ॥

मुसल आयुध होने के कारण बलदेव को मुसली कहा जाता है।

मुसली मुसला युधात्।[5]

मृतसंजीवनी मृतं सम्यक् जीवयतीति। मृङ् प्राणत्यागे, दिवादिः १४९६ म्रियते॥ जीव प्राणधारणेभ्वादिः ६०१ जीवति ॥

मृ + क्त, सम् जीव् ल्युट् अन् ङीप् ॥

गोपनीय महाज्ञान से युत मनसादेवी को अतिश्रेष्ठ मृतसंजीवनी कहते हैं।

---

१. ब्रह्म वै० २।२७।२८ २. वही २।१११।२६-२७ ३. वही २।१११।२७-२८
४. मुस् खण्डने दिवादिः १२४९ ५. ब्रह्म वै० ४।१३।८३

महाज्ञानं च गोप्यं च मृत सञ्जीवनी पराम् ।
महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः ।।[१]

मेदिनी मेदते इति मेदः मेदोऽस्त्यस्मिन्निति मेदिनी । जिमिदा स्नेहनेम्वादिः ७८९ मेदते । मेद + इन् + ङीप् ।

मधु और कैटभ के मेद से वर्धित होकर धरा का नाम मेदिनी भी है ।

ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः ।
मेदिनीति च विख्याता यैस्तन्मतं शृणु ।।
जलधौ तौ कृशा पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः ।[२]

यतिः यतते चेष्टते मोक्षार्थं मिति । सर्वधातुभ्य इन्, ४।११७ । उणादि इति इन् । यत् + इन् = यतिः ।

यम्यते रसानाऽत्रेति । यम्, स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४

अनुदात्तोपदेश० ६।४।३७ इत्यनयोः क्तिन् च मकार लोपः यतिः ।

जो बालक तपों में सदा यत्न करता है, और जो सभी कर्मों में संयत है वह ब्रह्मपुत्र यति प्रख्यात हुआ ।

संततं यस्य यत्नश्च तपः सु बालकस्य च ।
प्रकीर्तितो यति स्तेन संयतः सर्वकर्मसु ।।[३]

यशोदा यशो ददातीति, दा + कः, टाप्
यश बढाने वाली यशोदा है ।

(तस्याः कन्या) यशोदा त्वं यशोवर्धनकारिणी ।[४]

योगी [५]युज्यते इति योगः । भावादौ यथायथं घञ् ।
योगः संनहनोपाय ध्यान संगतियुक्तिषु । नानार्थ वर्ग, २२ ।। अमरकोषः । सम्पृचानुरुधाङ्यमाङ्य सपरिसृसंसृजपरिदेवि संज्वर परिक्षिप परिरट परिवद परिदह परिमुह दुषद्विषद्रुह दुह युजाक्रीड विविचत्यज रजभजा तिचरा मुषाभ्याहनश्च । ३।२।१४२ ।। इति पाणिनि सूत्रेण घिनुण् । यजु + घिनुण् = योगी

स्वर्ग, लोष्ट, गृह, वन, पङ्क और सुन्दर चन्दन को जो समान समझता है, वह योगी है ।

---

१. ब्रह्म वै० २।४५।११ २. वही २।८।६ - १०
३. वही १।२२।१३ ४. वही ४।१७।३६
५. युज समाधौ दिवादि १२५४, युजिर्योगेरुधादि १५३७ युनकि युज संयमने चुरादि १६४७, योजयतिवायोजति आ० प० अपि ।

स्वर्णे लोष्टे गृहे ऽरण्ये पङ्के सुस्निग्धचन्दने ।
समता भावना यस्य स योगी परिकीर्तितः ॥[१]

योजना योजयति इति योजना । युज + ल्युट् (अन्) टाप् ।
प्रस्थ =(हिमालय) शिखर पर योजन परिमाण में विस्तृत होने के कारण गंगा (वहाँ) योजना कही गयी हैं ।

योजनायत विस्तीर्णा प्रस्थे च योजनास्मृता ।[२]

(यहाँ यदि योजन+अयुत=दस हजार ऐसा अर्थ किया जाय तो प्रस्थ पर इतने परिमाण का क्षेत्र नहीं है, योजन शब्द भी योजन का ही बोधक होता है ।)

रक्त बीज विनाशिनी—रक्तेन बीज्यतेऽस्येतिरक्तबीजः विनाश्यतेऽनयेति विनाशिनी, रक्तबीजस्य विनाशिनी, रक्तबीजविनाशिनी । रक्तबीज नामक असुर को मार करके रक्तबीजविनाशिनी हुई ।

निहत्य रक्तबीजं च रक्तबीजविनाशिनी ।[३]

रमणः रमते रमयतीति वा रम् ल्यु रमणः । रतिदान करने के कारण रमण कहा जाता है ।

रतिदानाच्च रमणः ।[४]

रसिकेश्वरी रसिकानामीश्वरीति ।
सभी रसिक देवियों की परम ईश्वरी होने के कारण सज्जन प्राचीन काल से राधा को रसिकेश्वरी कहते हैं ।

सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा ।
प्रवदन्ति पुरासन्त स्तेन तां रसिकेश्वरीम् ॥[५]

राजा राजते इति राजा ।
राजसी कर्म में अनुराग के कारण रागी व्यक्ति कर्म करता है इस प्रकार रजोगुणी व्यक्ति रागान्ध होने के कारण राजा कहा जाता है ।

रागी राजसिकं कार्यं कुरुते कर्मरागतः ।
रागान्धो यो राजसिक स्तेन राजा प्रकीर्तितः ॥[६]

राधा रा, राध[७] संसिद्धौ । राध् + अच् + टाप् ।
गोपी विशेषे, राधानक्षत्रे, आमलकी, विष्णुक्रान्ता, विद्युत् सूतस्याधिरथस्य पत्नी कर्णस्य पालयित्री ।

---

१. ब्रह्म वै० ४।३५।७२ २. वही ४।३४।२४ ३. वही ४।१२९।९२
४. वही २।४२।३६ ५. वही ४।१७।२२५ ६. वही ३।३५।७६
७. स्वा दि १३४४ प० प०

(१) अपने प्रियपति को रमणेच्छु जानकर उन्होंने सामने से कृष्ण को धारण किया अथवा उठा लिया। अतः पुरावेत्ताओं के द्वारा वह महेश्वरी राधा (रा+धा) नामसे विख्यात हुई। (रन्तुं रमणेच्छुं रिरंसुं वा दधारेति)।

दृष्ट्वा रिरंसुं कान्तं च सा [1]दधार हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भि र्महेश्वरी ॥[2]

(२) वह ईश्वर श्री कृष्ण रास में राधा का होना, दौड़ना और आलिंगन का स्मरण जप अथवा पुनः पुनः स्मरण करते हुए राधा को संकेत देते हैं अतः राधा नाम हुआ।
(रा=रास में+धा=धावन) (रासे धावतीति)

भवनं धावनं रासे स्मरत्यालिङ्गनं जपन्।
तेन जल्पति सङ्केतं तत्र राधा स ईश्वरः ॥[3]

(३) रा शब्द के उच्चारण से भक्त मुक्ति को पा लेता है और धा शब्द के उच्चारण से भक्त हरि पद तक दौड़ कर पहुँच जाता है। ([4] राति च धावतीति)

रा शब्दोच्चारणाद् भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।
धा शब्दोच्चारणाद् दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥[5]

(४) रा शब्द आदान का वाचक है और धा शब्द निर्वाण-वाचक है। उस देवी से निर्वाण की प्राप्ति होती है अतः उसे राधा कहा गया है। (राति धामिति)

रा इत्यादान-वचनो धा च निर्वाण-वाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च तेन राधा प्रकीर्तिता ॥[6]

(५) सर्वमोहिनी राधा को देखकर क्षणमात्र में श्री कृष्ण मुग्ध हो गये। एक साथ गोप कुमारों के साथ मुस्कराती हुई राधा दौड़ीं। कृष्ण अकस्मात् भयभीत होकर (कि कहीं वे अप्रसन्न न हो जाँय) (प्रेमपूर्ण) वीर्याधान किया। अतः सज्जन उस मूल प्रकृति ईश्वरी को राधा कहते हैं।
सङ्घीभूत अणुकों द्वारा सृष्टि प्रक्रिया के प्रारम्भ का संकेत ग्रहण किया जा सकता है।

मुमोह क्षणमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम्।
वालैः सम्भूय सहसा सस्मिता धाविता पुरा ॥
सद्भिः ख्याता तेन राधा मूल प्रकृतिरीश्वरी।
कृष्णस्तां सहसा भीतो वीर्याधानं चकार ह ॥[7]

---

१. धृ धारणे भ्वादिः ८६६ २. ब्रह्म वै० २।४८।३८ ३. वही २।४८।३९
४. रा दाने ११३३ भ्वादि। आदान अर्थ में पाणिनि ने इसे नहीं बताया है।
५. ब्रह्म वै० २।४८।४० ६. वही २।४८।४२ ७. वही ३।४५।२१, २२

बाले: सम्भूय............आदि के स्थान पर

रासे सम्भूय सहसा सस्मिता राधितापुरा।

(कृष्णेन राधिता च धानं आधानं वीर्याधानं कृता)

(६) सुर असुर और मुनीन्द्रों की वांछित परम मुक्ति दायिका राधा हैं। क्योंकि रेफ का उच्चारण कोटि जन्म का अथशुभ और अशुभ सकल कर्मभोग को नष्ट करता है। आकार गर्भवास. मृत्यु और रोग का क्षय करता है। धकार आयु की हानि और आकार भव-बन्धन नष्ट करता है। एवं श्रवण-स्मरण और उक्तियों से सम्पूर्ण कष्ट-कलाप नष्ट हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सुरासुर मुनीन्द्राणां वाञ्छितां मुक्तिदां पराम्।
रेफोहि कोटि जन्माथकर्मभोगं शुभाशुभम्॥
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोग मुत्सृजेत्।
धकार आयुषो हानिमाकारोभव-बन्धनम्॥
श्रवण-स्मरणोक्तिभ्य: न प्रणश्यति संशय:।[1]

(उपर्युक्त ६) एवं आगे की निम्न व्युत्पत्ति सामवेदानुकूल होने का संकेत किया गया है।

राधा शब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता।[2]

(७) रेफ कृष्ण पदाम्बुज में निश्चला भक्ति एवं दास्य प्रदान करता है। धकारोच्चारण सर्वाभीष्ट, सदानन्द, सर्वसिद्धों के समूह रूप ईश्वर का सहवास राधा की स्थिति के समान काल तक प्रदान करता है। आकारोच्चारण सार्ष्टि, सारूप्य एवं हरिके समान ज्ञान एवं हरि में जैसी तेजराशि तथा दान-शक्ति है उन्हें प्रदान करता है। इस प्रकार राधा के श्रवण कथन और स्मरण योग से समस्त मोहजाल रूप पाप (किल्विष), रोग, शोक, मृत्यु और यम काँपते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।

रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्ण पदाम्बुजे।
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्॥
धकार: सहवासं च तत्तुल्य कालमेव च।
ददाति सार्ष्टि सारूप्यं तत्वज्ञानं हरे: समम्॥
आकारस्तेजसां राशिं दान शक्तिं हरौ यथा।
योग शक्तिं योगमतिं सर्वकालं हरिस्मृतिम्॥

---

१. ब्रह्म वै० ४।१३।१०५, १०६, १०७

२. वही ४।१३।१०२

श्रुत्युक्तिस्मरणाद्योगान्मोहजालं च किल्विषम् ।
रोग-शोक-मृत्यु-यमा: वेपन्ते नात्र संशय: ।।[१]

(८) राधा के महत्व का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सामवेद कौथुम शाखा में कथित है कि रा शब्द के उच्चारण से ही माधव (श्री कृष्ण) (स्फीत) अथवा प्रसन्नता से विशाल होते हैं और धा शब्द के उच्चारण से तो कृष्ण श्रद्धा प्रेम भरित हो पीछे-पीछे दौड़ते हैं ।

इति दृष्टं सामवेदे कौथुमे मुनिसत्तम ।
रा शब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधव: ।।
धा शब्दोच्चारत: पश्चाद्धावत्येव ससंभ्रम: ।।[२]

(९) कृष्ण के वाम पार्श्व से (रास स्थल पर) एक कन्या का आविर्भाव हुआ । उसने दौड़कर पुष्प लाकर प्रभु (श्रीकृष्ण) के पद पर अर्घ्य प्रदान किया । रास में उत्पन्न होकर और वह हरि के सम्मुख गोलोक में दौड़ी, अत: वह राधा के नाम से ख्यात हुई ।

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वत: ।
धावित्वा पुष्पमानीय ददावर्घ्यं प्रभो: पदे ।।
रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव हरे: पुर: ।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भि द्विजोत्तम ।।[३]

(१०) रास में उत्पन्न होकर उस रमणी ने मुझे धारण कर लिया अत: पुराविदों के द्वारा राधा इस प्रख्यात नाम से पूजी जाती है । (यह उक्ति कृष्ण की है ।)

(माम् ददर्श कटाक्षेण रमणी रमणोत्सुका)
रासे सम्भूय रामा सा दधार पुरतो मम ।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भि: प्रपूजिता ।।[४]

(११) रा शब्द, जिसके रोमों में अनेकों विश्व हैं उस महाविष्णु का वाचक है । रा शब्द विश्व प्राणियों और विश्वों का वाचक है । धा शब्द, धात्री अथवा मातृवाचक है । मूल प्रकृति ईश्वरी मैं इन प्राणियों की धात्री एवं माता हूँ । अत: हरि और विद्वानों के द्वारा मैं राधा नाम से विख्यात हुई । (यह राधा की उक्ति यशोदा के प्रति है ।)

रा शब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु ।
विश्व प्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचक: ।।
धात्री माताऽहमेतेषां मूल प्रकृति रीश्वरी ।
तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधै: ।।[५]

---

१. ब्रह्म वै० ४।१३।१०७-१११ २. वही ४।५२।३८, ३९
३. वही १।५।२५, २६ ४. वही ४।८४।७२, ७४ ५. वही ४।११।५७-५८

(राधा विशाला, इत्यमरः—दिग्वर्गः २२)

राम— रमत[1] इति रामः । रम+ण ज्वलितिकसन्तेभ्योणः ३।१।१४० । रम्यते नेन, भावे घञ् । रमन्ते योगिनो स्मिन्निति (पु० वरुणः घोटकः मनोज्ञः क्ली० वास्तुकं, कुष्ठं, तमालपत्रम् ।)
रा शब्द विश्व का वाचक है और म ईश्वरवाचक है अतः विश्व के ईश्वर होने के कारण उन्हें राम कहा गया।

रा शब्दो विश्व वचनो माश्चापीश्वर वाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः ॥[2]

(२) रमा के साथ रमण करने के कारण बुधजन उन्हें राम समझते हैं।

रमते रमया सार्धं तेन रामं विदुर्बुधाः ।[3]

(३) रा शब्द लक्ष्मीवाचक और म ईश्वर वाचक है। अतः मनीषी लक्ष्मीपति एवं गति (शरण स्थान) होने के कारण उन्हें राम कहते हैं।

राश्चेति लक्ष्मी वचनो मश्चापीश्वर वाचकः।
लक्ष्मीपतिं गतिं राम प्रवदन्ति मनीषिणः ॥[4]

रासवासिनी—रास में बास होने के कारण राधा को रासवासिनी कहा जाता है।

रासे च वासो यस्याश्च तेन रासवासिनी।[5]

रासेश्वरी— रासेश्वर की पत्नी होने के कारण राधा रासेश्वरी हैं।

रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता।[6]

रुचिः— रुच्यत इति रुचिः, रुच्+इन्, इगुपधात्कित् (उणादि ४।११८) इति इन् सचकित् । अभिष्वंगः, अनुरागः, आसक्तिर्वा । स्पृहा, शोभा, बुभुक्षा गोरोचना ।
(१) तप और तेज से जो बालक सदा दीप्तिमान् है, तथा
(२) तपस्याओं में जिसका चित्त लगा रहता है अतः रुचि नाम से प्रसिद्ध है।

(१) तपस्यातेजसा बालो दीप्तिमान् सततं मुने।
(२) तपःसु रोचते चित्तं रुचि स्तेन प्रकीर्तितः ॥[7]

रुद्रः— रोदयतीति। रुद् णिच् । 'रोदे णि ल्लुक् च' उणा० २।२२ । इति रक् पेश्च लुक् ।
कोप के समय जो ब्रह्मा से उत्पन्न हुए वे एकादश थे। (सुत) रोने के कारण रुद्र हुए। रोने के ही कारण वे कोपित हुए।

---

१. रमक्रीडायाम् भ्वादिः ८१० २. ब्रह्म वै० ४।११९।१७-१८
३. वही ४।११९।१९ ४. वही ४।११९।१९,२० ५. वही ४।१७।२२४
६. वही ४।१७।२२५ ७. वही १।२२।१८

कोप काले बभूवुर्ये स्रष्टु रेकादश स्मृताः ।
रोदनादेव रुद्राश्च कोपिता स्तेन हेतुना ॥[1]

रेवतीरमण रेवत्या सह रमत इति ।
रेवती के साथ सम्भोग के कारण बलराम रेवतीरमण कहे जाते हैं ।
रेवत्या सह सम्भोगाद्रेवती रमणः स्वयम् ।[2]

रौहिणेयः रोहिण्या अपत्यम् ।
राहिणी के गर्भ में निवास होने के कारण महामति बलराम रौहिणेय प्रसिद्ध हुए ।
रोहिणी गर्भवासात्तु रौहिणेयो महामतिः ।[3]

लम्बोदरः लम्बते इति लम्बम् ।[4] लबि अवस्रंसने + अच् ।
उद्[5] ऋच्छतीति उद् + ऋ + अच् = उदरम् । लम्बमुदरं यस्य सः लम्बोदरः ।
विष्णु के द्वारा और पिता के द्वारा दिये गये विविध नैवेद्यों (के खाने) से जिसका पेट निकल आया है, वह लम्बोदर है ।
विष्णु दत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बं पुरो दरम् ।
पित्रा दत्तैश्च विविधै र्वन्देलम्बोदरं च तम् ॥[6]

वरदः वरं ददातीति ।
(१) वर देने वाले को वरद कहते हैं । वरद शब्द शिव बोधक है । (यह शिव की उक्ति है ।)
वरंददातीति वरदस्तले बोध्योऽहं शिवः ।[7]

वशिष्ठः वशे तिष्ठतीति । वशवतां वशिनां वा श्रेष्ठः
(वसिष्ठः) वशमस्यास्तीति वशवत् + इष्ठन् ।
विन्मतोर्लुक ५।३।६५ इति लुक् । पृषोदरादित्वात् वसिष्ठोऽपि ।
वशिष्ठोऽस्मि वरिष्ठोऽस्मि वशे वासगृहेष्वपि ।
वशिष्ठ त्वाच्च वासाच्च वशिष्ठ इति विद्धिमाम् ॥[8]

उत्पन्न होते ही बालक वशीभूत शिष्य हुआ अतः ब्रह्मा का अति प्रिय हुआ । अतएव वह बालक वशिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

---

१. ब्रह्म वै० १।२२।२० २. वही ४।१३।८४/१ ३. वही ४।१३।८४/२
४. लबि शब्दे, भ्वादि आ० प० ४०२ अवस्रंसने च भ्वादि ४०४
५. ऋ गति प्रापणयोः भ्वादिः १००२ ६. ब्रह्म वै० ३।४४।९१
७. वही ४।३६।४१ ८. महाभारते १३।८३।१८

वशीभूतश्च शिष्यश्च जातः सद्योहि बालकः ।
अतिप्रियश्च धातुश्च वशिष्ठ स्तेन कीर्तितः ।[1]

वसुधा वसु दधातीति । वसु + धा + कः टाप् ।

वसत्यनेनेतिवसु । वस् शृस्वृस्निहीति । उणादि १।११ इति उः ।

वसूनि धारयतीति । संज्ञायां भृतृवृजि सहि तपि दमः

वसुन्धरा (पाणिनि) ३।२।४६ इति खच् । खचि ह्रस्वः ६।४।६४ इति ह्रस्वः । अरुर्द्विषदजन्तस्यमुम् ६।३।६७ मुम् ।

वसु अथवा रत्न को जो धारण करती है वह वसुधा अथवा वसुन्धरा है ।

वसुरत्नं या दधाति वसुधा च वसुन्धरा ।[2]

वाणी वर्ण्यतेऽनयाऽनेनेति, भावे घञ् ङीष् । वचन की अधिष्ठात्री देवता होने के कारण सरस्वती को वाणी कहा जाता है ।

वाक धिष्ठातृ देवी सा तन वाणी च कीर्तिता ।[3]

वासुदेवः वसतीति वसु, दीव्यतीति देवः; वसोर्देवः वसुदेवः वसुदेवस्यापत्यं पुमान् वासुदेवः । वासोर्देवो वा ।

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ।।[4]

(१) जिसके रोमों में विश्वों का निवास है वह वासु है, उस वासु के भी ईश्वर श्री कृष्ण हैं अतएव उन्हें वासुदेव कहा जाता है ।

यस्य लोमसु विश्वानि तस्य वासः सदीश्वरः ।
वासुदेव इति ख्यातः कथ्यते तेन कोविदैः ।।[5]

(२) अनेकों विश्व जिसके लोमों में निवास करते हैं, उस सर्वनिवास को वासु कहा जाता है । वासु विष्णु का बोधक हुआ । उसका (पूज्य) देव परं ब्रह्म वासुदेव कहा जाता है ।

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानि यस्य लोमसु ।
तस्यदेवः परंब्रह्म वासुदेव इति स्मृतः ।।[6]

(३) जो महान् विराट् विश्वों का आश्रय है वह विश्वेश योग के द्वारा गोकुल की भाँति जल में शयन करते हैं । वही भगवान (विष्णु) वासु हैं उनके आप (श्री कृष्ण) परम देव हैं । अतः पुराविद् वासुदेव कहते हैं ।

---

१. ब्रह्म वै० १।२२।१२
२. वही २।८।२६
३. ब्रह्म वै० २।७।३
४. विष्णु पुराण १।२।१२
५. ब्रह्म वै० ४।११५।७५ - ७६
६. वही ४।११५।८२

सर्वेषामपि विश्वेषामाश्रयो यो महान् विराट् ।
स शेते च जले योगाद्विश्वेशो गोकुले यथा ।।

स एव वासुर्भगवांस्तस्यदेवोभवान् परः ।
वासुदेव इति ख्यातः पुराविद्भिः प्रकीर्तितः ।।[१]

(४) अनेकों विश्व जिसके रोमों में निवास करते हैं वह सर्वनिवास वासु है । उसके देव महाविष्णु धरातल पर वासुदेव नाम से प्रसिद्ध हैं ।

वासुः सर्वनिवासश्च विश्वानियस्य लोमसु ।
देवस्तस्य महाविष्णु र्वासुदेवो महीतले ।।[२]

विघ्ननायकः विहन्यतेऽनेनेति । वि + हन्, घञर्थे क विधानम् ३।३।५८ इत्यस्य वार्तिकोक्त्या कः । नयति नाययति वेति नायकः । नी+वुञ्, अक । विघ्नानां नायकः ।

विघ्न विपत्ति का वाचक और नायक शब्द खण्डनार्थक है अतः विपत्ति के खण्डन करने वाले विघ्ननायक को प्रणाम करता हूँ ।

विपत्ति वाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः ।
विपत्खण्डनकारं तं प्रणमे विघ्ननायकम् ।।[३]

विघ्न-निघ्नः विघ्न-निघ्न-शब्दयो व्युत्पत्तिस्सदृशैवोपयुक्तवत् ।

जिसके स्मरण मात्र से अवश्यमेव जगत के विघ्न का नाश हो जाता है उस विभु गणेश को इसी कारण विघ्न-निघ्न के अभिधान से स्मरण किया जाता है ।[४]

विषहारिणी विशेषेण स्यतोतिविषम् वि+षोऽन्तकर्मणि दिवादि १२२२, अच् षत्वम् । वि+ष्+अ=विषम् । विष्णातीत्यपि, विष विप्रयोगेक्र्यादि १६२८ विषं हारयतीति । हृ+णिनिः+ङीप्, विष का संहरण करने में समर्थ होने के कारण उसे विषहारिणी कहा जाता है ।

विषं संहर्तुमीशा सातेन सा विषहारिणी ।[५]

विष्णु विष्णातिज्ञानो पुत्रादिभ्यः क्र्यादि १६२८ विष् विप्रयोगे । विषव्यापने+नुक् ।

(१) विष[६] व्याप्तिवाचक और नु सर्वत्र वाचक है । अतः सर्वव्यापी और सर्वात्मा होने के कारण उन्हें विष्णु कहा जाता है ।

---

१. ब्रह्म वै० ४।११८।४१,४२ २. वही ४।१२६।२२ ३. वही ३।४४।६०
४. वही ३।६।८३ ५. वही २।४५।-१०/१
६. विष्लृ व्याप्तौ, वेवेष्टीति । जुहोत्यादि, ११७० विषुसेचने भ्वादि ७४३

विषिश्च व्याप्ति वचनो नुश्च सर्वत्रवाचकः ।
सर्वव्यापी च सर्वात्मा तेन विष्णु-प्रकीर्तितः ॥[1]

श्वेत द्वीप निवासी वह विश्व का विषय होने के कारण विष्णु कहा जाता है ।

यो विष्णु र्विषयो विश्वे श्वेत द्वीपनिवासकृत् ।[2]

विष्णुपदी विष्णु पदं कारणत्वेनास्त्यस्याः, अच्, गौरा० ङीप् (शब्दस्तोम) विष्णोः पदं स्थानं यस्याः । (शब्दकल्पद्रुम) ।

वेवेष्टीति विष्णुः, पद्यते नेनेतिपदम् ।

(१) श्री विष्णु के पद का प्रदान करने वाली सती (अतः) विष्णुपदी का मैं भजन करता हूँ ।

श्री विष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम् ।[3]

(२) विष्णु के पदकमल से निकलने के कारण गगा को विष्णुपदी कहा गया ।

निर्गता विष्णु पादाब्जात् तेन विष्णुपदी स्मृता ।[4]

(३) इसी भाव को प्रकट करता हुआ निम्नांश भी है—

निर्गता विष्णु पादाच्च गङ्गा विष्णु पदी स्मृता ।[5]

विष्णु माया विष्णोर्मायेति । द्वावपि शब्दौ पूर्वसंसाधितौ ।

परमात्मा विष्णु के द्वारा सृष्टि (के आदि काल) में माया का सृजन किया गया, जिसने विश्व को मोहित कर लिया वह विष्णु माया है ।

सृष्टा माया पुरा सृष्टौ विष्णुनापरमात्मना ।
मोहितं मायया विश्वं विष्णु माया प्रकीर्तिता ॥[6]

विश्वम्भरा विश्वं बिभर्तीति । विशति स्वकारणमिति ।
विश प्रवेशने + "अशू प्रुषिलटि फणीति" उणादि १।१५१ इति क्वन् ।
भृ + खच्, मुम्, टाप् ।
विश्व का भरण करने के कारण पृथ्वी को विश्वम्भरा कहा जाता है ।

विश्वम्भरा तद्भरणात् ।[7]

वृन्दा वृन्दोऽस्ति अस्या इति ।

वृञ् 'अब्दादयश्च' उणा० ४।९८ इति दन् नुम गुणाभावश्च निपात्यते । वृन्यते वृणुते वा वृण्वृन् वादन् निपातनात् । टाप् स्त्रि० वृन्दा । वृन्द शब्द सखियों के संघ का वाचक है । और अकार वर्तमान का वाचक है । अतः जिसके पास सखियों का समूह है वह वृन्दा नाम से ख्यात है ।

---

१. ब्रह्म वै० १।१७।१६ २. वही १।१७।५६ ३. वही २।१०।१०७
४. वही २।११।१४० ५. वही २।१२।२० ६. वही २।५७।११ ७. वही २।८।३३

संघः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यस्ति वाचकः ।
सखि वृन्दोऽस्ति यस्याश्च सावृन्दा परिकीर्तिता ॥[1]

वृन्दा-वनम् वृन्दायाः वनमिति । वृन्दा शब्दस्य निरुक्तिः कृता ।

वन[2] **संभक्तौ हिंसायामपि वनतीति वनम् ।**

(१) जहाँ वृन्दा ने तप किया वह वन वृन्दावन हुआ ।
(२) अथवा वृन्दा ने जहाँ क्रीडा की वह वृन्दावन कहा गया ।

(१) वृन्दा यत्र तपस्तेपे तत्तु वृन्दावनं स्मृतम् ।
(२) वृन्दया त्र कृता क्रीडा तेन वा मुनिपुंगव ।[3]

(३) उपर्युक्त भावों से मिलता अभिप्राय निम्नांश है ।
तुलसी की तपस्या का स्थान जो वन है वह वृन्दावन है ।

तस्याश्च तपसः स्थानं तदिदं च तपोधन ।
तेन वृन्दावनं नाम प्रवदन्ति मनीषिणः ॥[4]

(४) राधा के सोलह[5] नामों में वृन्दावन नाम श्रुति प्रसिद्ध है । उसका यह रमणीक क्रीडावन है अतः वृन्दावन है ।

राधा षोडशनाम्नां च वृन्दा नाम श्रुतौ श्रुतम् ।
तस्या क्रीडावनं रम्यं तेन वृन्दावनं स्मृतम् ॥[6]

वृन्दावन-विनोदिनी विनोदते इति विनोदिनी वृन्दावने विनोदिनीति । वि+णुद्+इन्+ङीप् । वा वृन्दावने बिनोदोऽस्ति अस्या इति ।
वृन्दावन में जिसका विनोद चला करता है वह वेद के अनुकूल वृन्दावन विनोदिनी है ।

वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्य ह्यस्ति च तत्र वै ।
वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावन-विनोदिनी ॥[7]

वृन्दावनी (१) उसका वन वृन्दावन है अतः वह वृन्दावनी है ।

अस्ति वृन्दावनं यस्या स्तेन वृन्दावनी स्मृता ।[8]

(२) वृन्दावन की अधिदेवी होने के कारण भी वह राधा वृन्दावनी कही गयी है ।

---

१. ब्रह्म वै० ४।१७।२३५
२. वन शब्देभ्वा० प० प० ४६४, संभक्तौ ४६५ प० प० भ्वा० वन वनु हिंसायाम् ८५४, ८५५ भ्वादि प० प० वनुयाचने तनादि चान्द्रमते प० प० वनोति ।
३. ब्रह्म वै० ४।१७।२०४ ४. वही ४।१७।२१२ ५. वही ४।१७।२१९-२२१
६. वही ४।१७।२१४ ७. वही ४।१७।२३६ ८. वही ४।१७।२३२

वृन्दावनस्याधिदेवो तेन वाऽथप्रकीर्तिता ।[1]

वेदमाता वेदानां माता ।

वेदों को जन्म देकर अथवा उत्पन्न करके वह वेद-माता प्रसिद्ध हुई । वह तीनों लोक की धात्री सावित्री और गायत्री भी कही जाती है ।

प्रसूय वेदान् विदिता वेदमाता च सा सदा ।
सावित्री सा च गायत्री धात्री त्रिजगतामपि ।।[2]

वैष्णवी विष्णोरियम् । विष्णु+अण्+ङीप् ।

(१) वह सुन्दरी विष्णु की अतीव भक्त होने के कारण वैष्णवी कही जाती है ।

विष्णुभक्ताऽतीव रम्या वैष्णवी तेन नारद ।[3]

(२) विष्णु भक्त, विष्णुवत् रूप तथा विष्णु की शक्ति स्वरूपिणी होने के कारण और सृष्टि (के आदि) में उसका सृजन विष्णु के द्वारा किए जाने के कारण वह वैष्णवी अभिधान से प्रसिद्ध है ।

विष्णुभक्ता विष्णुरूपा विष्णोः शक्तिस्वरूपिणी ।
सृष्टौ च विष्णुना सृष्टा वैष्णवी तेन कीर्तिता ।।[4]

यहाँ १ का भाव भी है इस प्रकार वैष्णवी का चार प्रकार का निर्वचन किया गया है ।

बोढुः वहतीति । वह+तुन् ।

स्वयं तप करके (उसके पुण्यफल सुख) दूसरों को दे देते हैं । इस प्रकार के कष्ट को उठा सकने में समर्थ मुनि बोढु नाम से प्रसिद्ध हैं ।

स्वयं तपः समाप्नोति वाहयेत् प्रापयेत्परान् ।
वोढुं समर्थं स्तपसि वोढुस्तेन प्रकीर्तितः ।।[5]

शक्तिः शक्नोतीति[6], शक्+क्तिन् ।

(१) शक् शब्द ऐश्वर्य का वाचक है और ति पराक्रम वाचक है । तत्स्वरूपा और इन दोनों की प्रदायिका होने के कारण वह शक्ति है ।

ऐश्वर्य वचनंशक् च तिः पराक्रम वाचकः ।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री या सा शक्तिः प्रकीर्तिता ।।[7]

---

१. ब्रह्म वै० ४।१७।३२/२ २. वही ४।८४।७७ ३. वही २।४५।६
४. वही २।५७।२१ ५. वही १।२२।१८
६. शक् मर्षणे दिवादि १२६४ शक्यति, शक्ल् शक्तौ शक्नोति स्वादि १३४३
७. ब्रह्म वै० २।२।१०

(२) सभी कार्यों के (पूर्ण) करने में समर्थ होने के कारण यह शक्ति नाम से प्रख्यात है।

शक्तास्यात्सर्व कार्येषु तेनशक्तिः प्रकीर्तिता।[1]

शरच्चन्द्र प्रभाऽऽनना = **शरदः** चन्द्रः शरच्चन्द्रः, प्रकृष्टा भातीतिप्रभा शरच्चन्द्रस्य प्रभा, शरच्चन्द्रप्रभा तद्वदाननंयस्याः सा।

शृ हिंसायाम् क्र्यादिः प० प०। शृ भृसो दिः, उणादि १।२१२८ इति अदिः शृ+अदि। प्र+भा आत्वे अङ्, आतश्योपसर्गे ३।३।१०६ इति अङ् आ समन्तात् अनिति[2] अनेन वा अन्यते[3]। आ+अन्+ल्युट् अन

शरत्कालीन चन्द्र की कान्ति जिसके मुख पर अहोरात्र विराजमान रहती है उसे इसी कारण से शरच्चन्द्र प्रभाऽऽनना कहा गया।

शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चानने ऽस्ति दिवानिशम्।
मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्र प्रभाऽऽनना॥[4]

शर्वाणी शर्वतीति[5] वा शृणाति संहरति वा प्रलयेऽथवाभक्तानां पापानि कृ गृ दृभ्यां वः 'उणादि १।१५५ इति वः। शिवः शर्वस्य भार्या—इन्द्र-वरुणभव शर्व०४।१।४९। इति आनुक, ङीप्। शर्वाणी पार्वती।

सर्वान् मोक्षं प्रापयति जन्ममृत्यु जरादिकम्।
चराचरांश्च विश्वस्थान् शर्वाणी तेन कीर्तिता॥[6]

शिति-वासा शतीति शिति, शितिवासो[7] यस्य स। शतिः सौत्रो धातुः + 'क्रमितमिशतिस्तम्भामतइच्च' उणादि ४।१२१ इति इन् एच कित् अत इकारश्च। वसधातो रसुन्।

नील वसन होने के कारण बलराम शितिवासा कहलाते थे।

शिति वासा नील वासात्।[8]

शिवः शी+सर्व्वनिघृष्वरिष्वलष्वशिवपट्व प्रह्वेष्वा। अतन्त्रे उणा० १।१५१ इति वन् शोङो ह्रस्वत्वं च। शेतेऽस्मिन् सर्वमिति।

(१) शिव शब्द कल्याण-वाचक है। कल्याण शब्द मुक्ति का वाचक है। मुक्ति की प्राप्ति शिव से होती है अतः उन्हें शिव कहा जाता है।

---

१. वही ४।५७।७५/१
२. अण् प्राणने अदादि ११४६ प० प०
३. अन् प्राणने १२५२ दिवादि आ० प०
४. ब्रह्म वै० ४।१७।२३९
५. शर्व हिंसायाम् भ्वादि ६२४ प० प०
६. ब्रह्म वै० २।५७।१७
७. वस् आच्छादने १०९३ वस्ते अदादि।
८. ब्रह्म वै० ४।१३।८२

शिव कल्याण वचनं कल्याणं मुक्तिवाचकम् ।
यतस्तत् प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः ।।[1]

(२) कल्याण शब्द में ऐहिक भाव भी सन्निहित है। इसे स्पष्ट करते हुए बताया गया कि धन अथवा बन्धुओं के विच्छेद होने पर, शोक सागर में पड़ जाने पर शिव शब्द का उच्चारण करके मनुष्य सकल कल्याण प्राप्त कर लेता है। अतः शम्भुको शिव कहा जाता है।

विच्छेदे धनबन्धूनां निमग्न-शोक सागरे ।
शिवेति शब्द मुच्चार्य लभेत्सर्वं शिवं नरः ।।[2]

(३) शि पाप नाशक का वाचक है तथा व मुक्तिप्रद का बोधक है। अतः मनुष्यों के पाप का नाश करके उन्हें मोक्ष प्रदान करने के कारण वे शिव हैं।

पापघ्ने वर्ततेशिश्च वश्च मुक्तिप्रदे तथा ।
पापघ्नो मोक्षदोनृणां शिवस्तेन प्रकीर्तितः ।।[3]

शिवा *शिव+टाप्* । शेरते णिमादयोऽस्यामिति ।
शिव की प्रिय और शिव (कल्याण) प्रदान करने के कारण वह देवी शिवा हैं। यहाँ शिव शिव (कल्याण) अर्थ में और आ प्रिय अथवा प्रदानार्थक है। अतः वह कल्याणरूपा, कल्याण-प्रदा एवं शिव प्रिया देवी शिवा हैं।

शिवे कल्याणरूपा च शिवदा च शिव-प्रिया ।
प्रिये दातरि चा शब्दो शिवा तेन प्रकीर्तिता ।।[4]

(श्यति असूनित्यपि । शब्दकल्पद्रुम ।

शूर्पकर्णः शूर्प माने चुरादि १७३२ प० प० । शूर्प्+अच् । यद्वाशॄ हिंसायाम्क्र्यादि । पुशॄभ्यां निच्च, उणादि । इति पः चकारात् सर्च कित् । शूर्पाविवकर्णौ यस्य सः ।
कीर्यतेक्षिप्यते शब्दो वायुना यत्र । किरति शब्द ग्रहणेन मनसि सुखं क्षिपति ददातीत्यर्थः । कृ विक्षेपे तुदादिः १०२ । कृवृजृसीति । उणा० ३।१०। नन् निच्च । यद्वाकर्ण्यते आकर्ण्यतेऽनेन । चुरादिः २०७६ कर्ण्+अप् । शूर्प आकार के दोनों कर्ण विघ्न निवारण करने वाले हैं। उन सम्पत्तिदायक और ज्ञान स्वरूप शूर्पकर्ण गणेश को नमस्कार करता हूँ। यहाँ मानार्थक और हिंसार्थक दोनों धातुओं के आधार पर निर्वचन है। पहले हिंसार्थक (विघ्न-निवारणार्थ) दूसरेमानार्थ का प्रयोग है।

शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारण कारकौ ।
सम्पद्दवो ज्ञानरूपो च शूर्पकर्णं नमाम्यहम् ।।[5]

---

१. ब्रह्म वै० १।६।५० २. वही १।६।५१ ३. वही १।६।५२
४. वही २।५७।१२ ५. वही ३।४४।६२

शैवी शिवस्येयम् शिव+अण्+ङीप् ।

शिव के अनुशासन में रहने के कारण देवी शैवी है ।

शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवीति कीर्तिता ।[1]

षष्ठी षष्+तस्यपूरणे ट् ५।२।४८ इति पा० सूत्रेण ट्, षटकति कतिपय चतुरांधुक् ५।२।५१ इत्यनेन धुक् षष+शुक्+अट्+ङीष् ।

षण्णां पूरणेति ।

प्रकृति का छठां अंश होने के कारण उन्हें षष्ठी देवी कहा गया ।

विश्वेषष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेर्यतः ।[2]

सङ्कर्षण सम्यक् कर्षतीति । सम्+कृष्+यु, अन ।

कृष्ण से अवस्था में एक वर्ष ज्येष्ठ होने के कारण वे (बलराम) सङ्कर्षण हुए । कृष्ण और कर्षण को समानता में संकर्षणश्रेष्ठ हैं ।

वर्षाधिकोहिवयसा कृष्णात्संकर्षणः स्वयम् ।[3]

सती अस्तीति । अस्+शतृ +, उगित्वा—ङीप् ।

(१) सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी (२) एवं प्रत्येक युग मे विद्यमान (३) और पतिव्रता तथा सुशील होने के कारण उन्हें (दुर्गा) सती कहा जाता है ।

(१) सद्बुध्याधिष्ठातृदेवी (२) विद्यमानायुगे युगे ।

(३) पतिव्रता सुशीला च सा सती परिकीर्तिता ॥[4]

(४) सत्य स्वरूप होने के कारण सती हैं । अर्थात् उनका वस्तुतः एक रूप रहा करता है ।

(तवाऽऽज्ञया दक्षकन्या) सती सत्यरूपतः ।[5]

(उपर्युक्त द्वितीय अर्थ से चतुर्थ की समानता है ।)

सत्या ब्रह्म से लेकर तृण तक सब मिथ्या एवं कृत्रिम ही हैं किन्तु प्रकृति दुर्गा ही भगवान की भांति सत्य स्वरूप होने के कारण सत्या हैं ।

आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव कृत्रिमम् ।

दुर्गासत्यस्वरूपा सा प्रकृति भंगवान् यथा ॥[6]

सनकः सन+वुन् । सनुदाने, श्रीधरः श्रीमद्भागवतटीकायाम्[7] ।

शब्दरत्नावल्यां कर्णास्फाले सनः सनो । शब्दचन्द्रिकायां घण्टापाटलिवृक्षे

---

१. ब्रह्म वै० २।४५।८/१ २. वही २।४३।२६/२ ३. वही ४।१३।२१८/१

४. वही २।५७।१३ ५. वही ४।१२९।९२

६. वही २।५७।१ ७. शब्दस्तोम महानिधि

सनक और सनन्द ये दोनों शब्द आनन्द वाचक हैं । दोनों बालक भक्ति से अत्यन्त पूर्ण एवं आनन्दित सदैव ही रहते हैं अतः इन्हें सनक और सनन्द कहा जाता है ।

सनकश्च सनन्दश्च तौ द्वावानन्द वाचकौ ।
आनन्दितौ च बालौ द्वौ भक्तिपूर्णतमौ सदा ॥[1]

सनत्कुमार कुमार क्रीडायाम् प० प० । सनत्सर्वदावाचको ब्रह्मणो वाचकश्च । कुमारयति कुमारः । अतः सर्वदा कुमारो वा ब्रह्मणः कुमारः ।
सनत् शब्द नित्य वाचक और कुमार शिशु वाचक है । अतः ब्रह्मा ने इस बालक को सनत्कुमार कहा ।

सनत्तु नित्यवचनः कुमारः शिशुवाचकः ।
सनत्कुमारं तेनेममुवाच कमलोद्भवः ॥[2]

सनन्दः (सनकः देखिए)

सनातनः सना भवः सनातनः । सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्यु ट्युलो तुट् च ४।३।२३ ।
सनातन शब्द नित्य पूर्णतम स्वयं श्रीकृष्ण का वाचक है, उनके भक्त अथवा उन भक्तों के समान होने के कारण ब्रह्मपुत्र को सनातन कहा जाता है ।

सनातनश्च श्री कृष्णो नित्यपूर्णतमः स्वयम् ।
तद्भक्तस्तत्समः सत्यं तेन बालः सनातनः ॥[3]

सनातनी सनाभवा सनातनी पूर्वोक्तवत् ङीप् च । सदा निपातनात् सना[4] भवति ।
सना शब्द सर्वकाल का वाचक है और तनी विस्तृत वाचक है । अतः सर्वत्र और सर्वकाल में विद्यमान रहने वाली दुर्गा को सनातनी कहा गया है ।

सर्वकाले सना प्रोक्तो विस्तृते च तनोति च ।
सर्वत्र सर्वकाले च विद्यमाना सनातनी ॥[5]

संन्यासी संन्यस्यत इति सन्न्यासः, संन्यासोऽस्यास्तीति सन्न्यासी ।
सम्+नि+अस्[6]+घञ्+इन्+ङीप् ।
शुभ, स्वास्थ्यप्रदायक, स्वादिष्ट (सद्) और अशुभ, अस्वास्थ्यकर, अस्वादिष्ट अन्न में जिसकी समान भावना होती है वह संन्यासी है ।

---

१. ब्रह्म वै० १।२२।२८ २. वही १।२२।३० ३. ब्रह्म वै० १।२२।२९
४. शब्दस्तोम महानिधिः । सनेत्यव्ययः ५. ब्रह्म वै० २।५७।२७
६. अस् भुवि अदादि ११४१ अस-गतिदीप्त्यादानेषु, भ्वादि असति, असते ६४१ । असु क्षेपणे दिवादि प० प०

(२) जो दण्ड, कमण्डलु और रक्त वस्त्र धारण करता है, एक स्थान क निवासी न होकर नित्य प्रवासी होता है, वह संन्यासी होता है।

(३) शुद्ध आचार वाले द्विज के अन्न को लोभ आदि से हीन होकर खात है, किन्तु कुछ (स्वादिष्ट आदि) माँगता नहीं है, वह सन्यासी है।

(४) जो न कोई व्यापार (कर्मानुष्ठान), न किसी (निजी) आश्रम में वास करता है, सभी कर्म (धर्म) से वर्जित होता है और निरन्तर नारायण का ध्यान करता है, वह संन्यासी है।

(५) जो सदा मौन, ब्रह्मचारी और सम्पूर्ण बोल-चाल (सांकेतिक व्यक्ती· करण) भी छोड़ देकर सब कुछ ब्रह्ममय देखता है, वह संन्यासी है।

(६) जो सर्वत्र सभी को समान मानता है, हिंसा और माया का परित्याग कर चुका है तथा क्रोध एवं अहंकार से रहित है, वह संन्यासी है।

(७) बिना माँगे स्वयं मधुर (हृद्य) वा अमधुर जो मिला, खाया, किन्तु भूख में माँगे नहीं वह संन्यासी है।

(८) जो न स्त्री का मुख देखे, न उसके समीप बैठे, और काष्ठ निर्मित स्त्री का भी स्पर्श न करे वह संन्यासी (भिक्षु) है।

सदन्ने वा कदन्ने वा लोष्टे वा काञ्चने तथा।
समबुद्धि र्यस्य शश्वत्सन्न्यासीति कीर्तितः॥
दण्डं कमण्डलुं रक्तवस्त्रं मात्रं च धारयेत्।
नित्यं प्रवासो नैकत्र स्या त्संन्यासीति कीर्तितः॥
शुद्धाचार द्विजान्नं च भुङ्क्ते लोभादि वर्जितः।
किन्तु किंचिन्न याचेत स संन्यासीति कीर्तितः।
नव्यापारी नाऽऽश्रमी च सर्वकर्म (धर्म) विवर्जितः॥
ध्याये न्नारायणं शश्वत्ससन्यासीति कीर्तितः।
शश्वन्मौनी ब्रह्मचारी संभाषा परिवर्जितः।
सर्वं ब्रह्ममयं पश्येत्स संन्यासीति कीर्तितः।
सर्वत्र समबुद्धिश्च हिंसा माया विवर्जितः॥
क्रोधाऽहंकार रहितः स संन्यासीति कीर्तितः।
अयाचितोपस्थितं मिष्टामिष्टं च भुक्तवान्॥
न याचते भक्षणार्थी स संन्यासीति कीर्तितः।
न च पश्येन्मुखं स्त्रीणां न तिष्ठेत्तत्समीपतः॥

दारवीमपि योषां च न स्पृशेद्यः स भिक्षुकः ।
(अयं सन्यासिनां धर्म इत्याह कमलोद्‌भवः) ।[१]

सरस्वती सृ गतौ, सर्वधातुभ्यो सुन् ४।१८८ उणादि असुन्, सरो स्त्यस्या इति, मतुप्, मस्य वः, ङीप् । (तसौमत्वर्थे इति भत्वान्न पदकार्यम्) ।
सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होकर भी हरि स्रोत में ही प्रकट हैं । (भगवान् शायी हैं) । सरःसु = जल में प्रकट होकर भगवान् सरस्वान् हैं । उनकी क्षीरप्रिया होने के कारण उन्हीं के नाम पर यह सरस्वती हैं ।

सर्वं विश्वं परिव्याप्य स्रोतस्येव हि दृश्यते ।
हरिः सरःसु तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती ॥[२]

सर्व-मङ्गला सृतमनेन विश्वमिति सर्वम् । उणादि सर्व निघृष्वरिष्व लष्व शिव पद्व प्रह्वेष्वा अतन्त्रे १।१५१ इतिवन् । सर्वं मङ्गलमनयेति ।

(१) मङ्गल शब्द मोक्ष वाचक है आकार दातृ वाचक है । अतः जो सभी को मोक्ष देती है, वह सर्वमङ्गला है ।

मङ्‌गल-मोक्ष-वचनं चाऽऽशब्दो दातृ-वाचकः ।
सर्वां मोक्षान् या ददाति सैव स्यात्सर्व-मङ्‌गला ॥[३]

(२) मङ्गल शब्द हर्ष, सम्पत्ति और कल्याण वाचक है । इन्हें सभी को देने के कारण देवी को सर्वमङ्गला कहा गया है ।

हर्षे सम्पदि कल्याणे मङ्गलं परिकीर्तितम् ।
तान्ददाति च सर्वेभ्य स्तेन सा सर्वमङ्‌गला ॥[४]

(३) सर्वमङ्गल शब्द सम्पूर्ण ऐश्वर्य का वाचक है और आकार दातृ-वाचक है । अतः सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदात्री होने के कारण देवी सर्वमङ्गला है ।

सर्वमङ्‌गलशब्दश्च सम्पूर्णैश्वर्य वाचकः ।
आकारो दातृवचन स्तद्दात्री सर्वमङ्गला ॥[५]

(४) सबका आधार, सर्वरूप, सब ओर से मङ्गल योग्य और सभी मङ्गल (कृत्यों) में दक्ष होने के कारण देवी सर्वमङ्‌गला है ।

सर्वाधारा सर्वरूपा मङ्गलार्हा च सर्वतः ।
सर्वमङ्‌गल दक्षा सा तेन स्यात्सर्वमङ्गला ।[६]

सर्वानन्दा सर्वान् आनन्दयतीति वा सर्वे आ समन्तान्नन्दन्त्यनयेति । दुःख

---

१. ब्रह्म वै० २।३६।१२५, १२६ २. वही २।७।३ ३. वही २।५७।१८
४. वही २।५७।१६ ५. वही ४।२७।३२ ६. वही ४।८४।७५ - ७६

दरिद्र को नाश करने वाली होने के कारण और (स्वयं) आनन्द सहित होने के कारण वह सर्वानन्दा है।

सर्वानन्दा च सानन्दा दुःख दारिद्र्यनाशिनी।[1]

सिद्धयोगिनी सेधतीति सिद्धा। षिध् गत्याम् सिध् + क्त + टाप्
युनक्तीति योगः योगो स्त्यस्या इति योगिनी। युजिर् योगे (रुधादिः) सिद्धा चैषायोगिनी सिद्धयोगिनी।

शिव से सिद्ध योग प्राप्त करने के कारण वह देवी सिद्ध-योगिनी है।

सिद्धं योगं हरात्प्राप तेनासौ सिद्धयोगिनी।[2]

सैंहिकेयः सिंहिकाया अपत्यं पुमान्। सिंहिका + ढञ्। ढस्य, आयनेयो नीयियः। फठखछघां प्रत्ययोद नाम्, इति एयः। आद्यचो वृद्धिः।
सिंहिका नाम की बालिका से उत्पन्न पुत्र सैंहिकेय हुआ।

कन्या च सिंहिका विप्र ! सैंहिकेयश्च तत्सुतः।[3]

स्वामी स्वन् शब्दे अन्येभ्यो पीति डः।३।३।२१०। स्वन् + डा स्वमस्यास्तीति स्वामिन्नैश्वर्ये ५।२।१२६। इति आमिन् प्रत्ययेन निपातितः।
(१) शरीर का ईश होने के कारण वह स्वामी है।

शरीरेशाच्च स स्वामी।[4]

(२) वेदों में स्व शब्द धन वाचक निरूपित है, वह (धन) जिसके पास है वह स्वामी है।

निरूपितश्च वेदेषु स्वशब्दो धनवाचकः।
तद्यस्यास्तीति स स्वामी वेदज्ञशृणु मद्वचः॥[5]

(३) उसका (स्व) सदा प्रदाता स्वामी है नकि धन (स्व) ही स्वामित्व प्राप्त करता है।

तस्यदाता सदास्वामी न च स्वं स्वामितां लभेत्।[6]

हरिभक्तः हरति पापानि। हृपिषिरुहिवृति विदि छिदि कीर्तिभ्यश्च (उणा० ४।११८)।

हरि विष्णावहाविन्द्रे भेके सिंहे हये रवौ।
चन्द्रे कीले प्लवङ्गे च यमे वाते च कीर्तितः॥ **अमरकोष**

---

१. ब्रह्म वै० ४।८४।९६
२. वही २।४५।१०
३. वही १।६।३५
४. वही २।४२।३४
५. वही ३।७।४३
६. वही ३।७।४४

जो व्यक्ति सभी जीवों में समता बुद्धि से विष्णु की भावना करे और हरि की भक्ति करे वह हरिभक्त है।

सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावये त्समताधिया।
हरौ करोति भक्तिं च हरिभक्तः स च स्मृतः ॥[1]

हली हल विलेखने भ्वादि प०प० ८६४। हलतीति हलमस्यास्तीति हली।

(१) हल धारण करने के कारण (बलराम) हली हैं।

हली च हल धारणात्।[2]

हेरम्बः हे दीन अर्थ का वाचक है और रम्ब शब्द पालक है अतः दीन-लोक के पालक (गणेश) हेरम्ब को प्रणाम करता हूँ।

दीनार्थं वाचको हेश्च रम्बः पालक वाचकः।
पालकं दीन लोकानां हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥[3]

हंसी हंसोऽस्यास्तीति हंसी। हन् + वृतृवदि हपि कमि कषिभ्यः सः। उणा० ३।६२।

योग बल से हंस जिस योगी के आत्मवश (अधीन) रहते थे, वह परम-योगीन्द्र बालक हंसी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हंसा आत्मवशा यस्य योगेन योगिनो ध्रुवम्।
बालः परम योगीन्द्रस्तेन हंसी प्रकीर्तितः ॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० ३।३५।७३
२. वही ४।१३।८३
३. वही ३।४४।८६
४. वही १।२२।२१

अध्याय १८

ब्रह्म-वैवर्त में शालिग्राम

शालिग्राम शिला की पूजा आज भी समस्त भारत में होती है। आजकल यह पुरोहित और यजमान का चल-देवालय है। मन्दिर की विशाल देव-मूर्तियाँ अचल होती हैं। यह चल प्रतिमा अपने लाघव के कारण भक्त के मनस्तोष का उत्तम आधार है। गृह-गृह में होने वाली सत्यनारायण-व्रत-कथा-श्रवण में शालिग्राम-शिला की पूजा तो नितान्त आवश्यक है। भक्तजनों की कल्पनाशीला प्रतिभा ने भगवान् विष्णु के प्रतीक शालिग्राम-शिला को सत्यनारायण से अभिन्न कर दिया। सत्य की शपथ के लिए हम आज भी गंगाजल, तुलसीदल और शालिग्राम शिला को ग्रहण कर पंचों के बीच अपनी सफाई देते हैं।[1] इस चल-मूर्ति का हिन्दू-समाज में विशेष आदर साधार है। शालिग्राम शिला के सम्बन्ध में ब्रह्म वैवर्त, देवी भागवत, शिवपुराण तथा स्कन्द पुराण में विशेष-वर्णन किया गया है।

सत्यनारायण के साथ शालिग्राम शिला की पूजा एवं कथा-श्रवण-व्रत का निर्देश भविष्य-पुराण स्पष्ट रूप से देता है।[2] स्कन्द पुराण को कथा ५ अध्यायों में है जबकि भविष्य-पुराण की कथा छः अध्यायों में है।

ब्रह्मवैवर्त में शालिग्राम के अठारह भेद एवं नाम गिनाये गये हैं।

१. **लक्ष्मी नारायण**—एक द्वारे चतुश्चक्रं वनमाला विभूषितम्।
नवीननीरदश्यामं लक्ष्मी नारायणाभिधम्॥

२. **लक्ष्मी जनार्दन**— एकद्वारे चतुश्चक्रं नवीन नीरदोपमम्।
लक्ष्मी-जनार्दनं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥

३. **रघुनाथ**— द्वार द्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन समन्वितम्।
रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥

---

१. शालिग्राम शिलां धृत्वा, मिथ्या वादं वदेत्तु यः।
स याति कूर्म दंष्ट्रं च यावद्वै ब्रह्मणोवयः॥
शालिग्राम शिलां स्पृष्ट्वा स्वीकारं यो न पालयेत्।
स प्रयात्यसिपत्रंच लक्षमन्वन्तराधिकम्॥

ब्रह्मवै० २।२१।६३-६४

२. भविष्यपुराण, प्रति सर्ग पर्व २।२४ अ० से २६ अ०।

४. दधि-वामन— अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीन जलद प्रभम् ।
दधिवामनाभिधं ज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥

५. श्रीधर— अति क्षुद्रं द्विचक्रं च वनमाला विभूषितम् ।
विज्ञेयं श्रीधरं देवं श्रीप्रदं गृहिणां सदा ॥

६.—दामोदर स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया ।
द्विचक्रं स्फुट मत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम् ॥

७. रण-राम— मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाण-विक्षतम् ।
रण-रामाभिधं ज्ञेयं शरत्तूण-समन्वितम् ॥

८. राज-राजेश्वर— मध्यमं सप्तचक्रं च छत्रतूण-समन्वितम् ।
राज-राजेश्वरं ज्ञेयं राजसम्पत्प्रदं नृणाम् ॥

९. अनन्त— द्वि सप्तचक्रं स्थूलं नवीन जलद-प्रभम् ।
अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गं फलप्रदम् ॥

१०. मधु-सूदन चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलद-प्रभम् ।
सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं मधु-सूदनम् ॥

११. गदाधर— सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरं ।

१२. हय-ग्रीव— द्विचक्रं हय वक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम् ॥

१३. नरसिंह— अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति ।
नर-सिंहाभिधं ज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम् ॥

१४. लक्ष्मी-नृसिंह— द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमाला समन्वितम् ।
लक्ष्मी नृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा ॥

१५. वासुदेव— द्वार देशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम् ।
वासुदेवं च विज्ञेयं सर्व-काम-फलप्रदम् ॥

१६. प्रद्युम्न— प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं नवीन नीरद प्रभम् ।
सुषिरे छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम् ॥

१७. संकर्षण— द्वे चक्रे चैकलग्ने पृष्ठे यत्र तु पुष्कलम् ।
सङ्कर्षणं तु विज्ञेयं गृहिणां सुखदं सदा ॥

१८. अनिरुद्ध— अनिरुद्धं तु पीताभं, वर्तुलं चाति शोभितम् ।
सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

ब्रम्हवै० २।२१।६०-७६

स्कन्द पुराण में निम्नलिखित चतुर्विंशति भेद बताये गये हैं। इन विभिन्न शालिग्रामों का विस्तारपूर्वक निरूपण भी किया गया है। यह वर्णन गालव ने शूद्रज पैजवन के लिए किया है[1]—

१. केशव	९. अनन्त	१७. अनिरुद्ध
२. गदाधर	१०. विश्व-योनि	१८. पुरुषोत्तम
३. संकर्षण	११. अधो क्षज	१९. वामन
४. दामोदर	१२. जनार्दन	२०. नारायण
५. वासुदेव	१३. गोविन्द	२१. पुण्डरीकाक्ष
६. प्रद्युम्न	१४. त्रिविक्रम	२२. उपेन्द्र
७. विष्णु	१५. श्रीधर	२३. हृषीकेश
८. माधव	१६. हरि	२४. कृष्ण

पद्म-पुराण में भी शालिग्राम के लक्षणों एवं नामों की गणना पूर्ण विस्तार से की गयी है।[2] इसप्रसंग में निम्नलिखित नामों का निर्देशन किया गया है—

१. केशव	१३. दामोदर	२५. कूर्ममूर्ति
२. गदाधर	१४. संकर्षण	२६. धृतपृष्ठ
३. नारायण	१५. वासुदेव	२७. वनमाली
४. माधव	१६. प्रद्युम्न	२८. अनन्त
५. गोविन्द	१७. अनिरुद्ध	२९. मत्स्य
६. विष्णु	१८. पुरुषोत्तम	३०. पृथु
७. मधुसूदन	१९. अधो क्षज	३१. विन्दुमान्
८. त्रिविक्रम	२०. नृसिंह	३२. हयग्रीव
९. वामन	२१. अच्युत	३३. वैकुण्ठ
१०. श्रीधर	२२. श्री कृष्ण	३४. लक्ष्मीनारायण
११. हृषीकेश	२३. कपिल	३५. चतुर्व्यूह
१२. पद्मनाथ	२४. वाराह	

शालिग्राम-शिला के वर्णन में ब्रह्मवैवर्त तथा पद्म में नाम के साथ लक्षण भी बताया गया किन्तु स्कन्द में केवल नाम निर्देश है। पद्म का लक्षण विस्तृत है। ब्रह्म वैवर्त का लणण चक्र के आधार पर है। कुछ लक्षण मिलते भी हैं, यथा हयग्रीव—

द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम्।[3]
हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पंच रेखः सकौस्तुभः॥[4]

---

१. स्कन्द पु० ब्रह्म खण्ड ३ भा०, अ० १२।३-९ २. पद्म पु० पाताल ख०७८।१६-४
३. ब्रह्म वै० २।२१।७० ४. पद्म पु० पाताल खंड ७८।३७

यहाँ अंकुशाकार अथवा हयवक्त्र दोनों एक ही आकार के सूचक हैं। ऐसा भी प्रतीत होता है कि अभियन्त्रण-कला की भाँति केवल लक्षण लिखने से नहीं प्रत्युत क्रियात्मक-विधि से इसका ज्ञान होता रहा होगा। यही कारण है कि ये लक्षण उक्त पुराणों में तत्समान नहीं हैं।

उक्त तीनों पुराणों में निम्नलिखित नाम समान रूप से मिलते हैं—

१. अनन्त	४. वासुदेव	७. मधुसूदन
२. अनिरुद्ध	५. प्रद्युम्न	८. दामोदर
३. संकर्षण	६. नृसिंह	९. श्रीधर

ब्रह्मवैवर्त में नारायण जनार्दन तथा नृसिंह के साथ लक्ष्मी तथा वामन के साथ दधि की योजना की गयी है। उक्त विधि से ब्रह्म वैवर्त ने वैशिष्ट्य-प्रयोजन का प्रयास किया है। वामन के साथ दधि की संयोजना करके शालिग्राम में अपने मधुसूदन दध्याशी गोपाल कृष्ण को देखा है।

ब्रह्मवैवर्त में वर्णित अष्टादश नामों में १. रघुनाथ, २. रण-राम, ३. राज राजेश्वर तथा ४. लक्ष्मी नृसिंह, इन चार नामों की उद्‌भावना निजी-विशेषता है। इतना अवश्य है कि ब्रह्म वैवर्त ने जो नव-योजना की है, वे नाम कृष्ण एवं विष्णु के पर्याय हैं। इन नामों में शक्ति एवं शिव के नामों की कोई योजना नहीं है। तथापि विष्णु-परिवार की लक्ष्मी, जोकि शक्ति अथवा प्रकृति का प्रतीक है, विष्णु पर्यायी नामों के साथ चार बार स्मृत की गयी है।

स्कन्द पुराण ने शालिग्राम के चतुर्विंशति नामों से सम्भवतः विष्णु के सभी अवतारों को उस शिला में देखने की चेष्टा की है। स्कन्द इस तथ्य का भी संकेत देता है कि चतुर्विंशति एकादशी और चतुर्विंशति नक्षत्र, जिनसे द्वादश मास होते हैं, अथवा मासों में चतुर्विंशति पक्ष होते हैं। ये सभी एक सम्वत्सर में समन्वित होते हैं। एवं ही शालिग्राम शिला में सम्वत्सर में सभी पक्षों आदि की भाँति समन्वित है।

स एव मूर्तश्चतुरुत्तराभि
विंशद्भिरेको भगवान् यथाऽऽद्यः।
स एव संवत्सर नाम संज्ञः
स एव ग्रावागत आदि देवः॥[1]

उक्त भाव को स्कन्द ने भी और स्पष्ट किया है :—

मूर्तयस्तिथि नाम्न्यः स्युरेकादश्यः सदैव हि।
देवाश्च ताराश्च तथा चतुर्विंशति संख्यकाः।
मासा मार्ग शिराद्याश्च मासार्द्धा पक्ष संज्ञकाः॥[2]

---

१. स्कन्द—ब्रह्म खण्ड ३।११।६६ २. वही ३।१२।१०-११

उक्त प्रसंग में शालिग्राम शिला के नाम की चर्चा में श्रीमद्भागवत के नारायण-वर्म में वर्णित नामों से पद्म का अधिकतर साम्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि नारायण वर्म के नाम पद्म की सूची में अवश्य जुड़ गये हैं।[१] नारायण वर्म में हरि के अष्टादश नामों की सूची है—

१. हरि	७. राम	१३. धन्वन्तरि
२. मत्स्यमूर्ति	८. नारायण	१४. ऋषभ
३. वामन	९. कपिल	१५. यज्ञ
४, त्रिविक्रम	१०. सनत्कुमार	१६. बल
५. नृसिंह	११. हयशीर्ष	१७. द्वैपायन
६. वाराह	१२ कूर्म	१८. कल्कि

इनमें सनत्कुमार, धन्वन्तरि, ऋषभ यज्ञ, द्वैपायन तथा कल्कि के अतिरिक्त सभी नाम किसी न किसी उक्त पुराणों की सूची में हैं। इस प्रकार ब्रह्म वैवर्त, स्कन्द, पद्म, श्रीमद्भागवत तथा देवी भागवत में अल्पतर परिवर्तनों के साथ नाम समान ही हैं। देवी भागवत और ब्रह्म वैवर्त की तो सूची क्या बल्कि मूल पाठ ही समान है।

ब्रह्म वैवर्त की नामावलि अष्टादश संख्यक है तो स्कन्द की चतुर्विंशति संख्यक और पद्म की संख्या पैंतीस तक चली जाती है। पद्म में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के पृथक नाम होते हुए भी चतुर्व्यूह की परिकल्पना पृथक् भी है।

भविष्य पुराण में सत्यनारायण-व्रत कथा के प्रसंग में शालिग्राम को स्वर्ण-युक्त होना लिखा गया है।

इति सङ्कल्प्य मनसा सायंकाले प्रपूजयेत्।
पंचभिः कलशै र्जुष्टं कदली तोरणान्वितम्॥
शालग्रामं स्वर्णयुक्तं पूजयेदात्मसूक्तकैः।
पंचामृतेन संस्नाप्य चन्दनादिभि रर्चयेत्॥[२]

ब्रह्म वैवर्त में स्कन्द एवं पद्म की भाँति न तो विस्तार है न ही श्रीमद्भागवत की भाँति वर्णन। ब्रह्म वैवर्त में तुलसी का उपाख्यान विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है।[३] इसी प्रसंग में वर्णित है कि महासुर शंखचूड को मारने के लिए हरि ने तुलसी से छल किया।[४] हरि ने शंखचूड का रूप धारण किया[५] और तुलसी के साथ रमण किया।[६] तुलसी ने सतीत्व भंग होने के कारण हरि को शाप दिया कि हरि पाषाण हो जाँय—

१. श्रीमद्भा० ६।८।१२-१९ २. भविष्य पु० प्रतिसर्ग पर्व २४।२७-२८
३. ब्रह्म वै० २।१३ से २३ अध्याय तक।
४. ब्रह्म वै० २।२१।२-३ ५. वही २०।७-१२ ६. वही २।२१।१६

हे नाथ ! ते दया नास्ति पाषाण-सदृशस्य च ।
छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः ।।
पाषाण-सदृश स्त्वं च दयाहीनो यतः प्रभो ।
तस्मात्पाषाण रूपस्त्वं भुवि देवो भवाधुना ।।[1]

हरि ने शाप ग्रहण कर तुलसी को आशीष दिया । तुलसी ने निजगात्र-परित्याग कर दिया । किन्तु हरि ने कहा कि तुलसी ! तुम्हारा शरीर नदी रूप में गण्डकी रहेगी और उसके किनारे तुलसी केशों से तुलसी वृक्ष का उद्‌भव होगा ।[2] हरि ने अपने लिए बताया कि वे गण्डकी तट पर शैल (प्रस्तर) रूप में स्वयं उपस्थित रहेंगे ।

अहं च शैल रूपेण गण्डकी तीर सन्निधौ ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ।।[3]

यह शालिग्राम-शिला वज्रकीटों से बिंधी अतः चक्रयुक्त होती है ।

वज्रकीटाश्च कृमयो वज्रदंष्ट्राश्च तत्र वै ।
तच्छिला कुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम् ।।[4]

अतः हरि ने सार्वजनिक हित हेतु वैयक्तिक यश गिराकर भी तुलसी के साथ जो व्यवहार किया, उसकी मान्यता ब्रह्मवैवर्त देता है । उसमें अयश की कोई गन्ध भी नहीं आने पाती । इस स्मृति को शालिग्राम-तुलसी और शंख[5] का रूप देकर सदा के लिए सुस्थिर कर लिया गया ।

शालग्राम शिला का महत्व बताते हुए कहा गया है कि जहाँ यह शिला होती है वहाँ हरि, लक्ष्मी तथा सभी तीर्थ निवास करते हैं ।[6] व्रत-दान-प्रतिष्ठा श्राद्ध तथा देवपूजन में शालग्राम शिला का अधिष्ठान प्रशस्त स्वीकार किया गया है । शालिग्राम के जल से स्नान सर्वतीर्थ-स्नान के समान है ।[7] सर्वस्व दान का पुण्य, सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा का फल तथा सभी यज्ञ, तीर्थ, व्रत और सभी उपवासों के जो फल हैं, वे शालग्राम शिला की पूजा से प्राप्त होते हैं ।[8] मृत्युकाल में जो शालग्राम-शिला का जल प्राप्त करता है, वह सर्वपाप से हीन होकर विष्णु लोक को प्रयाण करता है ।[9]

स्कन्द ने एक विशेषता और व्यक्त की है कि शालग्राम शिला के साथ द्वारावती की शिला का संगम हो तो मुक्ति सुलभ होती है ।

शालग्राम शिला यत्र, यत्र द्वारावती शिला ।
उभयोः संगमः प्राप्तो, मुक्तिस्तस्य न दुर्लभा ।।[10]

---

१. ब्रह्म वै० २।२१।२३-२४ २. वही २।२१।३२-३३ ३. वही २।२१।५८
४. वही २।२१।५९ ५. वही २।२०।२६ ६. वही २।२१।७७
७. वही २।२१।७८ ८. वही २।२१।८३ ९. वही २।२१।९१
१०. स्कन्द पु०, ब्रह्म खण्ड ३ भाग ११।३९

वास्तव में शालग्राम-शिला की पूजा विष्णु अथवा हरि पूजा का सर्व-सरल साधन है। उस अजन्मा परमेश्वर के चौबीस अवतारों का एकमात्र प्रतीक है। निराकार को साकार देखने का स्तुत्य प्रयास है।

इस प्रसंग में शिव पुराण,[1] देवी भागवत तथा ब्रह्म वैवर्त पुराणों में कौन मूल प्रदाता है इस प्रश्न का कुछ समाधान शिव पुराण से हो जाता है। कथा-विस्तार का प्रयास अपने-अपने ढंग से पुराणों ने किया, इसमें सन्देह नहीं। अतएव कुछ स्थलों पर श्लोक अथवा पंक्तियाँ भिन्न हुआ करती हैं किन्तु शिव पुराण में शालिग्राम के नाम सम्बन्धी अवधारणा में स्पष्ट रूप से प्रतीत हो जाता है कि यह तथ्य ब्रह्म वैवर्त से ही गृहीत हुआ है। ब्रह्म वैवर्त में प्रथम नाम शालग्राम-शिला का लक्ष्मी-नारायण रखा है। शिव पुराण से ज्ञात होता है कि ये लक्ष्मी नारायण आदि नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। यही कारण है कि शिव पुराण अन्य नामों को परिचर्चा की अवरुद्ध कर देता है।

तत्रकोट्यश्च कीटाश्च तीक्ष्णदंष्ट्राः भयंकराः।
तच्छित्वा कुहरे चक्रं करिष्यन्ति तदीयकम्॥
शालग्राम शिला साहि तद्भेदादति पुण्यदा।
लक्ष्मी नारायणाख्यादि श्चक्र भेदाद्भविष्यति॥

कथा की दृष्टि से शिव पुराण की कथा परवर्ती प्रतीत होती है क्योंकि इस पुराण में उक्त कथा में जलन्धर की भी कथा सम्बद्ध है। इस मिश्रण को शिव पुराण स्वयं भी स्वीकार करता है।

आख्यानमिद माख्यातं विष्णु माहात्म्य मिश्रितम्।[2]

शाल-ग्राम शिला का आकृतिपरक विशेष फल दातृत्व बताया गया है। इन विभिन्न आकृतियों एवं पूजन का फल विभिन्न प्रकार का है—

छत्राकारे भवेद्राज्यं, वर्तुले च महाश्रियः।
दुःखं च शकटाकारे, शूलाग्रे मरणं ध्रुवम्॥
विकृतास्ये च दारिद्र्यं, पिंगले हानि रेव च।
भग्नचक्रे भवेद् व्याधि विंदीर्णे मरणं ध्रुवम्॥

———

1. शिव पुराण, रुद्र संहिता, युद्ध खंड, अ० १२ से २६ तक जलन्धर वध
   ,, ,, ,, , अ० २७ से ४१ तक शंखचूड वध
2. वही अ० ४२।६४

अध्याय १९

ब्रह्मवैवर्त में नदियां

ब्रह्म-वैवर्त में नदियों का वर्णन भौगोलिक दृष्टि से विशेष-विवेचनपूर्ण नहीं है, किन्तु कुछ नदियों का स्थान, दिशा आदि का संक्षिप्त विवेचन हुआ है। ब्रह्म-वैवर्त में नदियों का वर्णन धार्मिक-कथा-प्रसंगों की दृष्टि से अवश्यमेव महत्वपूर्ण है। ये कथाएँ ब्रह्म-वैवर्त का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करती हैं। अन्य पुराणों में ये नदी-सम्बद्ध कथा-प्रसंग नहीं मिलते। मुख्यत: गोदावरी तथा गंडकी का वर्णन अद्वितीय है। नलिनी आदि नदियों के नाम परम्पराबद्ध प्रणाली में स्मरण-मात्र के लिए हैं। तथापि इस पुराण में जितनी नदियों का नाम अथवा वर्णन है वह अन्य पुराणों में दुर्लभ है।

पुराणों के नदी वर्णन एवं उनके उद्गम आदि के विषय में जो कथन है, उनकी वास्तविकता प्रत्यक्ष है। नदियों के नाम आज भी प्राय: वही हैं। केवल कुछ नाम स्थानीय लोगों के उच्चारण में क्लिष्टता तथा भाषात्मक परिवर्तनों के कारण बदल गए हैं। ये नदियाँ भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का साक्ष्य आज भी अपने कल-कल निनादों से प्रस्तुत कर रही हैं। आधुनिक मानचित्रों में इनकी उपेक्षा की गई है। भारत के सभी तीर्थस्थान इन्हीं के तटों पर हैं। ये तीर्थ, ये नदियाँ भारतीय-संस्कृति के केन्द्र हैं। इनका नामोच्चारण एवं स्मरण हमारी राष्ट्रीय एकता के प्रतीक हैं। ऐसा करके हम सम्पूर्ण भारत का स्मरण करते हैं। इस स्मरण से समस्त सम्बद्ध कथा-प्रसंग या इतिहास की एक झलक हमारे मस्तिष्क में कौंध जाती है। इनका वास्तविक परिचय आवश्यक है। नदियों के परिचय के लिए हमने अन्य पुराणों, महाभारत और विदेशी यात्रियों के वर्णन की सामग्री का उपयोग किया है। साथ ही कनिंघम, डे, डी० सी० सरकार आदि के प्राचीन भारत पर किए गए अनुसंधानों एवं कृतियों का भी उपयोग किया है। श्री काणे महोदय का धर्मशास्त्र का इतिहास एवं श्री गि० च० अवस्थी का वेद-धरातल भी इस कार्य में विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। पुराण इण्डेक्स, वैदिक इण्डेक्स आदि ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं से यथावसर लाभ उठाया है।

नदी नामावलि

१. अमृता
२. कनखला
३. कावेरी
४. काशी
५. कृतमाला
६. कौशिकी
७. क्षेमा
८. गङ्गा
९. गण्डकी
१०. गोदावरी
११. गोमती
१२. चन्द्रभागा
१३. चन्द्ररेखा
१४. चम्पा
१५. चेलगङ्गा
१६. त्रिपर्णाशा
१७. दक्षा
१८. नन्दिनी
१९. नर्मदा
२०. नलिनी
२१. पद्मावती
२२. पनसा
२३. पम्पा
२४. पारिभद्रा
२५. पुण्यदा
२६. पृथ्वी
२७. पुष्प-भद्रा
२८. प्रभा
२९. प्रमदा
३०. बाहुदा
३१. भद्रा
३२. भोगवती
३३. मनसा
३४. महापगा
३५. मालिनी
३६. यमुना
३७. लोक-प्रसाधनी
३८. विद्याधरी
३९. विपाशा
४०. विरजा
४१. विश्व-काया
४२. वैष्णवी
४३. शत-ह्रदा
४४. शरावती
४५. शान्ता
४६. शान्तिदा
४७. शिवा
४८. श्वेत-गङ्गा
४९. सती
५०. सरयू
५१. सरस्वती
५२. सिन्धु
५३. सुप्रसन्ना
५४. सुभगा
५५. स्वर्णदी
५६. स्वर्ण-रेखा

अमृता—(१।२६।२८) इस नदी का अभी तक परिचय नहीं प्राप्त किया जा सका है। यह प्रातः स्मरणीय नदी है।

कनखला—(२।६४।५८) हरिद्वार से दो मील पूर्व आज भी कलखल नामक एक ग्राम है। यही दक्ष भूमि है। इसका वर्णन कूर्म-पुराण[१], वामन-पुराण[२], महाभारत[३] और लिङ्ग-पुराण[४] में किया गया है। वहाँ गंगा और नील-धारा का संगम है।[५] यही कनखला है। यहाँ स्नान करके तीन रात उपवास करने वाला व्यक्ति अश्वमेध यज्ञ-फल प्राप्त करता है।[६] यहाँ स्नान करने का फल महाभारत अनुशासन-पर्व में भी वर्णित है।[७]

---

१. ३ परिभाग ३६ अ०   २ अ० ४, अ० ३४   ३. वन पर्व, अ० ८४
४. भाग १, अ० १००   ५. न० ला० डे-ज्या० डिक्श०
६. महाभारत-वन पर्व, अ० ८४।३०—वन पर्व-अ० ९०।२२
७. अनुशा० प०, अ० २५।१३

कावेरी[१]—यह दक्षिण भारत की एक नदी है। कुर्ग में ब्रह्म-गिरि पर्वत पर स्थित चन्द्रतीर्थ[२] इसका उद्‌गम स्थल है। इसका वर्णन राइस महोदय ने भी किया है।[३] शिव-समुद्र पर कावेरी-प्रपात दर्शनीय स्थानों में है। इसी नदी के तट पर श्री रंग-क्षेत्र, त्रिचनापल्ली तथा कुम्भकोणम् आदि प्रसिद्ध नगर अवस्थित हैं। यह एक उत्तम तीर्थमय नदी है। यह वरुण की सभा में रह कर उनकी उपासना करती है।[४] इसमें स्नान करने से सहस्र गोदान का फल बताया गया है।[५] स्नान के समय इस पवित्र नदी का नाम-स्मरण पुण्य दायक है। गंगा आदि नदियों के साथ कावेरी भी श्री कृष्ण के पास कलियुग में अपने उद्धार का मार्ग पूछने गयी थी।[६] कावेरी का उद्‌गम विन्ध्य भी बताया गया है।[७] तालेमी ने इसे Khaberos कहा है।[८] यह ४७५ मील लम्बी है।[९]

काशी–[१०] इस नाम की किसी नदी-विशेष का परिचय नहीं हो पाता है किन्तु यह नाम नदियों के साथ आया है। अतः मेरा अनुमान है कि काशी नगरी की प्रसिद्ध गंगा वरुणा और असी नाम की नदियों में से कोई नदी हो। अथवा इन तीनों नदियों का संगम काशी में होता है अतः गंगा का समन्वित रूप काशी नाम से स्मरण किया गया हो। इसका पुनः-पुनः स्मरण पुण्यदायक है।

कौशिकी–[११] इसका आवाहन करके स्नान करना पुण्यदायक है।[१२] इसे बारम्बार स्मरण करना चाहिए।[१३] इसका आधुनिक नामक कौसी है। अलबेरूनी ने इस नदी का वर्णन किया है।[१४] ब्रह्मपुत्र कुश की सत्यवती नामक पुत्री हो लोकहित करने हेतु नदी रूप में परिवर्तित हो गयी है।[१५] वाराह पुराण में भी इसका वर्णन किया गया है।[१६] सुदूर अतीत काल में दक्षिण-पूर्व भाग में, जहाँ आज तेजपुर बसा हुआ है, वहाँ से पूर्व ब्रह्मपुत्र से यह नदी मिलती थी। तब गंगा से इसका सम्बन्ध नहीं था।[१७] मार्टिन महोदय ने बताया है कि सोंगली से नदिया तक भागीरथी की एक शाखा जाती थी,

---

१. ब्रह्म वै० १।२६।६६—२।६४।५८—३।२८।२६—४।१२९।४६
२. कूर्म पु०, भा० २, अ० ३७
३. मैसूर ऐण्ड कुर्ग, भाग ३, पृ० ८, ८५
४. महाभारत, सभा पर्व ९.२०
५. वही, वन पर्व ८५।२२
६. ब्रह्म वै० ४।१२९।४६
७. मार्क० पु०, ५७।२६
८. ज्या० सृ०, पृ० ५२—सरकार
९. हिन्दी विश्व-कोश
१०. ब्रह्म वै० ३।२८।२५
११. वही २।२६।६८
१२. वही २।६४।५८
१३. वही ३।२८।२५
१४. ज्योग्राफिकल स्टडी आफ ऐन्शिएण्ट ऐण्ड मेडिवल इण्डिया-डी० सी० सरकार, पृ० ४३
१५. रामा० बालका० सर्ग ३४।७-९
१६ अ० १४०
१७. ज्या० डिक्श०—न० ला० डे

यह अब सूख गयी।[1] मार्कण्डेय पुराण में भी इसे हिमालय से निःसृत बताया गया है।[2]

कृतमाला—गंगा आदि पवित्र नदियों के साथ यह भी कलि के भय से मुक्त होने के लिए श्री कृष्ण से प्रार्थना करने गयी थी।[3] यह मलय-पर्वत से उत्पन्न एवं शीतल जल वाली नदी है।[4] डे महोदय ने इसका परिचय वैगा नदी से किया है, जिसके किनारे मदुरा बसी है। [5] किन्तु मार्कण्डेय पुराण में वेग-वाहिनी का नाम आया है।[6] सम्भवतः यह वेग-वाहिनी ही वेगा है। सरकार महोदय भी आधुनिक वैगई (Vaigai) से ही इसका परिचय देते हैं।

क्षेमा—इस पवित्र नदी का स्मरण पुण्यदायक है। [7] इसका वास्तविक परिचय नहीं हो सका है। मत्स्य पुराण (११४।२५) में क्षमा को ऋष्यवान से उद्‌गत बताया गया है। सम्भवतः यह क्षमा ही क्षेमा हो।

गंगा—गङ्गा का वर्णन ऋग्वेद में है।[8] शतपथ ब्राह्मण में भी गंगा का नाम आया है।[9] ऐतरेय ब्राह्मण में भी गङ्गा की प्रशंसा है।[10] तैत्तिरीय आरण्यक में गङ्गा यमुना के मध्य बसने वालों के प्रति विशेष आदर प्रकट किया गया है। गंगा भारत की सर्वश्रेष्ठ नदी है। नदियों की श्रेणी में गङ्गा को ब्रह्मवैवर्त ने सर्वप्रथम स्थान दिया है। ब्रह्मवैवर्त के चारों खण्डों में नदियों की नामावलि दी गई है, और सर्वत्र गङ्गा का नाम प्रथम है।[11] महाभारत[12] में बताया गया है कि मेरु पर्वत के शिखर से चलकर विश्वरूपा गङ्गा चन्द्रकुण्ड में गिरती हैं। गङ्गा द्वारा प्रकटित यह ह्रद समुद्र के समान है। श्री शिव इन्हें यहाँ एक लाख वर्ष तक अपने सिर पर धारण किए रहे। शिव की कृपा से गंगा त्रिपथ-गामिनी हुईं। हिरण्य-शृंग के निकट बिन्दु-सरोवर में प्रविष्ट गङ्गा वहीं से सात धाराओं में विभक्त हुईं। इनका नाम क्रमशः वस्वोकसारा, नलिनी, पावनी, सरस्वती, जम्बू, सीता, गङ्गा और सिन्धु है। गङ्गा के छः जह्नुओं की विशिष्ट स्थितियों का विस्तारपूर्ण वर्णन 'डे' महोदय ने किया है।[13] यह हिमालय से निकल कर भारत-वसुन्धरा को उर्वर करती हुई बंग-पारावार में प्रविष्ट होती है। इसके ही तट पर भारत के विश्वविदित तीर्थ हरिद्वार, प्रयाग और काशी हैं। नारायण श्री कृष्ण की चार प्रियाओं में गङ्गा भी है।[14] राधा और कृष्ण के अंगों से

---

१. ईस्टर्न इण्डिया, ३, पृ०१५ २. मार्क० पु०,अ० ५७।१८ ३. ब्रह्म वै० ४।१२६।४७
४. मार्क० पु०, अ० ५७।२७-२८—विष्णु पु०, अ० द्वितीयांश अ० ३।१२
५. ज्या० डिक्श०—न० ला० डे ६. मार्क ५७।२३ ७ ब्रह्म वै० १।२६।६८
८. इयं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या।
असि मरुद्वृधे वितस्तयार्जिकीये शृणुह्या सुषोमया॥—ऋ० १०।७५।५
९. १३, ५, ४, ११ १०. ८, २३,—८। १४।४
११. ब्रह्म वै० १। २६। ६६।—२।६४।५८—३।२८।२४,—४।१२६।४६
१२. महा०, भीष्म पर्व ६।२८-५० १३. ज्या० डिक्श०, पृ० ६१—न० ला० डे
१४. ब्रह्म वै० २।१२।१।

द्रव रूप में गंगा प्रकट हुई। मानिनी राधा से भयभीत गङ्गा पुनः श्री कृष्ण के चरण-कमल में प्रविष्ट हो गयीं। ब्रह्मा की प्रार्थना पर गङ्गा को पादाङ्गुष्ठनखाग्र से श्री कृष्ण ने प्रकट किया।[1] गङ्गा का विस्तृत वर्णन ब्रह्मवैवर्त में किया गया है।[2]

गण्डकी[3]—यह हिमालय की धवलागिरि श्रेणी से निकलती है। यह केन्द्रीय तिब्बत की दक्षिणी सीमा है। इसका स्रोत दामोदर कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यही जब भूमि पर आता है तो त्रिवेणी घाट कहलाता है।[4] शाल-ग्राम से, जो कि भारत और पुलह का आश्रम था, यह स्रोत ज्यादा दूर नहीं है। शालग्राम के दक्षिण मुक्ति-नाथ का एक मन्दिर है, जिसमें नारायण की मूर्ति है। आजकल यह गङ्गा से सोनपुर में मिलती है। यहाँ मेला लगता है। विष्णु के गण्ड के स्वेद से होने के कारण इसे गण्डकी कहा जाता है। गण्डकी को ही शालग्रामी और नारायणी कहा जाता है।[5] ब्रह्मवैवर्त में बताया गया है कि साध्वी तुलसी का शरीर ही विष्णु-प्रसाद से गण्डकी के रूप में परिणत हो गया।[6] बौद्ध-ग्रन्थों में इसे हिरण्यवती कहा गया है।[7] महाभारत में गण्डकी को सब तीर्थों के जल से उत्पन्न हुई बताया गया है।[8] यह वरुण की सभा में उपस्थित होती है। इसे भारतवर्ष की प्रधान नदियों में माना गया है।[9]

गोदावरी[10]—यह दक्षिण भारत के नासिक जिले में स्थित त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्ग के समीप ब्रह्मगिरि से निकल कर समुद्र में गिरती है। त्र्यम्बक नामक ग्राम नासिक से बीस मील दूर है।[11] इसका वर्णन सौर पु०[12] और ब्रह्म पुराण[13] में हुआ है। त्र्यम्बक में एक तालाब है, जिसे कुशावर्त कहते हैं, जिसके नीचे गोदावरी बहती है। गोदावरी का वह भाग जहाँ त्र्यम्बक है गौतमी कहलाता है। प्रति बारह वर्ष पर लोग इस तालाब में स्नान करने और त्र्यम्बकेश्वर की पूजा करने आते हैं। महादेव के द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में से यह एक है।[14] लंका जाते समय भगवान राम ने इस नदी को पार किया था। भद्राचलम् का मन्दिर इसका स्मारक है। ब्रह्म वैवर्त में गोदावरी की कथा विशेष रूप से वर्णित है। तीर्थ यात्रा में जाती हुई ब्राह्मणी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर रविनन्दन अश्विनी कुमार ने हठात् वीर्याधान कर दिया। अतः इसके ब्राह्मण पति ने रोष से इसका परित्याग कर दिया। इसने स्वयं अपने पति एवं पुत्र से पृथक् होकर योग के द्वारा अपने शरीर को गोदावरी नदी के रूप में परिणत कर लिया।[15]

---

१. ब्रह्म वै० २।१२।४-६ २. वही, प्रकृतिख० अ० १०-१२ ३. वही २।६४।५६
४. ज्या० डिक्श०—डे ५. वाराह पुराण, अ० १४४ ६. ब्रह्म वै० २।२१।३२
७. महा०, शब्दा०-गीता प्रेस ८. आदि पर्व १६६।२०-२१ ९. महाभा० भीष्म० अ० ९।२५ १०. ब्रह्म वै० १।२६।६६—।२।६४।५८—।३।२८।।२६।—४।१२९।४६
११. ज्या० डिक्श०—डे १२. अ० ६९ १३. अध्याय ७७।७८
१४. शिव पु० १, अ० ५४—वाराह पु०, अ० ७९, ८०
१५. ब्रह्म वै० १।१०।१३०

पाणिनि के सूत्र-वार्तिक में गोदावरी का नाम आया है।[1] इसे अग्नि का उत्पत्ति स्थान बताया गया है।[2] यह २०९८ मील लम्बी है।[3]

गोमती[4]—ऋग्वेद में नदी स्तुति में इसकानाम आया है।[5] डे महोदय ने छः गोमतियों का वर्णन किया है—(१) अवध की गोमती (रामा० आदि का० ४९)। (२) गोदावरी के उद्‌गम के निकट, जहाँ त्र्यम्बक महादेव का मन्दिर है, इसे गोमती भी कहते हैं क्योंकि यहाँ गौतम ऋषि की कुटी थी। (३) गुजरात की नदी जिस पर द्वारिका बसी है (स्कन्दपु० अवन्ति खण्ड, अ० ६०)। (४) मालवा में चम्बल की सहायक नदी, जिसके तट पर रिनतम्बुर स्थित है (मेघदूत १।४७)। (५) अफगानिस्तान की अराकोशिया में गोमल नाम की नदी, जो कि डेरा इस्माइल खाँ और पहाड़ पुर के बीच सिन्धु नदी में गिरती है। (६) पंजाब में काँगड़ा जिले की एक नदी।'[6]

मालवा के चम्बल की सहायक नदी न मानकर उसे श्री अवस्थी जी चम्बल ही मानते हैं।[7] ऋग्वेद के दशम मण्डल में गोमती से सिन्धु का संगम लिखा है।[8] ऋग्वेद ६।६१।१९ में "गोमती:" बहुवचन में प्रयोग भी कई गोमतियों का होना सिद्ध करता है। रथवीति के आश्रम गोमतियों के तट पर थे।[9]

गंगा की सात धाराओं में से एक गोमती भी है।[10] यह विश्वभुक् नामक अग्नि की पत्नी है।[11] दिवोदास की नगरी का एक छोर गंगा के उत्तर तट पर और दूसरा छोर गोमती के दक्षिण किनारे पर था।[12]भगवान् राम ने जंगल जाते समय वेद-श्रुति (बिसुई), गोमती और स्पन्दिका (सई) को पार किया था। वाल्मीकि ने 'गोमती' गोयुतानूपाम् कहकर इसके गोमती नाम की सार्थकता का भी संकेत किया है।[13] इसके ही तट पर लखनऊ और जौनपुर आदि प्रसिद्ध शहर बसे हैं। गोमती का वर्णन अलबेरूनी ने भी किया है।[14]

---

१. पाणिनि ५।४।७५—वार्तिक-संख्यायां: नदीगोदावरीभ्यां च ॥
२. महाभारत, वन पर्व २२२।२४
३. का० ग्र०, अभि० कोष, पृ० १२२—सीताराम चतुर्वेदी
४. ब्रह्म वै० १।२६।६९ ५. ऋग्वेद १०।७५।६
६. इण्डियन आण्टिक्वेरी २२।६७४ ७. वेद-धरातल, पृ० ३०४ श्री गि० च० अवस्थी
८. वही, पृ० ३०२ ९. वही, पृ० ३०३
१०. महाभा० शब्दा०—गंगा, गोमती—गीता प्रेस ११. महाभा० भीष्म० ९।१८
१२. महाभा० अनुशा० ३०।१८ १३. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या० ४९।१०-१२
१४. ज्या० स्ट० पृ० ४३—डी० सी० सरकार

चन्द्रभागा[१]—(१) यह नाम बिगड़ कर आजकल चिनाव हो गया है। इसका स्रोत लोहित्य-सरोवर है। (कालिका० अ० ८२)। यह लाहूल में लद्दाख के दक्षिण या तिब्बत के मध्य में है।[२] (२) कृष्ण की सहायक नदी भीमा से भी इसका परिचय किया गया है।[३]

वस्तुतः चन्द्रा और भागा का संगम लाहूल में होता है। इस स्थान से नीचे दोनों का सम्मिलित जल चन्द्रभागा का रूप धारण करता है। इसका विस्तार २२०० वर्ग मील है।[४] इसका वर्णन महाभारत में भी है।[५] अलबेरूनी ने भी चन्द्रभागा का स्मरण किया है। उसने इसे चन्द्राहा कहा है।[६]

चन्द्ररेखा[७]—इस नदी के विषय में ठीक से कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता है। जिस प्रकार सुवर्णा और सुवर्णरेखा एक ही नदी है उसी प्रकार चन्द्रा और चन्द्ररेखा को एक ही माना जा सकता है। इसका वास्तविक परिचय कठिन है। इसका स्मरण पुण्यदायक है।

चम्पा[८]—यह अंग और मगध के मध्य बहने वाली नदी थी।[९] इसका वर्णन तालेमी ने जाबा नाम से किया है।[१०] आधुनिक भागलपुर का नाम चम्पा है। ऐसा प्रतीत होता है कि चम्पा नगरी से सम्बद्ध सम्मान के कारण यहाँ की भागीरथी ही चम्पा नाम से स्मरण की गयी है। प्राचीन भारत में चम्पा की विशेष ख्याति हो चुकी है। महाभारत में चम्पा में भागीरथी के जल से तर्पण की विशेष महिमा बतायी गयी है।[११] त्रेता युग में यहाँ राजा लोमपाद अवस्थित थे।[१२] द्वापर में यह अधिरथ सूत की राजधानी थी। यहीं गंगा जी से राधा को, वह पिटारी मिली थी, जिसमें शिशु-कर्ण बन्द था।[१३]

चेल-गंगा[१४]—यह कावेरी नदी का अपर नाम है।[१५] कावेरी के स्मरण के साथ चेलगंगा का स्मरण इसकी महत्वपूर्णता का संकेत है। इसका वर्णन हरिवंश ने भी किया है।[१६]

त्रिपर्णाशा[१७]—इसका वास्तविक परिचय उपलब्ध करने में अनुमान का आश्रय

---

१. ब्रह्म वै० २।६४।५८—२।१७।२८ . २. ज्या० डिक्श—डे ३. वही—डे
४. हिमालयन् पिल्ग्रिमेज—वी० एन० दातार, पृ० ६३ ५. सभा पर्व ९।१९
६. ज्या० स्ट०, पृ० ४३—डी० सी० सरकार ७. ब्रह्म वै० २।६४।५९
८. वही २।६४।५९ ९. चाम्पेयजातक, जातकाज कैम्ब्रिज एडीशन, ४, पृ० २८१
१०. ऐन्शियेण्ट इण्डिया—ऐज़ डिस्क्राइब्ड बाई तालेमी, मैक्रिण्डले, पृ० २०९
११. महाभा० वन, अ० ८५।१४-१५ १२. महाभा०, वन० ११३ अ० १५
१३. महाभा०, वन पर्व, अ० ३०८।२६—३०९ अ०, १४. ब्रह्मवैवर्त २।६४।६०
१५. ज्या० डिक्श—डे १६. हरिवंश अ० १३१ १७. ब्रह्म वैवर्त २।६४।६०

लेना पड़ता है। पर्णाशा ही ब्रह्मवैवर्त में त्रिपर्णाशा बन गयी ऐसा अनुमान होता है क्योंकि यहाँ नदियों की नामावलि में त्रिपर्णाशा है, पर्णाशा नहीं। ऐसा सम्भव है कि तीन पृथक् प्रवाही जलों का सम्मिलित रूप ही त्रिपर्णाशा का रूप धारण कर सका हो। आजकल पर्णाशा बदल कर बनास हो गया है। यह नदी उदयपुर राज्य से निकल कर चम्बल में मिलती है। इसका नाम महाभारत[१], वायुपुराण,[२] वाराह पुराण[३], तथा मत्स्य पुराण[४] में आया है।

यद्यपि सरकार महोदय ने चम्बल की सहायक बनास को ही पर्णाशा स्वीकार किया है, किसी अन्य के सम्बन्ध में बनास होने का निश्चय नहीं किया है।[५] किन्तु नन्दलाल डे महोदय ने एक अन्य बनास की भी चर्चा की है। यह पश्चिम भारत की एक नदी है, जो कच्छ की खाड़ी में गिरती है। यह उषवदात के नासिक-शिला-लेख में (संख्या १०) उल्लिखित है। संख्या १४ में बनासा शब्द आया है।[६]

दक्षा[७]—इस नदी का वास्तविक परिचय कठिन है। तथापि दक्ष के नाम पर इस नदी का नामकरण प्रतीत होता है। नदियों के परिचय में कनखला का नाम इसके पूर्व आ चुका है। यह दक्ष के यज्ञ-भूमि की पार्श्व-वर्तिनी है। ब्रह्मवैवर्त[८] में नदियों की नामावलि में 'दक्षा' आने पर कनखला नहीं है और 'कनखला' आने पर 'दक्षा' नहीं है। अतः ऐसा अनुमान होता है कि 'दक्षा' कनखला का पर्याय हो।

नन्दिनी[९]—इस नदी का सम्भवतः लेख एवं पाठ के सुधार-परिष्कार के कारण कई नाम हो गया है। नन्दिनी, नन्दना, चन्दना तथा बन्धना नामों से इस नदी को स्मरण किया गया है।[१०] आजकल इसे साबरमती कहा जाता है। नन्दिनी नामक तीर्थ में स्नान करके मनुष्य नरमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।[११]

नर्मदा[१२]—यह नदी आज भी अपने नाम से जानी जाती है। यह मध्य प्रदेश की नदी है। यह अमर-कण्टक पर्वत से निकल कर भड़ोंच के पास खम्भात की खाड़ी में गिरती है। इस नदी का समुद्र से जहाँ संगम हुआ है उसे नर्मदा-उदधि-संगम कहा जाता है। यह संगम एक तीर्थ है।[१३] नर्मदा-नदी का विस्तृत वर्णन स्कन्द पुराण के

१. महाभा० सभा०, अ० ६५।६—सभा पर्व, अ० ९।२१
२. वायुपुराण ४५।९७
३. वाराह पुराण, अ० २१४।४८
४. मत्स्य पुराण, अ० ११४।२३
५. ज्या० स्ट०—सरकार, पृ० ४५
६. ज्या० डिक्श०—डे
७. ब्रह्म वै० १।२६।६८
८. वही १।२६।६६-६९— २।६४।५८-६०
९. वही, १।२६।६७
१०. ज्या० स्ट०, पृ० ४५—सरकार
११. महा०, वन पर्व, अ० ८४।१५५
१२. ब्रह्म वै० १।२६।६६—२।६४।५८—३।२८।२६—४।१२९।४६
१३. मत्स्य पुराण, अ० १९३

आवन्त्य खण्डान्तर्गत रेवा खण्ड में वर्णित है। नर्मदा का उत्पत्ति स्थान वंश-गुल्म नामक तीर्थ है (महाभा० वन०, अ० ८५।६)।

नलिनी[१]—यह गङ्गा की सात धाराओं में एक धारा है।[२] निखिलनाथ राय ने नलिनी का परिचय पद्मा से ही किया है।[३] किन्तु 'डे' महोदय ने लिखा है कि पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, अध्याय ६२ से लगता है कि पद्मा (पद्मावती) और नलिनी दो नदियाँ हैं। नवीनचन्द्र दास का विचार है, जिससे कि 'डे' महोदय सहमत हैं, कि नलिनी पूर्व को बहती है। अतः गङ्गा के स्रोत के निकट इसे ब्रह्मपुत्र मानना ठीक है।[४] सरकार महोदय का विचार इससे बिल्कुल पृथक् है। वे इसका परिचय साल्वीन् अथवा मेकाङ्ग से करते हैं।[५]

पद्मावती[६]—बंगाल (बाँगला देश) की पद्मा ही पद्मावती है।[७]

पनसा[८]—'तालेमी' ने पनसा का वर्णन किया है। उसके मानचित्र में ज़रद्रास और सिन्धु के संगम से एक डिग्री दक्षिण 'पनसा' का स्थान है। किन्तु मैक्रिण्डले ने, जिसने स्वयं इस स्थान को देखा है, बताया है कि तालेमी को स्थान में कुछ भ्रम हो गया। इतना अवश्य अनुमान लगता है कि पनसा सिन्धु से नीचे थी।[९] सेण्ट मार्टिनके मतानुसार इसके नाम का परिचय ओसनपुर में सुरक्षित है, जो मित्तन कोट से नीचे २१ मील दूर नदी के बायीं ओर एक नगर है।[१०]

पम्पा[१२]—ऋष्यमूक पर्वत की उपत्यका में सुशोभित यह सरोवर[११] नदी के रूप में हो गया है। इसका उद्गम ऋष्यमूक है। वाल्मीकि रामायण में इसका श्लक्षण वर्णन किया गया है। इसे शीतल-जल का सागर कहा गया है।[१३] वनवास के समय श्री राम यहाँ आये थे। इसका वर्णन महाभारत में भी है।[१४] पम्पा नदी तुंगभद्रा की सहायक नहीं है।[१५]

पारिभद्रा[१६]—इसका परिचय प्राप्त नहीं है।

---

१. ब्रह्म वै० १।२६।६७ २. महा०, भीष्म०, अ० ६।४८—वाल्मीकि, बाल०, अ० ४३।१२-१५ ३. हिस्ट्री आफ मुर्शिदाबाद—नि० ना० राय, पृ० ५७
४. ऐन्शियण्ट ज्या० आफ एशिया ५. ज्या स्ट०, पृ० ५६—'सरकार'
६. ब्रह्म वै० १।२६।६८—२।६४।६०—वही ४।१२६।४६
७. ज्या० डिक्श०—'डे'। ८. ब्रह्म वै० ३।२८।२५
९. ऐन्शिएण्ट इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड बाई तालेमी—मैक्रिण्डले, पृ० १५०
१०. वही, पृ० १५० ११. रामायण, किष्किन्धा काण्ड,
१२. ब्रह्म वै० २।६४।५६ १३. वाल्मीकीय रामायण, आरण्य काण्ड, सर्ग ७५।२०
१४. महा० वन पर्व, अ० २७९, ४४ १५. ज्या० डिक्श०—'डे'
१६. ब्रह्म वै० २।६४ ५६

पुण्यदा[१]—यह गङ्गा की द्वादश विशेष संगिनियों में है। गङ्गा के साथ कलिप्रभाव से त्राण पाने की युक्ति-पृच्छा की अभिलाषा से पुण्यदा भी कृष्ण के सम्मुख गई थी। यहाँ भारत की प्रसिद्ध नदियों का नाम आया है। पुण्यदा धार्मिक दृष्टि से अवश्यमेव महत्वपूर्ण है। महाभारत में पुण्य-तोया का नाम आता है। मार्कण्डेय जी ने भगवान बाल मुकुन्द के उदर में भ्रमण करते हुए इसका दर्शन किया था।[२] सम्भवतः पुण्य-तोया और पुण्यदा एक हैं। इसका किसी अन्य नदी के साथ परिचय नहीं हो पाया है।

पृथ्वी[३]—पृथ्वी तथा मही पर्यायवाची शब्द हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुराणों में नामों के प्रयोग में पर्यायवाची शब्दों को ग्रहण किया गया है। मार्कण्डेय[४] आदि पुराणों में जहाँ मही नदी का नाम लिया गया है, वहाँ पृथ्वी नहीं है, और जहाँ ब्रह्मवैवर्त में पृथ्वी का नाम लिया गया है तो मही नहीं है। अतः पृथ्वी और मही को एक मानना नितान्त समुचित है। मार्कण्डेय पुराण में मही का उद्गम मालवा में पारियात्र पर्वत को स्वीकार किया गया है।[५] इसका परिचय मुजफ्फरपुर जिले की गण्डक की सहायक नदी से भी किया गया है। इस सहायक नदी का नाम भी गण्डक है। अन्तर यह है कि बड़ी गण्डक की सहायक नदी का नाम छोटी गण्डक है। यही छोटी गण्डक पृथ्वी अथवा मही नदी है। गङ्गा और बड़ी गण्डक के संगम से आधा मील ऊपर छोटी गण्डक और बड़ी गण्डक का संगम हुआ है।[६]

पुष्प-भद्रा[७]—श्री काणे महोदय ने इसे हिमालय के उत्तरी ढाल पर एक नदी बताया है। सम्भवतः उन्हें इसका वास्तविक परिचय नहीं हुआ।[८] ब्रह्म वैवर्त में इसका विशेष परिचय है।[९] इसके तट पर सिद्धों का आश्रम सिद्धि-क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान हैदराबाद के निकट आज भी सिद्धि-क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इसे कपिल का तप-स्थान बताया गया है। पश्चिम सागर से पूर्व और मलय से पश्चिम, श्री शैल के उत्तर तथा गन्ध-मादन के दक्षिण इस नदी का स्थान बताया गया है। यह हिमालय से निकली है। शरावती इसकी सहायक नदी है। यह गोमन्त पर्वत को अपने बायें छोड़ते हुए पश्चिम सागर में गिरती है।

प्रभा[१०]—इसका परिचय अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया है। यह भारत की पुण्यवती नदियों में है।

---

१. ब्रह्म वै० ४।१२६।४७ २. महा०, वन पर्व, अ० १८८।१०४
३. ब्रह्म वै० १।२६।६८ ४. मार्कं०, अ० ५७।१६
५. वहीं, अ० ५७।२० ६. ज्या० डिक्श०—न० ला० डे
७. ब्रह्म वै० ३।२८।२६ ८. धर्म शा० इति०, पृ० १४५६—पी० वी० काणे, अनुवाद-काश्यप ९. ब्रह्म वै० २।१८।१६-२० १०. वही २।६५।६०

प्रमदा[1]—यह नाम शान्तिदा के स्थान पर ब्रह्म वैवर्त की कुछ प्रतियों में उपलब्ध है। किन्तु अभी तक शान्तिदा अथवा प्रमदा का परिचय-स्रोत उपलब्ध नहीं है। यह भारत की पुण्यवती नदी है।

बाहुदा[2]—इसका परिचय तीन नदियों से किया जाता है। इसे यारकन्द की भी नदी बताया गया है, जिस नदी पर यारकन्द शहर बसा है। इसे जरफशान कहते हैं। मार्कण्डेय पुराण में इसे हिमालय से निकलने वाली नदी कहा गया है। पार्जीटर ने मार्कण्डेय पुराण (अ० ५७।१७) में इसका परिचय राम गङ्गा से किया है। किन्तु 'डे' महोदय ने महाभारत[3] के आधार पर उक्त कथन को असत्य सिद्ध कर दिया है।[4] इसका परिचय धवला अथवा आधुनिक धुमेला से किया जाता है। यह राप्ती की सहायक बूढ़ी राप्ती भी कहलाती है। ऋषि लिखित ने इसमें स्नान करके अपना बाहु प्राप्त किया था। अतः यह बाहुदा कहलायी।[5] शिव पुराण में आया है कि मान्धाता की पितामही गौरी अपने पति 'प्रसेनजित' के मार्ग से 'बाहुदा' नदी तक आई थीं।[6] बाहुदा के विशेष विवेचन में 'सरकार' महोदय ने इसके बहुदा नाम की भी चर्चा की है।[7] बाहुदा पर ब्रह्मचर्य पालन-पूर्वक एक रात उपवास करने से मनुष्य स्वर्लोक में प्रतिष्ठित होता है, और देव-सत्र का फल पाता है।[8] इसका जल भारतवासी पीते हैं।[9] अलबेरूनी ने इसे बाहुदा कहा है।[10] कुछ लोग इसे राम गङ्गा कहते हैं, जो कन्नौज के निकट गङ्गा में मिलती है।[11]

भद्रा[12]—यह गङ्गा की एक शाखा है।[13] नृसिंग पुराण के अनुसार वह नदी जिस पर हरि-हर अवस्थित हैं।[14] इसका वास्तविक परिचय अभी नहीं हो पाया है।

भोगवती[15]—प्रयाग में वासुकि-नाग का तीर्थ विशेष, जो गङ्गा में ही है। इसमें स्नान से अश्वमेध-यज्ञ का फल मिलता है।[16] इसे सरस्वती नदी का नामान्तर भी बताया गया है।[17]इसका वर्णन मत्स्य[18],अग्नि[19] तथा नारदीय[20] पुराण में भी है।

---

१. ब्रह्म वै०१।२६।६६ की पाद टिप्पणी २ ब्रह्म वै० ४।१२६।४७
३. महा० वन०, अ० ८७ ४. ज्या० डिक्श०, बाहुदा—'डे'
५. महा०, शान्ति०, अ० २२—हरिवंश, अ० १२ ६. शिव पुराण ६, अ० ६०
७. ज्या० स्ट०—सरकार ८. महाभा०, वन० ८४।६७-६८—वन० ८७।२७—वन० ९५।४ ९. महा०, भीष्म० ९।१४-२९ १०. ज्या० स्ट०, पृ० ४३-सरकार
११. वही १२. ब्रह्म वै० ३।२८।२६। १३. धर्मशा० इति०, पृ० १४६३—पी० वी० काणे, काश्यप १४. नृसिंह पुराण ६५।१८
१५. ब्रह्म वै० १।२६।६८ १६. महा० वन० अ० ८५।८६—उद्योग पर्व १८६।२७
१७. महा०, शब्दा० कोष—गीता प्रेस १८. अ० १०६।४३—अ० ११०।८
१९. अ० १११।५ २०. २।६३।९५

मनसा—यह आसाम-प्रदेश की एक नदी है। किन्तु ब्रह्मवैवर्त में देवियों के अतिरिक्त नदियों की श्रेणी में इसका नाम नहीं आया है।

महापगा[१]—महाभारत में इसे भारत की मुख्य नदी माना गया है। इसका जल यहाँ के निवासी पीते हैं।[२] कूर्म पुराण की महानदी[३] तथा मार्कण्डेय पुराण का महानद[४] इसके नामान्तर हैं। इसको आनन्दाश्रम पूना के संस्करण वाले मार्कण्डेय पुराण में 'सुमेरुजा' कहा गया है।[५] किन्तु सरकार महोदय ने सभी पुराणों की तुलना करते हुए इसे ऋक्ष-पाद-प्रसूता स्वीकार किया हैं। वस्तुतः इसका परिचय अभी नहीं हो पाया है।

मालिनी[६]—'डे' महोदय ने इसे ही मन्दाकिनी स्वीकार किया है। इन्होंने यह भी बताया है कि मालिनी नदी उन प्रदेशों के बीच से बहती है, जिसका पश्चिम भाग प्रलम्ब और पूर्वी भाग अपरताल कहलाता है। मेगास्थिनीज ने इसे ऐरिनिसीज कहा है। शकुन्तला के पालक-पिता कण्व इसी नदी के किनारे पर रहते थे। लासेन ने इसका वर्तमान नाम 'चूका' बताया है, जो सरयू की पश्चिमी सहायक नदी है।[७]

यमुना[८]—इस नदी का नाम ऋग्वेद में आया है।[९] ऐतरेय ब्राह्मण में इसका वर्णन हुआ है।[१०] भारतवर्ष की सर्वप्रसिद्ध नदियों में इसकी गणना है। नदियों के नाम वर्णन में इसे सर्वत्र ब्रह्म वैवर्त में द्वितीय स्थान दिया गया है। यह यमुना का सौभाग्य है कि उसके तट पर श्री कृष्ण के बाल-जीवन की साधारण एवं असामान्य सभी प्रकार की क्रीड़ाएँ हुईं। यह रवि-तनया एवं यमराज की सहोदरा है। हिमालय के भाग कलिन्द पर्वत से प्रकट होने के कारण इसे कालिन्दी कहा जाता है। यमुनोत्तरी से प्रकट होकर यह प्रयाग में गंगा से मिलती है। यमुना ही के द्वीप में पराशर जी ने व्यास को सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न किया। भारतवर्ष की विश्व-विदित राजधानी दिल्ली यमुना के ही तट पर है। यमुना के तटीय नगर मथुरा एवं वृन्दावन का महत्व आज भी कम नहीं है। यमुना आज भी अपने ही नाम से जानी जा रही है।

---

१. ब्रह्म वै० १।२६।६७
२. महा०, भीष्म० ६।२८
३. कूर्म० १, अ० ४७।२८-२९
४. मार्क०, अ० ५७।२१
५. वही, अ० ५७।२३, पृ० २९७
६. ज्या० स्ट०—पुराणों में नदियाँ–३
७. ज्या० डिक्श०–मालिनी—'डे'
८. ब्रह्म वै० १।२६।६६—२।६४।५८—३।२८।२४—४।१२६।४७
९. ऋग्वेद मं० १०।७५ सू०।५—७।१८।१९—१०।१४५।५
१०. ऐतरेय ब्रा० ८।१४।४

लोक-प्रसाधनी[१]—इसका वास्तविक परिचय उपलब्ध नहीं है। यह भारत की पुण्यमयी नदी है।

विद्याधरी[२]—इस नदी का वास्तविक परिचय उपलब्ध नहीं है। किन्तु उसके नाम से अनुमान होता है कि यह विद्याधरों के निवास हिमालय की ही कोई छोटी नदी है। मार्कण्डेय पुराण[३] ने हजारों बरसाती नदियों का संकेत किया है, जिसका नाम बताना बड़ा कठिन है।

विपाशा[४]—विपाशा का नाम ऋग्वेद में भी आया है।[५] यह पंचनद प्रदेश की एक नदी है। जिन पाँचों नदियों के कारण पंचनद नाम से यह प्रदेश प्रसिद्ध हुआ, उनमें से एक यह भी है। अपने मृत-पुत्रों के शोक में, जिन्हें कि विश्वामित्र ने मार डाला था, ऋषि वशिष्ठ ने स्वयं अपने शरीर एवं हाथ पैर को रस्सी से बाँध कर इस नदी में गिरा लिया, किन्तु ब्रह्म-हत्या के भय से नदी ने ऋषि को उनके बन्धन (पाश) तोड़ कर उन्हें तट पर फेंक दिया। अतः यह विपाशा नाम से प्रसिद्ध हुई। मोनाली गाँव के (नदी के) दूसरे तट पर वशिष्ठ ग्राम है।[६] ब्रह्मचर्य-पालन पूर्वक तीन रात तक इसके तट पर निवास तथा पितरों के तर्पण का विशेष महत्व है।[७] आज-कल यह नदी व्यास के नाम से प्रसिद्ध है। यह हिमालय से निकल कर सिन्धु में मिलती है।

विरजा[८]—गया जिले में आधुनिक वैतरणी ही विरजा है। उड़ीसा में वैतरणी के किनारे जयपुर के चारों ओर का दश मील का भूभाग विरजा-क्षेत्र बताया गया है।[९] इसका वर्णन महाभारत[१०], ब्रह्म पुराण[११] आदि में है। गोलोक में विरजा कृष्ण की प्रियाओं में है।[१२] श्री काणे महोदय ने भी विरजा को उड़ीसा की नदी स्वीकार किया है।[१३] विरजा की विस्तृत कथा ब्रह्म वैवर्त में वर्णित है। यह कथा विशेष विलक्षण है। इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र किसी पुराण में नहीं उपलब्ध है।

विश्व-कार्या[१४]—इस नदी का वास्तविक परिचय उपलब्ध नहीं होता है। इस नाम के विश्लेषण से तो यह कोई बड़ी नदी लगती है किन्तु ऐसा सम्भव है कि यह कोई बरसाती बड़ी नदी हो और इसका सम्बन्ध कुरुक्षेत्र के अनेकों तीर्थों में भगवान कृष्ण के विराट् रूप से हो।

---

१. ब्रह्म वै० १।२६।६८ २. वही १।२६।६९
३. मार्क०, अ० ५७।३१-३२ ४. ब्रह्म वै० २।६४।६० ५. ऋग्वेद ४।३०।११
६. ज्या० डिक्श०—'डे' ७. महा०. भीष्म० ९।१५
८. ब्रह्म वै० २।६४।६० ९. ज्या० डिक्श०—'डे'
१०. महा०, वन पर्व, अ० ८५ ११. ब्रह्म पुराण, अ० ४२
१२. ब्रह्म वै० ४।३।२ १३. वही ४।२,३ अध्यायों में
१४. ब्रह्म वै० १।२६।६८

वैष्णवी[१]—इस नदी का भी वास्तविक परिचय नहीं मिलता है। नाम से इतना अनुमान अवश्य होता है कि इसका सम्बन्ध विष्णु अथवा वैष्णवी देवी (काश्मीर) से है।

शत-ह्रुदा[२]—इसका आधुनिक नाम सतलज है। यह पंजाब की पाँच प्रसिद्ध नदियों में है। इन्द्रीसा पर सतलज और व्यास के संगम से चिनाब के संगम तक यह घग्गर या घर भी कही जाती है। घर को वहाँ के निवासी 'नई' कहते हैं।[३] कुछ अधिकारी विद्वान् सतलज को पंचनद में नहीं मानते।[४] इसका वर्णन महाभारत में भी किया गया है।[५] इसका वर्णन ऋग्वेद में भी हुआ है।[६] इसका विस्तृत विवेचन श्री अवस्थी जी ने भी किया है।[७]

शरावती[८]—विलफोर्ड महोदय के अनुसार रुहेलखण्ड में बदायूँ जिले की वाण-गंगा ही शरावती है।[९] किन्तु अवस्थी जी ने पद्म पुराण[१०] के आधार को विल्फोर्ड महोदय का भ्रम बताया है।[११] आर० एल० मित्र ने ललित विस्तर, पृ० ६ में फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) को शरावती स्वीकार किया है, किन्तु फैजाबाद अथवा श्रावस्ती (आधुनिक सहेत-महेत—श्रावस्ती महती) को शरावती मानने में कोई वास्तविक प्रमाण नहीं है।[१२] मैक्रिण्डले के अनुसार एरियन की सोलो-मटीज नदी यही है।[१३] दिव्यावदान शरावती को शहर और नदी दोनों बताता है।[१४] यह पुण्ड्रवर्धन के दक्षिण-पूर्वी भाग में था। नदियों के वर्णन में अमरकोशकार ने वारिवर्ग में शरावती का नाम गिनाया है।[१५] अमरकोश-भूमि वर्ग में बताया गया है कि (शरावत्यास्तुयो वधे:। देश: प्राग्दक्षिण: प्राच्य:[१६] उदीच्य: पश्चिमोत्तर:॥) शरावती के दक्षिण और पूर्व का भाग प्राच्य है, पश्चिम और उत्तर का भाग उदीच्य है। इस प्रकार यह पंजाब की रावी ही है। व्याकरण महाभाष्य के 'अव्ययात्त्यप्' सूत्र में शाकल को उदीच्य देश और वाहीक देश कहा गया है, और 'एङ् प्राचां देशे' सूत्र के महाभाष्य में पंजाब के नगरों में प्राच्य व्यवहार

१. ब्रह्म वै० १।२६।६६ २. वही २।६४।६०
३. ज्या० डिक्श०—डे—जे० ए० एस० बी०. चार, पृ० १७६
४. ज्या० डिक्श०—'डे' ५. महा०, आदि० १७६।२६
६. ऋग्वेद, मं० १०।७५।५ ७. वेद-धरातल, पृ० ६७५, ६७६
८. ब्रह्म वै० ४।१२६।४७ ९. एशियाटिक रिसर्चेज, वाल्यूम १४, पृ० ४०६
१०. पद्म०, स्वर्ग० अ० ३
११. वेद धरातल, पृ० ६४७, ६४८—श्री गि० च० अवस्थी
१२. वही, पृ० ६४८-४६—श्री गि० च० अवस्थी
१३. इण्डिया आफ एरियन, पृ० १८६—मैक्रिण्डले १४. दिव्यावदान—अ० १—कावेल
१५. अमरकोश, प्रथम काण्ड, वारि वर्ग, ३४
१६. अकरकोश, द्वि० का०, भूमि वर्ग ६-७

दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार श्री अवस्थी जी रावी को ही शरावती मानते हैं। वस्तुतः यही उचित भी है। रघुवंश[1] महाकाव्य में शरावती नाम आया है। यह पुष्प-भद्रा की सहायक नदी बतायी गयी है।[2]

शान्ता[3]—इसका वास्तविक परिचय उपलब्ध नहीं है।

शान्तिदा[4]—इसका वास्तविक परिचय उपलब्ध नहीं है।

शिवा[5]—इस नदी का भी कुछ परिचय नहीं मिलता है। इसका वर्णन वामन पुराण[6] तथा गरुड़ पुराण[7] में भी हुआ है।

श्वेत-गंगा[8]—नाम से तो प्रकट ही है कि यह गंगा का ही कोई भाग हो अथवा गंगा जैसी ही प्रतिष्ठित और बड़ी नदी हो। पुराणों में नामों का मिलता-जुलता ऐसा बहुत सा हेर-फेर है। यहाँ भी यही सम्भव है। ऋग्वेद में (८।२६।१८,१८) श्वेत-यावरी नदी का नाम आया है। यह शोण का अपर नाम है।[9] शोण का एक नाम श्वेता भी है।[10] इन नामों से श्वेत-गंगा की पूर्ण समानता है अतः श्वेत-गंगा शोण का ही नामान्तर हैं। श्वेत जल होने के कारण ही यह श्वेत गंगा है।

सती[11]—इस नदी का आधुनिक नाम सई है। भगवान राम वन गमन के अवसर पर इसे पार किये थे। इसी का दूसरा नाम स्यन्दिका[12] है। जिस प्रकार वेद श्रुति आज बिसुई है उसी प्रकार यह सती भी सई है। यह जौनपुर जिले के पूर्वी भाग में गोमती से मिलती है।

सरयू[13]— परम-पावन अयोध्या नगर इसी के तट पर है।[14] 'मिलिन्द पन्ह'[15] के प्रमाण से यह शरभू है। कुमायूँ की पर्वत श्रेणी से प्रकट होती है। काली नदी से मिलने पर आगे नीचे यह सरयू कहलाती है। घाघरा के अतिरिक्त इसे देवा भी कहते हैं।[16] महाभारत[17] में इसका उद्‌गम मानस-सरोवर बताया गया है। यह स्पष्ट भी कर दिया गया है कि कैलास की ओर जाती हुई गंगा को वशिष्ठ जी मानस सरोवर में ले आये। वहाँ आते ही गंगा जी ने सरोवर का बाँध तोड़ दिया। उससे जो स्रोत

---

१. रघुवंश—१५।९७ २. इसी भाग में देखिए—पुष्पभद्रा ३. ब्रह्म वै० १।२६।६६
४. ब्रह्म वै० १।२६।६६ ५. वही १।२६।६८
६. ज्या० आफ० ऐ० एण्ड मेडी० इण्डिया—सरकार, पृ० ४७
७. गरुड़पुराण १।५५।८ ८. ब्रह्म वै० २।६४।५६
९. वेदधरातल, पृ० ६७७—अवस्थी १०. ज्या० डिक्श०—'डे', पृ० २००
११. ब्रह्म वै० १।२६।६६ १२. इसी भाग में—गोमती १३. ब्रह्म वै० ३।२८।२५
१४. रामा०, बाल, अ० २४ १५. मिलिन्द पन्ह ४, १, ३५
१६. ज्या० डिक्श०—'डे' १७. महा०, अनुशासन०, अ० १५५

निकला वही सरयू है। तालेमी[1] ने सरयू को सरबोज और अलबेरूनी[2] ने सरवा कहा है। काशिका[3] में सरयू के जल को सारव कहा गया है। अयोध्या पहुँचने के पहले जहाँ सरयू घाघरा से मिली है गोंडा जिले में वहीं उत्तर पूर्व रेलवे का सरयू स्टेशन है।

सरस्वती[4]—ब्रह्मवैवर्त के चारों खण्डों में सरस्वती का स्मरण किया गया है। यह आज भी सरस्वती के ही नाम से प्रसिद्ध है। डे महोदय ने अपने भौगोलिक कोष तथा श्री गिरीशचन्द्र अवस्थी ने वेद-धरातल में सरस्वती का विस्तृत विवेचन किया है। यह पंजाब में सिरमूर राज्य की पहाड़ी से निकल कर थानेश्वर और कुरुक्षेत्र होती हुई सिरसा जिले की कागार (दृषद्वती) नदी में विलीन हो गयी है।[5] वैदिक-काल में सरस्वती बहुत बड़ी नदी थी, यह सागर तक बहती थी।[6]

(१) लूनी के साथ पुष्कर झील से निकलने वाली नदी पुष्कर-सरस्वती कहलाती है।[7] यह कच्छ की खाड़ी में गिरती है।

(२) माउन्ट आबू से निकली गुजरात में सोमनाथ के निकट रोनाक्षी नामक एक छोटी नदी का भी सरस्वती से परिचय दिया जाता है। यह कोटेश्वर महादेव से अरासोर की संगमर्मरी पहाड़ियों पर होकर जाती है। इसे प्रभास सरस्वती अथवा प्राची सरस्वती कहते हैं।[8] इसी नदी के किनारे पिप्पल-वृक्ष के नीचे सोमनाथ के निकट कृष्ण ने अन्तिम श्वास लिया।

(३) अराकोशिया या पूर्वी अफगानिस्तान के कन्दहार जिले की एक नदी, जिसे जिन्दावेस्ता में हरखैती लिखा है, सरस्वती है। यह बिहिस्तुन लिपि में हरउवतिश लिखित है।[9]

(४) अफगानिस्तान की हेलमन्द नदी आवेस्ता की हरखैती नदी है।[10]

(५) अराकोशिया की आरगन्दाब नदी हिल्लेब्राण्ट की सरस्वती नदी है।[11]

(६) अलकनन्दा (गंगा) की सहायक नदी, जो गढ़वाल में है।

---

१. ऐज डेस्क्राइब्ड इण्डिया-तालेमी, मैक्रिण्डले—पृ० ९९

२. ज्या० आफ ऐ० मेडी० इ०, पृ० ४३—सरकार   ३. काशिका ६।४।१७४

४. ब्रह्म वै० १।२६।६६—२।६४।५८—३।२८।२६—४।१२९।४६

५. कालिदास ग्रन्थावली, अभि० कोष—पृ० १५९—सीताराम चतुर्वेदी

६. ऋग्वेद-संहिता, पृ० ४६—मैक्समूलर

७. पद्म पु०, सृष्टि खण्ड, अ० १८

८. स्कन्द पु०, प्रभास खण्ड प्रभा० माहा०, अ० ३५, ३६

९. राबिन्सन का हेरोडोटस, २, पृ० ५९१   १०. वैदिक इण्डिया—रागोजिन

११. वैदिक इण्डेक्स—मैक्डानल, कीथ २, ४३७

इस प्रकार श्री नन्दलाल डे ने छः सरस्वतियों का वर्णन किया है। किन्तु श्री गिरीशचन्द्र अवस्थी जी ने बताया है कि सरस्वती ऋग्वेद में समुद्र में गिरती हुई जब वर्णित है तब अराकोशिया की समुद्र तक न जाने वाली हेलमन्द या आरगन्दाब को सरस्वती बनाने वाले लोग कितनी धाँधली कर रहे हैं। श्री अवस्थी ने विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित सरस्वती वर्णनों का भी संग्रह किया है।[1]

सिन्धु[2]—यह वर्तमान सिन्धु है। डे महोदय ने बताया है कि चिनाब के संगम के ऊपर यह सिन्ध या सिन्धु कहलाती है। इसके नीचे अरोर तक यह चिनद कहलाती है और अरोर से अपने मुहाने तक मिहरान कहलाती है।[3] यद्यपि काली-सिन्धु और पूर्व-सिन्धु का भी वर्णन उपलब्ध है[4] किन्तु यहाँ मेरा अभिप्राय ब्रह्म-वैवर्त को पुण्यमयी सरिताओं से ही है जिसमें सिन्धु का एक वचनात्मक प्रयोग ही है। अतः श्रेष्ठ एवं महती नदी उपरोक्त सिन्धु ही है।

सुप्रसन्ना[5]—इसका वास्तविक परिचय उपलब्ध नहीं है।

सुभगा[6]—सुभगा नदी का भी परिचय अभी तक आधुनिक विद्वानों ने नहीं किया है किन्तु ऐसा निश्चय होता है कि सुभगा विरजा का नामान्तर ही है। यहाँ नदियों की नामावलि में जिस सूची में विरजा है वहाँ सुभगा[7] नहीं है। श्री कृष्ण ने स्पष्टतः 'सुभगे'[8] कह कर विरजा को सम्बोधित किया है तथा स्पष्ट है कि सुभगा का श्री कृष्ण ने सांकेतिक ढंग से निर्वचन भी किया है।[9]

(पूर्वरूपाच्च सौभाग्यादिदानीं सुभगाभव।
पुरातनं शरीरं ते सरिद्रूपमभूत्सति॥[10]

स्वर्णदी[11]—यह आकाशगंगा के लिए प्रयुक्त नाम है। अमरकोष में—मन्दाकिनी, वियद्गंगा, स्वर्णदी, सुर-दीर्घिका (स्वर्ग वर्ग, ४६)। आकाश गंगा के लिए प्रयुक्त है। मन्दाकिनी नाम आधुनिक मन्दाकिनी ही है। इस प्रकार स्वर्णदी का मन्दाकिनी से परिचय करना उपयुक्त है। श्री डी० सी० सरकार ने अपने ज्याग्रफी आफ ऐन्शिएण्ट ऐण्ड मेडीवल इण्डिया नामक ग्रन्थ में मन्दाकिनी का परिचय देते हुए बताया है कि यह पैसुनी (पयोष्णी) में चित्रकेतु पहाड़ी के निकट मिलती है, जहाँ कि बेतवा और केन के बीच दशान नदी सौगोर की भूमि में बहती है।[12]

---

१. वेदधरातल, पृ० ७१४-३७ २. ब्रह्म वै० १।२६।६६—२।६४।५८
३. ज्या० डिक्श०—'डे' ४. वही ५. ब्रह्म वै० १।२६।६८
६. वही १।२६।६८ ७. इसी भाग के सुभगा-विरजा देखिये
८. ब्रह्म वै० ४।३।३ ९. ब्रह्म वै० ४।३।५
१०. वही ४।३।५ ११. वही ४।४७।१६
१२. ज्या० आफ मे० इण्डिया, पृ० ४७—सरकार

स्वर्ण-रेखा[१]—यह भारत की प्रसिद्ध तथा पूज्य नदियों में है। ब्रह्म-वैवर्त के चारों खण्ड में इसका नाम स्मरण किया गया है। यह बंगाल की पवित्र नदी है। श्री कनिंघम ने ह्वेनसांग द्वारा वर्णित किलोना सुफलना को किर-सुवर्णा कहा है, जो ताम्रलिप्ति से उत्तर-पश्चिम तथा उड़ीसा से उत्तर पूर्व ७०० ली अथवा ११७ मील की दूरी पर थी। यहीं जिला सिंहभूमि और बार-भूमि में सुवर्ण-रेखा का वर्णन किया है।[२]

———

१. ब्रह्म वै० १।२६।६८—२।६४।५८—३।२८।२६—४।१२६।४६

२. दि ऐन्शिएण्ट ज्याग्रफी आफ ऐन्शिएण्ट इण्डिया, अ० ईस्टर्न इण्डिया, ४, पृ० ५७८

ब्रह्म-वैवर्तीय छन्द

ब्रह्म-वैवर्त-पुराण की रचना अन्य पुराणों की ही भाँति भक्ति भावाप्लुत है। ब्रह्म-वैवर्त का उद्देश्य छन्द के विविध रूप प्रस्तुत करना नहीं है। तथापि इस विशाल-पुराण में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। ब्रह्म-वैवर्त में अपवाद स्वरूप गद्य का केवल एक उदाहरण है।[1] वास्तव में भावों की सरसता में गद्यात्मक एवं छन्दों में भी दण्डात्मक प्रयोग नहीं हुआ। ब्रह्म-वैवर्त की रचना बेली के पुष्प से बनी सुन्दर माला सदृश आनुष्टुभ् धारा में हर्ष-वर्षी सारस्वत-हास की राशि-राशि है। अनुष्टुप् की सरल शैली का ही प्रभाव हुआ कि पुराण सर्वग्राह्य एवं सर्वधार्य हो गये। ब्रह्म-वैवर्त की रचना में अनुष्टुप् के अतिरिक्त जिन अन्य छन्दों का प्रयोग हुआ है वे लोक प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्म-वैवर्त में विविध उपजातियों का प्रयोग किया गया है। मालिनी, बसन्त तिलका और स्रग्धरा जैसे बड़े छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। साथ ही साथ इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ और इन्द्रवंशा जैसे विस्तार में मध्यमवर्गीय ललित छन्द भी उक्त पुराण की शोभा बढ़ा रहे हैं। भाव-भरित हृदय की विशाल एवं दृढ़ आस्था की लालित्य-मयी आनुष्टुभ धारा भी पूर्ण प्रगाढ़ है।

विशेषत: अनुष्टुप् की घनी पंक्तियों में ही ब्रह्म-वैवर्त विलसित है। इस पुराण में अनुष्टुप् की विविधताओं के अतिरिक्त अन्य छन्दों के कुल बीस प्रकार के भेदोपभेदों का समावेश किया गया है।

संख्या की दृष्टि से विचार किया जाय तो उक्त पुराण में अनुष्टुप् के पश्चात्-द्वितीय स्थान गाथा का है। यद्यपि गाथा का प्रयोग यत्र-तत्र ही है तथापि ब्रह्म-वैवर्त के प्रथम खण्ड में ही इक्कीस गाथाओं का प्रयोग हुआ।

गाथा के पश्चात् उक्त पुराण में तृतीय स्थान उपजाति का है। यहाँ ग्यारह प्रकार की उपजातियों का प्रयोग हुआ है। इनकी कुल संख्या उन्तीस है। इनके अतिरिक्त जो अन्य छन्द प्रयुक्त हुए वे बहुत थोड़े हैं। इनमें मालिनी-नव, वसन्त-तिलका-सात, वंशस्थ-चार, इन्द्रवंशा-तीन; स्रग्धरा-दो और इन्द्रवज्रा-एक हैं।

अनुष्टुप् छन्द के भेदोपभेदों का वर्णन करते हुए वृत्तरत्नाकर के रचयिता श्री केदार भट्ट ने वक्त्र, पथ्यावक्त्र, विपरीत पथ्यावक्त्र, चपलावक्त्र, युग्म विपुला, विपुला

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।६८।२३

भ विपुला, र विपुला, न विपुला, त विपुला तथा म विपुला आदि भेद बताये हैं। किन्तु इन सबका सामान्य नाम अनुष्टुप् है। अनुष्टुप् की परिभाषा जो प्रायः सर्वत्र घटित होगी है वह कालिदास कृत श्रुतबोध के निम्नलिखित श्लोक से जानी जाती है—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पंचमम्।
द्विचतुष्पादयो र्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घ मन्ययोः ॥

अनुष्टुप् का उदाहरण तो सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्त ही कुछ श्लोकों को छोड़ कर है।

(१) ब्रह्म-वैवर्त पुराण का प्रथम श्लोक—गणेश ब्रह्मे० श्लोक उपजाति है। इसके प्रथम एवं द्वितीय चरण उपेन्द्रवज्रा के हैं और तृतीय एवं चतुर्थ चरण वंशस्थके हैं।

(२) ब्रह्म-वैवर्त १।१।२—स्थूलास्तनु विदधतं त्रिगुणम्०। यह श्लोक वसन्त तिलका है।

(३) ब्रह्म वै० १।१।३—ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुर नर मनवः। यह श्लोक स्रग्धरा है।

(४) ब्रह्म वै० १।१।४—वन्दे कृष्णं गुणातीतम्०। यह अनुष्टुप् छन्द है।

(५) ब्रह्म वै० १।१।५—अमृत परमपूर्वं भारती०। यह मालिनी छन्द है।
ये प्रारम्भ के पाँचों श्लोक पाँच भिन्न-भिन्न छन्दों में हैं।

नीचे उपर्युक्त और अनुष्टुप् के अतिरिक्त अन्य छन्दों का विवरण प्रस्तुत है। उपजातियों के विभिन्न चरणों का क्रमानुसार संकेत किया गया है।

१. **इन्द्रवज्रा**

का प्रयोग उपजातियों के विभिन्न चरणों में हुआ है। किन्तु इन्द्रवज्रा का स्वतन्त्र प्रयोग ब्रह्म-वैवर्त में केवल एक बार हुआ है। ब्रह्म-वैवर्त ४ उत्त०।७७।३७—सर्वाणि शुक्लानि०।

२. **स्रग्धरा**

का प्रयोग दो बार हुआ है—(१) ब्रह्म वै० १।१।३—ध्यायन्ते ध्यान निष्ठा इत्यादि। (२) ब्रह्मवैवर्त ४ पू०।८।२०—बालं नीलाम्बुजाभम्

३. **मालिनी**

ब्रह्म वै० १।१।५—अमृत परमपूर्वं भारती।
,, ४ पू०।६।२१—तव चरण सरोजे मन्मनश्चंचरीकः।
ब्रह्म वै० ४ पू०।६।२२—भवजलमग्नश्चित्तमीनो मदीयः।
,, ४ पू०।६।२३—तव निज जन सार्धं संगमो मे मदीश।
,, ४ पू०।१९।१८—सकल भुवन नाथ प्राणनाथं मदीयम्।
,, ४ पू।१९।१९—त्रिनयन विधि शेषा षण्मुखश्चास्य सङ्घैः।
,, ४ पू०।१९।२०—कुमति रहमधिज्ञा योषितां क्वाधमा वा।
,, ४ पू०।१९।२१—स्तवन विषय भीता पार्वती यस्य पद्मा।
,, ४ पू०।२२।२४—जय जय गुणसिन्धो कृष्णभक्तैक बन्धो।

४. इन्द्रवंशा

ब्रह्म वै० १।२५।५—माणिक्य मुक्तामणिदर्पणैर्युतम् ॥
,, १।२५।८—दृष्ट्वा मुनि विस्मय माप मानसे ॥
,, १।२५।१६—सद्रत्न सिंहासन सुन्दरे परः ॥

५. वंशस्थ

ब्रह्म वै० १।२५।२—निराश्रये योग बलेन शम्भुना ।
,, १।२५।४—पुरं वरं योजन लक्ष विस्तृतम् ।
,, १।२५।७—सुरद्रुमैर्वेष्टितमेव सन्ततम् ।
,, १।२५।१८—चकार तत्रैव निवेदनं शिवे ।

६. वसन्त तिलका

ब्रह्म वै० १।१।२—स्थूलास्तनु विंदधतं त्रिगुणं विराजम् ।
,, १।३०।१—लम्बोदरो हरि रुमापति रीश शेष ।
,, १।३०।२—संसार सागर मतीव गभीरघोरम् ।
,, १।३०।३—गोवर्धनोद्धरण कीर्तिरतीव खिन्ना ।
,, १।३०।४—वेदाङ्ग वेदमुख निःसृत कीर्तिरंशैः ।
,, १।३०।५—गोपाङ्गना वदन पङ्कज षट्पदस्य ।
,, १।३०।६—चक्षुर्निमेष पतितो जगतां विधाता ।

७. उपजाति

वंशस्थ और इन्द्रवंशा के संयोग से निम्नलिखित उपजातियाँ प्रयुक्त हैं :—

ब्रह्म वै० १।२५।१—पाद १, २ वंशस्थ; ३, ४ इन्द्रवंशा
—क्षणेन विप्र प्रवरो मुदान्वितः ।
,, १।२५।३—पा० १, २ वंशस्थ, ३, ४ इन्द्रवंशा
—मयूश शून्यं रविचन्द्रयोर्मुने ।
,, १।२५।६—पा० १, ३, ४ इन्द्रवंशा, २ वंशस्थ
—सिद्धैर्नियुक्तं शतकोटि लक्षकैः ।
,, १।२५।९—पा० १, ३, ४ इन्द्रवंशा, २ वंशस्थ
—दूरेसभामण्डल मध्यगं शिवम् ।
,, १।२५।१०—पा० १, २ वंशस्थ ३, ४ इन्द्रवंशा
—प्रतप्त हेमाभ जटाधरं विभुम् ।
,, १।२५।११—पा० १, २ वंशस्थ ३, ४ इन्द्रवंशा
—सुनीलकण्ठं भुजगेन्द्र मण्डितम् ।

ब्रह्म वै० १।२५।१२—पा० १, ३ वंशस्थ २, ४ इन्द्रवंशा

—प्रसन्न हास्यास्य मनोहरं वरम् ।

,, १।२५।१३—पा० १, ३, ४ इन्द्रवंशा, २ वंशस्थ

—गत्वा समीपं मुनिरेषशूलिनम् ।

,, १।२५।१५—पा० १, ३, वंशस्थ २, ३ इन्द्रवंशा

—ददौच तस्मै मुनयेस सम्प्रभा ।

,, ४ उ०।१११।५१—पा० १, ३, ४ इन्द्रवंशा २ वंशस्थ,

—प्रेम्णानुभक्त्या स्तवनेन पूजया ।

(इन्द्रवंशा + इन्द्रवज्रा)

ब्रह्म वै० ४।१६।३१—पा० १, २, ३ इन्द्रवज्रा ४ इन्द्रवंशा

—धर्मेश धर्मीश शुभाशुभेश ।

(इन्द्र वंशा + उपेन्द्रवज्रा)

ब्रह्म वै० १।२५।१४—पा० १, ३, ४ इन्द्रवंशा, २ उपेन्द्रवज्रा

—दृष्ट्वा मुनीन्द्र प्रवरं च सस्मितम् ।

(इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा)

ब्रह्म वै० १।३०।७—पा० १ इन्द्रवज्रा २, ३,४ उपेन्द्रवज्रा

—यूयं वयं तस्य कला कलांशाः ।

,, ४।१६।३०—पा० १, २, ४, इन्द्रवज्रा, ३ उपेन्द्रवज्रा

—हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ।

,, ४।२२।२२—पा० १, २, ३ इन्द्रवज्रा, ४ उपेन्द्रवज्रा

—हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे ।

(इन्द्रवज्रा + वंशस्थ)

ब्रह्म वै० १।३०।१०—पा० १, २, ३ इन्द्रवज्रा, ४ वंशस्थ

—विश्वेषु सर्वेषु च विश्वधाम्नः ।

(उपेन्द्रवज्रा + वंशस्थ)

ब्रह्म वै० १।१।१—पा० १, २ उपेन्द्रवज्रा ३, ४ वंशस्थ

—गणेश ब्रज्रेश सुरेश शेषाः ।

,, ४।२२।२३—पा० १, २, ४ उपेन्द्रवज्रा ३ वंशस्थ

—भये भये वा थ शुभे शुभे वा ।

(उपेन्द्रवज्रा + इन्द्रवंशा + वंशस्थ)

ब्रह्म वै० ४ उ०।१११।५०—पा० १, २ उपेन्द्रवज्रा ३ इन्द्रवंशा ४ वंशस्थ-

—न योगिभिस्सिद्ध गणैर्मुनीन्द्रैः ।

(इन्द्रवंशा + इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा)

ब्रह्म वै० १।३०।८—पा० १, २ उपेन्द्रवज्रा ३ इन्द्रवंशा ४ इन्द्रवज्रा

—सहस्रशीर्षा शिरसः प्रदेशे ।

,, १।३०।१३—पा० १,३ इन्द्रवंशा २ इन्द्रवज्रा ३ उपे०व०

—नारायणी सा परमा सनातनी ।

(इन्द्रवंशा + इन्द्रवज्रा + वंशस्थ)

ब्रह्म वै० १।२५।१७—पा० १, २ इद्रवंशा ३ इन्द्रवज्रा ४ वंशस्थ

—गन्धर्वराजेन कृतेन नारदाः ।

,, १।३०।१४—पा० १, ४ इन्द्रवंशा, २ इन्द्रवज्रा, ३ वंशस्थ

—गत्वा विवाहं कुरु वत्स साम्प्रतम् ।

(उपेन्द्रवज्रा + वंशस्थ + इन्द्रवज्रा)

ब्रह्म वै० १।३०।११—पा० १ उपेन्द्रवज्रा, २ वंशस्थ ३, ४ इन्द्र वज्रा

—करोति सृष्टिं सविधे विधाता ।

,, ४।१८।२६—पा०१, २ इन्द्रवज्रा, ३ उपेन्द्रवज्रा, ४ वंशस्थ

—निष्कारणायाखिल कारणाय ।

,, ४ उ०।१११।४६—पा० १, ४ उपेन्द्रवज्रा, २ वंशस्थ, ३ इन्द्रवज्रा

—क्वचापिदुग्धं क्वदधिघृतं वा ।

(इन्द्रवंशा + वंशस्थ + उपेन्द्रवज्रा + इन्द्रवज्रा)

ब्रह्म वै० १।३०।८—पा० १ इन्द्रवंशा, २ वंशस्थ, ३ उपेन्द्रवज्रा, ४ इन्द्रवज्रा

—गोलोकनाथस्य यशो मलम् ।

ब्रह्म वै० १। ३०।१२—पा० १ इन्द्रवज्रा, २ वंशस्थ, ३ उपेन्द्रवज्रा, ४ इन्द्रवंशा

—ब्रह्मस्वरूपा प्रकृति र्न भिन्ना ।

ब्रह्मवैवर्त ही क्या अन्य पुराणों में भी गाथा-छन्द के प्रयोग ने कुछ पाठकों को अर्धश्लोक का भ्रम भी पैदा कर दिया है। वृत्तरत्नाकरकार श्री केदार भट्ट ने गाथा का लक्षण महाभारत के आधार पर प्रस्तुत किया है। इसके लक्षण की विशेषता उसके चरणों पर आश्रित है।

विषमाक्षर पादं वा, पादेरसमं दशधर्मवत् ।
यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेति तत्सूरिभिः कथितम् ।।[1]

दशधर्म के उदाहरण का संकेत है—

दशधर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र ! निबोधतान् ।
मत्तः प्रमत्तः उन्मत्तः, श्रान्तः क्रुद्धोबुभुक्षितः ।
त्वरमाणश्च भीरुश्च, लुब्धः कामीच ते दश ।

उपजाति का लक्षण भी भट्ट ने निम्नलिखित रूप से किया है :—

अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुप जातयस्ताः
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु, स्मरन्ति जातिष्विदमेव नाम ।।

अन्य प्रयुक्त छन्दों के लक्षण वृत्तरत्नाकर से उद्धृत हैं :—

१. वृत्तरत्णाकर ५।१।२

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।
जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ ।
उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ।
म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।
ननमयय युतेयं मालिनी भोगिलोके ।
स्यादिन्द्रवंशा ततलौ रसंयुतौ ।
श्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ।

इस प्रकार स्थूल रूप से गणना करने पर कुल नव प्रकार के छन्दों का योग ब्रह्म वैवर्त में किया गया है ।

ब्रह्मवैवर्तीय नारी-पात्र

नारी-चरित्र की दृष्टि से विचार करते हुए ब्रह्मवैवर्त में एक नया दृष्टिकोण मिलता है। कदाचित् ब्रह्मवैवर्त के व्यास ने भी प्राचीन परिपाटी का ही पालन तथा सामाजिक-नवीनता की, जो कि जागतिक-प्रेयता का रूप ग्रहण कर चुकी थी, उपेक्षा करना पुराणत्व की परिभाषा नहीं स्वीकार किया। प्रत्युत नवीनता को भी मान्यता प्रदान किया। सामाजिक-मान्यता के सम्मुख वैदिकता की भी उपेक्षा की जा सकती है।

केवलं वेदमाश्रित्य कः करोति विनिर्णयम्।
बलवाँल्लौकिको वेदा ल्लोकाचारं च क स्त्यजेत् ॥[1]

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त में जीवन की नवीन दिशा भी दृष्टिगत होती है। नारी को तपस्या में विघ्नकारिणी बताकर तथा उसे कामरूपिणी कह कर उसकी उपेक्षा भी की जाती थी। साधनाओं में उसका परित्याग करने की आस्था बन रही थी। ब्रह्मवैवर्त ने उस पर प्रहार किया। एक नवीन आदर्श प्रस्तुत किया।

अनपत्यां च युवतीं कुलजां च पतिव्रताम्।
त्यक्त्वा भवेद् यः संन्यासी ब्रह्मचारी यतीति वा।
वाणिज्ये वा प्रवासे वा चिरं दूरं प्रयाति यः।
तीर्थे वा तपसे वापि मोक्षार्थं जन्म खण्डितुम् ॥
न मोक्ष स्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम्।
अभिशापेन भार्यायाः नरकं च परत्र च ॥[2]

ब्रह्मवैवर्त ने एक सीमा का संकेत किया। व्यापार, तीर्थ, तपस्या और मोक्ष के लिए भी दीर्घकालिक दूर प्रवास पति के लिए वर्जित किया। स्त्री को वाध्य करके पुरुष उसे अकेली नहीं छोड़ सकता। भार्या के शाप से मनुष्य अधर्म का भागी तथा नरक भोगी होगा।

गृहस्थ जीवन की प्रतिष्ठा नारद जैसे भ्रमणशील महात्मा भी स्वीकार करते हैं। नारद के पिता ब्रह्मा उनसे गार्हस्थ्य जीवन बिताने के लिए पत्नी-ग्रहण करने की प्रेरणा देते हैं किन्तु नारद लकीर के फकीर बने एक पिटी-पिटायी धारणा व्यक्त करते हैं।

---

१. ब्रह्म वै० ३।७।४८   २. वही ४।११३।६-८

हे पिता (ब्रह्मन्) दार-ग्रहण केवल दुःखदायी है। तप, स्वर्ग, भक्ति और मुक्ति के कर्मों में बाधा है। पिता जी ! स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती हैं—(१) साध्वी (२) भोग्या और (३) कुलटा। ये तीनों ही स्वार्थपरायण होती हैं।

१. प्रथम तो यश न नष्ट हो जाय, जीवन में कलंक न लग जाय, भयवश साध्वी दिखायी पड़ती है। वस्तुतः कामवश ही वह प्रेम करती है।

२. द्वितीय केवल काम स्नेह तथा भौतिक सुख के लिए पति सेवा करती है।

३. तृतीय तो केवल वस्त्रालंकार सुस्निग्धाहार के ही लोभ में रत रहती है।

अतः नारी कुलांगार है। यह केवल कपट से ही सेवा करती है—

दारग्रहो हि दुःखाय केवलं न सुखाय च।
तपः स्वर्ग-भक्ति-मुक्ति कर्मणां व्यवधायकः ॥२०॥

योषित स्त्रिविधा ब्रह्मन् गृहिणां मूढचेतसाम्।
साध्वी भोग्या च कुलटा स्ताः सर्वाः स्वार्थतत्पराः ॥२१॥

कुलाङ्गार-समा नारी कुलटा कुलनाशिनी।
कपटात्कुरुते सेवां स्वामिनो न च भक्तितः ॥ २५॥[1]

उक्तांश जीवन तथ्य नहीं नारद का भ्रम है। एक अप्रतिष्ठित किन्तु संन्यस्त-जीवन का प्रमाद है। नारद अपने विचार प्रवाह को व्यक्त करते हैं किन्तु जगत् पितामह इसे स्वीकार नहीं करते। वे इसे नारद की भूल मानते हैं। नारद को प्रेम से पकड़ कर गोद में बैठा कर चूमते हुए समझाते हैं।[2]

हे पुत्र नारद ! ब्राह्मण को उपनीत होकर वेदाध्ययन करना चाहिए। तदनन्तर गुरुदक्षिणा देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। सद्वंश की सुविनीत कन्या से पाणिग्रहण करना चाहिए।[3] और उससे सन्तानोत्पादन करके वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण करना उचित है।[4]

उत्तम कुल में उत्पन्न साध्वी स्त्री सदा पति सेवापरायणा होती है। वह कभी स्वार्थिनी नहीं होती। भला पद्मरागों की निधि में काच कहाँ पहुँच सकता है। स्त्रियाँ माता-पिता के दोष से अथवा दुष्ट वंश में उत्पन्न होने के कारण कुलटा होती हैं क्योंकि वे सभी (कु) कर्मों में स्वतन्त्र हो जाती हैं।

वस्तुतः स्त्रियाँ दुष्ट नहीं होतीं। ये तो लक्ष्मी की कलाएँ हैं। साध्वी स्त्री अपने निर्गुण स्वामी की भी प्रशंसा करती है। सज्जन को चाहिए कि शुभवंश की कन्या को प्रयत्न से पाणिगृहीत करे।

---

१. ब्रह्म वै० १।२३।२०-२५ २. वही १।२३।४३
३. वही १।२४।८ ४. वही १।२४।२१

मनुष्य को गृही होने के पश्चात् वान-प्रस्थ और तत्पश्चात् संन्यासी होना चाहिए।

सा साध्वी कुलजा या च पति-सेवासु तत्परा।
सद्वंशे दुर्विनीता च संभवेन्न कदाचन॥

आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः?।
असद्वंश - प्रसूता या पित्रतोर्दोषण नारद!
दुर्विनीता च सा दुष्टा स्वतन्त्रा सर्वकर्मसु।
नवत्स! दुष्टाः सर्वाश्च योषितः कमला कलाः।
स्वर्वेश्यांशाश्च कुलटा असद्वंश-समुद्भवाः॥

निर्गुणं स्वामिनं साध्वी सेवते च प्रशंसति।
न सेवते च कुलटा प्रियं निन्दति सद्गुणम्॥

साधुः सद्वंशजां कन्यां प्रयत्नेन परिग्रहेत्।
तस्यां पुत्रान् समुत्पाद्य वृद्धस्तु तपसे व्रजेत्॥[1]

उक्त प्रसंग में पूर्व-पक्ष नारद द्वारा समुद्घाटित करके ब्रह्मा द्वारा एक सामाजिक प्रतिष्ठित सत्य की स्थापना अतिश्रेष्ठ विधि है।

इस प्रसंग में ब्रह्मा नारद को एक परम रहस्य का उपदेश करते हैं कि दीक्षा-गुरु पिता और पति को नहीं बनाना चाहिए।

पत्युर्मन्त्रं पितुर्मन्त्रं न गृह्णीयाद् विचक्षणः।
विविक्ताश्रमिणां चैव नामन्त्रः सुख-दायकः॥[2]

ब्रह्म-वैवर्त ने नारी की विवशता पर भी दृष्टिपात किया। समाज में धर्म और धर्मात्माओं की महत्ता पूर्व काल में जैसी थी, वैसी न रह गयी। पुराने संस्कार शनैः शनैः क्षीण होने लगे। उद्दाम-यौवन कामान्ध होने लगा। बलात्कार की घटनाएँ बढ़ने लगीं। उक्त पुराण ने प्राचीन काल की घटना के आवरण में अर्वाचीन को समीचीन सिद्ध किया। समाज को उसकी विकलता को शुद्ध कर लिया। स्पष्ट धारणा दी—

यदि बलात्कार द्वारा स्त्री दूषित होती है तो वह दूषित नहीं मानी जायेगी। वह दुष्टा तब है जबकि स्वेच्छया वह उपपति अथवा जार का उपयोग करे।[3]

अकामतो बलात्साध्वी न स्त्री जारेण दूष्यति।
कामतो नरकं याति यावच्चन्द्र दिवाकरौ॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० १।२४।८-१४
२. वही १।२४।४३
३. वही ४, २।८१।५६
४. वही ४, २।८१।५६

अमर्यादित काम और बलात्कार की घटनाओं से नारी-जीवन को बचाने हेतु यह कथन अर्हणीय है।

वास्तव में नारी की उपेक्षा से सृष्टि का क्रम, यह सम्पूर्ण संसार विश्रृंखल हो सकता है। श्री कृष्ण राधा से स्वीकार करते हैं—

यथा त्वं च यथाऽहं च समौ प्रकृति पुरुषौ।
न हि सृष्टि र्भवेद् देवि! द्वयोरेकतरं विना ॥[1]

नारी को अपवित्र कह कर पति से अपमानित कराकर दुष्ट व्यक्ति के द्वारा सुन्दरी को आगृहीत करने की चाल बहुत बार चली गयी होगी। अतः इस कथन को पुराण में पुनरावृत्त भी किया गया है कि समाज का दूषित-क्रम नष्ट हो—

दुर्बला बलिना ग्रस्ता निष्कामा न च्युता भवेत्।
प्रायश्चित्तेन शुद्धा सा न स्त्री जारेण दुष्यति ॥[2]

पूर्वोक्त प्रसंग में प्रायश्चित्त के द्वारा शुद्धि का कथन है अवश्य किन्तु किसी विशेष प्रायश्चित्त का संकेत नहीं है। अतः शुक्र ने तारा से स्पष्ट रूप से बताया है कि जहाँ कुछ भी नारी का दोष प्रमाणित हो तभी प्रायश्चित्त है अन्यथा तारा को प्रायश्चित्त के बिना शुद्ध कैसे कर लेते।

प्रायश्चित्तं विना पूता त्वमेवं शुद्ध मानसा।
अकामा या बलिष्ठेन न स्त्री जारेण दुष्यति ॥[3]

ऋषि गौतम की नारी अहिल्या के प्रसंग में भी गौतम ने अपनी पत्नी को निर्दोष बताया है किन्तु गौतम ने प्रायश्चित्त का भी विधान किया है।

अहल्या को पाषाण मूर्ति बन कर वन में तप करने के पश्चात् गौतम ने ग्रहण करने की आज्ञा दी। साथ ही साथ इस तप से अहल्या को भगवत्प्राप्ति भी हुई।

वनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्ति मश्मनः।
अकामां चकमे शक्रः सर्वं जानाम्यहं प्रिये।
तथापि परभोग्या मे न च भोग्या व्रजा धमे।
पर वीर्यं यदुदरे कामतोऽकामतोऽपि वा ॥
अहल्ये याति वंवेन तदुपायं निशामय।
अकामतो न दुष्टा सा प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति ॥
काम भोगेन त्याज्या सा कर्म भोगेन शुद्ध्यति।
पितृपाके वंवपाके पूजायां नाधिकारिणी ॥[4]

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।६७।८०   २. वही २।६१।८१
३. वही २।५८।१०६   ४. वही ४, १।४७।३७-४०

अन्त में शुद्ध होकर गौतम के पास गयी ।

श्री राम चरण-स्पर्शात्सद्यः शुद्धा बभूव ह ।
त्रैलोक्य मोहनं रूपं विधाय मुनि-कामिनी ।
जगाम गौतमाभ्याशं मुनिः सम्प्राप सुन्दरीम् ॥[१]

जीवन रक्षा हेतु मनुष्य—किन्तु विशिष्ट नहीं प्रत्युत साधारण—अपनी विषम-परिस्थिति में अनृत का भी आश्रय ले लेता है । ब्रह्म-वैवर्त ने भी इन परिस्थितियों पर ध्यान देकर विचार किया तो तथ्य को स्वीकार करते हुए स्त्री-रक्षा-हेतुक अनृत को सर्व-प्रथम स्वीकार किया—

स्त्रीषु धर्मे विवाहेषु वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे ।
गवामर्थे ब्राह्मणार्थे नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥[२]

समाज में ऐसे अधिक लोग हैं जो कि पुरुष होने के कारण अपने को अधिक श्रेष्ठ समझते हैं । ऐसे लोग नारी का अपमान भी करते हैं । परिणाम यह होता है कि इस भाव से नारी जल-भुन कर पुरुष-विरोधी हो जाती हैं और परिवार विशृंखल हो जाता है । ऐसे घर-परिवार का गार्हस्थ्य-जीवन दूषित हो जाता है, सारा धर्म-कर्म भी दूषित होने के कारण ऐहिक-आमुष्मिक सारी अभिलाषाएँ भ्रष्ट हो जाती हैं । अतः ब्रह्म-वैवर्त इन दुःखद स्थितियों से बचने के लिए व्यवस्था देता है—

न मोक्षस्तस्य भवति धर्मस्य स्खलनं ध्रुवम् ।
अभिशापेन भार्यायाः नरकं च परत्र च ॥[३]

अपनी पत्नी के प्रेम में बृहस्पति द्वारा उक्त ब्रह्मवैवर्तीय अट्ठारह श्लोक[४] गार्हस्थ्य जीवन में नारी की उपयोगिता के अट्ठारह सूत्र की भाँति हैं । नारी के बिना गार्हस्थ्य जीवन वास्तव में चल ही नहीं सकता है ।

पत्नी के बिना घर अरण्य-सदृश है । भार्या से ही गृह-गृह है अन्यथा जैसे वन वैसे घर । वास्तव में गृहिणी के कारण ही गृह है । सम्पूर्ण गार्हस्थ्य-जीवन की क्रियाएँ भार्या पर निर्भर हैं । यथा स्वर्णकार स्वर्ण के विना अलंकार, कुम्भकार मृत्तिका के बिना कुम्भ नहीं बना सकता वैसे ही भार्या के बिना गृहस्थ किसी महत्वपूर्ण क्रिया को निभा नहीं सकता है ।

यस्य नास्ति सती भार्या गृहेषु प्रियवादिनी ।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥
भार्या मूलाः क्रियाः सर्वाः भार्या-मूलाः गृहास्तथाः ।
भार्यामूलं सुखं सर्वं गृहस्थानां गृहे सदा ॥

---

१. ब्रह्म वै० ४, ११४७।४३-४४
२. वही ४, २।६८।३९
३. वही ४, २।११३।८
४. वही २।५८।८-२५

भार्या मूलः सदा हर्षो भार्या मूलं च मङ्गलम् ।[1]
भार्या मूलश्च संसारो भार्या मूलं च सौलभम् ॥

ब्रह्म-वैवर्त पुराण में नारी-जीवन के प्रति विशेष उदारता का दृष्टिकोण प्रतीत होता है क्योंकि जिन कथाओं का संकलन प्रसंगतः यहाँ किया गया है वे अधिकतर नारी-जीवन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने में सजग ज्ञात होती हैं।

विश्वकर्मा और विद्या का सम्पर्क, जिससे नवशिल्पी उत्पन्न हुए, कहीं हीनता का आकलन नहीं द्योतित करता।[2]

घृताची और विश्वकर्मा का सम्मिलन[3] भी, जो कि कारु ब्राह्मण तथा गोपिका के रूप में प्रयाग में मिले[4], दैवात् घटित घटना के रूप में शाप-निवृत्तिहेतुक बताया है। इस प्रकार उक्त शाखा-स्रोत से चलने वाली वंश परम्परा भी घृणा का पात्र होने से बचती है।

सम्पूर्ण पुराण में, समस्यारूपेण जिन नारियों का जीवन है, उनका सबका समाधान किया गया है। द्रौपदी, तुलसी, तारा, अहल्या जैसे भारत की पूज्य, नारी-जीवन की श्रद्धा-केन्द्र और आदर्शरूपा देवियों के चरित्रों को विशेषतः परिमार्जित ढंग से उक्त पुराण में प्रस्तुत किया गया है।

---

१ ब्रह्म वै० ४, २।५६।८, २१-२२
२. वही १।१०।१९
३. वही १।१०।५८
४. वही १।१०।७०-७२

अध्याय २२

उपसंहार

ब्रह्मवैवर्त महापुराण को अष्टादश महापुराणों के गणना-क्रम में दशम-स्थान[1] प्राप्त है। इसकी श्लोक-संख्या प्रसिद्ध एवं पुरणानुमोदित तो अष्टादश सहस्र[2] है, किन्तु वर्तमान ब्रह्मवैवर्त में इक्कीस सहस्र श्लोक हैं। पुराणों की श्लोक संख्या निश्चित थी, भले ही उसमें प्रक्षेपण भी होता रहा। स्वयं महापुराणों ने सभी पुराणों की श्लोक-संख्या निश्चित की है। ब्रह्मवैवर्त ने भिन्न-भिन्न महापुराणों की जो संख्या बतायी है उन सबका योग भी चार लाख बताया गया है।

'एवं पुराण-संख्यानं चतुर्लक्षमुदाहृतम्'।[3]

महापुराणों की अष्टादशी का श्लोक संख्यात्मक योग चार लाख ही प्रसिद्ध रहा। श्रीमद्भागवत भी यही तथ्य प्रमाणित करता है।

एवं पुराण-सन्दोह श्चतुर्लक्ष उदाहृतः।[4]

किन्तु यह संख्या प्राचीन सर्व-प्रसिद्धि के आधार पर है। यहाँ का यातायात निरुद्ध नहीं रहा। वास्तव में भव-सागर की लहरें भी तो कभी कम न हुईं।

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दर गिरि ग्रावाग्र कण्डूयना
न्निद्रालोः कमठाकृते र्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः।
यत्संस्कार कलानुवर्तन वशाद् वेलानिलेनाम्भसां
यातायात मतन्द्रितं जलनिधे र्नाद्यापि विश्राम्यति ॥[5]

पुराणों के विस्तार पर दृष्टि डालने से तो यहाँ तक पता चलता है कि सबकी श्लोक संख्या शतकोटि थी[6]। द्वैपायन-व्यास आदि ने उसे संक्षिप्त करके चतुर्लक्षात्मक रूप दे दिया।

ब्रह्मवैवर्त को सूत्र रूप में कृष्ण ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने नारायण को, नारायण ने नारद को, नारद ने व्यास को दिया। व्यास तक इसका रूप संक्षिप्त था। व्यास ने इसका विपुल विस्तार किया, जिससे ब्रह्मवैवर्त अष्टादश-सहस्र[7] श्लोक संख्या तक पहुँचा।

---

१. ब्रह्म वै० ४, २।१३३।१६ २. वही ४, २।१३३।१६
३. वही ४, २।१३३।२१ ४. श्रीमद्भा० १२।१३।९ ५. वही १२।१३।२
६. शिव पुराण-विद्येश्वर संहिता, अ० ५७-५८ ७. ब्रह्म वै० १।१।६२-६६

वस्तुतः हमारे विचार-विमर्श का विषय भी यही व्यासकृत महापुराण ही है। सूत्रात्मक पुराण की कोई उपलब्धि भी नहीं है।

ब्रह्मवैवर्त महापुराण चार खण्डों में विभाजित है। चारों खण्डों का मूल लक्ष्य[1] श्री कृष्ण की निश्चला भक्ति हो है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रह्मवैवर्त की रचना का विस्तार ऐसी परिस्थितियों में हुआ हो, जहाँ कि गणेश-पूजा बड़ी धूम से चलती रही हो।

ब्रह्मवैवर्त का प्रारम्भ गणेश शब्द से होता है और अन्त भी गणेश्वर से होता है—

प्रथम श्लोक—**गणेश-ब्रह्मेश-सुरेश-शेषाः**
सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः।
सरस्वती-श्री-गिरिजादिकाश्च यं
नमन्ति देव्यः प्रणमामि तं विभुम्।[2]

अन्तिम श्लोक—**युष्माकं पादपद्मानि दृष्ट्वा पुण्यानि शौनक।**
अद्य सिद्धाश्रमं यामि यत्र देवो गणेश्वरः।[3]

किन्तु ब्रह्मवैवर्तकार गणेश को भी कृष्ण के ही रूप में देखते हैं।

स्वयं गोलोक-नाथश्च पुण्यकस्य प्रभावतः।
पार्वती-गर्भ-जातश्च तव पुत्रो भविष्यति॥
स्वयं देवगणानां स यस्मादीशः कृपानिधिः।
गणेश इति विख्यातो भविष्यति जगत्त्रये॥[4]

अपने इस लक्ष्य की पूर्ति में कहीं-कहीं ब्रह्मवैवर्तकार ने ऐसा चित्रात्मक-वर्णन किया है कि बिना कहे भी श्री कृष्ण की सर्व-श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है। उदाहरणार्थ—परशुराम जी कार्तवीर्य पर क्रुद्ध होकर धरा को क्षत्रियहीन करना चाहते हैं। ब्रह्म की कृपा उन्हें प्राप्त होती है। अतः विधि ने उन्हें निर्देश किया कि इस कार्य की सिद्धि के लिए श्री कृष्ण-मन्त्र और कवच उन्हें शंकर से ग्रहण करना चाहिए। विधि के पास जब परशुराम जी पहुँचते हैं तो ब्रह्मा भी—

परिपूर्णतमं ब्रह्म जपन्तं कृष्णमीश्वरम्।
गुह्ययोगं प्रवोचन्तं पृच्छन्तं शिष्य-मण्डलम्॥[5]

श्री कृष्ण के ही जप में लीन थे। परशुराम पर अवश्य ही इसका प्रभाव पड़ना चाहिए। वे विधि की आज्ञा से शिव लोक गये।[6] वहाँ उन्होंने शिव का दर्शन किया।

१. ब्रह्मवै० १।१।१४ २. वही १।१।१ ३. वही ४, २।१३३।७४
४. वही ३।६।६०-६१ ५. वही ३।२८।५७ ६. वही ३।२६।१

शिव जटाजाल धारण किये पंच वक्त्र, त्रिलोचन रूप में पार्श्व में दक्षकन्या से शोभित थे। शिव के वाम भाग में कार्तिकेय, दक्षिण भाग में गणेश, अंक में शिवा तथा सम्मुख नन्दीश्वर, महाकाल और वीर भद्र थे।

महाशिव भी श्री कृष्ण के ही ध्यान में मग्न थे।

ध्यायमानं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं परम्।
स्वेच्छामयं गुणातीतं जरामृत्युहरं परम्॥
ज्योती रूपं च सर्वाद्यं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम्।
ध्यायन्तं परमानन्दं पुलकांचित विग्रहम्॥[1]

स्वयं कार्तिकेय भी कृत्तिकाओं को समझाते हैं :—

देवाधीनं जगत्सर्वं जन्मकर्म शुभाशुभम्।
संयोगश्च वियोगश्च न च दैवात्परं बलम्॥
कृष्णायत्तं च तद्दैवं स च देवात्पर स्ततः।
भजन्ति सततं सन्तः परमात्मान मीश्वरम्॥
दैवं वर्धयितुं शक्तः क्षयं कर्तुं स्वलीलया।
न दैव बद्ध स्तद्भक्त श्चाविनाशीति निर्णयः॥
तस्मात् भजत गोविन्दं मोहं त्यजत दुःखदम्।
सुखदं मोक्षदं सारं जन्म-मृत्यु-भयापहम्॥
परमानन्द - जनकं मोह-जाल-निकृन्तनम्।
शश्वद् भजन्ति यत्सर्वे ब्रह्म-विष्णु-शिवादयः॥[2]

विष्णु भी गणेश-स्तुति[3] करते हैं। गणेश-मन्त्र का जप करते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि गणेश कृष्णांश[4] ही हैं।

प्रकृति भी (दुर्गा[5]) श्री कृष्ण की प्रार्थना करते हुए कहती हैं।

अहं प्रकृतिरीशाना सर्वेषां सर्वरूपिणी।
सर्वशक्ति-स्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत्॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेव जगतां पतिः।
गतिश्च पाता स्रष्टा च संहर्ता च पुर्नविधिः॥
स्रष्टुं स्रष्टा च संहर्तुं संहर्ता वेधसां विधिः।
परमानन्द-रूपं त्वां वन्दे चाऽऽनन्द पूर्वकम्॥[6]

---

१. ब्रह्म वै० ३।२८।३६-३७ २. वही ३।१६।३-७ ३. वही ३।१३।८०-८६
४. वही ३।१३।८६ ५. वही १।३।८५-८६ ६. वही १।३।७७-७९

महाविष्णु भी श्री कृष्ण के षोडशांश हैं ।

स एव षोडशांशोऽपि कृष्णस्य परमात्मनः ।
महाविष्णुः स विज्ञेयः सर्वाधारः सनातनः ।।[१]

श्री कृष्ण-तेज के द्वारा सभी तेजों पर विजय प्राप्त करना सरल है ।

श्रीकृष्ण-मन्त्र-कवच-ग्रहणं कुरु शंकरात् ।
दुर्लभं वैष्णवं तेजः शैवं शाक्तं विजेष्यति ।।[२]

सरस्वती, दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सावित्री, गायत्री, गंगा, मनसा, षष्ठी, सुरभी, मंगल चण्डी आदि समस्त प्रकृति की कलाएँ कृष्ण से समुद्भूत हुईं ।

योगेनात्मा सृष्टि-विधौ द्विधारूपो बभूव सः ।
पुमांश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिः स्मृतः ।।
स्वोच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया ।
साविर्बभूव सहसा मूल-प्रकृति रीश्वरी ।।[३]

श्री कृष्ण ने अपने अतुल तेज के विपुल-वैभव से विश्व की महान से महत्तम शक्तियों को भी विजित किया । जिसे दर्प का लेश भी हुआ उसके दर्प को भंग कर दिया ।

पुराणों में ब्रह्म वैवर्त-महापुराण ने विभिन्न देवों, ऋषियों के दर्प भंग की कथा-योजना करके श्रीकृष्ण के यशः ख्यापन का सुन्दर और सरल-मार्ग ग्रहण किया गया । इस प्रकार कथाओं की योजना से सत्संग और कथा श्रवण का अवसर भी बढ़ गया तथा श्री कृष्ण का यशोवर्धन भी हो गया ।

श्रीमद्भागवत आदि की भाँति उद्धार कथाओं को भी रखा गया है । श्री कृष्ण-जन्म-खण्ड को दो भागों में विभक्त करके उनके बाल-जीवन को विशेषतः वृन्दावन की घटनाओं और रास-रस कथाओं का संकलन पूर्व खण्ड में तथा उत्तर खण्ड में मथुरा की घटनाओं एवं श्री कृष्ण जीवन की उत्तरकालीन घटनाओं का संग्रह किया गया ।

इस प्रकार ब्रह्मवैवर्त महापुराण का श्री कृष्ण यशोगान ही लक्ष्य है । क्योंकि श्री कृष्ण ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं ।

विवृतं ब्रह्म-कार्त्स्न्यं च कृष्णेन यत्र शौनक ।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ।।[४]

श्री कृष्ण-जन्म खण्ड—उत्तरार्द्ध में इस भाव को पुनः भी स्पष्ट कर दिया गया है । पुनः स्पष्ट करने की आवश्यकता का कारण भी है क्योंकि उपर्युक्त श्लोक में

१. ब्रह्म वै० १।४।२६
२. वही ३।२८।७८
३. वही २।१।८, १२
४. वही १।२।६१

लौकिक ज्ञान-विज्ञान की कोई चर्चा नहीं है। जबकि ब्रह्मवैवर्त में वर्णाश्रम-धर्म, भक्ष्या-भक्ष्य-विवेक, कृत्याकृत्य-विवेक, अध्यात्म-ज्ञान, भक्ति आदि पंच ज्ञान, राजनीति; स्वप्न विज्ञान, शकुन-ज्ञान, मंगलामंगल-विवेक, विविध लोक एवं नरक वर्णन, सदाचार-शिक्षा, तन्त्र-मन्त्र विज्ञान तथा विविध-साधनाओं और सिद्धियों का भी वर्णन किया गया है। अतः ब्रह्मवैवर्त वास्तव में श्री कृष्ण पर अटल दृष्टि रखते हुए विश्व-समूह का वर्णन करता है। यही कारण है कि यह पुराण जीवधारियों के हेतु परमात्म-स्वरूप है। क्योंकि सकल कर्मनिष्ठों के कर्मों का जो साक्षी है उसी ब्रह्म तथा उसकी अद्भुत विभूतियों का वर्णन इस पुराण में किया गया है। अतः विद्वजन इस पुराण को ब्रह्म-वैवर्त कहते हैं।

सुदलंभं पुराणं च ब्रह्मवैवर्तं मीप्सितम्।
यद्वृणोत्येव विश्वौघं जोविनां परमात्मकम्॥
यद् ब्रह्म साक्षिरूपं च कर्मणामेव कर्मिणाम्।
तद् ब्रह्म विवृतं यत्र तद् विभूति मनुत्तमाम्॥
तेनेदं ब्रह्मवैवर्तं मित्येवं विदुर्बुधाः।
पुण्यप्रदं पुराणं च मङ्गलं मङ्गल-प्रदम्॥[1]

अतः हमें चाहिए कि ब्रह्मवैवर्तीय कृष्ण-भक्ति की रसात्मक अनुभूतियों से लाभ उठाएँ।

अमृत परमपूर्वं भारती-काम-धेनुं,
श्रुति-गण-कृत-वत्सो व्यास-देवो दुदोह।
अति-रुचिर-पुराण ब्रह्मवैवर्त मेतत्,
पिबत पिबत मुग्धा दुग्ध भक्षय्य मिष्टम्॥[2]

---

१. ब्रह्म वै० ४,२।१३३।३०-३२ २. वही १।१।२

परिशिष्ट १

ब्रह्मवैवर्त में मन्त्र-तन्त्र

ब्रह्मवैवर्त पुराण में तान्त्रिक-सामग्री अन्य पुराणों की अपेक्षा अधिक है। सम्पूर्ण पुराण में राधा-कृष्ण की भक्ति का आप्लावन तो है ही। मध्य-मध्य में विभिन्न देव-देवियों के मंत्रों कवचों और स्तोत्रों को भी भर दिया गया है। किन्तु इन मन्त्रों आदि में तान्त्रिक प्रयोगों का न तो आडम्बर है और न कहीं भैरवी चक्र की भीड़ है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत: तान्त्रिक प्रयोगों के वामाचार प्रक्रिया पर एक नवीन प्रति-क्रियात्मक प्रतिफलन हुआ, जिसमें न तो महेश की अनिवार्य उपस्थिति रह गयी और न तो मद्य मांस की गन्ध रह सकी।

ब्रह्मवैवर्त के तन्त्र ने शुद्ध भक्ति का जामा पहना। हृदय की पवित्रता तथा भक्त की आस्था की प्रधानता हुई। साधन-सामग्री कुछ नहीं, शील और शालीनता तथा आडम्बरहीन भक्ति ही इन मन्त्रों कवचों एवं स्तोत्रों के मूल हैं।

सम्पूर्ण पुराण में कुल ५५ मन्त्र, स्तोत्र और कवच हैं जिनमें ९ कवच, १३ स्तोत्र और ३३ मन्त्र हैं।

कवच

१. सरस्वती	विश्व विजय कवच २।४।७३-८६ ॥
२. प्रकृति	ब्रह्माण्ड मोहन कवच २।६७।७-१४ ॥
३. सूर्य	सूर्य कवच ३।१९।२५-२८ ॥
४. महालक्ष्मी	महालक्ष्मी कवच ३।२२।९-१३ ॥
५. श्री कृष्ण	त्रैलोक्य विजय कवच ३।३१।२५-४६ ॥
६. शिव	ब्रह्माण्ड विजय कवच ३।३५।१२१-१३४ ॥
७. भद्रकाली	भद्रकाली कवच ३।३७।१०-१९ ॥
८. पद्मा	पद्मा कवच ३।३८।६५-७५ ॥
९. दुर्गा	दुर्गति नाशिनी कवच ३।३९।९-१७ ॥

स्तोत्र

निम्नलिखित १३ स्तोत्र ब्रह्मवैवर्त में उपलब्ध हैं। ये स्तोत्र किन देवताओं के हैं? यह तथ्य स्तोत्र नाम से ही स्पष्ट है। यहाँ देवों की भाँति पत्नी के लिए पति की पूजा बिहित है अत: पति-स्तोत्र भी वर्णित है। यह ब्रह्मवैवर्तीय-प्रयास सर्वविशिष्ट है।

१. यमाष्टक (२।२८।८-१५) २. (लक्ष्मी) सिद्ध-स्तोत्र (२।३९।५२-७२) ३. स्वधा-स्तोत्र (२।४१।२७-४८) ४. षष्ठी-स्तोत्र (२।४३-५७-७०) ५. सुरभी-स्तोत्र (२-४७।२४-२७) ६. दुर्गास्तोत्र (२।६६।८-२५) ७. लक्ष्मी स्तोत्र (३।२२।२७-३८) ८. शिव-स्तुति (३।२९।४३-५४) ९. कृष्ण-स्तोत्र (३।३२।२९-७१) १०. हरि-स्तोत्र (४।४।६२-६७) ११. दुर्गा स्तोत्र-राज (४।८८।१५-७५) १२. राधा-स्तोत्र (४।९२। ६४-८९) १३. पति-स्तोत्र (४।८३।१३७-१४५)

इनमें नामावलि की सूची सम्मिलित नहीं है। कृष्ण आदि के नामाष्टक जैसे भी कुछ अपवाद रूप में मिलते हैं; जिनका उच्चारण पुण्य स्वीकार किया गया है।[1]

मन्त्र

ब्रह्मवैवर्त में जिन मन्त्रों का वर्णन किया गया है, उन्हें सिद्ध करना देव-दया पर निर्भर है। इनका जप अथवा पुन: पुनरुच्चारण ही साधन है। इनकी सिद्धि का परमाधार भक्ति है।

१. प्रकृति	एकादशाक्षर मन्त्र	१।६।६५
२. प्रकृति	दशाक्षर मन्त्र	१।६।६६
३. प्रकृति	त्रयोदशाक्षर मन्त्र	१।६।६८
४. कृष्ण	षोडशाक्षर मन्त्र	१।१९।१२
५. कृष्ण	द्वाविंशत्यक्षर मन्त्र	१।२१।३०
६.	कृष्ण मन्त्र	२।३।२७
७. सरस्वती	कल्पपादप मन्त्र	२।४।५२
८.	भूमि मन्त्र	२।८।४९
९.	लक्ष्मी मन्त्र	२।३९।४४
१०.	स्वधा-मन्त्र	२।४१।२५
११.	दक्षिणा-देवी मन्त्र	२।४२।९३
१२. षष्ठीदेवी	अष्टाक्षर मन्त्र	२।४३।५३
१३.	स्वाहा मन्त्र	२।४४।२०

---

१. ब्रह्म वै० ४।८२।४४

१४.	मनसा मन्त्र	२।४५।१३
१५. सुरभी	षडक्षर मन्त्र	२।४७।१६
१६. राधिका-मन्त्र	षडक्षर ,,	२।५५।६
१७. कृष्ण	द्वि-अक्षर मन्त्र	२।६३।४२
१८.	दुर्गा-मन्त्र	२।६४।३५
१९.	सूर्य-मन्त्र	३।१९।१६
२०. महालक्ष्मी	षोडशाक्षर मन्त्र	३।२२।१९
२१.	चितानि-मन्त्र	३।२८।३५
२२. कृष्ण	सप्तदशाक्षर मन्त्रराज	३।२२।३-४
२३. शिव	षडक्षर मन्त्र	३।३५।११५
२४. कालिका	दक्षाक्षरी विद्या	३।३७।३
२५.	कमल वासिनी मन्त्र	३।३८।४५
२६. कृष्ण	एकादशाक्षर मन्त्र	४।२१।१९९
२७. हरि (कृष्ण)	षडक्षर मन्त्र	४।२१।२३३
२८.	दुर्गा मन्त्र	४।२७।८
२९. दुर्गा	सप्तदशाक्षर	४।८२।५२
३०.	स्नान मन्त्र	४।८२।५०
३१. गणेश	शोडशाक्षर मन्त्र	४।१२३।५७
३२.	पति-मन्त्र	४।८३।१२५
३३.	प्रकृति मन्त्र	४।४३।७४

ब्रह्मवैवर्त के उक्त सभी मन्त्र लौकिक संस्कृत में हैं। वैदिक अथवा साबर मन्त्रों का रूप नहीं दिया है। इनकी भाषा परिमार्जित एवं व्याकरण-सम्मत है। इन मन्त्रों में कुछ में तो बीज अक्षर संयुक्त हैं और कुछ मन्त्रों में बीज-अक्षर नहीं भी जुड़े हैं। इनमें चिता तथा स्नान-मन्त्र प्रासंगिक होने के कारण ही रख दिये गये हैं, अन्यथा इनका सम्बन्ध सिद्धि से नहीं है। इनका प्रतिफल विश्वास पर ही है। इनका सत्यासत्य भी अनुभवाधारित ही हो सकता है। अनुभव भी व्यक्तिगत साधना का आश्रयी है। ये मन्त्र भावना-क्षेत्र के विषय हैं।

———

परिशिष्ट २

ब्रह्म-वैवर्तीय संख्यात्मक तालिका

२. (१) द्विविधो विषयान्धः ३६।५२ (२) द्विविधं मार्गम् ३६।५३ (३) द्विपरार्धम् ८।८

३. (१) कल्पत्रयम् ८।८ (२) त्रयोगुणाः ८।२० (३) त्रिविधाः सम्बन्धाः १०।१६२ (४) त्रिविधा विष्णु निन्दा ११७।४८-४९ (५) योषित स्त्रिविधाः २३।२१ (६) अग्नेस्त्रयः पुत्राः ४०।३८ (७) त्रिधा पूजा २।६४।४५ (८) असाध्वी त्रिधा ३।२।२८ (९) त्रिधाऽवस्था ३।४।६ (१०) बन्धुत्रयम् ३।४।८ (११) त्रिविधाऽऽश्लेषणम् ४।१४।३४ (१२) वचनं त्रिविधम् ४।४१।५३-५६ (१३) नरास्त्रिविधाः ४।६४।११४ (१४) तिस्रः कोट्यः सुराणाम् २।३।१८ ॥ ४।८४।१०१ (१५) अंगिरसो त्रयः पुत्राः १।१०।२

४. (१) चतुर्युगाः १।८।४ (२) चतुर्विधं प्रलयम् १।८।९ (३) चतुर्वेदाः १।१०।९ (४) चत्वारोवर्णाः २।३।१९ (५) चुम्बनं चतुर्विधम् ४।१५।१४८ (६) नैवेद्यं चतुर्विधम् ४।१२३।३९

५. (१) पंच पितरः १।१०।१५१-५२ (२) पंचोपचाराः १।२६।८९ (३) पंचधा प्रकृति २।१।१ (४) पंच वाणाः २।१६।२ ॥ १।४।११ (५) पुत्राः पंचविधाः ३।८।४९ (६) ताताः पंचविधाः ३।८।४७ (७) पापं पंचविधम् २।२१।६७ (८) जनाः पंच प्रकाराः २।१०।१६७ (९) पंच पर्वाणि ४।८५।११७ (१०) ज्ञानं पंचविधम् ४।११०।११-१५ (११) उपपुराणं पंचलक्षणम् ४।१३३।६-७ (१२) पंचरात्रं पंचकम् ४।१३३।२३-२४ (१३) संहिता पंचलक्षणम् ४।१३३।२५ ।

६. (१) षड्विधा मुक्तिः १।६।१७ (२) षड् रागाः १।८।४ (३) षट् कृत्तिकाः १।८।६ (४) षट् चक्रम् १।१३।१३ ॥ ४।२०।२८-२९ (५) नाडी षट्कम् ४।२०।२७ (६) देवषट्कः ४।१०१।१० (७) तर्काणां षड्विधम् ४।१२९।७२ ।

७. (१) सप्तपर्वताः १।७।२ (२) सप्त समुद्राः १।७।५ ॥ २।३।११ ॥ ४।८४।१०३ (३) सप्ताहः १।१५।२ (४) सप्तद्वीपाः २।३।११ ॥ ४।८४।१०३ ॥ ४।४३।१९ (५) सप्तभुवर्लोकाः २।३।१२ । (६) सप्तोपचाराः २।३।३४ (७) सप्तपातालानि २।३।१२ (८) सप्तमः (विघ्नः) सुतः २।५९।७० (९) स्वर्गाः सप्त ४।८४।१०२ (१०) सप्त रमण्यः ४।११२।१३३-३४ (११) सप्त गोप्यः ४।१२६।२२ ।

८. (१) वसवोऽष्टौ १।८।११ ॥ ४।८४।१०१ ॥ ४।१०४।६६ ॥ ४।११६।१७ ॥ ४।१२५।२८ (२) अष्टगोपाः २।१६।८२ (३) अष्टौ भैरवाः २।१७।३५ ॥ २।६४।८३-८४ ॥ ४।११५।५० ॥ ४।११७।१५ ॥ ४।११८।४ (४) अष्ट नायिकाः २।६४।८१ ॥ ४।१२०।१६ (५) शृङ्गाराष्ट प्रकारम् ४।१४।३३ ॥ ४।१५।१५२ ॥ ४।२३।१२५ ॥ ४।२८।७१ (६) अष्टविधाः मातरः ३।८।४८ (७) चुम्बनाष्ट विधम् ४।२८।७२ ॥ ४।२८।१०८ (८) अष्टौ भैरवेश्वराः ४।२८।१२२ (९) नामाष्टकम् ४।८२।४४ (१०) विवाहाष्ट प्रकाराः ४।११४।५५ (११) अष्टौ शक्तयः ४।२०।१९ ।

९. (१) नवधा भक्ति १।६।१६ ॥ १।६।१७३-७४ (२) नव शक्तयः २।६४।८६-८८ (३) चुम्बनं नवविधम् ४।२३।१२५ (४) आलिङ्गनं नवविधम् ४।२८।१०८ (५) विश्वकर्मणो नवपुत्राः १।१०।२० (६) प्रकृते र्नव नाम ४।४३।७८ (७) नवग्रहाः ४।८४।१०१ ॥ ४।८६।६३ (८) नवधा रूपं कृष्णस्य ४।७२।९।७३ ।

१०. (१) महापुराणं दशलक्षणम् ४।१३३।८-१० (२) दशभद्राणि ४।८२।४७

११. (१) एकादश पापिष्ठाः ३।२७।४८-५० (२) रुद्रा एकादश २।१७।३५ ॥ १।८।१९-२३ ॥ ४।८४।१०० ॥ ४।११८।४ ॥ ४।१२५।२८ ॥ ४।३५।३५ (३) एकादश रुद्र पत्न्यः १।९।१३-१४ (४) कृष्णस्य एकादश नामानि ४।१११।१५-१६

१२. (१) द्वादशोपचाराः १।२६।८९ (२) आदित्याः द्वादश २।२७।३६ ॥ ४।८४।१०० ॥ ४।१०४।६९ (३) गोपालाः द्वादश ४।२७।५९-६० (४) प्राकृतं द्वादश विधम् ४।२८।१११ (५) आदित्यः काय व्यूहेन द्वादश ४।१२५।२७ (६) मनसा द्वादश नामानि २।४५।१७

१३. (१) दक्ष-त्रयोदश कन्याः २।१८।३४

१४. (१) चतुर्दश मातरः १।१०।१५३-५४ (२) महेन्द्राः चतुर्दश ४।१२५।२७

१६. (१) षोडशोपचाराः १।२६।८७ ॥ २।२३।५३-५४ (२) षोडश मातरः ३।१५।३२-४१ (३) शृंगारं-षोडश-विधम् ४।२८।१०९ ॥ ४।१२७।२
(४) षोडश-सत्यः ४।४५।८-१० (५) षोडश नाड्यः १।१३।१७ (६) स्वाहा षोडश नामानि २।४०।५१-५३ (७) षोडश संहिताकाराः १।१६।१२-१३ (८) षोडश चिकित्सातंत्राणि १।१६।२१ (९) कलाः षोडश ४।१२७।२ (१०) दुर्गा षोडश नामानि २।५७।१५-१६ (११) कृतघ्नाः षोडश-विधाः २।५१।३५-३७ (१२) राधा षोडश नामानि ४।१७।२०-२२

१८. (१) अष्टादश शालिग्राम शिला नामानि २।२१।६०-७६ (२) अष्टादश सिद्धयः १।६।२० (३) अष्टादश पुराणानि ४।१३३।११-२१

२४. (१) (कृष्ण) चतुर्विंशति नामानि १।३।५०

२७. (१) सप्तविंशति चन्द्रपत्न्यः १।९।४९-५३

३३. (१) त्रयस्त्रिंशद् वयस्याः ४।२८।२४ ॥ ४।४।५५ (२) त्रयस्त्रिंशद् वनानि ४।२८।१६१-६७

३६. (१) षट्त्रिंशद् रागिण्यः १।८।३ (२) षट्त्रिंशद् राग रागिण्यः ४।५३।४५

४०. (१) चत्वारिंशद्दनोः पुत्राः २।१८।३५

४६. (१) षट्चत्वारिंशन्नामानि पुरन्दरस्य ४।२१।१५२-५९

५९. (१) एकोन पंचाशदुपद्वीपाः २।३।११

६०. (१) षष्टि तत्सहचर्यः ४।५३।३९

६४. (१) चतुः षष्ठी रुजः १।१६।२८-३१ (२) चतुः षष्टिकलामानम् २।१६।११८ (३) चतुः षष्टिविधं सुखम् २।१६।११८ (४) चतुः षष्टि योगिनी २।६४।९०

८६. (१) षडशीति कुण्डानि २।२९।६-२० (२) ३९९ सहस्र गोपिकाः ४।२८।२३-४१

———

परिशिष्ट ३

ब्रह्मवैवर्तीय पात्र

१. ब्रह्म-खण्ड

१. शौनक २. सौति ३. नारायण ४. महादेव ५. ब्रह्मा ६. श्रीधर्म ७. सरस्वती ८. महालक्ष्मी ९. प्रकृति १०. सावित्री ११. श्रीमहेश्वर १२. श्रीभगवान् १३. नारद १४. दक्षकन्या १५. दक्ष १६. शिव १७. शंकर १८. विश्वकर्मा १९. घृताची २०. ब्राह्मण २१. गोपिका २२. सूर्य २३. महादेव २४. गन्धर्व २५. मालावती २६. देवा २७. यम २८. मृत्युकन्या २९. कालपुरुष ३०. श्रीकृष्ण ३१. कलावती ३२. द्रुमिल ३३. काश्यप ३४. श्री नारायण

२. प्रकृति खण्ड

१. भृगु २. याज्ञवल्क्य ३. गंगा ४. महावराह ५. वसुधा ६. विष्णु ७. राधिका ८. वह्नि ९. तुलसी १०. शंखचूड ११. पुष्पदन्त १२. वृद्ध ब्राह्मण १३. पराशर १४. दुर्वासा १५. इन्द्र १६. वृहस्पति १७. स्वाहा १८. यज्ञ १९. प्रियव्रत २०. देव सेना २१. जरत्कारु २२. मनसा २३. पार्वती

२४. सनत्कुमार २५. पुलस्त्य २६. पुलह २७. क्रतु २८. अंगिरा २९. मरीचि ३०. कश्यप ३१. प्रचेता ३२. राजा ३३. वसिष्ठ ३४. शुक्र ३५. गौतम ३६. ऋष्य शृंग ३७. सुयज्ञ ३८. कात्यायन ३९. सनन्दन ४०. सनातन ४१. भरद्वाज ४२. विभाण्डक ४३. मार्कण्डेय ४४. देवल ४५. जैगोषव्य ४६. वाल्मीकि ४७. आस्तीक ४८. मुनि जन ४९. अतिथि ५०. मुनि ५१. सुतपा ५२. चन्द्र ५३. तारा ५४. दैत्य ५५. प्रह्लाद ५६. ऋषिजन ५७. सुरथ ५८. मेधा ५९. प्रकृति ६०. वैश्य।

३. गणेश खण्ड

१. चन्द्र २. पवन ३. शतरूपा ४. देव ५. हिमालय ६. ब्राह्मण ७. मेनका ८. शनैश्चर ९. विशालाक्ष १०. वरुण ११. कुबेर १२. ईशान १३. रुद्र १४. कामदेव १५. स्वर्वैद्य १६. सर्वद १७. देवपत्नियाँ १८. जल १९. दोनों सन्ध्याएँ २०. रात्रि २१. दिन २२. कृत्तिकाएँ २३. कार्तिकेय २४. नन्दिकेश्वर २५. सुमालि माली २६. रम्भा २७. राजा २८. सचिव २९. मुनि ३०. सुरभि ३१. राम (परशुराम) ३२. रेणुका ३३. परशुराम ३४. भद्रकाली ३५. रामदूत ३६. कार्तवीर्यार्जुन ३७. मनोरमा ३८. राजा ३९. (वृद्ध ब्राह्मण) ४०. (राजा) ४१. गणेश्वर।

४. श्री कृष्ण जन्म खण्ड—पूर्वार्ध

१. आलियाँ २. श्रीदामा ३. कंस ४. योगनिद्रा ५. गर्ग ६. नन्द ७. गन्धर्वा ८. भनन्दन ९. विप्र पत्नियाँ १०. बालाएं ११. ब्राह्मण १२. मुनि पत्नियाँ १३. सुरसा १४. कालिय १५. सौभरि १६. बलदेव १७. दानव १८. दैत्य १९. साहसिक २०. तिलोत्तमा २१. और्व २२. जीव २३. शिशु २४. दिगपाल २५. ग्रह २६. मुनि जन २७. अत्रि २८. पार्षद २९. नर्तक ३०. भक्त ३१. गोपालिकाएँ ३२. वेदवती ३३. जानकी ३४. अष्टावक्र ३५. देवल ३६. मोहिनी ३७. द्वारपाल ३८. ऋषिजन ३९. दूत ४०. हिमालय ४१. अरुन्धती ४२. पद्मा ४३. जाह्नवी ४४. रति ४५. अदिति ४६. शची ४७. अहल्या ४८. स्वहा ४९. रोहिणी ५०. संज्ञा ५१. शतरूपा ५२. मेना ५३. सूत ५४. ब्राह्मण ५५. बालक ५६. मुनि ५७. शिशु ५८. वासुकि ५९. धन्वन्तरि।

५. श्री कृष्ण जन्म खण्ड—उत्तरार्ध

१. श्री भगवान् २. जय ३. नहुष ४. गुरु ५. दूत ६. ऋषिजन ७. श्रीराम ८. सूर्पणखा ९. हनुमान १०. सीता ११. सत्यक १२. राजेन्द्र

१३. अक्रूर १४. रत्नमाला १५. रजक १६. जमदग्नि १७. तारका १८. शुक्र १९. धर्म २०. वृन्दा २१. अनन्त २२. वह्नि २३. मूर्ति २४. दुर्गा २५. वसुदेव २६. देवकी २७. उद्धव २८. माधवी २९. मालती ३०. कालिका ३१. गर्ग ३२. मुनीन्द्र ३३. सान्दीपनि ३४. गुरु पत्नी ३५. उग्रसेन ३६. भीष्मक ३७. शतानन्द ३८. रुक्मि ३९. शाल्व ४०. शिशुपाल ४१. दन्तवक्त्र ४२. रति ४३. रोहिणी ४४. गायत्री ४५. सुभद्रा ४६. यशोदा ४७. शम्बर ४८. अनिरुद्ध ४९. कामिनी ५०. उषा ५१. पुमान् (कृष्ण-पौत्र) ५२. चित्रलेखा ५३. रक्षक ५४. स्कन्द ५५. बाण ५६. कोटरी ५७. मणिभद्र ५८. बलि ५९. दूत ६०. ज्वर ६१. ब्राह्मण ६२. शृगाल ६३. तारा ६४. रक्षक ६५. गोपियाँ।

परिशिष्ट ४

निम्नलिखितों का दर्शन मंगल-सूचक[1] है —

हरि का नाम, शंख-ध्वनि, घंटा-ध्वनि, दुन्दुभि-ध्वनि, आकाश-वाणी-संगीत, मेघ-शब्द, विप्रदर्शन, वन्दि-दर्शन, देवज्ञ-दर्शन, भिक्षुक-दर्शन, ज्वलित प्रदीपधारिणी मुस्कराती सती, शव, शिवा, पूर्ण कुम्भ, चाष, नकुल, कृष्णसार, गर्जसिंह, तुरंग, गण्डक, द्विप, चमरी, राजहंस, चक्रवाक, शुक, पिक, पारावत, बलाक, कारण्ड, चातक, चट, सौदामिनी, चक्रचाप, सूर्य, सूर्य-प्रभा, सद्यः मांस, सजीव मत्स्य, शंख, सुवर्ण, माणिक्य, रजत, मुक्ता, मणीन्द्र, प्रवाल, दधि, लाज; शुक्लधान्य, शुक्ल-पुष्प, कुंकुम, पर्ण, पताका, छत्र, मयूर, खंजन, शंखचित्त, चकोर, दुग्ध, घृत पूगफल, अमृत, पायस, शालग्राम, पक्व-फल, शर्करा, मधु, मार्जार, वृषेन्द्र, मेष, पर्वत, मूषक, मेघाच्छन्न रवि का उदय, चन्द्र मण्डल, कस्तूरी, व्यजन, तोय, हरिद्रा, तीर्थमृत्तिका, सिद्धार्थ (पीली सरसो), सर्षप, दूर्वा, दर्पण, श्वेतचामर, वत्सपायिनी धेनु, रथस्थ नृप, गोपुरीष, गोधूलि, गोपदांकित, गोष्ठ, गोमार्ग, रम्य गोशाला, शुभ गोगमन, भूषण, देवमूर्ति, ज्वलित अग्नि, महोत्सव, ताम्र, स्फटिक, वन्द्य, सिन्दूर, माल्यचन्दन, गन्ध, हीरक, रत्न, सुगन्धि वायु, विप्राशीष, विप्रबाल, बालिका, मृग, वेश्या, षट्पद (भ्रमर), कर्पूर, पीत वस्त्र, गोमूत्र।

---

१. ब्रह्म वै० गणेश खण्ड ३३ अ०

निम्नलिखित अमंगल-सूचक[1] हैं—

मुक्तकेशी छिन्न-नासा स्त्री, रुदती दिगम्बरा स्त्री, कृष्णवसन धारिणी विधवा स्त्री, मुखदुष्टा स्त्री, योनिदुष्टा स्त्री, व्याधियुक्ता स्त्री, कुट्टिनी, पति-पुत्र विहीना, डाकिनी, पुंश्चली, कुम्भकार, तैलकार, व्याध, सर्पोपजीवी, कुचैल, अतिरूक्षांग, नग्न, पिण्ड, मोटक, तिल, देवल, वृषवाह, शूद्रश्राद्धान्न भोजी, शूद्रान्न पाचक, शूद्रयाचक, ग्राम याजक, कुश पुत्तलिका शवदाहनकारी, शून्य-कुम्भ, भग्न-कुम्भ, तैल, लवण, अस्थि, कार्पास, कषायवासी, वसा विक्रयी, कन्या विक्रयी, चितादग्ध शव, भस्म, निर्वाणांगार, सर्पदष्ट नर, सर्प, गोधा, शशक, विषम, श्राद्ध पाक, शोक कारी, मिथ्यासाक्ष्य प्रदायी, चौर, नरघाती, पुंश्चली-पति, पुंश्चली-पुत्र, पुंश्चली का ओदन भोजी, देवता गुरु विप्रोंका वस्तुवित्तापहारी, दत्तापहारी, दस्यु, हिंसक, सूचक, खल, पितृ-मातृ-विरक्त, द्विजाश्वत्थघाती, सत्यघ्न, कृतघ्न, कच्छप, चूर्ण, शब्दकारी कुक्कुर, दक्षिण भाग में शृगाल रव, कपर्दक, क्षीर, छिन्नकेश, नख, कलह, विलाप, तत्कारी जन, अमंगलवादी, काण, बधिर, पुल्कस, छिन्न-लिंग, सुरा-मत्त, सुरा, रुधिर-क्षिप्त, रुधिरवमनकारी, महिष, गर्दभ, मूत्र, पुरीष, श्लेष्मग्रस्त, रूक्षी, नर-कपाली, चण्डवात, रक्त-वृष्टि, स्थाप्य का अपहारी, विप्र-मित्र-द्रोही, क्षत, विश्वास-घातक, गुरु-देव-द्विज-निन्दक, स्वांग-घातक, जीवन-घातक, स्वांग-हीन, निर्दय, व्रतोपवास-हीन, दीक्षाहीन, नपुंसक, गलित व्याधि-गात्र, काण, रक्त पुष्प, औषध, तुष, कुवार्ता, मृत-वार्ता, विप्र-शाप, दुर्गन्धि वात, दुःशब्द, कुत्सित मन, क्षुभित प्राण, भामांग-स्पन्द, देह-जाड्य, वाद्य, वृक्षपातन, सूकर, गृध्र, श्येन, कंक, वल्लुक, पाश, शुष्क काष्ठ, वायस, गन्धक, प्रतिग्राहि ब्राह्मण, तन्त्र-मन्त्रोपजीवी, वैद्य।

पंच-विध-ज्ञान[2]

योगात्मक, सिद्धात्मक, भक्त्यात्मक, विषयात्मक, मोक्षात्मक

षोडश माता[3]

स्तन-दात्री, भक्ष्य-दात्री, अभीष्ट देव-पत्नी, कन्या, भगिनी, प्रिया-प्रसू, पितृ-माता, मातृ-पितृ-भगिनी, गर्भ-धात्री, गुरु-प्रिया, पितृ-पत्नी, सगर्भ-कन्या पुत्र-पत्नी, मातृ-माता, सोदर-प्रिया, मातुलानी।

---

१. ब्रह्म वै० गणेश खण्ड ३५ अ० २. ब्रह्म वै० ४, २।११०।११-१५

३. वही ३।१५।३२-४१

निम्नलिखितों का स्वप्न में दर्शन शुभ है —

गज, अश्व, शैल, प्रासाद, गो, फलित वृक्ष पर स्वयं आरोहण, कृमि-भक्षण, स्वयं नौकारोहण, सर्पदर्शन, इनके द्वारा खदेड़ना, स्वयं चन्द्र या सूर्य के साथ, पति-पुत्रवती नारी, सस्मित-द्विज, सुवेषा कन्याश्लेष, सस्मित द्विजश्लेष, फलित पुष्पित वृक्ष, चन्दनोक्षित, पुष्पमाला धारण, पीतवसन-धारण. विट् मूत्रोक्षित सर्वांग, स्वयं वीणा-वादन, पद्म पत्रों पर नदी तट पर दधि भक्षण, पद्म पत्रों पर नदी तट पर घृत भक्षण, पद्म पत्रों पर नदी तट पर मधु भक्षण, पद्म पत्रों पर नदी तट पर दधि मधु घृत मिलित भक्षण: पायस-भक्षण, ताम्बूल भक्षण, ब्राह्मणाशीष, फल प्राप्ति, पुष्प प्राप्ति, प्रदीप प्राप्ति, परिपक्व-फल, क्षीर, शर्करायुत उष्णान्न, स्वस्तिक-भोजन, जलौका द्वारा काटना, वृश्चिक द्वारा डंक, मधु, पर्णच्छत्र, छत्रो, बक-पंक्ति, हंस-पंक्ति, व्रतान्वित घट पूजयन्ती कन्या-पंक्ति, गजस्थ, रथस्थ, शंख, श्वेत स्फटिक, माला, मुक्ता, चन्दन, सुवर्ण, रजत, रत्न, गज, वृष, श्वेत सर्प, श्वेत-चामर, नीलोत्पल, दर्पण, स्वयं भूषित रथस्थ, रत्न सिंहासनस्थ, पद्म श्रेणी, पूर्ण-कुम्भ, दधि-लाज, सिंह, सुरभी, गोरोचना, हरिद्रा, शुक्ल-धान्याचल, ज्वलिताग्नि, मण्डपस्थ पूजक द्विजगण, सुधा-वृष्टि, पर्ण-वृष्टि, फल-वृष्टि, पुष्प चन्दन-वृष्टि, सद्यो मांस, सजीव-मत्स्य, मयूर, श्वेत खंजन, सरोवर, तीर्थ, पारावत, शुक, चाप, शंख-चिल्ल, चातक, व्याघ्र, दूर्वा, देवालय समूह, शिव-लिंग, मृन्मयी पार्वती, यव चूर्ण भक्षण, गोधूम चूर्ण भक्षण, भूषित अगम्यागमन, नर्तकी, वेश्या, रुधिर-पान, सुरा-पान, रुधिरोक्षित सर्वांग, पीतवर्णपक्षि मांस भोजन, मानुष मांस भोजन, अकस्मात् निगडबन्धन, शस्त्र-क्षत ।

स्वप्नों का फलसहित विस्तार ब्रह्मवैवर्त श्री कृष्ण जन्म, द्वितीय खण्ड के ७७ वें अध्याय में वर्णित है ।

— — —

१. ब्रह्म वै० गणेश खण्ड ३३ अ०३५-६१

स्वप्न में निम्नलिखितों का दर्शन अशुभ है[1] —

तैलाभ्यंग, गर्दभारोहण, औण्ड्र पुष्प माला, रक्त चन्दन धारण, रक्त वस्त्र परिधान, गगनचन्द्र मण्डल स्खलन, सूर्य मण्डल-पतन, उल्कापात, धूमकेतु, चन्द्र–सूर्य-ग्रहण, लौहालंकार भूषित, निर्वाणांगार राशि से क्रीडन और हास्य, भस्माच्छन्न पृथिवी, जपा पुष्पान्विता भूमि, सूर्य-चन्द्रहीन रक्त सन्ध्या, मुक्तकेशा का नर्तन, छिन्न-नासिका-विधवा, रक्त वस्त्र-धारिणी का अट्टहास, अग्निरहित भस्म एवं शवसहित चिता, भस्मवृष्टि, रुधिर वृष्टि, अग्नि वृष्टि, पक्व ताल फलाकीर्ण, अस्थिसंयुत पृथिवी, कपाल समूह, छिन्न केश नखान्वित, नमक-पर्वत, कपर्दक-राशि, चूर्ण-कन्दर, तैल-कन्दर, पुष्पित अशोक वृक्ष, पुष्पित करवीर, फल पतनकारी ताल वृक्ष, निजकर से कलपतन वा भंजन, कामिनी-रक्त वस्त्र, कामिनी शुक्लवस्त्र, कृष्णाम्बरा, विकृताकार पुरुष, विकटास्य, दिगम्बर, द्वादशवर्षीया-भूषिताबाला का रुष्ट गमन, पत्नी का वनगमन, रुष्ट विप्र, रुष्ट संन्यासी, रुष्ट गुरु शाप, भित्ति पुत्तलिका, चित्रनर्तन, गृध्रों-द्वारा पीडन, काक-पीडन, महिषों द्वारा पीडन, तेली के यन्त्र से पीडन, उक्त यन्त्र पर भ्रामित, पाशहस्त दिगम्बर, विवाह में नृत्य गान आनन्द रमणकारी लोक, केशा केशिकरते लोग, काक युद्ध, कुक्कुर युद्ध, मोटक, पिंड, शवयुत श्मशान, मुक्तकेश भूत-प्रेत, भूतादि का अग्निवमन, दग्ध-जीव, कृष्ण वर्णा, नग्ना, मुक्तकेशिनी, विधवा श्लेष, क्षौर कर्म, पादुका-राशि, चर्म-राशि, रज्जु-राशि, भूमि पर कुलाल चक्र भ्रमण, वात्या से घूर्णमान, शुष्क-वृक्ष-समुत्थान, घूर्णमान-कबन्ध, ग्रथित मुण्डमाला, वात्या से चूर-चूर, अतीव घोर-दशना-नारी, दग्ध-वृक्ष, व्याधि-ग्रस्त नर, अंगहीन, वृषल, सहसा गेह-पतन, सहसा पर्वत-पतन, सहसा वृक्ष-पतन, पुनः पुनः वज्रपात, कुक्कुर रोदन, शृगाल-रोदन, अधः शिर उर्ध्व पाद, मुक्तकेश, दिगम्बर भ्रमण, विकृताकार शब्द, ग्रामाधिदेव रोदन।

दुःस्वप्नों का संकलन ब्रह्मवैवर्त चतुर्थ खण्ड ६३ वें अध्याय में भी किया गया है।

---

1. ब्रह्म वै० गणेश खण्ड, अ० ३४।१-३८

परिशिष्ट ८

वृन्दावन के अन्तर्गत ३३ वन[1]

१. भाण्डीर २. श्री वन ३. कदम्ब-कानन ४. तुलसी-कानन ५. कुन्दकानन ६. खम्पाक-कानन ७. निम्बारण्य ८. मधुवन ९. जम्बीर-कानन १०. नारिकेल वन ११. पूग-वन १२. कदली-वन १३. बदरी-कानन १४. बिल्व-वन १५. नारंगि-कानन १६. अश्वत्थ-कानन १७. वंश-वन १८. दाडिम-कानन १९. मन्दार-कानन २०. ताल-वन २१. चूत-वन २२. केतकी-कानन २३. अशोक-वन २४. खर्जुर-कानन २५. आम्रातक-वन २६. जम्ब-गहन २७. शाल-कानन २८. कण्टक-कानन २९. पद्म-वन ३०. जाति-वन ३१. न्यग्रोध-गहन ३२. श्री खण्ड-कानन ३३. प्रहृष्ट-केसर-वन।

परिशिष्ट ९

सोलह सती स्त्रियां[2]

सरस्वती, सावित्री, रति, शची, अरुन्धती, तुलसी, रोहिणी, शतरूपा, लक्ष्मी, जाह्नवी, अदिति, लोपामुद्रा, अहल्या, स्वाहा, वसुन्धरा, संज्ञा।

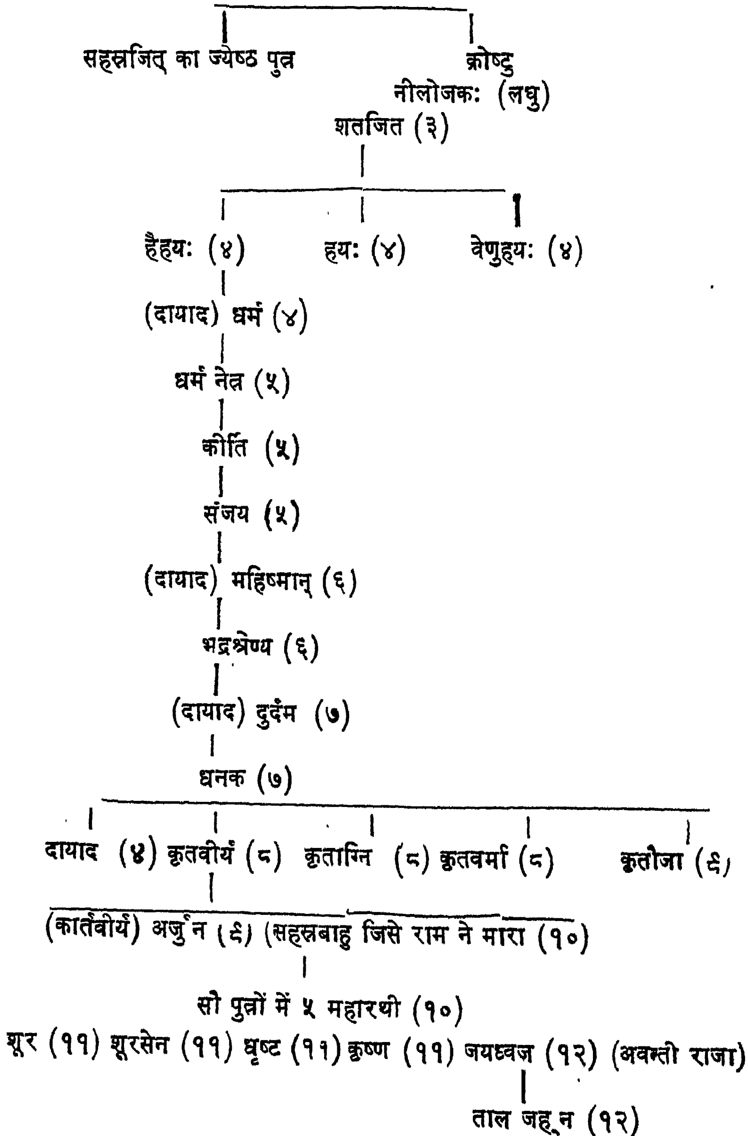
---

१. ब्रह्म वै० ४, १।२८।१६१-६७ २. ब्रह्म वै० ४, १।४५।८-१०

लिंग पुराण पूर्वार्ध ६८ अध्याय के आधार पर यदु के पंच पुत्र (२)

(नम्बरों में श्लोक संख्या)

यदुवंश वृक्ष



ताल जङ्घ (१२)
|
(१४) वृष आदि सौ पुत्र (१३) (ज्येष्ठ वीतिहोत्र थे)
|
मधु (१४)

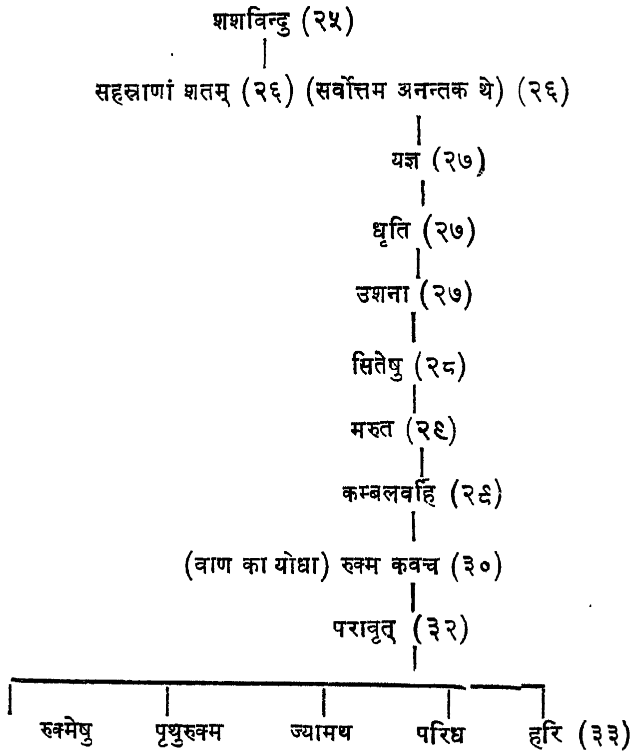
मधोः पुत्रशतं चासीद्, वृष्णिस्तस्य तु वंशभाक् ।
वृष्णोस्तु वृष्णयः सर्वे मधोर्वै, माधवाः स्मृताः ॥
यादवा यदुवंशेन निरुच्यन्ते तु हैहयाः ।
वीतिहोत्राश्च हर्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा ।
शूरसेनास्तुविख्यातास्ताल जंघास्तथैव च ॥ १७
शूरः शूरसेनश्च वृषः कृष्ण स्तथैव च ।
जयध्वजः पंचमस्तु विख्याता हैहयोत्तमाः ॥१८॥

वीति होत्र (२०)
|
विश्रुत या नर्त्त (२०)

कृष्ण (इनको परम्परा का स्पष्ट-अस्पष्ट कोई परिचय नहीं दिया गया है)
|
अमित्रकर्षण (२०)

क्रोष्टुश्च शृणुराजर्षेवंशमुत्तम पोरुषम् ।
यस्यान्वये तु सम्भूतो विष्णु वृ ष्णि कुलोद्वहः ॥२१॥

क्रोष्टु (२१)
|
वृजिनीवान् (२१)
|
स्वाती (२२)
|
कुशंकु (२२)
|
(२४) चित्ररथ (यज्ञ के उपरान्त)
(इसके बेटे का नाम नहीं दिया है)
|
(२४) चैत्ररथि (इसी वंश से) (अन्वयाद्)
|
शशविन्दु (२५)



परिघंच हरिंचैव विदेहेषु पितान्यसत् । (३३)

रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्म स्तदाश्रयात् ।
तैस्तु प्रव्राजितो राजा ज्यामथोऽवसदाश्रमे ॥३४॥

ये (ज्यामथ) ब्राह्मणों से बोधित होकर सन्तोष के साथ अपनी पत्नी सहित नर्मदा के किनारे ऋक्षवान पर्वत पर गये । इस पत्नी शैव्या ने उस अकेलेपन में पर्वत पर विदर्भ को उत्पन्न किया ।

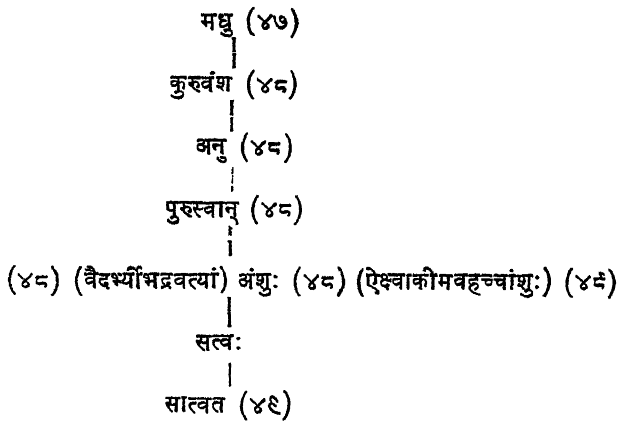
किन्तु-सुतं विदर्भं सुभगावय: परिणता सती ।
राजपुत्र सुतायान्तु विद्वान्सौ क्रथकौशिकौ ॥३८॥

ये दो बड़े ही रणकुशल थे ॥३९॥

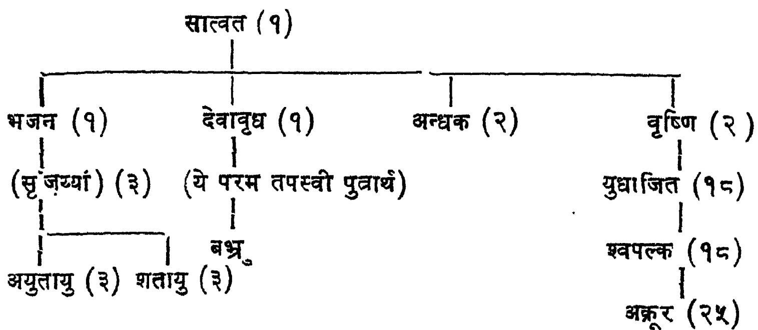
रोमपादस्तृतीयश्च बभ्रुस्तस्यात्मज: स्मृतः ।

क्रथ (४१)
|
कुन्ति (आत्मज)
|
वृत (आत्मज)
|
रणधृष्ट (४१)
|
निधृति (४२)
|
दशार्ह (नैधृत:) (४२)
|
व्याप्त (४३)
|
जीमूत (४३)
|
विकृति (४३)
|
भीमरथ (४३)
|
नवरथ (४४)
|
दृढ़रथ (४५)
|
शकुनि (४५)
|
करम्भ (४५)
|
देवरात (४५)
|
देवराति (४६)
|
देवक्षत्र (देवगर्भोपमोजज्ञेदेवक्षत्र नामक:) यह नाम बौद्ध कृष्ण चरित्र में देवकी के लिए आया है। (४६)
|
मधु ४७ (मधूनां वंशकृद्राजा मधोस्तु कुरु वंशक: (४७)
|

बभ्रु (३९)
|
सुधृति (विद्वान एवं धार्मिक था (४०)
|
कैशिक (४०)
|
चेद्यान्वय (४०)



एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

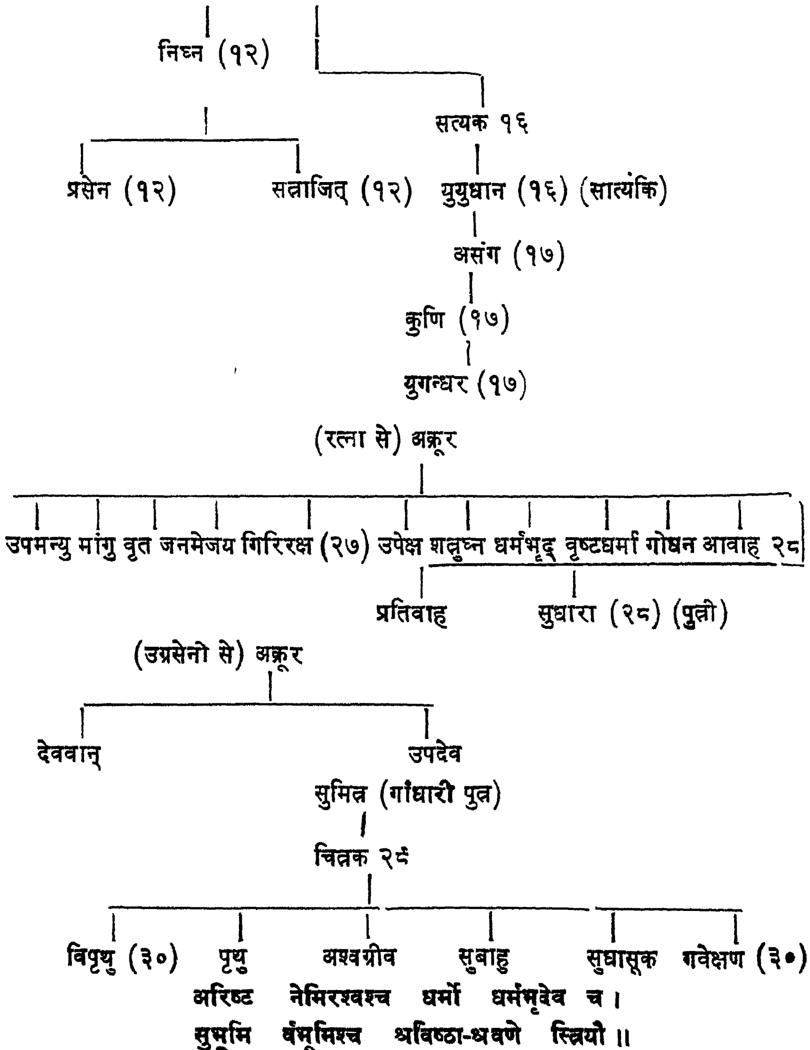


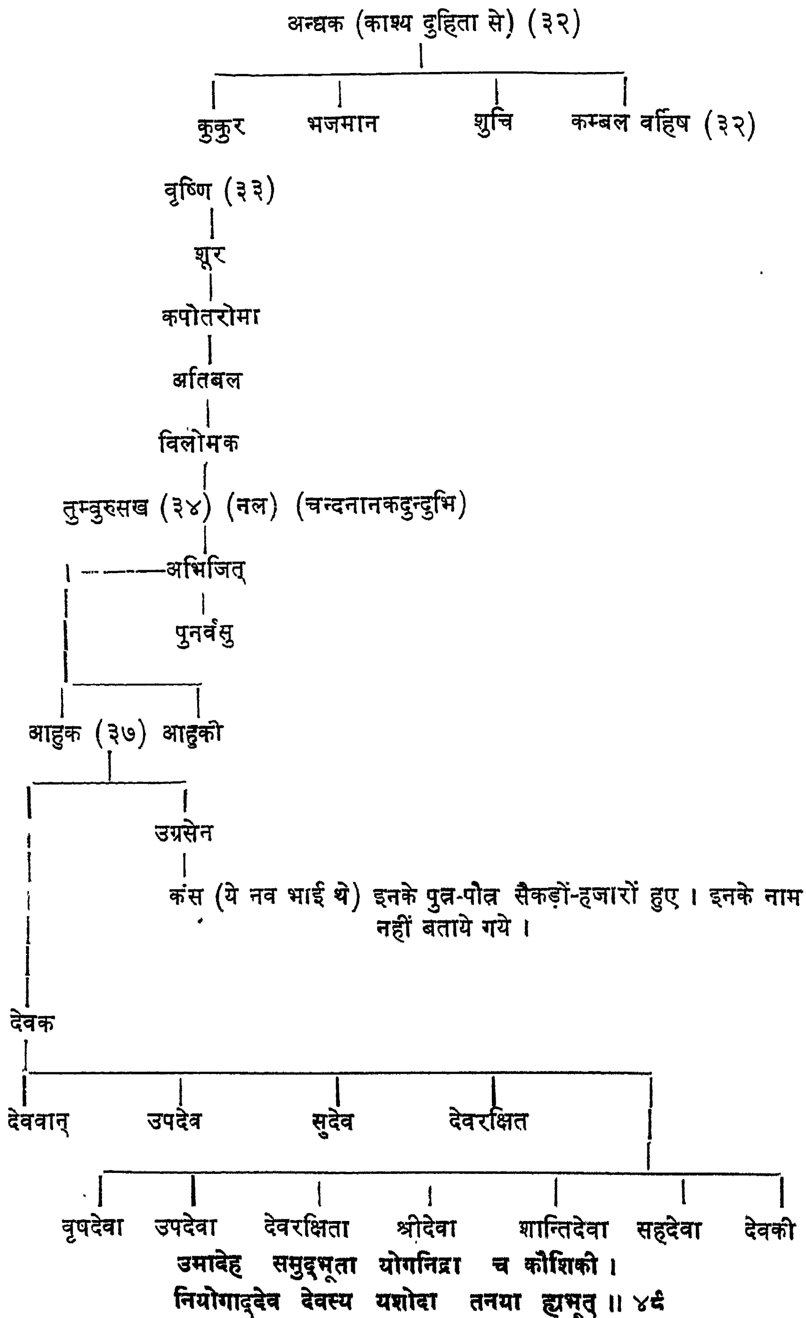
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैं देवावृधः समः ।
पुरुषाः पंच षष्टिस्तु षट् सहस्राणि चाष्ट च ।।७।।
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रो देंवावृधादपि ।
यज्वादानमति वीरो ब्रह्मण्यस्तु दृढव्रतः ।।८।।
कीर्तिमांश्च महातेजा सात्वतानां महारथः ।
तस्यान्वये सम्भूता भोजा वै देवतोपमा ।।९।।

वृष्णि भार्ये गान्धारी, माद्री
|
सुमित्र

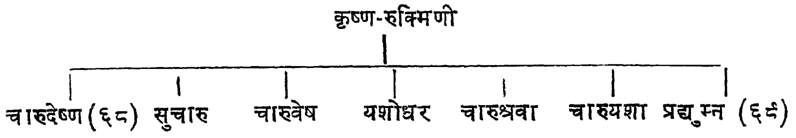
श्वपल्क की पत्नी काशी नरेश की पुत्री गान्दिनी थी। यह बहुत वर्षों तक उदर से प्रकट नहीं हो रही थी। उदर से ही पिता से इसने कहा यदि तीन वर्ष तक लगातार प्रतिदिन गोदान देने का वचन दें तो वह प्रकट होगी। पिता ने आश्वासन दिया। तदनन्तर इसने जन्म ग्रहण किया।

माद्री लेभे च तं पुत्रं ततः सादेवमोढ़षम्॥
अनमित्रं शिनि चैव तावुभौ पुरुषोत्तमौ॥॥





उमादेह समुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी।
नियोगाद्देव देवस्य यशोदा तनया ह्यभूत् ॥ ४९



कृष्ण-जाम्बवती

|

साम्ब ७७

उपर्युक्त वंशावलि लिंग पुराण से उद्धृत की गयी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

१. अग्नि महापुराण—आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना।
२. कूर्म महापुराण— आचार्य श्रीराम शर्मा, मथुरा।
३. गरुड़ ,, —आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना।
४. नारद ,, —आ० श्रीराम शर्मा, मथुरा।
५. पद्म ,, —आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना।
६. ब्रह्म ,, —आ० श्रीराम शर्मा, मथुरा।
७. ब्रह्माण्ड ,, — ,, ,,
८. भविष्य ,, —खेमराज श्री कृष्णदास, मुम्बई।
९. भागवत ,, —पण्डित पुस्तकालय, काशी।
१०. मत्स्य ,, —आ० श्रीराम शर्मा, मथुरा।
११. मार्कण्डेय ,, —आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना।
१२. लिंग ,, —आ० श्रीराम शर्मा, मथुरा।
१३. वामन ,, — ,, ,,
१४. वाराह ,, — ,, ,,
१५. वायु ,, —मनसुख राय मोर, कलकत्ता।
१६. विष्णु ,, गीता प्रेस, गोरखपुर।
१७. स्कन्द ,, मनसुखराय मोर, कलकत्ता।
१८. ब्रह्मवैवर्त ,, —आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना।
१९. विष्णुधर्मोत्तर—खेमराज श्री कृष्णदास, मुम्बई।
२०. देवी भागवत—पण्डित पुस्तकालय, काशी।
२१. शिव पुराण—पण्डित पुस्तकालय, काशी।
२२. गर्ग संहिता—खेमराज श्री कृष्णदास, मुम्बई।
२३. महाभारत—गीता प्रेस, गोरखपुर।
२४. वाल्मीकि रामायण—पंडित पुस्तकालय, काशी।
२५. वेद धरातल—श्री गिरीश चन्द्र अवस्थी, संवत् २०१०
२६. हर्ष चरित—बाण भट्ट।
२७. मार्कण्डेय पुराण—एफ० पार्जीटर, ए० सी० बंगाल, कलकत्ता १९०४

२८. प्राचीन भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक भूमिका—डा० राम जी उपाध्याय, देवभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९६६ ।

२९. पुराण विषयानुक्रमणी—डा० राजबली पाण्डेय, १९५७ काशी ।

३०. हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन—डा० वीणापाणि पाण्डेय, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९६० ।

३१. भागवत धर्म—हरिभाउ उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९७०

३२. भारतीय धर्मों का इतिहास—वैष्णव, शैव तथा अन्य धार्मिक मत—मूल लेखक—आर० जी० भाण्डारकर, अनुवादक—महेश्वरी प्रसाद, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९६७ ।

३३. पौराणिक धर्म एवं समाज—सिद्धेश्वरी नारायण राय, पंचनद पब्लिकेशन, इलाहाबाद, १९६८ ।

३४. शाक्त दर्शनम्—पं० चक्रेश्वर भट्टाचार्य, चैखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७० ।

३५. श्री भगवत्तत्व—श्री करपात्री ।

३६. रास लीला-रहस्य—श्री करपात्री ।

३७. रासलाल—श्री हीरेन्द्र नाथ ।

३८. नारद भक्तिसूत्र—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

३९. गरुड पुराण : एक अध्ययन—डा० अवध विहारी लाल अवस्थी, कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, १९६८ ।

४०. पुराण संहिता—चौखम्भा, बनारस, १९६१ ।

४१. पुराण शास्त्र एवं जनकथाएँ—मैक्समूलर, अनुवादक—रमेश तिवारी, इतिहास प्रकाशन संस्थान, वाराणसी ।

४२. पुराण विमर्श—आचार्य बलदेव उपाध्याय ।

४३. रास पंचाध्यायी—डा० रसिक बिहारी जोशी ।

४४. वैदिक वाङ्मय का इतिहास—श्री भगवद्दत्त, श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, द्वि० सं०, २०१३ ।

1. Ancient India—R. C. Majumdar, Moti Lal Banarasidas, Varanasi, 1960.
2. The Tantras, Studies on their Religion and Literature—Chintaharan Chakravarti, Punthi Pustak, Calcutta 1963.
3. Principles of Tantra—Arthur Avalon, Ganesh and Co. (Madras) Ltd. 2nd. edition 1952.
4. Indian Thought and Its Development—Albert Schweitzer, London, Adam and Charles Black, 1957.
5. Philosophy of Religion—Steven M. Cahn, New York University, 1970.
6. Doctrine of Sakti in Indian Literature—Prabhat Chandra Chakravarti, Central Printers and Publishers Limited, 119 Dharmtalla Street, Calcutta, 1940.
7. Studies in Puranic Records on Hindu Rites, Custom and Society—Dr. R. C. Hazara.
8. Studies in Indian Ancient Politics—H. C. Roy Chaudhary.
9. Indian Idealiam—Surendra Nath Das Gupta, Cambridge, The University Press, 1962.
10. Epics Myths and legends of India—P. Thomas, Hornby Road, Bombay.
11. Political Thought in the Puranas—Jagdish Lal Shastri, Sant Nagar, Lahore.
12. The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India—Nand Lal Day, Luzac and Company, 46, Great Russel Street, London, W. C. I., 1927.
13. Geography of Ancient and Medieval India—D. C. Sarkar, M. A., Ph. D., F, A. S., Moti Lal Banarasidas, Varanasi, 1960.
14. Ancient India as Described by Ptolemy—J. W. McCrindle, Bombay Education Society's Press, 1885.
15. Ancient Geography of India—Cunningham, Calcutta, Chakravati Chaterji and Co., 1692.
16. Studies in Epics and Puranas of India—Dr. Pusalkar, Bombay, 1955.

17. Religions of India—A Barth, S. Chand and Company, Delhi, 1969.
18. Indian Sadhus—G. S. Ghurye, Bombay, Popular Prakashan, 1964.
19. Studies in Vedic Interpretation—A. B. Purani—The Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1963.
20. Ancient Geography of India—Cunningham.
21. Fundamental Unity of India—R. K. Mukerji.

पत्र-पत्रिकाएँ

1. स्वतन्त्र भारत
2. कल्याण
3. पुराणम्
4. गणेशांक-कल्याण
